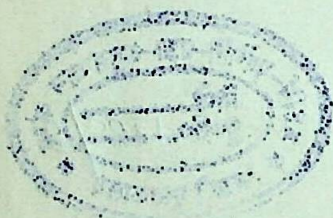




स्कन्द पुराण

[द्वितीय खण्ड]

(सरल हिन्दी भावार्थ सहित जनोपयोगी संस्करण)



सम्पादक :

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद्, षट्दर्शन, २० स्मृतियाँ, १८ पुराणों के प्रसिद्ध भाष्यकार और लगभग १५० हिन्दी ग्रन्थों के रचयिता।



प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजाकुतुब, (वेदनगर) बरेली-२४३००३ (उ०प्र०)

फोन नं. ७४२४२

प्रकाशक :

डॉ० चमन लाल गौतम

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब (वेद नगर)
बरेली २४३००३ (उ० प्र०)
फोन : ७४२४२

❀

सम्पादक :

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

❀

❀

संशोधित जनोपयोगी संस्करण
सन् १९८८

❀

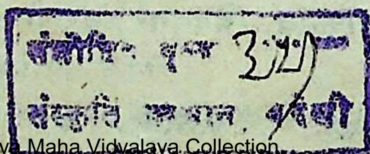
मुद्रक :

शैलेन्द्र बी० माहेश्वरी

नव ज्योति प्रेस
सेठ भीकचन्द मार्ग, मथुरा (उ० प्र०)

❀

मूल्य :
पैंतीस रुपये मात्र





दो शब्द

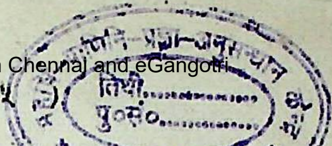
स्कन्द पुराण के इस द्वितीय खण्ड में "काशी—खण्ड" "अवन्ती खण्ड" और "रेवा खण्ड" का समावेश है। ये तीनों शैवमत के तीन प्रधान क्षेत्र हैं। काशी की महिमा और विशेषता तो सर्वत्र विदित है। शैव सिद्धान्त और विद्या का सर्व प्रधान केन्द्र होने के कारण वह समस्त देश में प्रसिद्ध है और भारतवर्ष के चारों कोनों के यात्री प्राचीन काल से वहाँ आते रहे हैं। संभवतः हिमालय से लेकर कन्या कुमारी तक और अटक से लेकर कामाक्षा देवी तक के दो हजार लम्बे-चौड़े प्रदेश में कोई ऐसा प्रसिद्ध नगर नहीं मिल सकता जो काशी से अधिक प्राचीन और भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाला हो। यद्यपि वेदों का आविर्भाव पंचनद प्रदेश में हुआ पर उनका पठन-पाठन अध्ययन-अध्यापन, मनन मुख्यतः काशी में ही होता आया है और भारत भर के विद्यार्थी सदा से वहाँ आते रहे हैं।

काशी में शैव तीर्थों की गणना कर सकना कठिन है। प्रत्येक गली कूचे में शिव के अनेक मन्दिर खड़े हैं और दशाश्वमेध, मणिकर्णिका ज्ञान वापी, कपाल मोचन, त्रिलोचन आदि अनेक प्रसिद्ध तीर्थ हैं, जिनका वर्णन इस खण्ड में किया गया है। यद्यपि प्राचीन काल की काशी तथा यवन काल में अनेकों बार लूटी और तोड़ी-फोड़ी गई काशी की स्थिति में बहुत कम अन्तर है तो भी 'स्कन्द पुराण' के बाराणसी वर्णन से वहाँ का एक महत्वपूर्ण चित्र नेत्रों के सम्मुख उपस्थित हो जाता है। अब न पुराने समस्त तीर्थ-स्थल रह गये हैं और न वह भावना शेष रह गई है, तो भी काशी की महिमा अभी समस्त हिन्दू जगत् में अक्षुण्ण है, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता।

अवन्तिका—वर्तमान उज्जैन नगरी भी प्राचीन भारत का एक ऐतिहासिक धार्मिक स्थल है। इसको महाराजा विक्रमादित्य की राज-

धानी कहा जाता है, जिनके नाम के सम्वत् का हम प्रति दिन उपयोग करते है। 'स्कन्द पुराण' की दृष्टि में इस क्षेत्र का महत्व इतना अधिक है कि उसने यहाँ की शिवा नदी को संसार की समस्त नदियों में शिरोमणि बतलाया हैं जिसके दर्शन मात्र से समस्त पाप दूर होकर मनुष्य श्रेष्ठ गति पा लेता है। इस तीर्थ के अधिपत 'महाकालेश्वर' की भी अत्यन्त महिमा है। इसके सिवाय अन्य स्थानों में जो प्रसिद्ध तीर्थ है वे सब भी सूक्ष्मरूप में यहाँ मौजूद हैं। समस्त देश में काशी, प्रयाग, अमरकंटक, भरत, केदार, करवीर एकाम्रक, भद्रक आदि जितने प्रधान शैव क्षेत्र हैं, उन्हीं में महाकालेश्वर के महाकालवन की गणना की जाती है। वहाँ रहकर तप, उपासना करने से मनुष्य के समस्त पाप का क्षय होकर पुण्य-पथ का मार्ग दर्शन मिलता है। इस महाकाल वन में एक महाकालेश्वर शिव ही नहीं है। यहाँ कोटीश्वर, त्रिदेश्वर; कपाल मोचन देव, कपिलेश्वर, हनुमत्केश्वर, पिप्पलाद, स्वप्नेश्वर, विश्वतोमुख, सोमेश्वर, वैश्वानेश्वर, गणपेश्वर, प्राणीश, दण्ड-पाणि, पुष्पदत्त, दुर्वासेश्वर, कालेश्वर, कुटुम्बेश्वर, अखण्डेश्वर, वधिरेश यात्रेश्वर, वाल्मीश्वर, संगमेश्वर, पिशाचेश्वर, विद्याधर तीर्थ, सोम-वती तीर्थ सौभाग्यती, चक्रपाणि तीर्थ सोमतीर्थ आदि नामों से इतने तीर्थ हैं, जिनकी गिनती का सुनना भी कठिन है। इसमें सन्देह नहीं कि अवन्तिका किसी समय मध्य भारत का सबसे प्रमुख तीर्थ रहा है। आज कल भी हिन्दुओं के सबसे बड़े धार्मिक समारोह "कुम्भ मेला" के चार प्रमुख केन्द्रों में से एक उज्जत (अवन्तिका) भी है। स्कन्द पुराण' में इसका वर्णन बड़े विस्तार के साथ किया गया है।

रेवा खण्ड में नर्मदा तटवर्ती तीर्थों का वर्णन है। कई स्थानों पर पुराणकार ने नर्मदा की महिमा सबसे बढ़कर बतलाई है और शैव मत के अनुयायियों की दृष्टि से यह अस्वाभाविक भी नहीं है। गंगा भी यद्यपि शिवजी की जटाओं से बहती हुई मानी गई है, फिर भी वह सर्व प्रथम विष्णु के चरणों को धोने के लिये प्रकट हुई थी। इसलिए उसमें



विष्णु की प्रधानता ही मानी जायेगी। पर नर्मदा को शिवजी के पसीने से उत्पन्न कहा गया है। माहात्म्य गंगा के तुल्य ही माना जाता है और उसके समीपवर्ती भूभाग में हजारों तीर्थ अब भी स्थित है। नर्मदा की स्तुति करते हुए समस्त मुनियों ने बड़े भक्ति भाव से कहा था।

'पुण्य जल के आश्रय वाली ! हे परम शुभे ! आपको हमारा नमस्कार हो ! आप विशुद्ध सत्व वाली और सुरों के द्वारा सेवित है। आप भगवान् रुद्र के अंग से परम वरिष्ठ है, आपको हमारा नमस्कार है। हे वरों के प्रदान करने वाली देवि ! हे शिवे ! आपको प्रणाम है। दोनों लोकों में सौख्य के प्रदान करने वाली देवि। आप तो अनेकों भूतों के समुदायों को समाश्रय देने वाली और अनघ हैं, आपको हमारा नमस्कार है। आप समस्त सरिताओं में श्रेष्ठ हैं। हे पाप हरे ! हे विचित्रते ! आप गन्धर्व, राक्षस, उपगों के द्वारा सेवित अंग वाली हैं। हे सनातनि ! आप समस्त प्राणियों पर कृपा करने वाली और मोक्ष के प्रदान करने वाली हैं। आप हमारा कल्याण करें।'

रेवा खण्ड में भी, नारदेश्वर, आंगिरस तीर्थ, स्कन्द तीर्थ, अग्नि तार्थ, जमदग्न्य तीर्थ आदि बहुसंख्यक नर्मदा तटवर्ती स्थानों का माहात्म्य, विस्तार पूर्वक वर्णन है। यद्यपि तीर्थों का माहात्म्य पौराणिक अर्थवाद का प्रणाली से बड़ी रोचकता पूर्वक बढ़ा-चढ़ाकर किया गया है, जिससे सामान्य जनता की भक्ति सुदृढ़ बनी रहे। किन्तु ये स्थान परम्परागत दृष्टि से आत्म शुद्धि में सहायक है, इसलिये शुद्ध भाव से सेवन करने वाला कल्याण साधन कर सकेगा। पर खेद है कि स्वार्थी जनों ने धन कमाने के उद्देश्य से विविध ढोंग फैल कर वहाँ के वातावरण को दूषित कर दिया है, जिससे उनकी प्राचीन महिमा नष्ट हो रही है। इस स्थिति का सुधारार्थ और तीर्थों के फिर से अपनी गरिमा की प्राप्त करने के उद्देश्य से हमने हजारों तीर्थों के सविस्तार वर्णन में से चुने हुए तीर्थों का वर्णन दिया है, जिससे हृदय में ऐसा पवित्र भावनाओं का उदय हो सके।

विषय-सूची

।। रेवा खण्ड ।।

—+—

स्कन्द पुराण

४४—नियम विधि माहात्म्य वर्णन

पितृणांतर्पणं कुर्याच्छ्रद्धायुक्तेन चेतसा ।
स्नानावसाने नित्यंचसुप्ते देवेमहाफलम् ॥१
संगमेसरितां तत्र पितृन्संतर्प्य देवता: ।
जपहोमादिकर्माणि कृत्वा फलमनन्तकम् ॥२
गोविन्दस्मरणं कृत्वा पश्चात्कार्याः शुभाः क्रियाः ।
एष एव पितृदेवमनुष्यादिषु तृप्तिदः ॥३
श्रद्धाधर्मयुतांनाम स्मृतिपूतानिकारयेत् ।
कर्माणिसक नानीह चातुर्मास्तेगुणोत्तरे ॥४
सत्संगोद्विजभक्तिश्च गुरुदेवाग्नितर्पणम् ।
गोप्रदानंवेदपाठः सत्क्रियासत्यभाषणम् ॥५
गोभक्तिर्दानभक्तिश्चसदा धर्मस्य साधनम् ।
कृष्णेसुप्ते विशेषेण नियमोऽपिमहाफल ॥६
नियम. कीदृशो ब्रह्मन् फलंच नियनेन किम् ।
नियमेन हरिस्तुष्टा यथा भवतितद्वद ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—श्री देवेश्वर के शयन करने पर स्नान के अन्त में परम श्रद्धा से युक्त चित्त के द्वारा अपने पितृगणों का तर्पण नित्य ही करना चाहिए—इसका महान फल हुआ करता है ।१। सरिताओं के सङ्गम में वहाँ पर पितृगण और देवों का तर्पण भली भांति करके और जप तथा होमादि कर्मों को करके मनुष्य अनन्त फलों की प्राप्ति किया करता है । भगवान श्री गोविन्द का स्मरण करके पीछे अन्य शुभ क्रियाएँ करनी चाहिये । यह पितृ-देव और मनुष्य आदि में

तृप्ति के देने वाला है ।२।३। इस गणोत्तर चातुर्मास्य में यहाँ पर धर्म-युत श्रद्धा और समस्त कर्मों को स्मृति से पूत करावे । सत्सङ्ग द्विजों में भक्ति गुरुदेव अग्नि का तर्पण—गोदान वेदपाठ, सत्क्रिया, सत्य भाषण गौ भक्ति, दान भक्ति सदा ये सब धर्म के साधन हुआ करते हैं । भगवान् श्रीकृष्ण के शयन कर जाने पर विशेष रूप से नियम भी महान् फल बाले होते हैं । देवर्षि नारदजी ने कहा—हे भगवन् ! नियम किस प्रकार का होता है ? और उस नियम के द्वारा फल क्या हुआ करता है ? जिस प्रकार से नियम से श्रीहरि भगवान् तुष्ट हुआ करते हैं—यह कृपया हमको बतलाइये ।४।७।

नियमश्चक्षुरादीनांक्रियासुविविधासुच ।
कार्योविद्यावतापुंसातत्प्रयोगान्महासुखम् ।८
एतत्षड्वर्गहरणं रिपुनिग्रहण परम् ।
अध्यात्ममूलमेताद्धि परमं सौख्यकारणां ।९
तत्र तिष्ठन्तिनियतं क्षमासत्यादयोगुण: ।
विवेकरूपिण: सर्वे तद्विष्णो परमंपदप्त ।१०
कृतं भवति यज्ञीतं कृतकृत्यत्वमत्र तत् ।
स्यात्तस्य तत्पूर्वंजानां येन ज्ञातमिदं पदम् ।११
तन्मुहूर्त्तं महिध्यात्वा पापजन्मशतोद्भवम् ।
भस्मसाद्याति विहितानिरंजनविषेवणात् ।१२
प्रत्यहसङ्क्वद्यस्य क्षुत्पिपासादिक. श्रम: ।
संयोगीनियमीनित्य हरौसुप्तेविशिष्यते ।१३
चातुर्मास्ये नरो भक्त्या योगाध्यसरतो न चेत ।
तस्य हस्तात्परिभ्रष्टममृतंनात्र संशय: ।१४

श्री ब्रह्माजी ने कहा—क्षुर (उस्तरा) आदि की अनेक क्रियाओं में नियम होता है । जो विद्या वाले पुरुष हैं उनको उसको करना चाहिए । उसके प्रयोग से महान् सुख समुत्पन्न होता है । इस षड्वर्ग का हरण शत्रुओं का परम निग्रहण होता है । यही अध्यात्य का मूल होता है और वही परम सौख्य का कारण हुआ करता है । वहाँ पर नियत रूप से क्षमा

और सत्य आदि समस्त सद्‌गुण स्थित रहा करते हैं। ये सब विवेक रूपी होते हैं और वही श्री भगवान विष्णु का परम पद है। यज्ञीय अर्थात् यज्ञ कर्म का फल कृत होता है। यहाँ पर वह ही कृत कृत्यत्व (सफलता) है। उसके पूर्वजों का वह होता है। जिसने इस पद को भली-भांति जान लिया है। उस महूर्त मात्र भी ध्यान करके सौ जन्मों में किया हुआ भी पाप भस्मसात् हो जाया करता है। भगवान् निरञ्जन के सेवन से यह सब विहित होता है। जिसका प्रतिदिन भूख-प्यास आदि श्रम संकुचित होता है। वह योगी और नित्य ही नियमों का पालक है। भगवान् को सुप्त होने पर विशेष रूप से होता है। चातुर्मास्य में नर भक्ति-भाव से यदि योग के अभ्यास में रत नहीं होता तो यही समझ लेना चाहिए कि उसके हाथ से अमृत परिभ्रष्ट हो गया है इसमें कुछ भी संशय नहीं है।८।१४।

मतोनियमितंयेन सर्वेच्छासु सदागतम्।
तस्थ ज्ञाने च मोक्षे च कारणं मन एव हि।१५
मनोनियमने यत्नः कार्यः प्रज्ञावतासदा।
मनसा सुगृहीतेन ज्ञानाँप्तिरखिलाध्रुवम्।१६
तन्मनः क्षमया ग्राह्यं यथावह्निश्च वारिणा।
एकया क्षमया सर्वो नियमः कथितोबुधैः।।१७
सत्यमेकं परो धर्मः सत्यमेकं परंतपः।
सत्यमेकं परं ज्ञान सत्ये धर्मः प्रतिष्ठितः।१८
धर्ममूलमहिमा च मनसातां च चिन्तयन्।
कर्मणा च तथावाचातत एतांसमाचरेत्।१९
परस्वहरणचौर्यं सर्वदा सर्वमानुषैः।
चातुर्मास्ये विशेषेण ब्रह्मदेवस्ववर्जनम्।२०
आकृष्यकरणं चैव वर्जनीयं सदाबुधैः।
अनीहः सर्वकार्येषु यः सदा विप्रवर्तते।२१

जिसने सभी प्रकार की इच्छाओं में जाने वाले मन को नियमित कर लिया है उसके ज्ञान में और मोक्षों का एक मात्र कारण मन ही होता

है जिसका नियम-नियन्त्रित कर लेना सर्वोपरि साधन माना गया है। अतएव प्रज्ञावान् पुरुष को अपने मन के नियतन करने में सदा ही प्रयत्न करना चाहिए। जब यह मन सुग्रहीत हो जाता है तो निश्चय ही पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति हो जाया करती है। उस मन को क्षमा के द्वारा ग्राह्य करना चाहिए जिस प्रकार से अग्नि की शान्ति जल से की जाती है और उस अग्नि पर काबू पाया जाता है। बुध पुरुषों ने एक मात्र क्षमा को ही सर्वश्रेष्ठ नियम कहा है। एक सत्य ही परम धर्म होता है और एक मात्र सत्य का परिपालन करना ही परम तप हुआ करता है। सत्य ही सर्वोत्तम ज्ञान है क्योंकि सत्य में ही धर्म प्रतिष्ठित रहा करता है। धर्म का मूल अहिंसा है, मन से उसका चिन्तन करते हुए कर्म के और वचन के द्वारा इस अहिंसा का समाचरण करना चाहिए। पराये धन का अपहरण करना चोर कर्म है इसलिए सब मनुष्यों को सर्वदा और चातुर्मास्य में विशेष रूप से इसका वर्जन कर देना चाहिये। ब्राह्मण और देवों के धन का वर्जन कर देवे। जो भी अकृत्य हैं उनका करना बुधों के द्वारा वर्जन करने के योग्य है। जो पुरुष सर्व ईहा से रहित होता है वह सर्वश्रेष्ठ हुआ करता है।१५।२१।

स च योगी महाप्राज्ञः प्रज्ञाचक्षुरहं न धीः।
अहङ्कारो विषमिदं शरीरे वर्तते नृणाम् ॥२२
तस्मात सर्वदा त्याज्यः सुप्ते देवे विशेषतः।
अनीहगाजितक्रोधो जितलोभो भवेन्नरः ॥२३
तस्य पापसहस्राणि देहाद्यान्ति सहस्रधा।
मोह मानं पराजित्य शमरूपेण शत्रुणा ॥२४
विचारेण शमोग्राह्यः सन्तोषेणतथाहितः।
मात्सर्यंभृजभावेन नियच्छेत्समुनीश्वरः ॥२५
चातुर्मास्ये दयाधर्मो न धर्मो भूतविद्रुहम्।
सर्वदा सर्वमासेषु भूतद्रोह विवर्जयेत् ॥२६
एकंपापसहस्राणां मूल प्राहुर्मनीषिणः।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्या भूतदया नृभिः ॥२७

सर्वेषामेव भूतानां हरिर्नित्यं हृदि स्थितः।
स एव हि पराभूतयो भूतद्रोहकारकः ॥२८
यस्मिन् धर्मे दयानैव स धर्मोदूषितो मतः।
दयांविना न विज्ञानं न धर्मज्ञानमेवच ॥२६
तस्मात्सर्वात्मभावेन दयाधर्मा सनातनः।
सेव्यः स पुरुषैर्नित्यं चातुर्मास्ये विशेषतः ॥३०

वह ही योगी महा प्रज्ञा से सुसम्पन्न होता है जिसको प्रज्ञा का चक्षु हुआ करता है और अहङ्कार की बुद्धि नहीं होती है। मनुष्यों के शरीर में यह अहङ्कार विष के ही तुल्य हुआ करता है। अतएव विशेष रूप से देव के सुप्त हो जाने पर उसे निश्चय रूप से त्याग देना चाहिए। ईसा के अभाव होने से मनुष्य क्रोध को जीतते वाला और लोभ पर विजय प्राप्त करने वाला हो जायगा ।२२।२३। उस व्यक्ति के सहस्रों पाप देह से सहस्रों टुकड़े होकर चले जाया करते हैं। मोह और मान को शम रूपी शत्रु के द्वारा पराजित करके विचार के द्वारा शम का ग्रहण करना चाहिए तथा सन्तोष के द्वारा भी ग्रहण करे। ऋजुभाव अर्थात् सरलता से मात्सर्य को मुनीश्वर नियन्त्रित करे। चातुर्मास्य से क्षमा ही धर्म होता है। भूतों से विद्रोह करना धर्म नहीं होता है। सर्वदा ही सभी मासों में भूतों के साथ द्रोह करना वर्जित कर देवे। मनीषीगण इसको सहस्रों पापों का मूल कहा करते हैं। इसीलिये समस्त प्रयत्नों से मनुष्यों को भूतों पर दया करनी चाहिए। समस्त प्राणियों के हृदय में नित्य ही श्री हरि भगवान स्थित रहा करते हैं। वह ही पराभूत होता है जो भूतों से द्रोह करने वाला होता है। जिस धर्म में दया नहीं होती है वह धर्म ही दोषयुक्त होता है। दया सर्व प्रधान है। इसके बिना न विज्ञान ही होता है और न धर्म का ही ज्ञान हुआ करता है। इसलियें सर्वात्म भाव से ही सनातन धर्म होता है। चातुर्मास्य में विशेष रूप से मनुष्यों को उसी परम पुरुष की सेवा करनी चाहिए ।२४।३०।

४२—द्वादशाक्षर महिमा वर्णन

एकदा भगवान्रुद्रः कैलाश शिखरे स्थितः ।
दधार परमां लक्ष्मीमुमया सहितः किल ।१
गणानां कोटियस्तिस्रस्तं यदा पर्यवारयन् ।
वीरबाहुर्वीरभद्रो वीरसेनश्च भृङ्गाराट ।२
रुचिस्तुष्टिस्तथानन्दीपुष्पदन्तस्तथोत्कटः ।
विकटः कण्टकश्चैव हर केशो विघण्टकः ।३
मालाधरः पाशधरः श्रृङ्गी च नरन्स्तथा ।
पुण्योत्कटः शालिभद्रो महाभद्रो विभद्रकः ।४
कणपः कालप कालोधनपोरक्तलोचनः ।
विकटास्यो भद्रकश्च दीघजिह्वा विरोचनः ।५
पारदी धनदो ध्वाक्षी हसको नरकस्तथा ।
पंचशीर्षस्त्रिशीर्षश्च कोडदष्ट्रो महाद्भुतः ।६
सिंहवक्त्रो वृषहनुः प्रचण्डस्तुण्डिश्च च ।
एते चान्ये च बहवस्तदाभवसमीपगाः ।।७

महर्षि गालब ने कहा—एक समय पर भगवान् रुद्रदेव कैलाश पर्वत की शिखर पर समवस्थित थे और उन्होंने उमा देवी के सहित विराजमान होते हुए परम लक्ष्मी को धारण किया था। जिस समय में तीन करोड़ गण उनके चारों ओर से स्थित थे जिसमें परम प्रमुख गणों के नाम ये हैं, वीरबाहु, वीरभद्र, वीरसेन, भृङ्गराट, रुचि, तुष्टि, नन्दी, पुष्पदन्त, उत्कट, विकट, कंटक, हरकेश, विघण्टक, मालाधार, पाशधर, श्रृंगी नरन, पुण्योत्कट, शालीभद्र, महाभद्र, विभद्रक, कणप, कालप, काल, धनप, रक्तलोचन, विकाटस्य, भद्रक, दीर्घजिह्व, विरोचन, पारद. धनद, ध्वाँक्षी, हसक, नरक पंचशीर्ष, त्रिशीर्ष, क्रोडदष्ट्र, महाद्भुत, सिंहवक्त्र, वृषहनु, प्रचण्ड तुण्ड ये तथा अन्य भी बहुत से गण उनके समीप में गमन करने वाले हैं।१।७।

महादेवोजयेत्युच्चैर्भद्रकालीसमन्वितः ।
भूतप्रेतपिशाचानाँ समूहा यस्य बल्लभाः ।।८

अस्तुवंस्तं समीपस्था बसन्ते समुपागते ।
वनराजिर्विभातिस्म नवकोरकशोभिता ।९
दक्षिणानीलसंस्पर्शः कवीनाँ सुखकृद्वभौ ।
वियोगहृदयाकर्षो किंशुकः पुष्पशोभितः ।१०
द्वन्द्वादिविक्रियाभावः चिक्रोडुश्चसमन्ततः ।
तस्मिन्विगाढ़ेसमये मनस्युन्मादकेतदा ।११
नन्दी दण्डधरः सञ्ज्ञाँहृष्टवाचक्रे हरीपरः ।
अलं चापलदोषेण तपः कुर्वन्तु भो गणाः ।१२
तदा सर्वे वनमपि भूकाण्डजग्मुः पुनः ।
गणास्तेतप आतस्थुर्दृष्ट्वा कान्ति वसन्तजाम् ।१३
ततः सा विश्वजननी पार्वती प्राह शंकरम् ।
इयं ते करगा नित्यमक्षमाला महेश्वरः ।१४

ये सब भद्रकाली देवी के सहित महादेव प्रभु की जय हो, ऐसा उच्च स्वर से कह रहे थे जिसके परम प्रिय भूत, प्रेत और पिशाचों के समुदाय हुआ करते हैं। ८। उसके समीप स्थित हुए ये सब बसन्त के समुपागत होने पर उन प्रभु का स्तवन कर रहे थे। समस्त वन की पंक्तियां नवीन कोरकों (कलियों) से शोभित होकर विभूषित हो रहीं थीं। दक्षिण दिशा की ओर से आने वाला वायु कवियों को सुख देने वाला हो रहा था। जो वियोगीजन थे उनके हृदय को समाकर्षित करने वाला था और किंशुक पुष्पों को परम शोभा से युक्त हो रहा था।९-१०। उस मन में उन्मान उत्पन्न करने वाले बिगाड़ समय में सभी ओर में द्वन्द्वादि की विक्रिया के भाव की पीड़ा करने वाले दूसरे हर दण्ड के धारण करने वाले नन्दी ने देख कर सबको सावधान किया था, हे समस्त गणो ! चपलता के दोष को मत करो। सब तपश्चर्या करो। फिर सभी गण भूकाण्डज वन में चले गये थे और बसन्त के द्वारा उत्पन्न की गई कान्ति को देखकर तपस्या करने में समास्थित हो गये थे। इसके अनन्तर वह समस्त विश्व की जननी पार्वती देवी भगवान शंकर से बोली-

हे महेश्वर ! यह आपके करकमलों में रहने वाली अक्षों की माला है ।११।१४।

त्वया किं जपयतेदेव सन्देहयति मे मनः ।
त्वमेकः सर्वभूतानामादिकृत्सकलेश्वरः ॥१५
न माता न पिता वन्धुस्तव जातिर्नकश्चन् ।
अहं तव परं किंचिद्वे द्मि नास्तीति किञ्चन ॥१६
श्रमेण त्वं समायुक्तो श्वासोच्छवास परायणः ।
जपन्निपि महाभक्त्या दृश्यसेत्वं मयासदा ॥१७
त्वत्तः परतरं किञ्चिद्यत्वं ध्यायसिचेतसा ।
तन्मे कथय देवेश यद्यहं दयिता तव ॥१८
इति पृष्ठस्तदा शम्भुरुवाच हरिसेवकः ।
हरेर्नामसहस्राणां सार ध्यायामि नित्यशः ॥१९
जपामि राम नामांकमवतार तु सत्तमम् ।
चतुर्विशतिसंख्याकान्प्रादुर्भावान्हर्गु णान ॥२०
एतेषामपि यत्सार प्रणवाख्य महत्फलम् ।
द्वादशाक्षरसंयुक्त ब्रह्मरूप सनातनम् ॥२१

हे देव ! आपके द्वारा यह किस का जाप किया जाता हैं मेरे मन में यह सन्देह होता है ? आप तो स्वयं ही समस्त प्राणियों में एक ही आदि स्वरूप हैं । सभी के ईश्वर हैं । आपका न तो कोई पिता है और न कोई माता ही है, न कोई बन्धु है, न जाति ही है । मैं तो आपसे ऊपर किसी को भी नहीं जानती हूँ कि कोई अन्य भी आप से ऊपर है ।१५।१६। आप श्रम से समायुक्त रहा करते हैं और श्वास उच्छवास के करने में परायण रहा करते हैं । मेरे दारा सदा आप महाभक्ति से जाप ही करते हुये दिखलाई दिया करते हैं क्या आप से भी कोई परतर हैं जिसको कि आप चित्त से ध्यान किया करते हैं ? हे देवेश्वर ! यह आप मुझे कृपा करके बतला दीजिये क्योंकि मैं तो आपकी प्राण प्रिया हूँ । इस तरह पार्वती देवी के दारा पूछे गये श्री हरि के सेवक भगवान श्री शम्भु ने कहा श्री हरि भगवान के सहस्रों नामों के सार का मैं नित्य

ही ध्यान किया करता हूँ में श्रीरामनामांक सर्वश्रेष्ठ अवतार का जाप किय करता हूँ। चौबीस संख्या वाले भगवान् श्री हरि के प्रादुर्भाव हुए है ऐसे श्री हरि के गुणों का जाप किया करता हूँ। इन सबका जो सार है वह प्रणव नाम वाला है ओर वह सनातन द्वादश अक्षरों से संयुक्त ब्रह्मा का ही रूप हैं—।१७२१।

अक्षरत्रयसंबन्धं ग्रामत्रयसमन्वितम्।
सविन्दुं प्रणवं शश्वज्जपामि जपमालया ॥२२
वेदसारमिदं नित्यं ह्यक्षं सततोद्यतम्।
निर्गलं ह्ययमृतं शान्तं सद्र पसमृतोपमम् ॥२३
कलातीत निर्वशगंनिर्व्यपार महत्वरम्।
विश्वाधारं जगन्मध्यं कोटिब्रह्मांड वीजकम् ॥२४
जडं शुद्धक्रियं वाऽपि निरञ्जनं नियामकम्।
यज्ज्ञात्वा मुच्यते क्षिप्रं घोर संसारबन्धनात् ॥२५
ॐकारसहित यच्च द्वादशाक्षरबीजकम्।
जपंत: पापकोटीनां दावाग्नित्व प्रजायते ॥२६
एतदेव परं गुह्यमेतदेय परं महः।
एतद्धि दुर्लभं लोके लोकत्रयविभूषणम् ॥२७
प्राप्यते जन्मकोटिभिः शुभाशुभविनाशकम्।
एतदेव परं ज्ञानं द्वादशाक्षरचिन्तनम् ॥२८

तीन अक्षरों से सम्बद्ध, तीन ग्रामों से समन्वित, विन्दु से युक्त प्रवण को ही मैं जाप करने की इस माला से निरन्तर जप किया करता हूँ। अमृत शान्त सदेरूप वाला अमृतके ही पमान, कलातीत, निर्वशग, निर्व्या पार विश्व का आधार, परमहत् जगन्मध्य, कोटि ब्रह्माण्डका बीज, जड, शुद्ध क्रिया वाला, निरंजन और नियमक है जिसका ज्ञान प्राप्त करके प्राणी इस पर चोर संसार के वन्धन से बहुत ही शीघ्र मुक्त हो जाया करता है।२२-२५। इस ओंकार के सहित जो द्वादश अक्षरों वाला है सबको जाप करने वाले को तो करड़ो पापों को भस्म करने के लिये

दावाग्नित्व हो जाया करता है अर्थात् दावाग्नि के समान ही सब पापों का भस्म कर दिया करता है। यही सबसे अधिक गोपनीय एवं महान् है और सबसे अधिक तेज है। यह इस लोक में अत्यन्त दुर्लभ है तथा तीनों लोकों का यह विभूषण है। यह शुभाशुभ का विनाश करने वाला करोड़ जन्मों में प्राप्त किया जाता है। यह ही परम ज्ञान है कि द्वादश अक्षरों का चिन्तन किया जावे ।२६।२८।

चातुर्मास्ये विशेषेण प्रह्लादं चिन्तितप्रदम् ।
एतदक्षरजं स्तोत्रं यः समाश्रयते सदा ॥२९
मनसा कर्मणा वाचा तस्य नास्ति पुनर्भवः ।
द्वादशाक्षरसंयुक्तं चक्रद्वादभूषितम् ॥३०
मासद्वादशनामानि विष्णोर्योभक्तितत्परः ।
शालग्रामेषुतान्युक्त्वा न्यसेदहघहराणि च ॥३१
दिवसे दिवसे तस्य द्वादशशाहफलंभवत् ।
द्वादशाक्षरमाहात्स्य वर्णितुं नैव शक्यते ॥३२
जिह्वासहस्रै रपि च ब्रह्मणायिन वर्ण्यंते ।
महामन्त्रौह्ययं लोके जप्तो ध्यातः स्तुतस्तथा ।३३
पापहा सर्वमासेषु चातुर्मास्ये विशेषतः ।
इदं रहस्य वेदानां पुराणामनेकशः ॥३४
स्मृतीनामपि मर्वासां द्वादशाक्षरचिन्तनम् ।
चिन्तनादेव मर्त्यानां सिद्धिर्भवति इप्सिता ॥३५

चातुर्मास्य में विशेष रूप से ब्रह्मज्ञान के प्रदान करने वाला और मन के सभी चिन्तित अभीष्टों के प्रदान करने वाला हुआ करता है। इस अक्षर से समुत्पन्न स्तोत्र का जो सदा समाश्रय किया करता है और मन वाणी तथा कर्म के द्वारा इसका ध्यान रखता है उसका फिर इस संसार में पुनर्जन्म नहीं होता है। द्वादश अक्षरों से संयुक्त और द्वादश चक्रों से यह भूषित हैं। जो भगवद्भक्ति में परायण मनुष्य विष्णु के मास में इन द्वादश नामों को कहकर शालग्राम की सेवा में अघों के हरण करने वालों को समर्पित कर देता है उसको दिवस-दिवस में द्वादश दिन का फल हुआ

करता हैं। द्वादश अक्षर का माहात्म्य ऐसा अद्भुत है कि यह वर्णन नहीं किया जा सकता है। जिस शेष के एक सहस्र जिह्वायें हैं उनके द्वारा वह भी नहीं वर्णन कर सकता है और चार मुखों वाले ब्रह्मा के द्वारा भी नहीं वर्णन किया जा सकता है। यह लोक में महामन्त्र है। इसका किया हुआ जाप, ध्यान, स्तवन सभी मासों में पापों का हनन करने वाला होता है। चातुर्मास्य में इसका विशेष फल हुआ करता है द्वादशाक्षर का चिन्तन वेदों और पुराणों तथा समस्त स्मृतियों का परम रहस्य है। इसके केवल चिन्तन करने ही से मनुष्यों को ईप्सित सिद्धि हो जाया करती है।२९।३५।

पुण्यदानेन जप्येन मुक्तिर्भवति शाश्वती ।
वर्णैस्तथाश्रमैरेव प्रणवेन समन्वितै ॥३६
जपैर्ध्यानैः शमपरै मोक्षं यास्यतिनिश्चितम् ।
शूद्राणाञ्चापि नारीणां प्रणवेन विवर्जितः ॥३७
प्रकृतीनां च सर्वासां न मन्त्रो द्वादशाक्षरः ।
न जपो न तपः कार्यं कायक्लेशाद्विशुद्धिता ॥३८
विप्रभक्त्या च दानेन विष्णुध्यायेन सिध्यति ।
तासां मन्त्रो रामनाम ध्येयः कोटयधिको भवेत् ॥३९
रामेति द्वयक्षरजपः पर्वपापनोदकः ।
गच्छंस्तिष्ठञ्छयानो वामनुजौरामकीर्तनात् ॥४०
इहनिवृत्तिमायाति प्रान्ते हरिगणो भवेत् ।
रामेतिगद्यक्षरौ मन्त्रो मन्त्रकोटिशताधिकः ॥४१
सर्वासां प्रकृतीनाञ्च कथितः पापनाशकः ।
चातुर्मास्येऽथ सम्प्राप्ते सोष्यनन्त फलप्रदः ॥४२
चातुर्मास्ये महापुण्ये जप्यते भक्ततत्परै ।
देववन्निष्फलं तेषां यमलोकस्य सेवनम् ॥४३

पुण्य दानों से—जाप से शाश्वती मुक्ति हुआ करती है। सब वर्णों तथा समस्त आश्रमों द्वारा प्रणव से युक्त जप, ध्यान से शम परायण लोग निश्चित मोक्ष को प्राप्त हो जाया करेंगे। प्रणव से रहित

इस मन्त्र का जाप शूद्र वर्ण वाले एवं नारीगण भी करके मोक्ष की प्राप्ति कर लिया करते हैं। सब प्रकृतियों का यह द्वादशाक्षर मन्त्र नहीं है। सबको इसका जप या तप नहीं करना चाहिए। काय क्लेश से विशुद्धि प्राप्त करके विप्रों की शक्ति, दान, और भगवान श्री विष्णु के ध्यान से ही इनकी सिद्धि होती है। उनका तो केवल श्रीराम का नाम ही महा मन्त्र है। इनका ही ध्यान शेष सबको करना चाहिए। यह करोड़ों गुना अधिक हुआ करता है। ३६।३९। 'राम'—इन दो अक्षरों का जाप समस्त पापों का आन्दोलन करने वाला होता है। गमन करते हुए, स्थित रहते हुये, शयन करते हुए मनुष्य श्रीराम नाम के कीर्तन से इस संसार में निवृत्ति को प्राप्त हो जाया करता है और अन्त में श्रीहरि का पार्षद हो जाता है। राम—यह दो अक्षरों वाला मन्त्र सैकड़ों करोड़ मन्त्रों से भी अधिक होता है। यह सभी प्रकृतियों वाले प्राणियों के लिये पापों का नाश करने वाला कहा गया है। यह भी चातुर्मास्य के प्राप्त होने पर अनन्त फलों का प्रदान करने वाला होता है।४०।४३।

न रामादधिकं किञ्चित्पठनं जगतीतले।
रामनामाश्रया ये वै न तेषां यमयातना॥४४
ये च दोषा विघ्नकरा मृतका विग्रहाश्चये।
रामनाम्नैव विलयं यान्तिनात्र विचारणा॥४५
रमन्ते सर्वभूतेषु स्थावरेषु चरेषु च।
अन्तरात्मस्वरूपेण यच्च रामेति कथ्यते॥४६
रामेति मन्त्रराजोऽयं भयव्याधिविदूषकः।
रणे विजयदश्चापि सर्वकार्यार्थसाधकः॥४७
सर्वतीर्थ फलप्रोक्तो विप्राणामपि कामदः।
द्वयक्षरो मन्त्रराजोऽयं सर्वकार्य करो भुवि।
देवाऽपि प्रगायन्ति रामनाम गुणाकरम्।४९

चातुर्मास्य के महान् पुण्यों वाले समय में भक्ति में परायण मनुष्यों के द्वारा इसका जाप किया जाता है। उनको देवों के ही समान यमलोक

का सेवन निष्फल हुआ करता है। इस जगतीतल में श्रीराम के शुभनाम से अधिक अन्य कुछ भी पठन करने का नहीं है। जो केवल श्रीराम के परम शुभ नाम का ही समाश्रय ले लिया करते हैं उनको यम की यातना नहीं होती है। जो भी दोष है या विघ्नों ँ करने वाले हैं. मृतक तथा विग्रह है सभी श्रीराम के नाम ही से विलय को प्राप्त हो जाया करते हैं—इसमें कुछ भी विचार करने की आवश्यकता नहीं है। यह श्रीराम समस्त प्राणियों में चाहे स्थावर हो या जङ्गम हो, अन्तरात्मा के स्वरूप से रमण किया करते हैं जो भी श्रीराम यह कहा जाया करता है। श्री राम यह भगवान नाम ही महामंत्र राज है जो समस्त भयों और व्याधियों का विनाशक होता है। यही मंत्रराज रण स्थल में भी विजय प्रदान करने वाला होता है और समस्त कार्यों का साधन करने वाला है। यह समस्त तीर्थों का फल प्रदान करने वाला कहा गया है। यह विप्रों को भी कामनाओं का प्रदाता होता है जिस समय श्रीरामचन्द्र, श्रीराम, श्रीराम, इस प्रकार के नाम का मुख से उच्चारण किया जाता है सब मनोरथ पूर्ण हो जाया करते हैं। यह केवल दो ही अक्षरों वाला मंत्रराज है जो कि इस भूमण्डल में सभी कार्यों की सिद्धि कर देने वाला होता है। सब गुणों के भण्डार 'श्रीराम'—उस नाम का देवगण भी गायन किया करते हैं।४४।४६।

तस्मात्वमपि देवेशि रामनाम सदा वद।
रामनाम जपेद्यो वै मुच्यते सर्वं किल्विषैः ॥५०
सहस्रनामजं पुण्यं रामनाम्नैव जायते।
चातुर्मास्ये विशेषेण तत्पुण्यं दशधोत्तरे ॥५१
हीनजातिप्रजातानां सद्योदहति पातकम् ॥५२
रामोह्यविंयश्वमिदंसमग्रं स्वतेजसाव्याप्यजनान्तरात्मना
पुनातिजन्मान्तरपातकानिस्थूलानिसूक्ष्माणिक्षणाच्चदग्धवा। ॥

इसलिये हे देवेश ! आप भी सदा श्रीराम के परम शुभ नाम का उच्चारण किया करो। जो भी कोई श्रीराम के नाम का जाप करता है वह समस्त पापों से मुक्त हो जाया करता है।५०। एक सहस्र

अंश भगवान्नामों के लेने से जो पुण्य फल होता है वह इस एक ही 'राम'—इस नाम के मुख से उच्चारण करने पर हो जाया करता है। चातुर्मास्य में विशेष रूप से इसका दश गुना अधिक पुण्य होता है। जो हीन जातियों में जन्म ग्रहण करने वाले मनुष्य हैं उनके महान् पातक को यह दग्ध कर दिया करता है।५१।५२। यह श्रीराम का परम पवित्र शुभ नाम इस समय विश्व को अपने से व्याप्त करके जनों के अन्तरात्मा के द्वारा अन्य जन्मों में भी स्थल एवं सूक्ष्म समस्त पातकों को एक ही क्षण में दग्ध कर सबको पवित्र कर दिया करता है।५३।

४६—पञ्चाक्षरमन्त्र माहात्म्य वर्णन

ज्योतिर्मात्रस्वरूपाय निर्मलज्ञान चक्षुषे।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिंगमूर्त्तये ॥१
आख्यातं भवता सूत विष्णोर्माहात्म्युमुत्तमम्।
समस्ताघहरं पुण्यं समासेन श्रुतञ्चनः ॥२
इदानीं श्रोतुमिच्छामो माहात्म्यं त्रिपुरद्विषः।
तद्भक्तानाञ्च माहात्म्यमशेषाघहरम्परम ॥३
तन्मन्त्राणाञ्च माहात्म्यं तथैव द्विजसत्तमः!
तत्कथायाश्चतद्भक्तो प्रभावमनुवर्णनम् ॥४
एतावदेव मर्त्यानां परं श्रेयः सनातनम्।
यदीश्वरकथायां वै जाता भक्तिरहैतुकी ॥५
अतस्तद्भक्तिलेशस्य माहात्म्यं वर्ण्यते मया।
अपि कल्पायुषा नाऽलं वक्तुं विस्तरतः क्वचित् ॥६
सर्वेषामपि पुण्यानां सर्वेषां श्रेयसामपि।
सर्वेषामपि यज्ञानां जपयज्ञः परा स्मृतः ॥७

ज्योति ही जिसका स्वरूप है तथा निर्मल ज्ञान के नेत्र वाले, परम शान्त स्वरूप से युक्त, लिंग की मूर्ति वाले ब्रह्म श्रीशिव भगवान की सेवा में नमस्कार समर्पित है।१। ऋषियों ने कहा—हे सूतजी ! आपने

भगवान श्रीकृष्ण के परमोत्तम माहात्म्य का वर्णन किया जो समस्त पापों का हरण करने वाला है। हम सबने संक्षेप में उसका श्रवण किया ।२। अब हम त्रिपुरासुर के हन्ता श्री शिव का माहात्म्य सुनना चाहते हैं। उसके मंत्रों का माहात्म्य अशेष अघों का हरण करने वाला है। हे द्विज श्रेष्ठ ! उनके मंत्रों का माहात्म्य, उनकी कथा और भक्ति प्रभाव का अनुवर्णन कीजिये। श्री सूतजी ने कहा—मनुष्यों का इतना यही परम श्रेय होता है कि उनकी ईश्वर की कथा में बिना हेतु वाली भक्ति उत्पन्न हो जावे। इसीलिए उनकी भक्ति के लेश का माहात्म्य मेरे द्वारा वर्णन किया जाता है। इसका पूर्ण विस्तार से वर्णन तो एक कल्प की आयु में भी कभी कहा नहीं जा सकता है। समस्त प्रकार के पुन्यों और सभी तरह के श्रेयों का एवं सम्पूर्ण यज्ञों में यह नाम का यज्ञ ही परम प्रमुख बताया गया है ।३।७।

तत्रादौ जपतज्ञस्य फलं स्वस्त्ययनं महत् ।
शैवं षडक्षरं दिव्यं मंत्रमाहुर्महर्षयः ॥८
देवानां परमो देयो यथा वै त्रिपुरान्तकः ।
मंत्राणां परमो मंत्रस्तथाशैवः षडक्षरः ॥९
एष पञ्चाक्षरो मंत्रो जप्तृणां मुक्तिदायकः ।
संसेव्यते मुनिश्रेष्ठशेषैः सिद्धिकाङ्क्षिभिः ॥१०
अस्यैवाक्षरमाहात्म्यं नालम्बक्तुं चतुर्मुखः ।
श्रुतयो यत्र सिद्धान्त गताः परम निवृता ॥११
सर्वज्ञाः परिपूर्णश्च सच्चिदानन्दलक्षणः ।
स शिवो यत्र रमते शैवे पञ्चाक्षरे शुभे ॥१२
एतेन मंत्रराजेन सर्वोपानिषदात्मना ।
लेभिरे मुनयः सर्वे परब्रह्मं निरामयम् ॥१३
नमस्कारेण जीवत्वं शिवेऽत्र परमात्मनि ।
ऐक्यङ्गतमतोमंत्रः परब्रह्ममयो ह्यसौ ॥१४

उसमें जप यज्ञ का फल महान् स्वस्त्ययन अर्थात् कल्याणकारी होता है। महर्षि गण छह अक्षर वाले शैव मंत्र को ही परम दिव्य कहते हैं।

समस्त देवों में परम देव भगवान त्रिपुरान्तक हैं उसी भाँति यह षडक्षर शैव मन्त्र सभी मंत्रों में प्रधान मंत्र हैं। यह पाँच अक्षरों वाला मन्त्र ऐसा कि जो इसका जप करने वाले पुरुष उसको यह मुक्ति देने वाला होता है। इसलिए सिद्धि की आकांक्षा करने वाले समस्त श्रेठ मुनियों के द्वारा इसका संसेवन किया जाया करता है।८।१०। इसी मंत्र के अक्षर का माहात्म्य चतुर्मुख ब्रह्मा के दारा भी नहीं कहा जा सकता है। जिसमें सिद्धान्त को प्राय्त हुई श्रुतियाँ परम निवृत्त हो गई हैं। सबको जानने वाले, परिपूर्ण और सत्, चित्त एवं आनन्द के लक्षण वाले यह शिव स्वयं जिस पाँच अक्षरों से युत शुभ शैव मंत्र में रमण किया करते हैं। इस समस्त उपनिषदों के स्वरूप वाले मंत्रराज के द्वारा सभी मुनियों ने निरामय परब्रह्म को प्राय्त किया था। इस परमात्मा शिव में नमस्कार से जीवत्व ऐक्य को प्राप्त हुआ था अतएव यह मंत्र परब्रह्म मय है।११।१४।

भवपाशनिबद्धानाँ देहिनां हितकाम्यया।
आहोनमः शिवायेति मंत्रमाद्य शिवः स्वयम् ॥१५
किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैः किं तीर्थे कि तपोऽध्वरैः।
यस्योनमः शिवापेति मंत्रौ हृदयगोचरः ॥१६
तात् भ्रमन्ति संसारे दारुणे दुःखसंकुले।
यावन्नोच्चारयन्तीमं मंत्रं देहभूतः सकृत् ॥१७
मंत्राधिराजराजोऽयं सर्ववेदान्तशेखरः।
सर्वज्ञाननिधानश्च सोऽयं मंत्रः षडक्षरः ॥१८
कैवल्यमार्गदीपीऽयम बिद्या सिन्धुवाडवः।
महापातकदावाग्निः सोऽयं मंत्रः षडक्षरः ॥१९
तस्मात्सर्वप्रदो मंत्रः सोऽयं पञ्चाक्षरः स्मृतः।
स्त्रीभिः शूद्रैश्च सकीर्णैर्धार्यते मुक्तिकांक्षिभिः ॥२०
नास्यदीक्षात् होमश्च न संस्कारो न च तर्पणम्।
नकालोनोपदेशश्च सदा शुचिरयंमनुः ॥२१

भव के पाश में निबद्ध देह धारियों के हितों की कामना से भगवान शिव ने स्वयं आद्य मंत्र 'ॐ नमः शिवाय' यह मंत्र कहा था। जिस पुरुष को 'ॐ नमः शिवाय' यह मंत्र हृदय गोचर होता है उसको बहुत से मंत्रों से, तीर्थों से, तपश्चर्याओं से और अध्वरों से क्या प्रयोजन है ? अर्थात् फिर किसी यन्त्रादि की आवश्यकता ही नहीं है। ये देहधारी तभी तक इस दारुण और अनेक दुःखों से संकुल संसार में भ्रमण किया करते हैं जब तक एक बार भी इस महामंत्र का मुख से उच्चारण नहीं किया करते हैं। यह षडक्षर अन्य मंत्रों के अधिराजी का भी राजा है समस्त वेदान्तों का शिरोमणि है। सम्पूर्ण ज्ञान का विधान है। यह मंत्र कैवल्य (मोक्ष) के मार्ग का प्रदीप है और अविद्या सिन्धु का वाडव है। मंत्रराज महान् पातकों को दग्ध करने के लिए दावाग्नि के समान हैं। ऐसा ही महामहिमामय यह छः अक्षरों वाला मंत्र है। इसीलिए सभी कुछ के प्रदान करने वाला यह पञ्चाक्षर मंत्र कहा गया है। जो भी मुक्ति की इच्छा रखने वाले स्त्रीगण शूद्र और संकीर्ण जाति वाले प्राणी हैं उन सभी के द्वारा वह धारण किया जाता है न तो इस मंत्रराज की कोई दीक्षा होती है—न होम होता है—न कोई संस्कार ही होता है और न तर्पण हुआ करता है। इस मंत्र का कोई विशेप काल भी नहीं होता है और न कोई उपदेश ही होता है। यह मंत्र तो सदा ही शुचि रहा करता है।१५।२१।

महापातकविच्चिचन्त्यै शिवइत्यक्षरद्वयम्।
अल नमस्क्रियायुक्तो मुक्तये परिकल्पते ॥२२
उपदिष्टः सद्गुरुणा जप्तः क्षेत्रे च पावने।
सद्योयवेप्सितां सिद्धि ददातीति किमद्भुतम् ॥२३
अतः सद्गुरुमाश्रित्य ग्राह्योऽग्र मंत्रनायकः।
पुण्यक्षेत्रेषु जप्तव्यः सद्यः सिद्धि प्रयच्छति ॥२४
गुरवो निर्मलाः शान्ता साधवो मितभाषिणः।
कामक्रोधविनिर्मुक्ता सादाचारा जितेन्द्रियाः ॥२५

एतै: कारुण्यतो दत्तो मन्त्रः क्षिप्र प्रसिद्धयति ।
क्षेत्राणि जपयोग्यानि समासात्कथयाम्यहम् ॥२६
प्रयाग पुष्कर रम्यं केदारं सेतुबन्धनम् ।
गोकर्ण नैमिषारण्यं सद्यः सिद्धिकरं नृणाम् ॥२७
अमुत्राणुवर्ण्यते सद्भिरितिहासः पुरातनः ।
असकृद्वा असकृद्वापि श्रृण्वतां मंगलप्रदः ॥२८

महान् पातकों के विच्छेद करने के लिये 'शिव' ये दो अक्षर ही पर्याप्त होते हैं। और ये शिव दो अक्षर यदि नमस्क्रिया से युक्त हों अर्थात् 'नमः शिवाय' इस रूप हों तो फिर यह मुक्ति के लिये परिकल्पित हो जाता है। यदि यह किसी सद्गुरु के द्वारा उपदिष्ट हो जावे और फिर किसी पावन क्षेत्र में इसका जाप किया जावे तो यही मंत्र तुरन्त ही ईप्सित सिद्धियों के प्रदान कर दिया करता है—इसमें कुछ भी अद्भुमता नहीं है। इसीलिये किसी सद्गुण के समाश्रय प्राप्त करके इन मंत्रों में शिरोमणि मंत्र को ग्रहण करना चाहिये। पुण्य क्षेत्र में ही इसका जप करना चाहिये जिससे यह मंत्र तुरन्त ही सिद्धि को प्रदान किया करता है। जो गुरु वृन्द निर्मल—परमशान्त—साधुवृत्ति वाले मितभाषण करने वाले—काम, क्रोध विशेष रूप से निर्मुक्त सदाचरण से सम्पन्न-इन्द्रियों को जीतने वाले हों। ऐसे गुरुगणों के द्वारा करुणा के भाव से उपदेश किया हुआ मंत्र शीघ्र ही सिद्ध होने वाला होता है। अब हम मंत्रों के जाप करने के योग्य क्षेत्रों का वर्णन संक्षेप से करते है।२२।२६। प्रयाग रम्यपुष्कर-केदार-सेतुवन्ध शौकर्ण-नैमिषारण्य के क्षेत्र मनुष्यों को तुरन्त ही सिद्धि करने वाले होते हैं।२७। यहाँ पर एक परम पुरातन इतिहास सत्पुरुषों के द्वारा वर्णित किया जाता है। इसको अनेक वार या एक बार भी श्रवण करने वालों को यह मंगल प्रदान करने वाला होता है।२८।

मथुराया यदुश्रेष्ठो दाशार्ह इति विश्रुतः ।
वभूव राजा मतिमान्मरोत्साहो महाबलः ॥२९

शास्त्रज्ञो नयवाच्छूरोधैर्यवानमितद्युतिः।
अप्रधृष्यः सुगम्भीरः संग्रामेष्वनिवर्तितः ॥३०
महारथो महेष्वासो नानाशास्त्रार्थं कोविदः।
वदान्यो रूपसम्पन्नो युवा लक्षणं संयुक्तः ॥३१
स काशिराजातनयामुपयेमे वराननाम्।
कान्तां कलावतीनामां रूपशीलगुणान्विताम् ॥३२
कृतोद्वाहः स राजेन्द्रः सम्प्राप्य निजमन्दिरम्।
रात्रौ तां शतनारूढां संगमाय समह्वयत् ॥३३
सा स्व भर्त्रा समाहूता वहुशः प्रार्थिता सती।
नबवन्ध मनस्तस्मिन्नचागच्छत्तदन्तिकम् ॥३४
सङ्गमाय यदा हूता नागत निजब्रल्लभा।
बलादाहर्तुं कामस्तामुदतिष्ठन्महीपतिः ॥३५

मथुरा में यदुओं में श्रेष्ठ दाशार्ह विश्रुत था। वह महान् बल और उत्साह वाला ही मतिमान् राजा हुआ था। यह राजा शास्त्रों का ज्ञाता नीति जानने वाला अति शूरवीर अमितयुक्त से सम्पन्न-धैर्य वाला प्रघर्षण न करने के योग्य, परम गम्भीर और संग्रामों में लौटकर न आने वाला था। यह महारथी—महान् धनुषधारी और नाना शास्त्रों के अर्थों का कोविद था। यह भूपति पर दानशील रूप लावण्य से युक्त और सभी सुलक्षणों से सम्पन्न था। उस राजा ने श्रेष्ठ सुन्दर मुख वाली काशिराज की पुत्री के साथ विवाह किया था। यह अत्यन्त कान्त और रूप तथा शील एवं गुणों से अन्वित थी और इसका नाम कलावती था। विवाह करके राजेन्द्र अपने मन्दिर में प्राप्त हो गया था। रात्रि में शयन से समारूढ़ हुई उसको राजा ने संग्राम करने के लिये अपने समीप बुलाया था। वह अपने स्वामी के द्वारा बुलाई भी गयी और बहुत बार उसे प्रार्थना भी की गयी थी किन्तु उसने उससे संगम करने के लिए अपने मत की इच्छा नहीं की थी और वह उस राजा के समीप में भी नहीं गयी थी। जब संगम करने के लिये समाहूत होने पर भी अपनी वल्लभा को न समागत देखा तो उसको बलपूर्वक अपने

समीप में लाने की इच्छा वाला वह राजा स्वयं ही उठकर खड़ा हो गया था ।२६।३५।

मां मां स्पृशः महाराज ! कारणज्ञां व्रतेस्थताम् ।
धर्माधर्मो विजानासि मा कार्षोः साहषं मयिः ॥३६
क्वचित्प्रियेण भुङ्क्तं यद्रोचते तु मनीषिणाम् ।
दम्पत्योः प्रीतियोगेन संगमः प्रीतिवर्द्धनः ॥३७
प्रियं यदा मे जायत तदा संगस्तु ते मयिः ।
का प्रोतिः किं सुखं पुंर्सा वलाद्भोगेन योषिताम् ॥३८
अप्रीतां रोगिणीं नारीमन्तर्वत्नीं धृतताम् ।
रजस्वलामकामाञ्च न कामेत बलात्पुमान् ॥३९
प्रीणन लालनं पोषं रञ्जनं मादवं दयाम् ।
कृत्वा वधूमुपगमेद्यु वर्तीप्रेमवान्पतिः ।
युवतौ कुसुमे चैव विधेयं सुखमिच्छता ॥४०
इत्युक्तोऽपितयासाध्व्यासराजास्मर विह्वलः ।
बलादाकृष्यतां हस्तेपरिरेभेरिरन्सया ॥४१

राज्ञी ने कहा—हे महाराज ! आप मेरा स्पर्श न कीजिए क्योंकि मैं कारण को जानने वाली हूँ और व्रत में इस समय में समास्थित हूँ। आप तो स्वयं ही विज्ञ हैं और धर्म तथा अधर्म को भली भाँति जानते हैं। मेरे विषय में इस समय आप साहस न करिये ।३६। मनीषियों को जो अच्छा लगती है वहीं पर प्रिय के द्वारा भोग किया गया है। दम्पत्ति का प्रीति के योग से जो सङ्गम होता है वही प्रीति का वर्धन कहने वाला हुआ करता है। जिस समय में मुझे प्रिय लगेगा उसी समय में मुझसे आपका सङ्गम होगा। बलपूर्वक स्त्रियों के उपभोग करने से पुरुष को क्या तो सुख प्राप्त होगा और न दोनों में प्रीति ही होगी ।३७।३८। पुरुष को चाहिए कि जो प्रीति रहित हो, रोगिणी हो, गर्भवती हो, व्रत धारण करने वाली हो, रजस्वला हो और काम की वासना से रहित हो ऐसी सती को बलपूर्वक सङ्गम करने की इच्छा न करे ।३९। प्रेम वाले पति को चाहिए कि भार्या जा भली-भाँति प्रीणन, लालन, पोषण

रञ्जन, मार्दवं और दया भावना करके ही युवती बधू के साथ उपगम करे। सुख की इच्छा रखने वाले पुरुष को चाहिए कि युवती में कुसुम में ऐसा ही व्यवहार करे इस प्रकार से उस साध्वी के द्वारा बहुत कुछ कहे जाने पर भी काम से विह्वल उस राजा ने रमण करने की बलपूर्वक उसको अपने समीप में हाथों से खींचकर वरिरम्भण किया था। जैसे ही उसका स्पर्श ही केवल उसने किया था कि देखा कि वह सहसातपे हुए लोहे के पिण्ड के समान था और अपने आपको मानो जल सी रही थी। राजा ने भय से विह्वल होकर तुरन्त ही उसका त्याग कर दिया था।४०—४१।

तांस्पृष्टमात्राँसहसातपतायः पिण्ड सन्निभाम्।
निर्दहन्तीमिवात्मानं तत्याज भयविह्वलः ॥४२
अहो सुमहदाश्चर्यमिदं दृष्टं तव प्रिये।
कथमग्निसमं जात वपुः पल्लबकोमलम् ॥४३
इत्थं सविस्मितो राजा भीतः सा राजबल्लभा।
प्रत्युवाच विहस्येन विनयेन शुचिस्मृता ॥४४
राजन्ममपुरा बाल्ये दुर्वासा मुनिपुंगवः।
शैवीं पंचाक्षरीं विद्यां कारुण्येनोपदिष्टवान् ॥४५
तेन मन्त्रानुभावेन ममांग कलुषोज्झितम्।
स्प्रष्टुं न शक्यतोपुम्भिः सपापैदवर्जितैः ॥४६
त्वया राजन्प्रकृतिनाकुलटागणिकादयः।
गदिरास्वादनिरता निषेव्यन्ते सदास्त्रियः ॥४७
न स्नानं क्रियते नित्यं न मन्त्रो जपयते शुचिः।
नाराध्यते त्वयेशानः कथं मांस्प्रष्टुमर्हेसि ॥४८
तां समाख्याहि सुश्रोणि ! शैवीं पञ्चाक्षरीं शुभाम्।
विद्याविध्वस्तपापोऽहं त्वयीच्छामि रतिं प्रिये ॥४९

राजा ने कहा—हे प्रिये ! मैंने आज सुमहान् आपका यह आश्चर्य देखा है। आपका यह पल्लव के समान परम कोमल शरीर ऐसा अग्नि के समान कैसे इस नमय हो गया है ? इस तरह से वह राजा बहुत ही

विस्मित हो गया था और भयभीत हो गया था। वह राज वल्लभ हंस कर शुचि स्मित वाली विनय के साथ इससे प्रति उत्तर देने लगी।४३-४२। रानी ने कहा—हे राजन ! पहले मेरे बचपन में ही मुनियों में श्रेष्ठ दुर्वासाजी ने करुणा करके पञ्चाक्षरी शैवी विद्या का मुझे उपदेश दिया था। उस मंत्र के ही अनुभव से यह मेरा अङ्ग कलुषों से परित्यक्त हो गया है। इस मेरे अङ्ग को पापों से युक्त पुरुषों के द्वारा जो कि अब वर्जित है स्पर्श नहीं किया जा सकता है। हे राजन् ! आपने प्रकृति से ही कुलटा और गणिका आदि का उपभोग किया है और सदा ही मदिरा के समास्वादन में आप निरत रहे हैं। न तो आप नित्य स्नान ही करते हैं और न कभी पवित्र होकर आपके द्वारा मंत्र का जाप ही किया जाता है। आप कभी ईश प्रभु का समाराधन भी नहीं किया करते हैं तो आप ऐसे समाचरण वाले होकर मुझे स्पर्श करने के योग्य कैसे हो सकते हैं ? राजा ने कहा—हे सुश्रोणि ! आप अब मुझे वह परम शुभ पञ्चाक्षरी विद्या बतलाइये। हे प्रिय ! विद्या के द्वारा विध्वंस पापों वाला होकर मैं आपके साथ रमण करने की इच्छा करता हूँ।४४।४६।

नाहं तवोपदेशं वै कुर्या मम गुरर्भवान् ।
उपातिष्ट गुरु राजन्गर्गं मन्त्रविदावरम् ॥५०
इति सम्भाषमाणौ दम्पती गर्गसन्निधिम् ।
प्राप्य तच्चरणौ मूर्ध्ना ववन्दौ ते कृताञ्जली ॥५१
अथ राजागुरुं प्रीतमभिपूज्य पुनः पुनः ।
समाचाष्टे विनीतात्मा रहस्यात्मनमनोरथम् ॥५२
कृतार्थं मां कुरु गुरो संप्राप्त करुणार्द्र धीः ।
शैवौ पंचाक्षरीं विद्यासुपदेष्टुं त्वमर्हसि ॥५३
अनाज्ञात यदाज्ञातं यत्कृतं राजकर्मणा ।
तत्पापं येन शुध्येत् तन्मन्त्रं देहि मे गुरो ॥५४
एवमभ्यर्थितो राजा गर्गो ब्राह्मणपुंगवः ।
तौ निनायमहापुण्यं कालिन्द्यास्तटमुत्तमम् ॥५५

तत्र पुण्यतरोर्मूले निषण्णोऽथ गुरुः स्वयम् ।
पुण्यतीर्थजले स्नातं राजान समुपोषितम् ।।५६
प्राङ्मुख चोपवेयाथ नत्वा शिवपदाम्बुजम् ।
तन्मस्तके कर न्यस्य ददो मन्त्रः शिवात्मकम् ।।५७

राज्ञी ने कहा—मैं आपको उपदेश नहीं करूंगी, आप मेरे गुरु हैं । मंत्रवेत्ताओं में वरिष्ठ वर्ग मुनी गुरु के समीप में उपस्थित होईये । सूतजी ने कहा इस प्रकार से परस्पर में सम्भाषण करते हुये वे दम्पती गर्ग मुनि के समीप में प्राप्त हुए थे । वहाँ पहुँचकर दोनों ने हाथ जोड़ कर उनके चरणों में शिर के बल प्रणाम किया था। इसके अनन्तर राजा ने परम प्रसन्न हुये गुरुदेव को बारम्बार पूजा करके अत्यन्त विनीत भाव वाला होकर उससे एकान्त में अपना मनोरथ उनसे कहा था । राजा ने कहा—हे गुरुदेव ! आप तो अरुणा से युक्त बुद्धि वाले हैं । आपकी सेवा में सम्प्राप्त हुये मुझको कृतार्थ कीजिये । आप मुझे 'पञ्चाक्षरी शैवी विद्या का उपदेश करने के योग्य है । हे गुरुचर्य ! राजधर्म से मैंने बिना जाना हुआ तथा ज्ञात जो भी कुछ पाप किया है वह जिसके भी द्वारा शुद्ध हो जावे वही मंत्र का उपदेश अब मुझे आप कर दीजिये । इस प्रकार से राजा के द्वारा प्रार्थना किये ब्राह्मणों में परमश्रेष्ठ गर्ग मुनि उन दोनों का महापुण्यमय कालिन्दी के उतम तट पर ले गये थे । वहाँ पर पुण्य तरु के मूल में गुरु स्वयं बैठ गये थे, और उस राजा के मस्तक पर अपना कर कमल रखकर उस शिव स्वरूप मंत्र को उसको दे दिया था ।५०।५७।

यन्मन्त्रधारणादेव तवगुरोर्हस्तसंगमात् ।
निर्ययुस्तस्य वपुषो वायसाः शतकोटयः ।।५८
ते दग्धपक्षाः क्रोशंतो निपतन्तो महीतले ।
भस्मीभूतास्ततः सर्वे दृश्यन्तेस्मसहस्रशः ।।५९
दृष्ट्वा तद्वायसंकुलं दह्यमावं सुविस्मितौ ।
राजा न राज महिषी तं गुरुं पर्यत्पृंच्छताम् ।।६०

भगवन्निद्रमाश्चर्यं कथं जातं शरीरतः ।
वायसानांकुल दृष्टं किमेतत्साधु भण्यताम् ॥६१
राजन्भव सहस्रेषु भवता परिधावता ।
सञ्चितानि दुरन्तानि सन्ति पापान्यनेकशः ॥६२
तेषु जन्मसहस्रेषु यानि पुण्यानिसन्ति ते ।
तेषामाधिक्यतः क्वापि जायते पुण्ययोनिषु ॥६३

उस शैव मंत्र के धारण करने से और उनकी गुरुदेव के हाथ के संयम से ही उसके शरीर से करोड़ कौए निकले थे। वे जले हुये पङ्खों वाले चीखते हुये तथा भूमि के तल में निपतित होते हुये सहस्रों तो भस्मी भूत हो गये थे ऐसे दिखलाई दिये थे। उस वायसों के समूह को दग्धीभूत हुआ देखकर वे दोनों ही परम विस्मित हुये थे। तथा राजा और राज्ञी दोनों ने ही उन श्री गुरुदेव से पूछा था—हे भगवन्! यह परम आश्चर्य इस शरीर को कैसे हुआ है जो कि यह कौओं का समुदाय इस शरीर में समुत्पन्न हुआ, यह क्या मामला है, कृपया इसे आप भली भांति बतलाइये। श्री गुरुदेव ने कहा—हे राजन्! आपने अपने सहस्रों जन्मों में दौड़ लगाते हुये अनेक परम पाप संचित किये थे। उन सहस्र जन्मों में जो कुछ तुम्हारे पुण्य थे उनकी अधिकता से कहीं पुण्य योनियों में जन्म लेते हैं।५८।६३।

तथा पापीयसी योनि क्वचित्पापेन गच्छति ।
साम्ये पुण्यन्धयोश्चैव मानुषी योनिमापतवान् ॥६४
शैवी पञ्चाक्षर विद्या यदा ते हृदयं गता ।
अघानां कोटयस्त्वत्तः काकरूपेण निर्गताः ॥६५
कोटयो ब्रह्महत्यानामगम्य कोटयः ।
स्वर्णस्तेयसुरापानभ्रूणहत्यादिकोट्या ।
भवकोटिहस्रेषु येऽन्ये पापकराशरः ॥६६
क्षणाद्भस्मीभवन्त्येव शैवेपञ्चाक्षरे घृते ।
आसस्तवाद्य राजेन्द्र ! दग्धाः पापकोट्याः ॥६७
अनया सह पूतात्मा विहरस्व यथासुखम् ।

इत्याभाष्य मुनिश्रेष्ठस्तंमन्त्रमुपदिश्य च ॥६८
ताभ्यां विस्मितचित्ताभ्यां सहितः स्वगृहं ययौ ।
गुरुवर्यमनुज्ञापय मुदितौ तोच दम्पति ॥६९
यतः स्वभवन प्रापयरेजतः स्म महाद्युती ।
राजाद्दढ समाश्लिष्य पत्नी चन्दनशीतजाम् ॥७०
संतोष परमं लेभे निःस्वः प्रापय यथा धनम् ॥७१
अशेषवेदोपनिषत्पुराण शास्त्रावतसोऽयमघान्तत्तारी ।
पञ्चाक्षरस्यैवमहाप्रभावोमयासमासात्कथितोवरिष्ठः ॥७२

तथा कहीं पर पाप से पापीयसी योनी को जाते ही जब पाप और पुण्य दोनों ही समान अवस्था में प्राप्त हुये हैं तभी आपने इस मानुषी योनि को प्राप्त किया है ।६४। वही पञ्चाक्षरी विद्या जिस समय में आप के हृदय में पहुँची तो तुम्हारे जो करोड़ों पाप थे वे सब आपके शरीर से वायसों से रूप में निकल पड़े हैं । इसमें करोड़ों ही तो ब्रह्महत्या के पाप हैं और करोड़ों ही अगम्य स्त्रियों में गमन करने के पाप है, स्वर्ण की चोरी, मदिरा-पान, हत्या आदि के भी करोड़ों पापों के समूह शैव पञ्चाक्षरी मंत्र के धारण करते ही क्षण भर में भस्मीभूत हो गये । हे राजन् ! आपके करोड़ों पातकों के समुदाय दग्ध हो गये । अब आप परम पवित्र हो गये हैं । आप अपनी इस भार्या के साथ सुखपूर्वक बिहार कीजिये । यह कहकर उस श्रेष्ठ मुनि ने उस मंत्र का उपदेश दिया । फिर विस्मित चित्त वाले इन दम्पत्ति के साथ अपते गृह को वे चले गये । वे दम्पत्ति भी गुरुदेव की अनुज्ञा प्राप्त कर परम प्रसन्न हो गये । फिर वे दोनों अपने-२ भवन मेंसमागत होकर महान् द्युति और शोभा से सम्पन्न हुये । राजा ने फिर उस चन्दन के समान शीतल अपनी पत्नी का भली-भाँति का आलिंगन किया । परम सन्तोष हो गया, जैसे कोई दरिद्र धन को पाकर सन्तुष्ट हो जाता है । यह पंचाक्षरी महामंत्र का महान् प्रभाव है, जो सम्पूर्ण दोषों के नाश के लिये उपनिषद् तुल्य वरिष्ठ हैं, सब वेद, शास्त्र, पुराणों का भूषण रूप एवं विपत्तियों का अन्त करने वाला है इस वरिष्ठ उपाख्यान को मैंने संक्षेप में कहा है ।६४।७२।

स्कन्द पुराण

[काशी खण्ड]

★★★

४७—तीर्थोध्याय वर्णन

शृणुसूत महाभाग कथांश्रुतिसहोदरम् ।
यां वै हृदिनिधायेह पुरुषः पुरुषार्थभाक् ॥१
ततः श्रीदर्शनानन्दसुधाधाराधुनौ मुनिः ।
अवगाह्य सपत्नीकः परामुदमवाप सः ॥२
वह्निकुण्डसमुद्भूत । सूतनिर्मलमानस ।
शृणुष्वैक पुराविद्भिर्भाषिते यत्सुभाषितम् ॥३
परोपकरणं येषां जागर्तिहृदये सताम् ।
नश्यन्ति विपदस्तेषां सम्पदःस्युः पदे पदे ॥४
तीर्थस्नानैर्नसा शुद्धिर्बहुदानैर्न तत्फलम् ।
तपोभिरुग्रैस्तन्नाप्युपकृत्या यदाप्यते ॥५
परोपकृत्यायोधर्मोधर्मोदानादिसम्भवः ।
एकत्रतुलितौ धात्रा तत्रपूर्वोऽभवद्गुरुः ॥६
परिनिर्मथ्य वाग्जाल निर्णीतमिदमेव हि ।
नोपकारात्परो धर्मो नापकारादधः परम ॥७

महामुनि श्री पाराशर जी ने कहा—हे सूत ! आप तो परम महाद् भाग वाले हैं । अब श्रुति की ही सहोदर एक कथा का श्रवण करो जिसको हृदय में धारण करके पुरुष इस संसार में परमार्थ को प्राप्त करने का अधिकारी हो जाया करता है । इसके उपरान्त यह मुनि अपनी पत्नी के सहित श्री दर्शन के आनन्द सुधा की धारा धुनि में अवगाहन करके परम मुद को प्राप्त हुये थे ।१।२। हे वह्नि कुण्ड से

समुत्पन्न होने वाले ! आपका मन परम निर्मल है । हे सूत ! पुरा वेत्ताओं के द्वारा भाषित एक जो सुभाषित हैं उसका आप श्रवण कीजिये । जिन सत्पुरुषों के हृदय में परायों के उपकार करने का भाव सदा जागरूक रहा करता है उनकी विपदायें नष्ट हो जाया करती हैं और उनको पद-पद में सम्पदायें उपस्थित रहा करती है ।३।४। अनेक तीर्थों के स्नान करने से वह उस प्रकार की बुद्धि समुत्पन्न नहीं होती है और बहुत से दानों में भी वैसी वृद्धि नहीं हुआ करती है और न ऐसा फल ही प्राप्त होता है । परम तप से भी वह प्राप्त नहीं होता तो दूसरों के उपकार के करने से प्राप्त किया जाया करता है । परायों के उपकार से जो धर्म है वह धर्म और दानादि अन्य सुकृत्यों से समूत्पन्न होने वाला धर्म इन दोनों को धाता ने एक ही स्थान में रखकर तोला था तो इन दोनों में उपकार से होने वाला धर्म ही गुरु हुआ था । इसलिए समस्त वाणियों के जाल का परिमन्थन करके यही निर्णय किया गया है कि परोपकार से अधिक श्रेष्ठ अन्य कोई भी धर्म नहीं है और दूसरों के उपकार करने से अधिक कोई भी अन्य महान् अघ नहीं होता ।५।७।

उपकर्तुं रगस्त्यजायमेतन्निदर्शनम् ।
क्वतात्क्काशिजदुःखै क्वतात्क् श्रीमुखेक्षणम् ॥८
करिकर्णाग्रचपलञ्जीवितैविविधवसु ।
तस्मात्परोपकरणंकार्यमेकं विपश्चिता ॥९
थल्लक्ष्मीनामसमात्राप्त्या नओ नो माति कुत्रचित् ।
साक्षात्समीक्ष्य तां लक्ष्मी कृतकृत्योभवेन्मुनिः ॥१०
गच्छन् यदृच्छयासोथदूराच्छ्रीशैलमैक्षत ।
यत्रसाक्षान्निवसतिदेवः श्रोत्रिपुरान्तकः ॥११
उवाच वचनं पत्नीतदाप्रीतोमहामुनिः ।
इहस्थितैवपश्य त्वं कान्तेकान्ततर परम् ॥१२
श्रीशैलशिखरं श्रीमदिदन्तद्यद्विलोकनात् ।
पुनर्भवोमनुष्याणांभवेऽत्रनभवेत्क्वचित् ॥१३

गिरिश्तुरशीत्यार्य योजनानां हि विस्तृतः ।
सर्वलिङ्गमतो यस्मादतः कुर्यात्प्रदक्षिणम् ॥१४

उपकार करने वाले, महामुनि अगस्त्य जीं का यह निदर्शन हो गया है। उस जैसा काशिज दुःख कहाँ है और वैसा श्री मुख का ईक्षण कहाँ है? हाथी के कान के अग्रभाग के समान चपल यह जीवित और धन है इसलिये विद्वान् पुरुष को एक परायों का उपकार करना चाहिये। जो लक्ष्मी के नाममात्र की प्राप्ति से मनुष्य कहीं पर भी नहीं समाता है, वह मुनि साक्षात् उस लक्ष्मी का समीक्षण करके कृत्य हो गये थे। गमन करते हुये उसने यदृइच्छा से दूर से ही शैल को देखा था जहाँ पर श्री त्रिपुरान्तक देव साक्षात् निवास किया करते हैं। उस समय में प्रीतिपूर्ण मन वाले मुनि अपनी पत्नी से यह वचन बोले थे—यहीं पर स्थिति होती हुई आप काल में परम कालान्तर को देखो। यही शैल का शिखर है जो श्री वाला है और जिसके विलोचन करने से इस संसार में मनुष्यों पुनर्जन्म कभी भी कहीं पर नहीं होता है। यह गिरि चौरासी योजनों के विस्तार वाला है। यह सर्व लिङ्गमय है इसलिए इस की प्रदक्षिणा करनी चाहिए।८।१४।

किंचिद्विज्ञपतुमिच्छामि यद्याज्ञां स्वामिनो भवेत् ।
ब्रूतेहि याऽननुज्ञाता पत्या सा पतिता भवेत् ॥१५
किंवक्तुकामादेवि ! त्वब्रूहितत्वमशंकिता ।
न त्वादृशीनां वाक्यंहिपत्युः खेदायजायते ॥१६
ततः पप्रच्छ सा देवी प्रणम्य मुनिमानता ।
सर्वेषाञ्च हितार्थाय स्वसन्देहापनुत्तये ॥१७
श्रीशैलशिखरं दृष्ट्वा पुनर्जन्मनविद्यते ।
इदमेव हि सत्यञ्चेत्किमर्थं काशिरिष्यते ॥१८
आकर्णय वरारोहे ! सत्य पृष्टंत्वयामले ! ।
निर्णीतमसकृच्च तन्मुनिभिस्तत्वबचिन्तकैः ॥१९
मुक्तिस्थानान्येकानि कृतस्तत्रापि निर्णयः ।
तानि ते कथयाम्यत्र दत्तचित्ता भवेक्षणम् ॥२०

लोपामुद्रा ने कहा—मैं कुछ जानने की इच्छा करती हूँ यदि स्वामी की आज्ञा मुझे प्राप्त हो जावे। जो पति की आज्ञा न प्राप्त करके हो बोलती है वह नारी पतित हो जाया करती है।१५। अगस्त्य मुनि ने कहा—हे देवि! आप क्या बोलने की इच्छा वाली हैं। आप निशंक्ति होकर ही तत्व को बोलिये। आप जैसी पत्नियों का वचन कभी भी पति को खेद करने वाला नहीं हुआ करता है। इसके पश्चात् परम विनत होकर उस देवी ने मुनि को सर्वप्रथम प्रणाम किया और फिर पूछा था जो कि सभी के हित के लिए था और अपने हृदय में स्थित संदेह को दूर करने के लिये भी था। लोपामुद्रा ने कहा—शैल शिखर का दर्शन करके पुनर्जन्म नहीं होता है—यही बात यदि सत्य है तो फिर काशि को किसलिये चाहा जाया करता है? अगस्त्य मुनि ने कहा—हे अमले—हे वरारोहे! आपने सत्य ही पूछा है तो अब श्रवण करो—तत्वों के ज्ञाता मुनिगण ने इसका कितनी ही बार निर्णय किया है कि मुक्ति के अनेक स्थान हैं। उसमें भी निर्णय किया गया है। उनको मैं यहाँ पर कहता हूँ। आप क्षण भर के लिये दत चित्त सावधान हो जाओ।१६।२०।

प्रथमं तीर्थराजन्तुप्रयागाख्यंसुविस्तृतम्।
कामिकंसर्वतीर्थानांधर्मकामार्थ मोक्षदम् ॥२१
नैमिषञ्च कुरुक्षेत्रं गङ्गाद्वारमवन्तिका।
अयोध्या मथूरा चैव द्वारकापयमरावती ॥२२
सरस्वतीसिन्धुसङ्गौगङ्गासागरसङ्गमः।
कान्तीचत्र्यद्बकञ्चापिसपतगोदावरीतटम् ॥२३
कायञ्जरं प्रभासश्च तथा वदरिकाश्रमः।
महालयस्तथोंकारक्षेत्रं वैपौरुषोत्तमम् ॥२४
गोकर्णोभुगुकच्छश्च भृगुतुंघश्चपुष्करम्।
श्रीपर्वतादितीनिधारातीर्थ तथैवच ॥२५
मानसान्यपितार्थानिसत्यादीनिचवैप्रिये।
एतानिमुक्तदान्येवनात्रकार्याविचारणा ॥२६

गयातीर्थञ्च यत्प्रोक्तं तत्पितृणां हि मुक्तिदम् ।
पितामहानामृणती मुक्तास्तत्तनया अपि ॥२७

सबसे प्रथम तीर्थों का राजा प्रयाग बहुत प्रसिद्ध है। यह सब तीर्थों का कामिक है अर्थात् चाहने वाला है एवं समस्त तीर्थों की इच्छायें पूर्ण करने वाला है तथा धर्मार्थ काम और मोक्ष का प्रदान करने वाला है। अब अन्य विशेष तीर्थों के नामों का विवरण दिया जाता है जो मुक्ति के प्रदाता हैं–नैमिष–कुरुक्षेत्र–गङ्गा द्वार–अवन्तिका–अयोध्या–मथुरा–द्वारका–अमरावती–सरस्वती–सिन्धुखङ्ग–गङ्गा सागर–सङ्गम—काँची—त्र्यम्बक—सप्त गोदावरी तट, कालंजर-प्रभास—बदिराकाश्रम—महालय—ओंङ्कार क्षेत्र—पौरुषोत्तम क्षेत्र—गौकर्ण–भृगुकच्छ—भृगु-तंग—पुष्कर—श्री पर्वत आदि तीर्थ—धारा तीर्थ—मानस आदि तीर्थ हे प्रिये ! सत्यादि तीर्थ—ये सभी तीर्थ मुक्ति देने वाले हैं—इस विषय में तनिक भी विचारणा नहीं करनी चाहिए। गया तीर्थ जो कहा गया है वह उसके पितृगण को ही मुक्ति का देने वाला होता है। उनके पुत्र भी महान् पितामहों के ऋण से मुक्त हो जाया करते हैं।२१।२७।

सानसान्यपितीर्थांनियान्युक्तासिमहामते ।
मानिकानिचतानीहह्य तदाख्यातुमर्हसि ॥२८
शृणुतीर्थानिगदतोमानसानिममानघे ।
येषुसम्यङ् नरः स्नात्वा प्रयातिपरमांगतिम् ॥२९
सत्यं तीर्थ क्षमातीर्थ तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः ।
सर्वभूतदयातीर्थं तीर्थमार्जवचु ॥३०
दानतीर्थ दमस्तीर्थ सन्तोषस्तीथमुच्यते ।
ब्रह्मचर्यं परं ततीर्थअचचीर्थञ्चप्रियवादिता ॥३१
ज्ञानतीर्थ धृतिस्तीर्थ तपस्तीर्थमुदाहृतम् ।
तीर्थानामपि तत्तीर्थ विशुद्धिर्मनसः परा ॥३२
न जलाप्लुतदेहस्यस्नानमित्यभिधीयते ।
सस्नातोयोदमस्नातः शुचिः शुद्धमनोमलः ॥३३

यो लुब्धः पिशुनः क्रूरोदाम्भिकोविषयात्मकः ।
सर्वतीर्थेष्वपि स्नातः पापो मलिन एवसः ॥३४

सधर्मिणी ने कहा--हे महामते ! मानस तीर्थ भी आपने जो बतलाये हैं वे कौन-कौन यहाँ पर से होते हैं—यह भी कृपा करके मुझे बतलाने के योग्य हैं ? महामूनि अगस्त्यजी ने कहा—हे अनघे ? बोलने वाले मूझसे आप उन मानस तीर्थों का भी श्रवण कर लीजिए जिनमें मनुष्य स्नान करके परशोत्तम गति को प्रग्राण किया करता है। एक तो मानस तीर्थों में सत्य तीर्थ है—दूसरा क्षमा तीर्थ है और समस्त इन्द्रियों का विग्रह कर लेना यह भी एक महान् मानस तीर्थ है। सब प्राणियों पर दया का भाव सदा रखना तीर्थ और सर्वदा कुटिलता रहित सीधापन (सरलता) रखना यह भी मानस तीर्थ होता है। दान तीर्थ है—दम (दमन करना) तीर्थ है और सदा मन में पूर्णतया संतोष की भावना का स्थिर भाव से रखना भी मानस तीर्थ कहा जाता है। पूर्णरूप से ब्रह्मचर्य को धारण रखना सबसे परम तीर्थ होता है। सब के साथ सदा प्रिय भाषण करना भी एक मानस तीर्थ होता है। ज्ञान रखना तीर्थ हैं—धैर्य रखना तीर्थ और तपश्चर्या करना भी मानस तीर्थ होता है। इन समस्त बतलाये मानस तीर्थों में सबसे श्रेष्ठ एवं प्रमूख तीर्थ मन की शुद्धता है। केवल जल में डुबकियाँ लगाने वाले देह का स्नान नहीं कहा जाया करता वास्तव में वही स्नान किया हुआ है जो दमन से स्नान किया हुआ है और जिसके मनका मल शुद्ध है वही शुद्धि होता है। जो लुब्ध अर्थात् लोभ से परिपूर्ण है—पिशुन अर्थात् पीठ पीछे दूसरों की वुराई करने वाला या चुगली करने वाला है—जो क्रूर अर्थात् अत्यन्त कठोर निर्दयी है—जो दाम्भिक अर्थात् कायरतापूर्ण दिखावा करने वाला है और जो विषयों में डूवा हुआ है वह भले ही सभी तीर्थों में क्यों न स्नान किया हुआ हो वह फिर भी महान् पापी है और मलिन ही रहा करता है ।२८।३४।

न शरीरमलत्यागान्नरो भवतिनिर्मलः ।
मानमे तु मले त्य ते भवत्यन्तः सुनिर्मलः ॥३५
जायन्ते च म्रियन्तेचजष्वेवजलौकसः ।
न च गच्छमितेस्वर्गमविशूद्धमनोमलाः ॥३६
विषयेष्वति संरागो मानसोमल उच्यते ।
तेष्वेवहि विरागोपिनैर्मलय समुदाहृतम् ॥३७
चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानान्न शुद्धयति ।
शतशोथजलधौंतसुराभाण्डमिवाशुचिः ॥३८
दानमिज्यातपः शौचतीर्थसेवाश्रुत तथा ।
सर्वाण्येतानितीर्थानियदिभावोननिर्मलः ॥३९
निगृहीतेन्द्रियग्रामोत्रैवचवसेन्नरः ।
तत्रतस्य कुरुक्षेत्रं नैमिषंपुष्कराणिव ॥४०
ध्यानपूते ज्ञानमले रागद्वेषमलापहे ।
यः स्नाति मानसे तीर्थे स यातिपरमांगतिम् ॥४१
एतत्तो कथितं देवि ! मानसतीर्थलक्षणम् ।
भोमानामपि तीर्थानांपुण्यत्वेकारणंश्रृणु ॥४२

केवल शरीर के इस ऊपरी मल के त्याग कर देने से मनुष्य निर्मल या शुचि नहीं हो जाया करता है। मन में रहने वाले मल के त्याग देने पर ही मनुष्य अन्दर से सुनिर्मल हुआ करता है। जलचारी जीव जल ही में समुत्पन्न होते हैं, जीवन में वही रहा करते हैं और अन्त में उस ही में उनकी मृत्यु भी हुआ करती है किन्तु वे विशुद्ध मनोबल वाले न होने के कारण कभी स्वर्ग लोक में नहीं जागा करते हैं। प्रथम तो ये जलचर तिर्यक् योनि वाले ज्ञान से ही शून्य होते हैं फिर भी शुचिता के स्वरूप को ये कुछ जान ही नही सकते हैं। मानस मल उसी को कहा जाता है जो साँसारिक विपयों में अर्थात् इन्द्रियों के विभिन्न विषयों में अच्छी तहर से राग होता है। उन्हीं में विराग का होना मन की निर्मलता नही जाया करती है। यह अन्दर में छिपा रहने वाला चित्त अत्यन्त ही दुष्ट हुआ करता है। यह ऊपरी स्नान के कर लेने से

कभी भी शुद्धि नहीं हुआ करता है। सैंकड़ों बार जल से जैसे मदिरा का पात्र धो भी लिया जावे तो भी वह पवित्र न होकर अशुचि ही रहा करता है।३५।३८। दान इज्या–तप–शौच–तीर्थाटन–श्रुत ये सभी तीर्थ ही होते हैं किन्तु भाव की प्रधानता है। यदि भाव शुद्ध नहीं हैं तो इनका कोई फल नहीं है। जिसने अपनी समस्त इन्द्रियों को पूर्णतया जीतकर अपने काबू में कर लिया है वह जहाँ पर भी कहीं निवास करे उसके लिए वही स्थल परम पवित्र कुरुक्षेत्र-नैमिष और पुष्कर है अर्थात् तीर्थ है। जो ध्यान से पवित्र ज्ञान रूपी जल में जो राग द्वेष के मल का अपहरण कर देने वाला है मनुष्य स्नान किया करता है जिसको कि मानस तीर्थ कहते हैं वह पुरुष परमोत्तम गति को प्राप्त किया करता है। हे देवि हमने आपके सामने यह मानस तीर्थ का समग्र लक्षण बतला दिया है। अव इन भूमि में रहने वाले तीर्थों का भी कारण सुन लो अर्थात् मानस तीर्थ ही सर्वोत्तम तीर्थ है तो इनकी रचना का क्या कारण है उसका भी अब श्रवण कर लो।३६।४२।

यथा शरीरस्योद्देशा केचिन्मेध्यतमाः स्मृताः।
तथापृथिव्यामुद्देशा केचित्पुण्यतमाः स्मृताः ॥४३
प्रभावाद्द्भुताद्भूमे सलिलस्य च तेजसा।
परिग्रहान्मुनीनाञ्चतीर्थानांपुण्यतास्मृता ॥४४
तस्मात्भौमेषु तीर्थेमानसेषुचनित्यशः।
उभयेष्वपियः स्नातिसयाति परमांगतिम् ॥४५
अनुपौष्य त्रिरात्राणि तीर्थान्यनभिगम्यच।
अदत्वा काञ्चनगाश्चदरिद्रोनामजायते ॥४६
अग्निष्ठोमादियज्ञैरिष्टवा विपुलदक्षिणैः।
न तत्कलमवाप्नोति तीर्थाभिगमनेनयत् ॥४७
यस्यहस्तौ च पादौचमनश्चैव सुसंयतम्।
विद्यातपश्च कीर्तिश्चसतीर्थफलमश्नुते ॥४८
प्रतिग्रहादुपावृत्तः सन्तुष्टो येनकेनचित्।
अहंकारविमुक्तश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥४९

जिस प्रकार इस शरीर के कुछ भाग परम पवित्र माने गये हैं, ठीक उसी भाँति से इस पृथ्वी के भी कुछ भाग परम पुण्य तम कहे गये हैं। इस भूमि के अद्भुत प्रभाव से, जल के विशेष तेज से और मुनिगणों के परिग्रहण करके इन समस्त तीर्थों की पुण्यता बतलाई गई है। इसलिये भूमिगत तीर्थों का भी महत्व अवश्य ही होता है अतएव मानवों का कर्त्तव्य यह होना चहिये कि इस भूमिगत तीर्थों में और साथ ही मानस तीर्थों में भी नित्य ही दोनों में स्नान करना चाहिये। इन दोनों ही प्रकार के तीर्थों में जो स्नान किया करता है वह मानव पर गति को प्राप्त होता है। तीर्थों में पहुंचकर जो तीन रात्रि का उपवास नहीं करता है तथा वहाँ पर जाकर सुवर्णदान एवं गोदान नहीं करता है वह पुरुष दरिद्र ही रहा करता है अग्निष्टोम आदि यज्ञों से जिनमें बहुत अधिक दक्षिणा दी गई हो मनुष्य वह फल प्राप्त नहीं किया करता है जो तीर्थों के अभिगमन से फल होता है। जिसके दोनों हाथ, दोनों पैर और मन सुसंगत होता है वह विद्या—तप—कीर्ति और तीर्थों का फल प्राप्त किया करता है। प्रतिग्रह से उपावृत होने वाला अर्थात् दान न देने वाला और जो भी कुछ मिल जावे उसी से सन्तुष्ट रहने वाला तथा अहङ्कार से रहित होता है वह तीर्थाटन के फल को प्राप्त कर लिया करता है।४३।४६।

अदम्भको निरारम्भोलध्वाहारोजितेन्द्रियः।
विमुक्तः सर्वसंगेयः सतीर्थफलमश्नुते ॥५०
अकोपनोऽमलमतिः सत्यवादीदृढव्रतः।
आत्मोपमश्चभूतेषु स तीर्थफलमश्नुते ॥५१
तीर्थानांनुसरन् धीरः श्रद्दधानः समाहितः।
कृतपापो विशुद्धयेत किंपुनः शुद्ध कर्मकृत् ॥५२
तिर्यग्योनि न वै गच्छेत्कुदेशे नैव जायते।
न दुःखी स्यात्स्वर्गभाक्च मोक्षापायञ्च विन्दति ॥५३
अश्रद्दधानः पापात्मानास्तिकोऽच्छिन्नसंशयः।
हेतुनिष्ठश्चपञ्चंतेतेतीर्थफलभागिनः ॥५४

तीर्थानिचयथोक्तेनविधिनासञ्चरन्तिये ।
सर्वद्वन्द्वसहाधीरास्तेनराः स्वर्गभागिनः ॥५५
तीर्थयात्राञ्चकीर्षुः प्राग्विधायोपोषणं गृहे ।
गणेशञ्च पितृन्विप्रान्साधूँभक्त्या प्रपूज्य च ॥५६

दम्भ से रहित–बिना आरम्भ वाला–बहुत हल्का और कम आहार करने वाला—इन्द्रियों को जीतने वाला और सब प्रकार के संगों से जो विमुक्त रहने वाला है वह भी तीर्थाटन करने का फल प्राप्त कर लिया करता है। जो बिना क्रोध वाला, निर्मल मति वाला, सत्य भाषण करने वाला, दृढ़ व्रत वाला और समस्त प्राणियों में अपनी आत्मा के समान भाव रखने वाला जो मनुष्य हुआ करता है वह तीर्थ करने का पूर्ण पुण्य फल प्राप्त कर लिया करता है। तीर्थों का अनुसरण करता हुआ धीरज वाला–श्रद्धा से समन्वित एवं परम समाहित जो मनुष्य होता है वह पापों के करने वाला भी विशुद्ध हो जाया करता है और जो शुद्ध कर्मों के करने वाला होता है उसके विषय में तो कहा ही क्या जावे।५०।५२। ऐसा भी उत्पन्न नहीं होता है। वह मनुष्य कभी दुःखित नहीं होता है तथा स्वर्गलोक का भोक्ता एवं मोक्ष प्राप्त करने का उपाय पाया करता है।५३। जो श्रद्धा नहीं रखने वाला है तथा परमात्मा ईश्वर की सत्ता को नहीं मानने वाला नास्तिक-जिसका संशय छिन्न नहीं हुआ हो और जो हेतु में ही निष्ठा रखने वाला हो ऐसे ये पाँच प्रकार के आदमी कभी तो तीर्थों के फल के भागी नहीं होते हैं। जो यथोक्त विधि से तीर्थों का पर्यटन किया करते हैं और सभी प्रकार के द्वन्द्वों के रहने वाले एवं धीर होते हैं, वे ही मनुष्य स्वर्ग के भागीदार हुआ करते हैं। जब कोइ भी तीर्थ यात्रा करने की इच्छा वाला हो तो पहले उसको घर में ही उपौषण करना चाहिए और विघ्न विनाशक भगवान गणेश का पूजन कर तथा पितृगण, विप्र वृन्द और साधुओं का पूजनार्चन करना चाहिए।५४।५६।

कृतपारणकोहृष्टो गच्छेन्नियमधृकपुनः ।
आगत्याभ्यर्च्यंचपितृन्यथोक्तफलवाग्भवेत् ॥५७
नपरीक्ष्योद्विजस्तीर्थैष्वन्नार्थीभोज्यएवच ।
सक्तुभिः पिण्डदानञ्च चरुणापायसेनच ॥५८
कर्तव्यमृषिभिर्द्रष्टंपिण्याकेन गुडेन च ।
श्राद्धं तत्र प्रकर्तव्यमर्घ्या वाहनवर्जितम् ।५९
अकालेपयथवा काले तीर्थेश्राद्धञ्च तर्पणम् ।
अविलम्बेन कर्तव्य नैव विघ्नं समाचरेत् ॥६०
तीर्थं प्रापत प्रसगेन स्नान तीर्थं समाचरेत् ।
स्नानजं फलमाप्नोति तीर्थयात्राश्रितं न च ॥६१
नृणां पापकृतां तीर्थे पापस्य शमन भवेत् ।
यथोक्तोफलद तीर्थ भवेच्छु द्धात्मनां नृणाम् ॥६२
षोडशांशं स लभते यः परार्थञ्च गच्छति ।
अर्द्ध तीर्थफलं तस्य यः प्रसंगेन गच्छति ॥६३

किए हुए उपवास का पारण करके नियमों को धारण कर परम हर्ष से संयुत होकर फिर तीर्थ यात्रा को गमन करे। वहाँ से आकर भी पुनः अपने पितृगण का अर्चन करे—तभी वह पुण्य फल का भागी हुआ करता है ।५७। तीर्थों में कभी भी किसी द्विज की परीक्षा न करे। जो भी अन्न का अर्थी हो उसको ही भोजन करा देना चाहिए। भोजन सत्तू से करावे तथा पिण्डदान भी सत्तू से करावे। और चरु एवं पायस के द्वारा करे। ऋषियों के द्वारा दुष्ट पिण्याक एवं गुण से करना चाहिये। अर्घ्य और आवाहन से रहित वहाँ पर श्राद्ध से भी करना चाहिए। काल ही अथवा अकाल ही में तीर्थ में श्राद्ध और तर्पण अविलम्ब होकर देवे और कभी भी इसमें विघ्न न करे। प्रसंगवश भी यदि तीर्थ में प्राप्त हो जावे तो वहाँ पर स्नान का समाचरण अवश्य ही करे। वह मनुष्य वहाँ पर स्नान का फल तो अवश्य ही प्राप्त कर लेगा किन्तु उसे तीर्थ यात्रा करने का फल नहीं प्राप्त होगा ।५८।६१। पापों के करने वाले मनुष्यों के तीर्थ में पापों का शमन हो जाया करता है। तीर्थ जिस प्रकार

से पुण्य फल का प्रदान करने वाला होता है वह श्रद्धा वाले मनुष्यों को ही होता है।६२। जो कोई दूसरों के लिये ही तीर्थों में गमन किया करता है वह फल का सोलहवाँ अंश प्राप्त किया करता है। जो किसी अन्य कार्य के प्रसङ्ग से तीर्थ में पहुँच जाता है उसको तीर्थ यात्रा का आधा फल ही प्राप्त हुआ करता है।६३।

कुशप्रति कृति कृत्वा तीर्थवारिणि मज्जयेत् ।
मज्जयेच्च यमुद्दिश्य सोष्टमांशं लभेत वै ॥६४
तीर्थोपवासः कर्तव्यः शिरसो मुण्डनं तथा ।
शिरो गतानि पापानि यान्तिमुण्डनतीयतः ॥६५
यदह्नितोर्थप्राप्तिः स्यात्ततोह्नः पूर्ववासरे ।
उपवासस्तु कर्तव्यः प्राप्ताह्नि श्राद्धदोभवेत् ॥६६
तीर्थप्रसंगात्तीर्थांगमप्युक्तं त्वत्पुरो मया ।
स्वर्गसाधनमेवेतन्मोक्षोपायश्च वं भवेत् ॥६७
काशी कान्ची च मायाख्या त्वयोध्या द्वारवत्यपि ।
मथुरावन्तिका चैताः सप्तपुर्योऽत्र मोक्षदा ॥६८
श्रीशैली मोक्षदः सर्वः केदारोपि ततोऽधिकः ।
श्रीशैलाच्चापि केदारात्प्रयागं मोक्षदं परम् ॥६९
प्रयागादपितीर्थाग्रचादावमुक्तं विशिष्यते ।
यथा विमुक्ते निर्वाण नं तथाक्वाष्यूसंशयम्ः ॥७०

कुशा की एक प्रतिकृति बनाकर तीर्थ के जल से मज्जित करा देवें। जिस उद्देश्य को लेकर उसका मज्जन करावे उसका अष्टमाँश फल उसे प्राप्त हो जाया करता है। तीर्थ में जाकर उपवास अवश्य ही करे और वहाँ पर मुण्डन भी करावे। मुण्डन के जल से शिर में प्राप्त हुये समस्त पाप चले जाया करते हैं। जिस दिन तीर्थ की प्राप्ति होवे उससे पूर्व दिन में ही उपवास करना चाहिए और प्राप्त हो जाने वाले दिन में श्राद्ध देने वाला होवे। इस तीर्थ यात्रा के प्रसङ्ग में मैंने आपके आगे तीर्थों के अङ्ग का भी वर्णन कर दिया है। यही स्वर्ग साधन होता है और मोक्ष प्राप्त करने का भी उपाय है। काशी, कान्ची (कांची) माया,

(हरिद्वार) अयोध्या द्वारावती (द्वारका), मथुरा, अवन्तिका (उज्जैन) ये सात पुरियाँ ऐसी है जो उसे मोक्ष के प्रदान करने वाली होती है। ।६४।६८। श्री शैल सम्पूर्ण मोक्ष प्रदाता हैं। केदार गिरि उससे भी अधिक होता है। श्री शैल और केदार से भी परम मोक्ष का देने वाला प्रयाग हुआ करता है।६६। प्रयाग से भी अधिक जो कि समस्त तीर्थों में अग्र है (उत्तम) होता है अविमुक्त तीर्थ हुआ करता है। जैसा इस अविमुक्त तीर्थ में निर्वाण होता है वैसा तो कहीं भी नहीं होता है—यह निःसन्देह है ।७०।

अन्यानि मुक्तिक्षेत्राणि काशीप्राप्तकराणि च ।
काशीं प्राप्याऽपि मुच्येतनान्यथा तीर्थकोटिभिः ।।७१
अत्रार्थे कथयिष्येहमितिहासं पुरातनम् ।
यथाविष्णुगणैरुक्तं द्विजाय शिवशर्मणे ।।७२
तीर्थाध्यायमिमं श्रुत्वा नरोनियतमानसः ।
श्रावयित्वा द्विजांश्चापि श्रद्धाभक्ति समन्विताः ।।७३
क्षत्रियान्धर्मनिरतान्वैश्यान्सन्मार्गवर्तिनः ।
शूद्रान्द्विजेषु भक्तांश्च निष्पापो जायते द्विजः ।।७४

अन्य भी मुक्ति के क्षेत्र हैं और वे काशी के प्राप्त कर देने वाले होते हैं किन्तु काशी में तो प्राप्त होकर ही मानस मुक्त हो जाया करता है अन्यथा करोड़ों तीर्थों से भी नहीं होता है।७१। इस विषय में हम एक परम पुरातन इतिहास आपको कहेंगे वैसा कि भगवान विष्णु के गणों ने शिव शर्मा द्विज से कहा था। इस तीर्थाध्याय को मनुष्य नियत मन वाला होकर श्रवण करता है तथा द्विजों का इसका श्रवण कराता है जो कि सुनने वाले श्रद्धाभक्ति से युक्त हों एवं धर्म में विदित क्षत्रियों को तथा सन्मार्ग में रहने वाले वैश्यों को और द्विजों में भक्ति रखने वाले शूद्रों को सुनाता है वह द्विज निष्पाप हो जाया करता है।

४८—गायत्री महत्व वर्णन

गायत्रीमन्त्रतोयाड्यं दत्तं येनाञ्जलित्रयम् ।
कालेसवित्रेकिंनस्यात्तेनदत्तं जगत्त्रयम् ॥१
किंकिंनसवितासूतेकालेसस्यगुपासितः ।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं वसूनि च पशूनि च ॥२
मित्रपुत्रकलत्राणि क्षेत्राणि विविधानि च ।
भोगानष्टविधांश्चापि स्वर्गं चाप्यवर्गकम् ॥३
अष्टादशसुविद्यासु मीमांसातिगरीयसी ।
ततोपितर्कशास्त्राणिपुराण तेभ्य एव च ॥४
ततोपिधर्मशास्त्राणितेभ्योगुर्वीश्रनिर्दिज !
ततोप्युपनिषच्छ्रेष्ठागायत्रीचतधिका ॥५
दुर्लभासर्वमन्त्रेषु गायत्रीप्रणवान्विता ।
न गायत्र्याधिकंकिंचित्त्रयीषु परिगीयते ॥६
नगायत्रोसमो मन्त्रोनकाशींसदृशीतुरी ।
नविश्वेशसमलिङ्गं सत्यं सत्यं पुनः पुनः ॥७

महर्षि श्री अगस्त्यजी ने कहा—गायत्री मन्त्र से संयुक्त तीन जल की अंजलियाँ जिस पुरुष ने भगवान सविता के लिये समय पर समर्पित करदीं है उसने क्या त्रिभुवन को नहीं दे डाला है। तात्पर्य यह है कि उसने सभी कुछ समर्पित कर दिया है। शास्त्र में बताये हुये समय पर भली भाँति उपासित सूर्यदेव क्या-क्या नहीं प्रदान किया करते हैं, अर्थात् सभी कुछ दे देते हैं। आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, धन, पशु, मित्र, पुत्र, कलत्र, विविध क्षत्र, आठों प्रकार के भोग, स्वर्गलोक का निवास और अपवर्ग यह भी प्राप्त होते हैं।१।३। अठारह विद्याओं में मीमांसा विद्या अत्यन्त बड़ी है। इससे भी अधिक गुरु तर्क शास्त्र है। उनसे भी अधिक पुराण हैं और उनसे भी अधिक धर्म शास्त्र होते हैं और इनसे अधिक गुरु श्रुति है। हे द्विज ! श्रुतियों से भी अधिक गुरु उपनिषद् हैं और इनसे भी परम श्रेष्ठ गायत्री होती है। इससे अधिक कोई भी नहीं

है। प्रणव से समन्वित गायत्री सभी मन्त्रों में दुर्लभा है। वेद त्रयी में गायत्री से अधिक कुछ भी नहीं परिगीत किया जाता है।४।६। गायत्री के समान कोई अन्य मन्त्र नहीं है और काशी के समान अन्य कोई पुरी नहीं है। विश्वनाथ भगवान तुल्य कोई भी शिवलिंग नहीं है—यह पुनः पुनः पूर्णतः सत्य है।७।

गायत्री वेदजननी गायत्रीब्राह्मथप्रसूः।
गातर त्रायर्येयस्माद्गायत्री ते न गायते ॥८
वाच्यवाचकसम्बन्धीगायत्र्याः सवितुर्द्धयाः।
वाच्योसौ सविता साक्षाद्गायत्रीं वाचिका परा ॥९
प्रभावेणैवगायत्र्या क्षत्त्रियः कौशिकोवशी।
राजर्षित्वंपरित्यब्रह्मर्षिपद्मोयिवान् ॥१०
सामर्थ्यं प्राप चात्युच्चैरन्यद्भुवनसर्जने।
किं किं न दद्याद्गायत्री सम्यगेवमुपासिता ॥११
न ब्राह्मणो वेद पाठान्न शास्त्रपठनादपि।
देव्यास्त्रिकालमभ्यासाद् ब्राह्मणः स्याद्धि नान्यथा ॥१२
गायत्र्येवपरंविष्णूर्गायत्र्येव परः शिवः।
गायत्र्येवपरोब्रह्मा गायत्र्येव त्रयो ततः ॥१३
देवत्रयं सभगवानशुमाली दिवाकरः।
सर्गेषां महासांराशिः कालः कालप्रवर्तकः ॥१४

यह गायत्री वेदों की जननी है। गायत्री को प्रसूत करने वाली है क्योंकि इसका जो गायन (जाप) करता उसकी यह सुरक्षा (त्राण) किया करता है इसलिये इसको गायत्री कहा जाता है। गायत्री और सविता इन दोनों का वाक्य-वाचक सम्बन्ध होता है। वाच्य तो भगवान सविता देव हैं और गायत्री साक्षात् पर उनकी वांचिका होती है।८।९। इस गायत्री देवी के प्रभाव से ही क्षत्रिय वंशी कौशिक विश्वामित्र, राजर्षित्व का त्याग करके ब्रह्मर्षि के पद को प्राप्त हो गये थे।१०। दूसरा बहुत ऊँचा भुवन के निर्माण करने की भी उन्होंने सामर्थ्य प्राप्त कर ली थी। भली भाँति से उपासना भी की हुई गायत्री देवी मनुष्य को

क्या-क्या नहीं दे दिया करती है? अर्थात् सभी कुछ प्रदान कर देती है। वेदों के पाठ करने से ब्राह्मण नहीं बन सकता है और शास्त्रों के पढ़ने से भी ब्राह्मणत्व नहीं आता है, केवल तीनों कालों में गायत्री देवी की उपासना के अभ्यास से ही ब्राह्मणत्व हुआ करता है अन्य किसी भी प्रकार से ब्राह्मणत्व नही आता है। यह गायत्री देवी ही परम विष्णु है और गायत्री परम शिव है—गायत्री ही परब्रह्म है तथा वेदत्रयी भी गायत्री ही होती है। वह भगवान अंशमाली दिवाकर देव देवत्रय अर्थात् तीनों का स्वरूप तथा यह सभी तेजों का समूह है और काल का प्रवंत्तक साक्षात् काल है।११।१४।

अर्कमुद्दिश्य सततमस्मल्लोकनिवासिनः।
श्रुतिह्यु दाहरन्तीमां सारांसारविवेकिनः ॥१५
एषोहदेवः प्रदिशोनुसर्वाः पूर्वोह जातः ज गर्भे अन्तः।
स एव जातः स जनिष्यमाण प्रत्यङ् सनस्तिष्ठतिसर्वतोमुखः।
सदेवमुपतिष्ठेरेन् सौरैः सूक्तैरतन्द्रिता।
नमन्त्यत्रचयेदिया विप्राभस्करसन्निभाः ॥१७
तुण्यार्कपयथहस्तार्के मूलार्कपयथवाद्विजः।
उत्तरार्कपयथयत्कार्य तत्फलत्येवेनान्यथा ॥१८
पौषेमास्यर्क दिवसेयः स्नात्वाभास्करोदये।
दानं होमंजपकुर्यादर्चादिर्चामिकस्यसुव्रतः ॥१९
श्रद्धावान्नेकभक्तश्च कामक्रोधविवर्जितः।
सहाप्सरोभिद्युतिमान्सवसेदत्रभोगवान् ॥२०
अयनेविषुवेचापि षडशोतिमुखेषु वा।
विष्णुपद्याञ्चये दद्युर्महादानानि सुव्रतः ॥२१

हमारे लोक के निवासी जल को सार और असार के विवेकी निरन्तर भगवान सूर्य का उद्देश्य करके इस श्रुति का उदाहरण किया करते हैं।१५। यह ही देव सब दिशा-प्रदिशाओं में है। यह ही सबसे पूर्व में उत्पन्न हुये हैं यह ही अन्दर गर्भ में है, यही उत्पन्न हुये हैं और

वह ही जनिष्यमणि हैं, यह ही मनुष्य के पीछे और सभी ओर मुख करने वाला स्थित है। १६। सदा ही अतिरिक्त होते हुए सौर सूर्य सम्बन्धी सूक्तों के द्वारा उपस्थान करना चाहिए। जो विप्र यहाँ पर भगवान् सूर्य को नमन किया करते हैं वे विप्र भास्कर के ही समान तेज वाले हुआ करते हैं। हे द्विज ! पुष्यार्क में अथवा हस्तार्क में, मूलार्क या उत्तरार्क में जो भी कुछ किया जाता है वह ही फल देने वाला होता है अन्यथा कुछ भी फल नहीं देता ।१७।१८। रविवार के दिन पौष मास में जो सूर्योदय के समय पर स्नान करके दान होम और जाप किया करते हैं तथा सुन्दर व्रत वाला सूर्यदेव का अर्चन करता है उसे परम श्रद्धा वाला, एक ही समय में भोजन करने वाला तथा काम, क्रोधादि रहित रहता है। वह यहाँ पर समस्त भोगों वाला होकर अप्सराओं के साथ निवास किया करता है। और अत्यन्त द्युति से युक्त होता है। अयन में, विषव में अथवा षडशीति सुखी में जो विष्णुपदी में महान् व्रत वाले दान दिया करते हैं वे बैकर्त्तन लोक में वास किया करते हैं।१६।२१।

तिलाञ्जुह्वति साज्यांश्च ब्राह्मणान् भोजयति ।
पितृनुद्दिश्य च श्राद्धं ये कुर्वन्ति विपश्चितः ॥२२
महापूजाञ्च ये कुर्यु महामन्त्राश्चपन्ति च ।
तेऽत्र वैकर्तने लोके विकर्तनसमप्रभा ॥२३
न दरिद्रा न दुःखार्ता न व्याधिपरिपीडिता ।
संक्रमेष्वैकभक्ता ये नाधिरूपा न दुर्भगाः ॥२४
संक्रमेषन यैर्दत्त न स्नातंतीर्थं वारिषु ।
विशेषहोमो न कृतः कपिलाज्याप्लुतस्तिलैः ॥२५
ते दृश्यन्ते प्रतिद्वारं विहीननयनाननाः ।
देहिदेहीति जल्पन्तो देहिनः सपटच्चराः ॥२६
समंकृय्यलकेनापि यो दद्यात्कांचनं कृती ।
सूर्यग्रहे कुरुक्षेत्रे सवसेदत्र पुण्यभाक् ॥२७

जो उपर्युक्त अवसरों में घृत के सहित तिलों का हवन किया करते हैं, ब्राह्मणों को भोजन कराते हैं और जो विद्वान् पुरुष अपने पितृगण का उद्देश्य लेकर श्राद्ध किया करते हैं। जो कोई महापूजा करते हैं तथा महामन्त्रों का जाप किया करते हैं वे इस वैकर्त्तनलोक में विकर्त्तन (सूर्य) के समान प्रभा से सुसम्पन्न होकर निवास करते हैं। वे लोक कभी भी दरिद्र नहीं होते हैं और न कभी दुःखों से आर्त्त तथा व्याधियों से पीड़ित ही हुआ करते हैं। संक्रमण काल में अर्थात् सूर्य की संक्रान्ति के समय में जो सूर्यदेव की भक्ति किया करते हैं वे न तो कभी विरूप ही होते है और न दुर्भाग्य वाले ही हुआ करते हैं। २२।२४। जिन्होंने संक्रान्ति में कभी कुछ भी दान नहीं दिया है और तीर्थोक जल में स्नान नहीं किया है तथा कोई विशेष होम भी कपिला के घृत में लुप्त तिलों से नहीं किया है वे प्रत्येक द्वार पर नयन और आनन से विहीन होकर दिखलाई दिया करते हैं। ऐसे लोग सपटच्चर होते हुए, हम को कुछ दो' ऐसा कहते हुये देहधारी घूमा करते हैं। जो कोई कृती कृष्णलक के समान भी सूर्य ग्रहण में कुरुक्षेत्र में स्वर्ण का दान करता है वह परम पुण्यात्मा इस लोक में आकर निवास किया करता है।२५।२७।

सर्वगङ्गासमन्तोय सर्वेब्रह्मासमाद्विजाः ।
सवंदेय स्वर्णसमराहुग्रस्ते दिवाकरे ॥२८
दत्तं जप्तहुतं स्नातं यत्किंचित्सदनुष्ठितम् ।
भानुपरागेश्वादि तद्ध तुर्ब्रध्नसन्निधेः ॥२९
रविवारे संक्रमश्चेदुपरोऽथवा भवेत् ।
तदा यदर्जितं पुण्यं तदिहास यमाप्यते ॥३०
भानुवारो यदा षष्ठयां सप्तम्यामथ जायते ।
तदायत्सकृतं कर्म कृतन्तदिह भुज्यते ॥३१
हंसो भानुः सहस्रःशुस्तपनस्तापनोरविः ।
विकर्तनो विवस्वांश्च विश्वकर्मा विभावसु. ॥३२
विश्वरूपो विश्वकर्ता मार्तण्डो मिहिरोंऽशुमान् ।
आदित्यश्चोष्णगुः सूर्योऽर्यमा विध्नोदिवाकरः ॥३३

द्वादशात्मा सप्तहयोभास्करोऽहस्कर: खग: ।
सूर: प्रभाकर: श्रीमाँल्लोकचक्षुर्ग्रहेश्वर: ॥३४
त्रिलोकेशो लोकसाक्षी तमोरि: शाश्वत शुचि: ।
गभस्तिहस्तस्तीव्रांशुस्तरणि सुमहोरणि: ॥३५

दिवाकर भगवान के राहु के द्वारा ग्रस्त होने के अवसर पर सभी जल गंगा के समान होता और सभी द्विज ब्रह्मा के सदृश हुआ करते हैं तथा सभी कुछ दान में दी हुई वस्तु सुवर्ण के ही तुल्य होती है। दान दिया हुआ, जप किया हुआ, हवन स्नान और कुछ भी सत् अनुष्ठान होता है एवं श्राद्ध-आदि सभी सूर्य के ग्रहण में समय में बध्न सन्निधि का हेतु हुआ करता है। अर्थात् यह सभी ब्रघ्न के समीप में पहुँचाने वाला होता है। रविवार के दिन में संक्रमण हो अथवा ग्रहण उस समय में जो पुन्य का अर्चन होता है वह यहाँ पर अक्षय होकर प्राप्त किया जाता है। षष्ठी या सप्तमी तिथि में रविवार हो तो उस समय में जो भी कुछ सुकृत का अर्चन किया गया है वह वहाँ पर भोगा जाया करता है।२८।३१। अव सत्तर भगवान भास्कर नामों का उल्लेख किया जाता है हंस,भानु, सहस्रांशु तपन, तापन, रवि, विकर्तन, विवस्वान, विश्वकर्मा, विश्वावसु, विश्वरूप, विश्वकर्त्ता, मार्त्तंड, मिहिर, अशमान्, आदित्य, उष्णगु,सूर्य, अर्यमा, ब्रघ्न, दिवाकर, द्वादशात्मा, सप्तहय भास्कर, अहस्कर, खग,सूर, प्रभाकर, श्रीमान् लोक चक्षु, ग्रहेश्वर, त्रिलोकेश, लोकसाक्षी, तमोऽरि, शाश्वत: शुचि, समस्ति, हस्त, तीव्राश, तरणि, सुमहोरणि ।३२।३५।

द्यु मणिहरिदश्वोर्कोभानुमान्भयनाशन: ।
छन्दोश्वोवेदवेद्मश्चभास्वान्पूषा वृषाकपि: ॥३६
एकचक्ररथो मित्रो मन्देहारिस्तमिस्रहा ।
दैत्यहा पापहर्ता च धर्मो धर्म प्रकाशक: ॥३७
हेलिकश्चि त्रभानुश्चकविघ्नस्तार्क्ष्य वाहन: ।
दिक्पति: पद्मिनीनाथ: कुशेशयकरोहरि: ॥३८
धर्मराशिमहु निरीक्ष्यश्चण्डांशु: कश्यपात्मज: ।
एभि: सप्ततिसंख्याकै: तुण्यै: सूर्यस्य नामभि: ॥३९

प्रणवादिचतुर्थ्यन्तैर्नमस्कारसमन्वितैः।
प्रत्येकमुच्चरेन्नाम दृष्ट्वा दिवाकरम् ॥४०
विगृह्यपाणियुग्मेन ताम्रपात्रं सुनिर्मलम्।
जानुभ्यामवनीं गत्वा परिपूर्य जलेन च ॥४१
करवीरादिकुसुमै रक्तचन्दनामिश्रितैः।
दुर्वांकुरैचक्षतैश्चनिक्षिपतैः पात्रमध्यतः ॥४२
दद्यादर्घ्यं मनध्याय सवित्रेध्यानपूर्वकम्।
उपमौलि समानीय तत्पात्रं नान्यदृङ्मनाः ॥४३
प्रतिमन्त्रं नमस्कुर्यादुदयात्तमये रविम्।
अनया नाम सप्तत्या महामन्त्ररहस्यया ॥४४

द्युमणि, हरिदश्वायकं भानुमान्, भयनाशयन, छन्दोऽश्व, वेदवेद्य, भास्वान्, पूषा, वृषाकपि, एकचक्र रथ, मित्र, मन्देहारि, तमिखहा, दैत्यहा, पापहर्ता, धर्म, धर्म प्रकाशक, हेलिका, चित्रभानु, कलिघ्न, तार्क्ष्य वाहन, दिक्पति, पद्मिनीनाथ, कुशेशयकर, हरि, धर्मराशि, दुर्निरीक्ष्य, चण्डाशु, कश्यपात्मज, ये सत्तर संख्या वाले परम पुन्यमय भगवान् सूर्य के नाम हैं। इसमें प्रत्येक नाम के पहले प्रणव लगाकर चतुर्थी विभक्ति सूर्य के सभी नामों के नागे जोड़कर 'नमः' इस नमस्कार वाचक शब्द को जोड़ देवे। तथा 'ॐ सूर्याय नमः'। इसी भाँति उपरि कथित प्रत्येक नाम को उच्चरित करते हुये दिवाकर देव का बारम्बार दर्शन करे। सुन्दर एवं निर्मल जल से युक्त ताम्र पात्र को दोनों हाथों में ग्रहण करे और दोनों घुटनों से भूमि में जल से परिपूरित करे। करवीर आदि के पुष्पों से मिश्रित, रक्त चन्दन से मिश्रित, दुर्वांकुर, और अक्षत निक्षिप्त किये हो ऐसे उस पात्र के मध्य से अनर्घ्य सविता देव के लिए ध्यान पूर्वक अर्घ्य देना चाहिए। मस्तक के समीप पर्यंत उस पात्र को लेकर ही अन्य ओर दृष्टि तथा मन को न ले जाकर अर्घ्य देना चाहिये।३६।४४।

एवं कुर्वन्नरो जाते न दरिद्रो न दुःखभाक्।
व्याधिभिर्मुच्यतेघोरैरपिजन्मान्तराजितैः ॥४५

बिनौषधैर्विना वैद्यैर्विन पथ्यपपिग्रहैः ।
कालेन निर्धनं प्राप्तः सूर्यलोके महीयते ॥४६
इत्येकदेशः कथितो भानुलोकस्य सत्तम् ।
महातेजो निधेरस्य को विशेषमवेत्यह ॥४७

इसी रीति से प्रत्येक उपर्युक्त मन्त्र के द्वारा उदय और अस्त के समय में रविदेव को नमस्कार करना चाहिए। यह सूर्यदेव के शुभनामों की सप्तति है इससे जो कि महामन्त्र के रहस्य से समन्वित है मनुष्य को प्रतिदिन ही नमस्कार करना चाहिये। ऐसा करने वाला मनुष्य कभी दरिद्री और दु;खों के भोगने वाला नहीं हुआ करता है। जन्मान्तरों की अर्जित व्याधियों से भी वह मुक्त हो जाया करता है। इन व्याधियों से छुटकारा पाने के लिये किसी ओषधि, वैद्य तथा पथ्यपरिग्रह आदि की आवश्यकता ही नहीं हुआ करती है। जब उसका अन्त समय आता है तो मृत्यु प्राप्त करके वह सूर्यलोक में ही प्रतिष्ठित हुआ करता है। हे सत्तम ! भानु लोक का यह एक देश तुम्हारे सामने वर्णित कर दिया है। वह महातेज का निधि है। इसकी क्या विशेषता जानते हो ।४५।४७।

४६—मणि कर्णिकाख्यान

प्रसन्नोऽसियदिस्कन्दः ! मयिप्रीतिरनुत्तमा च ।
तत्समाचक्ष्वभगवश्चिरयन्मेहृदिस्थितम् ॥१
अविमुक्तभिदंशेत्र कदारभ्य भुवस्तले ।
परां प्रथितिमापन्न मोक्षदंचाभवत्कथम् ॥२
कथमेषा त्रिलोकीड्या गीयते मणिकर्णिका ।
ततोऽऽसीत्किम्पुरा स्वामिन्यदा नाऽसरनिम्नगा ॥३
वाराणसीतिकाशीति रुद्रावासइति प्रभो !
अवाप नामधेयानि कथमेतानि सा पुरी ॥४
महाश्मशान इतिचकथं ख्यातशिखिध्वज !
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं सन्देहऽपनोदय ॥५

प्रश्नभारोयमतुलस्त्वया यः समुदाहृतः ।
कुम्भयोनेऽमुमेवार्थप्राक्षीदम्बिकाहरम् ॥६
यथा च देवदेवेन सवज्ञेन निवेदितम् ।
जगन्मातुः पुरस्ताच्च तथैव कथयामि ते ॥७

महर्षि प्रवर श्री अगस्त्य जी ने कहा—हे स्कन्द देव ! आप यदि मुझ पर परम प्रसन्न हैं और मुझमें आपकी उत्तम प्रीति विद्यमान है तो हे भगवन् ! मेरे हृदय में बहुत समय से स्थित उसको ही कहिये कि यह अविमुक्त क्षेत्र इस भूमि के तन में कब लेकर आरम्भ हुआ है और यहाँ पर परम प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ है तथा यह मोक्ष प्रदान करने वाला कैसे हो गया है ? इसमें यह त्रिलोकी की स्तवन करने के योग्य मणि-कर्णिका कैसे गाई जाती है ? क्या पहिले भी वहाँ पर जब कि यह अमर नदी (गंगा) नहीं थी, यह विद्यमान थी ? हे स्वामिन् ! हे विभो ! वाराणसी काशी, और रुद्रवास ये नाम इस महापुरी ने कैसे प्राप्त किये थे ? आनन्द कानन इसके अनन्तर रम्य अविमुक्त और महा श्मशान ये सब नाम भी हे शिखिध्वज ! किस प्रकार से भूमण्डल में विख्यात हुये हैं—यह सभी मैं श्रवण करने की इच्छा रखता हूँ । आप मेरे सन्देह का अपमोदन निवारण करिये । श्री स्कन्द देव ने कहा—आपने यह भारी प्रश्नों का समुदाय कर डाला है । हे कुम्भयोने ! अम्बिका माता ने भगवान श्री शम्भु से भी यही प्रश्न पूछा था । देवों के देव सर्वज्ञ प्रभु ने जिस प्रकार से निवेदित किया था उनने जगत् की माता के समक्ष इसका उत्तर दिया था ठीक वैसा ही उत्तर मैं भी आप को बतलाता हूँ ।१।७।

महाप्रलयकाले च नष्टे स्थावरजंगमे ।
आसीत्तमोमयं सर्वमनर्कग्रहतारकम् ॥८
अचन्द्रमनहोरात्रमनग्न्तनिलवूतलम् ।
अप्रधानं वियच्छू न्यमन्यतेजीविवर्धितम् ॥९
दृष्ट्रत्वादिविहीनञ्च शब्दस्पर्शसमुज्जितम् ।
व्यपेतगन्धरूपंच रसत्यक्तमदिङ मुखम् ॥१०

इत्थ सत्यन्धतमसि सूचीभेद्ये निरन्तरे।
तत्सद्ब्रह्मे ति यच्छ्रु त्यासदैक प्रतिपद्यते ॥११
अमनोगोचरोवाचां विषवोन कथंचन।
अनामरूपवर्णञ्च नस्थूलं नैव तत्कृशम् ॥१२
अह्रस्वदीर्घमलघुगुरुत्वपरिर्वाजितम्।
न यत्रोपचय: कश्चितथा चापकेयोपिच ॥१३
अभिधत्त सचकित यदस्तीति श्रु ति: पुन:।
सत्य ज्ञानमनन्तञ्च यदानन्दं पर मह: ॥१४

जिस समय में महा प्रलय का काल उपस्थित हो गया था और यह स्थावर तथा जगम जगत् सभी नष्ट हो गया था उस समय में यहाँ सर्वत्र अन्धकारमय ही था। न तो सूर्य था और न ग्रह तारकों का ही मण्डल विद्यमान रहा था। चन्द्र, अग्नि, अद्बिल, अनल और अहोरात्रि कुछ भी नहीं था। बिना प्रधान वाला अन्य तेज से विवर्धित यह शून्य नियत था। इसके दृष्टा से भी यह विहीन था एवं शब्द स्पर्श से समुज्जित था। गध रूप, रस, दिशा इन सबसे रहित था। इस प्रकार के सूचीभेद्य अर्थात् अत्यन्त गहरे निरन्तर रहने वाले सत्यबन्ध तम से वह एक सद् ब्रह्म था जिसका श्रु ति के द्वारा प्रतिपादन किया जाता है। वह मद, वाणी का किसी भी प्रकार से गोचर विषय नहीं था। उसका कुछ भी नाम, रूप और वर्ण नहीं था। वह न तो स्थूल ही था और न कृश था। वह ह्रस्व दीर्घ, लघु, गुरु सबसे वर्जित था। न तो जिससें कुछ भी उपचय था और न कोई भी अपउचय ही था। श्रु ति बहुत ही चकित होकर यही कहती थी कि कुछ है जो मत्य स्वरूप, अनन्त, ज्ञानरूप, परम आनन्द एक रूप तेज है।८।१४।

अप्रमेय नाधारमविकारमनाकृति।
निर्गु णं योगिगभ्यच्च सर्वव्याप्येककारणम् ॥१५
निर्विकल्प निरारभं नियांयं निरुपद्रवम्।
यस्येत्थं संविकल्पयन्ते संज्ञा: संज्ञोदितस्यवै ॥१६

तस्यैकलस्य चरतोद्वितीयेच्छाभवत्किल।
अमुर्त्तोनस्वमूर्त्तिश्च तेनाकल्पिस्वलीलया ॥१७
सर्वेश्वर्यगुणोपेतासर्वज्ञानमयो शुभा।
सर्वगा सर्वरूपा च सर्वदृक्सर्व कारिणी ॥१८
सर्वैकवन्द्या सर्वाद्या सर्वदा सर्वसङ्कृतिः।
परिकल्प येति तां मूर्तिमीश्वरी शुद्धरूपिणीम् ॥१९
अन्तर्दधे पराख्यं यद् ब्रह्म सर्वगभव्ययम् ॥२०

अधिकार, बिना आकृति वाला, निर्गुण, उपद्रवों से हीन, योगियों के द्वारा ही जानने के योग्य, सर्व व्याप्य, एक मात्र कारण रूप, निर्विकल्प निरारम्भ, माया से शून्य ऐसा ही वह है जिसके विषय में इसी प्रकार से अनेक विकल्प होते हैं ये ही उसकी संज्ञोदित की सँज्ञायें हैं। इसी भाँति एक कल उसके संचारण करते हुए उसी में एक स्वयं ही दूसरी इच्छा समुत्पन्न हुई थी और उस अमूर्त्त ने अपनी ही एकमूर्त्ति अपनी ही लीला से कल्पित की थी जो सब ऐश्वर्य और समय गुणों से समुपेत थी तप सर्व ज्ञानी शुभा, सर्वत्र गमन करने वाली, सर्वदृक् और सब कुछ करने वाली थी। वह सभी के द्वारा वन्द्यमाना, सबकी आद्या और सर्वदा सर्व संस्कृति रूपा थी। ऐसी उस शुद्ध रूप वाली ईश्वरी उस मूर्ति की कल्पना करके वह सर्वग अव्यय ब्रह्मा जो पराख्य है अन्तर्हित हो गये थे।१५।२०।

अमूर्त्तं यत्पराख्यं वैत्तस्यमूर्त्तिरहं प्रिये!
अर्वाचीनपराचीना ईश्वर मां जगुर्बुधाः ॥२१
ततस्तदेकलेनापि स्वैर विहरतामया।
स्वविग्रहात्स्वयं सृष्टास्वशरीरानपायिनी ॥२२
प्रधानं प्रकृतित्वाञ्च मायांगुणवतींपराम्।
बुद्धितत्वस्यजननीमाहुविकृतिवजिताम् ॥२३
युगपच्च त्वयाशक्त्यासाककालस्वरूपिणा।
मयाऽद्यरुषेणैतत्क्षेत्रंचापिविनिर्भितम् ॥२४

साशक्तिः प्रकृतिः प्रोक्तासपुमानीश्वरः परः ।
ताभ्योचरममाणः भ्यांतस्मिन्क्षेत्रेघटोद्भ ॥२५
परमानन्दरूपाभ्यां परमानन्दरूपिणी ।
पंचक्रोशपरीमाणे स्वपाततलन्निर्मिते ॥२६
मुने ! प्रलयकालेऽपि न तत्क्षेत्रंकदाचन ।
विमुक्तं हि शिवाध्या यदविमुक्ततंततोविदु ॥२७
न यदा भूमिवलयं न यदाऽपा समुद्भव !
तदा विहुतुं मीशेन क्षेत्रमेतद्विनिर्मितम् ॥२८

हे प्रिये ! जो पराख्य इसका अमूर्त्त रूप था उसकी मूर्ति ही मैं हूँ अर्वाचीन और पराचीन बुधगण मुझको ही ईश्वर कहकर गान किया करते हैं। इसके उपरान्त एक कल और स्वतन्त्र रूप से विहार करते हुये मैंने अपने ही विग्रह से अपने ही शरीर वाली, अनपायनी प्रधान प्रकृति आपकी जो माया और परा गुणवती है सृजन किया था। आपको बुद्धि तत्व की जननी एवं विकृति से रहित करते हैं। एक साथ शक्तिरूपिणी आपके साथ काल रूपी आद्य पुरुष मैने पापों से रहित वह क्षेत्र विशेष रूप से निर्मित किया है।२१।२४। भगवान स्कन्द देव ने कहा है—वही शक्ति प्रकृति कही गयी है और जो पुरुष पर ईश्वर कहे गये हैं। हे घटोद्भव उन दोनों के उस क्षेत्र में संचरण करते हुए जो कि परम आनन्द के स्वरूप वाले हैं उन परमानन्द रूप वाले पाँच कोस के परिणाम से युक्त अपने ही पाद ताल के द्वारा निर्मित वह क्षेत्र है। हे मुने ! वह क्षेत्र में प्रलय काल में भी जब कि तभी का विलय हो जाया करता है शिव और शिवा से विमुक्त नहीं हुआ करता है। अतएव यह 'अविमुक्त' इस नाम से प्रख्यात हो गया है। हे जल से समुत्पन्न होने वाले ! जिस समय में वह भूमि मण्डल भी नहीं था उसी समय में ईश्वर ने विहार करने के लिये इस क्षेत्र का निर्वाण किया है।२५।२८।

इदं रहस्य क्षेत्रस्य वेदकोऽपि न कुम्भज ।
नास्तिकाय न वक्तव्वं तदाचिच्चर्मचक्षुषे ॥२६

श्रद्धालये विनीताय त्रिकालज्ञान चक्षुषे ।
शिवभक्तायशान्ताय वक्तव्यंचमुमुक्षवे ॥३०
अविमुक्तं तदारभ्य क्षेत्रमेतदुदीयंते ।
पर्यंकसूतं शिवयोनिरन्तरसुखास्पदम् ॥३१
अभाव: कल्पयते मूढ़ैर्यदा च शिवयोस्तयो: ।
क्षेत्रस्यास्य तदाभाव: कल्पयो निर्वाणकारिण: ॥३२
अनाराध्यमहेशानमनवाप्यचकाशिकाम् ।
योगाद्युपायविज्ञोऽपिननिर्वाणमवाप्नुयात् ॥३३
अस्यानन्दवनं नाम पुराऽकारिपिनाकिना ।
क्षेत्रस्यानन्दहेतुत्वादविमुक्तमनन्तनम् ॥३४
आनन्दकन्दबीजानामकुरणि यतस्त: ।
ज्ञेयानि सर्वलिङ्गानि तस्मिन्नानन्दकानने ॥३५
अविमुक्तमिति ख्यातमासीदित्यं घटोद्भव !
तथा नाख्यास्यथ मुने ! वथाऽऽसोन्मणिर्कणिका ॥३६

हे कुम्भज ! इस क्षेत्र के रहस्य को कोई भी नहीं जानता है । जो चर्म चक्षु वाला नास्तिक हो उसके आगे इस परम गोपनीय रहस्य को कभी नहीं कहना चाहिये । जो श्रद्धालु हो, परम विनीत हो त्रिकाल के ज्ञान की चक्षु वाला हो, शिव के परम भक्त, शान्त और जो मुक्ति प्राप्त करने का इच्छुक हो उसको यह कहना चाहिये । तभी से आरम्भ करके यह क्षेत्र अविमुक्त इस नाम से कहा जाया करता है । यह शिव और शिवा इन दोनों का पर्यंक के समान ही है और निरन्तर सुख का अस्पद होता है ।२६।३१। जिस समय में मूढ़ों के द्वारा उन दोनों शिव और शिवा का अभाव कल्पित किया जाता है उसी समय में निर्वाण देने वाले इन क्षेत्र का अभाव कल्पना करने के योग्य होता है ।३२। महेश्वर प्रभु की आराधना न करके और काशी पुरी न पहुंच कर जो उपायों का विज्ञ भी योग से ही निर्वाण पद को प्राप्त नहीं किया करता है ।३३। पिनाकी भगवान ने ही पहिले इसका आनन्दवन यह नाम रक्खा था, क्योंकि यह क्षेत्र आनन्द का हेतु होता था । इसके अनन्तर

इसका नाम अविमुक्त रखा गया था। जहाँ-तहाँ पर आनन्द कन्द बीजी के अंकुर वहाँ पर जानने चाहिये। उस आनन्द कानन में सभी लिंग जानने के योग्य है। हे घटोद्भव ! इस प्रकार से यह अविमुक्त इस नाम से विख्यात हुआ था। हे मुने ! और मणिकर्णिका जिस तरह से हुआ था उसको भी मैं कहता हूँ।३४।३६।

प्रापानन्दवने तत्र शिवयोरममाणयोः।
इच्छेत्यभूत्कलशज ! सृज्यः कोप्यपरः किल ॥३७
यस्मिन्नयस्ते महाभारे आवां स्वः स्वैरचारिणौ।
निर्वाणश्रणन कुर्वः केवल काशिशायिनाम् ॥३८
स एव सवृणोप्यन्ते सर्वैश्वर्यनिधिः सच ॥३९
चेतः समुद्रमाकुंच्यचिन्ताकल्लोलदोलितम्।
सत्वरत्नंतमोग्राहजरजोविद्रुमवल्लितत् ॥४०
यस्य प्रसादात्तिष्ठावः सुखमानन्दकानने।
परिक्षिप्तमनोवृत्तौ क्वहिचिन्तासुरे सुखम् ॥४१
संव्रधार्येतिस विभुः सर्वतश्चित्स्वरूपया।
तया सहजगद्धात्र्याजगद्धद्धाऽथधूर्जटिः ॥४२
सव्ये व्यापारयांचक्रे दृशमगे सुधामुचम्।
ततः पुमानाविरासीदेकस्त्रैकस्थैलोक्यसुन्दरः ॥४३

हे कलशज ! पहिले उस आनन्द वन में दोनों शिव और शिवा के रमण करते हुये उनको ऐसी इच्छा हुई थी कि कोई दूसरा स्थल भी सृजन करना ही चाहिए। जिस पर समस्त भार न्यस्त करके हम दोनों स्वच्छ चरण करने वाले हो जावे। हम केवल काशी में शयन करने वालों को ही निर्वाण का श्राणन किया करेंगे।३७।३८। वह ही सब कुछ किया करते हैं और वह ही परिपालन किया करते हैं वही अन्त समय में सबका संवरण किया करते हैं और वह सभी ऐश्वर्यों के विधि हैं। यह चित्त समुद्र के समान हैं जो कि चिन्ता रूपिणी तरंगों से दोलित रहा करता है। सत्वगुण की जो भावनायें उसमें विद्यमान है, वही रत्न

के समान है और तमोगुण का प्रभाव ही इसमें भयानक ग्राह है तथा रजोगुण के विन्दुओं से यह बल्लित रहा करता है। ऐसे इस चित्त के आकुञ्चित करके जिसके प्रसाद से उन आनन्द कानन में सुख पूर्वको स्थित रहें। चिन्ता से आतुर परिक्षिप्त मनोवृत्ति में सुख कहाँ हो सकता है ? उन प्रभु ने यह सम्प्रधारण करके जगत् के धाता विभु धूर्जटि भगवान् ने चित्स्वरूप वाली उस जगत की धात्री के साथ सभी ओर से अपने सत्य अङ्ग में सुधा का श्रवण करने वाले नेत्र व्यापार वाला किया था। इसके पश्चात् एक पुरुष जो त्रैलोक्य में परम सुन्दर था आविर्भूत अर्थात् प्रकट हुआ था।३९।४३।

शान्तः सत्वगुणोद्रिक्तो गाम्भीर्यजितसागरः।
तथा च क्षमयायुक्तो मुनेऽलब्धपमोऽभवत् ॥४४
इन्द्रनीशद्युतिः श्रीमान्पुंडरीकोत्तमेक्षणः।
सुवर्णाकृत्तिसुच्छायदुकूलयुगलावृतः ॥४५
लसत्प्रचण्डदोर्दण्डयुगलद्वयराजितः।
उल्लसत्परसामोदनाभा ह्रदकुशेशयः ॥४६
एकः सर्वगुणावसस्त्वेकः सर्वकलानिधिः।
एकः सर्वोत्तमोयस्मात्ततोयः पुरुषोत्तमः ॥४७
ततो महान्त तं बीक्ष्य महामहिमभूषणम्।
महादेव उवाचेद महाविष्णुर्भवाच्युत ॥४८
तव निःश्वसितं वेदोस्तेभ्यः सर्वमवैष्यसि।
वेददृष्टेन मार्गेण कुरु सर्वं यथोचितम् ॥४९
इत्युक्त्वर तं महेशानो बुद्धितत्वत्वस्वरूपिणम्।
शिवया सहितो रुद्रो विवेशाऽऽनन्दकाननम् ॥५०

हे मुनिवर ! वह पुरुष परम शान्त स्वरूप वाला सत्व गुण से उद्रिक्त—गम्भीरता से सागर को भी जीत लेने वाला तथा क्षमा से युक्त अलब्ध उपमा वाला था।४४। इन्द्रनील मणि के समान उसके अंग की द्युति थी, श्री से सम्पन्न पुण्डरीक के तुल्य उत्तम नेत्रों वाला—सुवर्ण के समान जाज्वल्यमान आकृति वाला सुन्दर कान्ति से सम्पन्न और

दो वस्त्रों से समावृत था। शोभा से युक्त एवं प्रचण्ड बाहुयुगल से वह विराजमान था। उल्लसित परम आमोद से नाभि रूपी हृदय में शयन करने वाला था। यह एक ही थे और समस्त सद्गुणों का आवास स्थान थे। यह एक समस्त कलाओं के लिये निधि थे। यह एक ही सबसे उत्तम थे। इसी कारण के यह पुरुषोत्तम हुए थे। इसके अनन्तर उनको महती महिमा से भूषित एवं महान् देखकर श्री महादेव बोले—हे अच्युत ! आप महाविष्णु हो जाइए। ये वेद सब आपका ही निश्वसित है। उनसे आप सभी कुछ जान लेंगे। वेद के द्वारा इष्ट जो मार्ग है उसी मार्ग के द्वारा आप सब यथोचित करिए। महेश्वर प्रभु बुद्धि तत्व के स्वरूपधारी उनके यह कहकर भगवान रुद्र फिर शिवा के साथ आनन्द कानन में प्रवेश कर गये थे।४५।५०।

ततः सभगवान्विष्णुर्मौलावाज्ञा निधायच।
क्षणंध्यानपरभूत्वा तपस्येवमनोदधौ ॥५१
खनित्वा तत्रचक्रेणरम्यां पुष्पकरिणींहरिः।
निजांगस्वेदसन्दोहसलिलैस्ताश्च पूरयत् ॥५२
समाः सहस्रं पंचाथत्तपः उग्रञ्चचार सः।
चक्रपुष्करिणीतीरे तत्र स्थाणु समाकृतिः ॥५३
ततः सभगबानीशो मृडान्याससहिमोमृडः।
दृष्ट्वाज्वलन्तंतपसा निश्चलमोलितेक्षणम् ॥५४
तमुवाच हृषीयशं मौलिमान्दोलयन्मुहुः।
अहो महत्वं तपसस्त्वहोधैर्यं स चेतसः ॥५५
अहो अनिन्धनो वह्निगुवलत्येष निरन्तरम्।
अलं तप्त्वा महाविष्णो ! वरं वरय सत्तम ॥५६
मृडस्याऽऽम्रेडितमिदं प्रत्यभिज्ञयाभाषितम्।
उन्मीलितदृगम्भोजः समुत्तस्थौ चतुर्भुजः ॥५७

इसके अनन्तर भगवान विष्णु ने अपने मस्तक पर प्रभु शिव की आज्ञा को धारण करके एक क्षण भर ध्यान में समास्थित होकर फिर

तपश्चर्या करने ही में अपना मन स्थिर किया था। श्री हरि ने अपने सुदर्शन चक्र के द्वारा वहाँ पर एक सुरम्य पुष्करिणी का खनन करके अपने अङ्गों से प्रवाहमान स्वेद ने उसको परिपूर्ण कर दिया था।५१।५२। फिर उन्होंने पचास सहस्र वर्षों तक अत्यन्त उग्र तपस्या की थी। उस चक्र पुष्करिणी के तट पर वहाँ पर एक सूखे हुये काष्ठ डंठल के समान आकृति वाले मृडानी के सहित भगवान ईश ने तप से जलते हुये—निश्चल नेत्र मूंदे हुए इनको देखा था। उस समय में बारम्बार मस्तक को हिलाते हुये भगवान शिव ने भगवान हृषीकेश से कहा—ओहो! इस तपश्चर्या की कैसी अद्भुत महिमा है तथा इस तपस्वी के चित्त का धैर्य भी कितना विलक्षण है। ओ हो? बड़े ही आश्चर्य की बात है कि बिना इंधन के यह अग्नि निरन्तर जलती रहा करती है। हे महा विष्णो! अब आप तप मत करिये। यह आपकी पर्याप्त तपस्या हो चुकी है। हे सत्तम! आप मुझसे वरदान माँग लींजिये।५३।५६। यह जो भगवान शम्भु का ही कथन है—ऐसा उस भाषित को पहिचान कर चतुर्भुज प्रभु अपने कमल के समान नेत्रों को खोलकर खड़े हो गये थे।५७।

अन्यत्रकृत्वापापनि बहूनिसुमहान्ति च।
अश्रद्दधानोऽतत्वज्ञो यद्यत्र च विपद्यते ॥५८
महिमन्यनभिज्ञोपिक्षेत्रस्यास्यजनार्दन।
तस्ययागदिरूद्दिष्टा तां निशामय सुव्रत ॥५९
पंचक्रोशीप्रविशतस्तस्यपातकसन्ततिः।
बहिरेव प्रतिष्ठेत नान्तर्निर्विशते क्वचित् ॥६०
भयाद् बहिः स्त्रितायांच तस्य पातकसन्ततौ।
त्रिशूलपाशपाणीनां गणानां सीमचारिणाम् ॥६१
प्रवेशमात्रादनघः सर्वैरेनोभिरूज्जितः।
संस्नायमणिकार्णिक्यांपुण्यंप्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥६२
सर्वतीर्थेषुसस्नानाद्यत्पुण्यंसमवाप्यते।
तत्पुण्य माप्यतेसम्यंड मणिकर्ण्येकमज्जनात् ॥६३

भगवान् शिव ने कहा—अन्य स्थल में बड़े से बड़े पापों को करके श्रद्धा भाव न रखने वाला और तत्त्वों का ज्ञान नहीं रखने वाला पुरुष यदि यहाँ पर विपन्न होता है। हे जनार्दन ! इस क्षेत्र को महिमा का अनभिज्ञ भी हो तो उसको जो गति अदृष्ट होती है हे सुव्रत ! उसको श्रवण करो। इस पंच कोनी में प्रवेश करते हुये ही उनके पातकों की सन्तति बाहिर ही खड़ी रहा करती है और कहीं पर भी वह उसके अन्दर प्रवेश नहीं किया करती है। भय से बाहिर ही स्थित हुई उसके पातकों की सन्तति रहती है। क्योंकि त्रिशूल हाथों में लेकर सीमा में संचरण करते रहने वाले गण वहा रहा करते हैं उन्हीं का भय पातकों को रहा करता है। मनुष्य के प्रवेश मात्र के करने ही से समस्त पापों से वह परित्यक्त हो जाया करता है और अनघ होकर फिर उस मणि-कर्णिका में भली भाँति स्नान करके अति उत्तम पुण्य को प्राप्त किया करता है। समस्त तीर्थों में स्नान करने से जो पुण्य फल प्राप्त किया जाता है उतना ही महान् पुण्य फल मणिकर्णिका में एक हो बार स्नान करने से प्राप्त किया जाता है।५८।६२।

विधिनातत्रसस्नायमृद्गोमयकुशादिभिः।
स्वशखावरुणैर्मन्त्रैर्द्वापामार्गर्भकः ॥६४
सर्वतीर्थेषुयत्पुण्यंसर्वदानेयुपत्फलम् ।
मणिकर्ण्याविधिस्नातः श्रद्धयातदवाप्नुयात् ॥६५
अश्रद्धयापियः स्नातोमणिकर्ण्याविधानतः।
सोऽपिपुण्यमवापनोतिस्वर्गप्राप्तिकरं परम् ॥६६
श्रद्धया विधिवत्स्नात्वा कृत्वा देवादितर्पणम् ।
तिलवर्हिर्यवैः सम्यक्सर्वयज्ञफलं लभेत् ॥६७
श्रद्भानोविधिन्नातः कृतसर्वोदकक्रियः ।
जपन्देवान्समभ्यर्च्य सर्वमन्त्रफलं लभेत् ॥६८
स्नात्वामौलेन विश्वेशदर्शनान्नियतेन्द्रियः ।
सर्वव्रतकृतं श्रेयो लभेदाचंथमः शिवे ॥६९

स्नाने देवार्चने जप्येमलमूत्रविसर्जने ।
मौनं कुर्यात्प्रयत्नेन दन्तधावनहोमयोः ॥७०

उस मणिकर्णिका में विधि पूर्वक भली भाँति स्नान करना चाहिये, मृत्तिका, गोमय, कुश आदि से तथा अपनी शाखा के वारुण मन्त्रों के द्वारा दूर्वा, अपामार्ग और डाभ से शास्त्रोक्त विधान के अनुसार ही वहाँ पर स्नान करे। अन्य समस्त तीर्थों में जो स्नानादि करने का पुण्य-फल होता है तथा सम्पूर्ण दानों में जो पुन्य होता है वही पुष्प मणिकर्णिका में विधिपूर्वक स्नान करने से और श्रद्धा के साथ स्नान करने से प्राप्त कर लिया जाता है। मणिकर्णिका में विना श्रद्धा की भावना के भी जो विधि के सहित स्नान कर लेता है वह भी पुन्य प्राप्त कर लिया करता है जोकि परम स्वर्गलोक प्राप्ति करने वाला होता है। श्रद्धा से विधिपूर्वक स्नान करके देवादि का तर्पण तिल, बर्हि और जौ से करे तो वह मनुष्य भली-भाँति सभी यज्ञों के करने का फल प्राप्त किया करता है। नियत इन्द्रियों वाला पुरुष मौन होकर स्नान करे और फिर श्री विश्वनाथ भगवान के दर्शन करे तो हे शिवे ! वह मौनी समस्त व्रतों के पुन्य एवं श्रेय को पा लेता है। श्रद्धा वाला पुरुप सविधि स्नान करके और सम्पूर्ण जल की क्रिया करके जाप करता हुआ देवों का अर्चन करे तो समस्त मन्त्रों के फल को पा लिया करता है। मौन रहने की बहुत बड़ी महिमा है। स्नान में, देवों के अर्चन में, जाप करने में, मलमूत्र के त्याग करने में तथा दाँतून करन में और होम करने के अनन्तर में प्रयत्नपूर्वक मौन रहने का ही अभ्यास रखना चाहिए ।६४।७०।

विश्वेश्वरं समभ्यर्च्य सूपचारैर्विधानतः ।
यावज्जीव शिवार्चायाः फलमापनोति वै सकृत् ॥७१
दत्वाऽल्पमपि देवेशि ! न्यानेनोपार्जितधनम् ।
अविमुक्तेसमक्षेत्रे न दरिद्रोभवेत्क्वचित् ॥७२
विविधधनमावर्ज्यंयोऽविमुक्ते न यच्छति ।
सम्प्रापयनिधनंमूढोऽन्यत्रशोचतिसर्वदा ॥७३

रम्याणि यानि रत्नानि गोगजाश्वाम्बराण्यपि ।
कृतानि तानि श्रेयोर्थमथिमुक्तनिवासिनाम् ॥७४
विश्वेशप्रींणनार्थायिधनमेववा ।
न्यायेनकाश्यांय: कुर्यात्सधन्य: सचधर्मवित ॥७५
योऽसौ विश्वेश्वरो देय: काशीपुर्यामुमे ! स्थित: ।
लिंगरूपधर: साक्षान्ममश्रेयास्पदं हितम् ॥७६

समस्त पूजनोपचारों के द्वारा श्रीविश्वेश्वर प्रभु का विधान के साथ समभ्यर्चन करना चाहिए। जब तक जीवित रहे तब तक एक बार के ही शिवार्चन का फल प्राप्त किया करता है।७१। हे देवेशि ! न्याय से उपार्जित धन का बहुत थोड़ा-सा भी भाग दान करके अविमुक्त क्षेत्र में फिर कभी वह मनुष्य दरिद्र नहीं हुआ करता है।७२। अनेक प्रकार के धन को प्राप्त करके भी जो मूढ़ इस अविमुक्त क्षेत्र में दान नहीं देता है वह मूढ़ मृत्यु प्राप्त करके फिर अन्यत्र सर्वदा ही शोच किया करता है। जो रम्य रत्न है तथा गौ, गज, अश्व और वस्त्र आदि हैं वे सब अविमुक्त में निवास करने वालों के श्रेय के लिये ही किये गये हैं। श्री विश्वनाथ भगवान् के प्रसन्न करने के ही लिये यह धन तथा निर्धन है। न्यायपूर्वक जो काशी में इनका उपयोग किया करता है वही पुरुष परम धन्य है और वह ही मनुष्य धर्म का ज्ञाता है। हे उमे ! जो वह विश्व नाथ देव काशीपुरी में लिग के स्वरूप को धारण करके स्थित है वह साक्षात् मेरा स्वरूप है और परमश्रेष्ठ के आस्पद होते हैं।७३।७६।

अविमुक्तं महत्क्षेत्रपञ्चक्रोशपरीमितम् ।
ज्योतिर्लिंग तदेकहिज्ञेयंविश्वेश्वराभिधम् ॥७७
एकदेशस्थितमपियथामार्तण्डमण्डलम् ।
दृश्यते सर्वग: सर्वै: काश्यांविश्वेश्वरस्तथा ॥७८
निष्प्रत्यूहेन योगेन नानाजन्मार्जितेन स ।
यत्फलं लभ्यतेऽन्यत्र तत्तकाश्यां त्यजतस्तनुम् ॥७९
तत्वा तपांसि सर्वाणि वाहुकालं जितेन्द्रिय: ।
यत्फलं लभ्यतेऽन्यत्र तत्काश्यामेकरात्रत: ॥८०

अक्षेत्रमहिमज्ञोऽपि श्रद्धाहीनोऽपि कालतः ।
काशीप्रवेशादनघोऽमृतत्वं लभते मृतः ॥८१
कृत्वाप्येनांसि चोग्राणि कालात्प्राप्याथ काशिकाम् ॥८१
त्यक्त्वा तनु प्रसादान्मे मामेव प्रतिपद्यते ॥८२
विना मम प्रसादं गौ कःकाशीप्रतिपद्यते ।
विना विघ्नविशालाक्षिदिनकृत्कइहोच्यते ॥८३
अप्राप्यकाशींकोदेवि ! निरन्तरसुखलभेत् ॥
प्रह्माद्याः प्राकृतैः पाशेयेतोवद्धानिरन्तरम् ॥८४

यह अविमुक्त परम महान् क्षेत्र है जो पाँच कोस के परिमाण में स्थित हैं और वह श्री विश्वनाथ नाम वाले प्रभु एक ही ज्योतिलिङ्ग जानने चाहिए। एक ही देश में स्थित जिस तरह से यह मार्तण्ड मण्डल सबके द्वारा सर्वत्र गमन करने वाला दिखलाई दिया करता है वैसे ही काशी में यह भगवान विश्वनाथ हैं। निर्विघ्न योग के द्वारा जो कि अनेक जन्मों में अर्जित किया गया है जो भी कुछ फल अन्यत्र प्राप्त होता है वह केवल काशीपुरी में निवास करके शरीर के त्यागने से ही मिल जाया करता है ।७७।७६। इन्द्रियों को जीत करके बहुत काल पर्यंत समस्त तपश्चर्याओं का तपन करके अन्य स्थल में मनुष्यों द्वारा जो पुण्य फल प्राप्त किया जाता है वह समस्त काशीपुर में एक रात्रि के ही निवास करने से प्राप्त हो जाया करता है । ८० । इस महाक्षेत्र की महिमा को न जानने वाला भी और श्रद्धा से रहित भी उस पुरुष काल से काशी में प्रवेश करने ही से निष्पाप हो जाया करता है और वहाँ पर मृत्यु प्राप्त करके अमृतत्व को प्राप्त कर लेता है।८१। महान् उग्र पापों को कर से भी कोई कालवश काशीपुरी को प्राप्त कर लेता है और वहीं पर शरीर का त्याग करता है तो वह मेरे प्रसाद से मुझको ही प्राप्त कर लिया करता है ।८२। बिना मेरी कृपा के कौन काशीपुरी को प्राप्त कर सकता है अर्थात् मेरे प्रसाद के हुये बिना कोई भी काशीपुरी को प्राप्त ही नहीं कर सकता है जिस तरह से हे विशालाक्षि ! यहाँ पर सूर्य के बिना दिनकृत् कौन कहा जाया करता है ? । ८३ । हे देवि !

काशी को प्राप्त न करके निरन्तर सुख कौन प्राप्त कर सकता है ? अर्थात् कोई भी नहीं करता है क्योंकि ब्रह्माद्य सभी प्राकृत पाशों के निरन्तर वद्ध हैं ।८४।

चतुर्विशतिभिः पाशैस्त्रिगुणैः क्रियया दृढैः ।
कण्ठे बद्धा विमुच्यन्ते कथ काशीं विना जना ॥८५
बहूपसर्गो योगोऽयं कृच्छ्र साध्यन्तपो ह्ियत् ।
योगाद् भ्रष्टास्तपाभ्रष्टो गर्भ लेशसंग्रहः पुनः ॥८६
कृत्वाऽपि काश्यां पापानि काश्यामेव म्रियेत चेत् ।
भूत्वा रुद्रपिशाचोऽपि पुनमुक्तिमवापस्यति ॥८७
काश्यां मृतानां जन्तूनादैवात्पापकृतमपि ।
पातोदन्नरकेतेषां तेषां शास्ताहमेवयत् ॥८८
कार्यं विज्ञाय सापायं स्मृत्वा गर्भस्य वेदनम् ।
त्यक्त्वा राज्यमपि प्राज्यं सेव्या काशी निरन्तरम् ॥८९
अन्तर्कितसमभ्येत्य यमदूता सुदारुणाः ।
बद्धवापाशैर्हंनिष्यन्तिक्षिप्रकाशीततः श्रयेत् ॥९०
न पापेभ्यो भयंयत्र नभययत्रवैं यमात् ।
न गर्भवासभीर्यत्र तां काशीं को न संश्रयेत् ॥९१
अद्यप्रातः परश्वोवामरणप्राप्यमेव च ।
यावत्काल विलम्बोऽस्तितावत्कांशींसमाश्रयेत् ॥९२
प्राप्ते तु मरणे पुंसां पुनर्जन्म पुनर्मृतिः ।
अपुनर्भवभूमि च तस्मात्काशी श्रयेद्बुधः ॥९३

चौबीस पाशों से जो कि त्रिगुणों की क्रिया से अत्यन्त दृढ़ हैं । सभी मनुष्य इससे कन्ठ में बद्ध रहा करते हैं ये काशी के बिना कैसे विमुक्त हो सकते हैं ? अर्थात् नहीं होते हैं ।८५। यह योग बहुत उपसर्गों वाला होता है अर्थात् इसमें अत्यधिक विघ्न बाधायें हुआ करती हैं और तपश्चर्या जो होती है वह बहुत कष्टों के द्वारा साध्य होती है, योग से भ्रष्ट हो जावे और तप से जो भ्रष्ट हो जाता है वह फिर गर्भ के क्लेशों का

सहन करने वाला बनता है अर्थात् उसका पुनर्जन्म होता है ।८६। काशी पुरी में रहकर भी पापों को करके भी जो काशीपुरी में ही अपने प्राणों का त्याग किया करता है वह रुद्रदेव का पिशाच होकर भी पुनः मुक्ति को प्राप्त किया करता है ।८७। काशीपुरी के मृत हुये जन्तुओं के यदि वे दैववश पाप करने वाले भी हों तो उनका पतन नरक में नहीं होता है क्योंकि उसका भी मैं ही होता हूँ। अपायों से युक्त इस शरीर को समझकर और गर्भपात वेदना का ज्ञान करके अर्थात् स्मरण करके परम विराट राज्य को भी त्याग करके निरन्तर काशीपुरी का ही सेवन करना चाहिए ।८८।८९। अलक्षित के समीप में आकर सुदारुण यमराम के दूत पाशों से बाँधकर हनन करेंगे। इसलिये बहुत शीघ्र ही काशीपुरी का समाश्रय ग्रहण करना चाहिये। काशी में मृत्यु प्राप्त हो जाने पर दुबारा न जन्म ही होता है और न मृत्यु ही होती हैं। जहाँ पर पापों से कोई भी भय नहीं होता है और न यमराज के द्वारा प्राप्त करने का ही फिर भय रहा करता है। वहाँ पर गर्भ वास का भी भय नहीं रहता है ऐसी उस काशी का कौन मूढ़ है जो आश्रय ग्रहण न करेगा। यह काशीपुरी तो अपुनर्भव की भूमि है। इसलिए बुद्ध पुरुष का कर्त्तव्य है कि इस काशीपुरी का सेवन करे ।९०।९३।

पुत्रक्षेत्रकलत्राख्यां-त्यक्त्वा मायां हि वैष्णवीम् ।
भवान्तरेऽनेकरूपाम्भवघ्नीं काशिकां श्रयेत् ॥९४
दूरं मे मरणं युवाहमधुना धार्य्यं न चित्तत्विति ।
श्रोतव्यो निभृतं कृतान्तमहिषग्रैवेघण्टारवः ।
नैकट्यात्प्रकटोत्द्रकटश्रमघटामप्राप्य हित्वा द्रुतं ।
जीर्णा पर्णकुटीं ततः पटुमतिर्गच्छेत्पुरी धूर्जटेः ॥९५
अगस्त्यस्य तुरः सूत ! कथयित्व कथामिमाम् ।
सर्वपापप्रशमनीं पुनः स्कन्दउवाचह ॥९६

पुत्र, क्षेत्र और कलत्र नाम वाली वैष्णवी माया का त्याग करके भवान्तर में अनेक रूप वाली और भव का नाश करने वाली काशीपुरी का सेवन करना चाहिए। भगवान स्कन्द ने कहा—मेरा मरण सभी

वहुत दूर है और मैं अभी युवा हूँ, ऐसा चित्त में कभी भी धारणा नहीं करना चाहिए चुप-चाप यमराज के वाहन भैंसा के गले में बँधे हुये घण्टा की ध्वनि सुननी चाहिये । निकटता में प्रकट उत्कट धरा को पाकर ही शीघ्र त्याग करके पटुमति वाले पुरुष की धुर्जटि भगवान की पुरी काशी में जीर्ण पर्णकुटी का ही निवास ग्रहण करना चाहिए। भगवान व्यासदेव ने कहा—हे सूत ! अगस्त्य के आगे इस कथा का जो समस्त पापों का प्रशमन करने वाली है यह कहकह फिर भगवान स्कन्द ने कहा था ।९४।९६।

५०—गङ्गामहिमा वर्णन एवं दशहरा स्तोत्र कथन

वाराणसीतिप्रथितं प्रथितं चानन्दकाननम् ।
तथा च कथयामीहदेवदेवेन भषितम् ॥१
निशामयमहावहो ! विष्णो त्रैलोक्यसुन्दर ! ।
प्राप्तं बाराणसीत्याख्यामविमुक्तं यथा तथा ॥२
निदग्धान्सागराञ्छ्रुत्वा कपिलक्रोधवह्निना ।
अश्वमेधाश्वयुक्तान्पूर्वजान् स्वान् भागीरथः ॥३
सूर्यबंशों महातेजा राजा परमधार्मिकः ।
आरिराधयिषुर्गङ्गा तपसे कृतनिश्चयः ॥४
हिमवन्तं नगश्रेष्ठममात्यन्यस्तराज्यधूः ।
जगाम यशसां राशिरुद्दिधधोषुः पितामहान् ॥५
ब्रह्मशापाग्निर्दग्धान्महादुर्गतिगानपि ।
विना त्रिमार्गगां विष्णो ! को जन्तुस्तिदिवं नयेत् ॥६

भगवान स्कन्द ने कहा—यह जिस प्रकार से आनन्द कानन है वैसे ही वाराणसी, इस नाम से भी प्रथित है और मैं उसी भाँति से देवों के देव के द्वारा भाषित को कहता हूँ। श्री ईश्वर ने कहा—हे महान् बाहुओं वाले ! हे विष्णो ! हे त्रैलोक्य में परम सुन्दर ! अब आप यह सुनाईये कि जैसे यह अविमुक्त क्षेत्र वाराणसी इस नाम का प्राप्त हुआ है, राजा भागीरथ ने कपिल मुनि के क्रोध की अग्नि से अश्वमेघ यज्ञ के अश्व

से समन्वित अपने पूर्वजों को सगर के पुत्रों को निर्दग्ध सुनकर यह सूर्य वंश में महान् तेजस्वी और परम धार्मिक राजा हुआ था। इसने गङ्गा की आराधना करने की इच्छा वाला होकर तप करने के लिए निश्चय किया था।१।४। इसने अपने मन्त्रियों पर उस समय राज्य का भार छोड़ कर फिर यह पर्वतों में परमश्रेष्ठ हिमाचल पर सुन्दर यशों का समुदाय स्वरूप राजा भागीरथ अपने पितामहों का उद्धार करने की इच्छा वाला होकर तप करने के लिए चला गया था। हे विष्णो! ब्रह्म शाप से भस्मसात् हुए महान् दुर्गति वाले उन सागर के सुतो को गंगा के बिना किसकी सामर्थ्य है जो स्वर्ग में पहुँचा सके? ।५।६।

ममैव सापरामूर्त्तिस्तोयरूपा शिवामिका।
ब्रह्माण्डानामनेकानामाधारः प्रकृतिः परा ॥७
शुद्धविद्यास्वरूपा व त्रिशक्तिः करुणात्मिका।
आनन्दामृतरूपा च शुद्ध धर्मस्वरूपिणी ॥८
यामेतां जगतां धात्रीं धारयामि स्वलीलया।
विश्वस्य रक्षणार्थाय परब्रह्म स्वरूपिणीम् ॥९
त्रैलोक्ये यानितीर्थाणि पुण्यक्षेत्राणि यानि च।
सर्वत्र सर्वे ये धर्माः सर्वे यज्ञाः समाक्षिणाः ॥१०
तपांसि विष्णो! सर्वाणि श्रु तिः सांगा चतुर्विधा।
अहं च त्वञ्च कश्चापि देवतानां गणाश्च ये ॥११
पुरुषार्थाश्च सर्वे वैशक्तयो विविधाश्च याः।
गङ्गायां सर्व एवैते सूक्ष्मरूपेण संस्थिताः ॥१२
सस्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वक्रतुषु दीक्षिमः।
चीर्णसर्वव्रतः सोऽपि यस्तु गंगा निषेवत्ते ॥१३
तपासि तेन तप्तानि सर्वदानप्रदः स च।
स प्राप्तयोगनियमो यस्तु गंगां निषेवते ॥१४

वह गङ्गा मेरी ही एक जल के स्वरूप वाली दूसरी मूर्ति है जो शिवात्मिका ही है। यह अनेकों ब्रह्माण्डों की आधार और परा प्रकृति है

यह शुद्ध विद्या के स्वरूप वाली, तीन शक्तियों से युक्त, करुणात्मिका, आनन्दामृत रूप वाली एवं शुद्ध धर्म स्वरूप वाली है। समस्त जगतों की धात्री को मैं अपनी लीला ही से धारण किया करता हूँ। इस पर-ब्रह्म के स्वरूप वाली को मैं विश्व की रक्षा करने के लिए धारण किया करता हूँ। इस त्रिलोकी में जो भी तीर्थ हैं तथा पुन्य के क्षेत्र, सर्वत्र सब जो धर्म हैं तथा दक्षिणा ने युक्त यज्ञ हैं और हे विष्णो . समस्त जो तप है तथा अंगों के सहित सब चारों प्रकार के वेद हैं, मैं और आप और कोई भी, देवताओं के गण जो हैं, समस्त पुरुषार्थ तथा विविध शक्तियाँ ये सभी इस गंगा में सूक्ष्म रूप से संस्थित रहा करते हैं। जो पुरुष श्री गंगादेवी का सेवन करता है, उसने सम्पूर्ण योग के नियमों को प्राप्त कर लिया है और उस सभी तपों का भी लाभ कर लिया तथा वह सभी दानों का प्रदाता हो गया है।७।१४।

सर्वे वर्णाश्रमेभ्यश्च वेदविद्भ्यश्च वै तथा।
शास्त्रार्थपारगेभ्यश्च गङ्गास्नायीं विशिष्यते ॥१५
मनोवाक्कायजैर्दोषैर्दुष्टो वहुविधैरपि।
वीक्ष्य गंगा भूवेत्पूतः पुरुषो नात्र संशयः ॥१६
कृते सर्वत्र तीर्थानि त्रेतायां पुष्परम्परम्।
द्वापरे तु कुरुक्षेत्रं कलौ गङ्गैव केवलम् ॥१७
पूर्व जन्मान्तर भ्यासवासनावशतो हरे !।
गंगातीरे निवासः स्यन्मदनुग्रहतः परात् ॥१८
ध्यानं कृते मोक्षहेतुस्त्रेतायां तच्चैवै तपः।
बापरे तद्द्वयं यज्ञाः कलौ गंगैव केवलम् ॥१९
यो देहपतनाद्यावद्गंगातीरं न मुञ्चति।
स हि वेदान्त विद्योगी ब्रह्मचर्य व्रतो सदा ॥२०
कलौ कलुषचित्तानां परद्रव्यरतात्मनाम्।
विधिहीनक्रियाणाञ्च गतिगङ्गा विनानहि ॥२१

समस्त वर्णों और सभी आश्रमों से तथा वेदों के वेताओं से और

शास्त्रों के पूर्ण पारगामी विद्वानों से भी गंगा में स्नान करने वाला पुरुष विशिष्ट हुआ करता है।१५। मन-वाणी और काया से समुत्पन्न दोषों से जो बहुत से प्रकार के होते हैं दुष्ट पुरुष भी गंगा का दर्शन प्राप्त करके ही पवित्र हो जाया करता है—ऐसा केवल गङ्गा के दर्शन मात्र का प्रभाव होता है—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है। कृतयुग में सर्वत्र तीर्थ है त्रेता युग में पुष्कर ही परम तीर्थ है। द्वापर युग में कुरुक्षेत्र सर्व शिरोमणि तीर्थ माना गया था और अब कलियुग में गङ्गा ही सर्वोपरि विराजमान प्रमुख तीर्थ हैं। हे हरे ! पूर्व जन्मों के अभ्यास से जो वासना है उसी के वश में यदि गङ्गा के तट पर निवास प्राप्त हो जावे तो यह मेरा ही पर अनुग्रह है। कृतयुग (सतयुग) में ध्यान की ही मुख्यता थी। त्रेता में तपश्चर्या प्रधान मानी गई थी। द्वापर में ये दोनों ही तथा यज्ञों का यजन प्रधान माने गये थे और अब इस घोर कलियुग में उद्धार के लिये गङ्गा ही सब कुछ है। जो मनुष्य देह के पतन होने के समय तक गङ्गा के तट का त्याग नहीं करता है वह वेदान्त का ज्ञाता योगी है और सदा ब्रह्मचर्य के व्रत का पालन करने वाला है। कलियुग में कलुषित चित्त वाले तथा पराये धन के पाने में रति रखने वाले विधि तथा क्रिया से सर्वथा ही न पुरुषों की केवल एक गंगा ही उद्धार करने वाली होती है। यह न हो तो ऐसे पुरुषों का कल्याण ही नहीं हो सकता है।१६।२१।

अलक्ष्मीः कालकर्णी च दुःस्वप्नो दुर्विचिन्तितम्।
गङ्गागङ्गेतिजपनात्तानि नोपविशन्ति हि ॥२२
गङ्गा हि सर्वभूतानामिहामुत्र फलप्रदा।
भावानुरूपतो विष्णो सदा सर्वजगद्धिता ॥२३
यज्ञदानतपोयोग जपाः सनियमायमाः।
गङ्गासेवासहस्रांशं न लभन्ते कलौ हरे ! ॥२४
किष्टांगेन योगेन किं तपोभिः किमध्वरैः।
बास एव हि गंगायां ब्रह्मज्ञानस्य कारणम् ॥२५

अपि दूरस्थितस्यापि गंगामहात्म्य वेदिनः ।
अयोग्यस्यापि गोविन्द ! भक्त्या गंगा प्रसीदति ॥२६
श्रद्धाधर्मः परः सूक्ष्मः श्रद्धाज्ञानम्परंतपः ।
श्रद्धास्वर्गश्च मोक्षश्च श्रद्धया सा प्रसीदति ॥२७
अज्ञानरागलोभाद्यैः पुंसा सम्मूढचेतसाम् ।
श्रद्धा न जायते धर्मे गंगायां च विशेषतः ॥२८

अलक्ष्मी---कालकर्णी---दुःस्वप्न---दुर्विचिन्तन अर्थात् बुरे विचार 'गंगा-गंगा' इसके नामों का इस प्रकार से जाप करने से ये सब समीप में ही नहीं ठहरा करते हैं। अर्थात् इनका कोई भी बुरा प्रभाव नहीं होता है। यह गंगा समस्त प्राणियों को इस लोक में और परलोक में दोनों ही जगह पर फल प्रदान करने वाली होती है। हे विष्णो ! भावों के अनुसार यह सदा ही सम्पूर्ण जगत् के हितों के करने वाली है। हे हरे ! यज्ञ—दान—तप—योग—जप नियम और यम ये गंगा के सेवन से सहस्र अंश के बराबर भी इस कलियुग में नहीं होता है। इस आठों अङ्गों वाले योग के साधन से क्या लाभ है ? अत्युग तपश्चर्याओं के करने से भी क्या प्रयोजन है तथा यज्ञों के यजन से भी क्या सिद्धि होती है। इन सबके द्वारा ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हो जाती है जो कि आत्मोद्धार का हेतु है सो वह ब्रह्मज्ञान तो गंगा तट पर निवास करने से ही हो जाया करता है, क्योंकि यह निवास ही उसका कारण होता है। हे गोविन्द ! गंगा नदी से बहुत दूर में भी स्थित हो तथा गंगा के माहात्म्य का ज्ञाता हो और सभी प्रकार से योग्यता से हीन भी हो तो भी गंगा अपनी भक्ति से ही प्रसन्न हो जाया करती है और उस भक्त का कल्याण किया करती है। यह श्रद्धा का भाव ही सर्वोपरि धर्म होता है, यह परम सूक्ष्म है। श्रद्धा ही ज्ञान है और परम तप है। श्रद्धा का बड़ा महत्व है। यह स्वर्ग है और मोक्ष भी है। इसी श्रद्धा से वह गंगा प्रसन्न हो जाती है। अज्ञान (ज्ञान का सर्वथा न होना)—राग अर्थात् साँसारिक जड़ चेतन वस्तुओं में कम व पूर्ण आसक्ति—लोभ आदि से सम्मूढ़ चित्त

वाले पुरुषों की श्रद्धा कभी भी धर्म में नहीं हुआ करती है तथा गंगा में तो विशेष रूप से नहीं हुआ करती है ।२२।२८।

बहिः स्थित जलं यद्वान्नारकेलान्तरे स्थितम् ।
तया ब्रह्माण्डबाह्यस्थ परब्राह्माम्बु जाह्नवी ॥२९
गंगायालाभात्परो लाभः क्वचिदन्योन विद्यते ।
तस्माद्गंगामुपासीत गंगैव परमः पुमान् ॥३०
शक्तस्य पण्तिस्यापि मुनिनो दानशीलिनः ।
गंगास्नानविहीनस्य हरे ! जन्म निरर्थकम् ॥३१
वृथा कुलं वृथा विद्या वृथा यज्ञावृथा तपः ।
वृथा दानानि तस्येहं कलौ गंगा न यो भजेत् ॥३२
गुथवत्पात्रपूजायांन स्याद्वै तादृशं फलम् ।
यथा गंगाजलस्नान पूजने विधिना फलम् ॥३३
ममतेजोग्निगर्भे य मम वीर्यांति संवृता ।
दाहिका सर्वदोषाणां सर्वपापविनाशिनी ॥३४
स्मरणादेव गंगायाः पापसंघति पञ्जरम् ।
शतधा भेदमायाति गिरिर्वज्रहतो यथा ॥३५

वाहिर स्थित यह गंगा का जल उसी भाँति है जिस तरह नारियल के अन्दर जल रहा करता है। उसी प्रकार इस ब्रह्माण्ड के बाहिर स्थित यह परब्रह्म रूपी जल वाली गंगा है। गंगा की प्राप्ति के समान अन्य कोई भी परम लाभ संसार में नहीं है। इसलिये गङ्गा की उपासना अवश्य ही करनी चाहिये। यह गङ्गा ही साक्षात् परम पुरुष है। समुच्चपदाधिरूढ़ इन्द्र ही क्यों न हो—चाहे महान् पण्डित हो—अनेक सद्गुणों से युक्त भी हो और देने के स्वभाव वाला भी हो यदि ऐसा भी कोई गङ्गा के स्नान से हीन है तो उसका जन्म ही निरर्थक हो जाता है। जो इस कलियुग में गङ्गा का सेवन नहीं किया करता है उसको कुलविद्या—यज्ञ—तप और दान सभी वृथा है। किसी भी गुण गण सम्पन्न मात्रा की पूजा में भी उस प्रकार का फल नहीं होता जैसा कि विधि के सहित गङ्गा के जल में स्नान और उसके पूजन में फल प्राप्त

हुआ करता है। यह गंगा मेरे तेज की अग्नि का गर्भरूप है और यह मेरे ही वीर्य से संवृत है। यह सभी दोषों के दाह करने वाली और समस्त पापों का विनाश कर देने वाली है। केवल गंगा का स्मरण ही करने से पापों के संघात का पञ्जर सैकड़ों टुकड़े होकर भिन्न हो जाया करता है जिस तरह से वज्रपात के होने से पर्वत टुकड़े-टुकड़े हो जाया करते हैं।२६।३५।

गङ्गा गच्छति यस्त्वेको यस्तु भक्त्याऽनुमोदयेत् ।
तयोस्तुल्य फलं प्राहुर्भक्तिरेवात्र कारणम् ॥३६
गच्छस्तिष्ठञ्जपन्ध्यायन् भुञ्जञ्जाग्रत् स्वपन्वदन् ।
यः स्मरेत्सततं गङ्गा सहि मुच्येत बन्धनात् ॥३७
पितॄनुद्दिश्य यो भक्त्या पायसं मधुसतुतम् ।
गुडसर्पिस्तिलैः सार्धं गङ्गाम्भसि विनिक्षपेत् ॥३८
तृप्ता भवन्ति पितरस्तस्य वर्षशत हरेः ।
यच्छति विविधान्कामान्परितुष्टाः पितामहाः ॥३६
लिंगे सम्पूजिते सर्वमर्चितस्याज्जगद्यथा ।
गङ्गास्नानेन लभते सर्वतीर्थफल तथा ॥४०
गङ्गायां तु नरः स्नात्वायोलिंगं नित्यमर्चति ।
एकेन जन्मामुक्ति परां प्राप्नोति स ध्रुवम् ॥४१
अग्निहोत्रञ्च यज्ञाश्च व्रतदानं तपासि च ।
गङ्गायां लिंगपूजायाः कोठ्यंशेनापिनोसमा ॥४२
गङ्गा गन्तुं विनिश्चित्य कृत्या श्राद्धादिक गृहे ।
स्थितस्य सक्संकल्पात्तस्य नन्दति पूर्वजाः ॥४३

एक नर गंगा नदी में स्नान करने जाया करता है और एक भक्ति की भावना से उनका अनुमोदन करता है, उन दोनों का समान ही पुण्य फल हुआ करता है क्योंकि यहाँ पर भक्ति ही एक मूख्य कारण होता है। गमन करते हुए—स्थित रहते हुए—नाम का जप करते हुये ध्यान करते हुए—भोजन करते हुंए—जागते—सोते और बातचीत करते हुए जो निरन्तर गंगा का स्मरण किया करता है वह साँसारिक बन्धन से

मुक्त हो जाया करता है ।३६।३७। अपने पितृगण का उद्देश्य लेकर जो कोई भी पुरुष भक्ति-पूर्वक मधु के समन्वित पायस गुड़-घृत और तिलों से युक्त करके गंगा के जल में निक्षिप्त किया करता है । हे हरे ! उसके पितृगण सौ वर्ष तक तृप्त हो जाया करते हैं । पितामह आदि जब पूर्णतया परितुष्ट हो जाते हैं तो अनेक प्रकार की कामनाओं को पूर्णकर दिया करते हैं । शिव लिंग का पूजन कर लेने पर जगत् में सभी का समर्थन हो जाया करता है जिस प्रकार से गंगा केवल स्नान कर लेने से समस्त तीर्थों का पुण्य फल प्राप्त हो जाया करता है । जो मनुष्य नित्य ही गंगा में स्नान करके शिवलिंग का समर्थन किया करता है वह एक ही जन्म में परामुक्ति का लाभ निश्चय ही प्राप्त कर लिया करता है । अग्निहोत्र-यत्र-व्रत-दान-तप ये सब गंगा में स्नान और शिवलिंग के अर्चन के करोड़ अंश के बराबर भी नहीं हुआ करते हैं । गंगा जाने का निश्चय करके घर में श्राद्धादिक करके सम्यक रीति से संकल्प करके जो स्थित रहता है उसके पूर्वक उसका बड़ा भारी अभिनन्दन किया करते हैं ।३८।४३।

पापनि च रुदन्त्याशुहा क्वयास्यामइत्यलम् ।
लोभमोहादिभिः साद्धं मन्त्रयन्ति पुनः पुनः ।।४४
यथानगङ्गांयात्येष तथा विघ्न प्रकुर्महे ।
गङ्गागतोयथाचैष न उच्छित्ति विधास्यति ।।४५
गृहाद्गंगावगाहार्थं गच्छतस्तु पदे पदे ।
निराशानिबृजन्त्येव पापान्यस्य शरीरत् ।।४६
पूर्वजन्मकृतैः पुण्यैस्त्यक्त्वा लोभादिक हरे ! ।
व्युदस्य सर्वविघ्नौघान् गङ्गा प्राप्नोति पुण्यवान् ।।४७
अनुषंगेन मौल्येन वाणिज्येनापि सेवया ।
कामसक्तोऽपि वा मर्त्यो गङ्गास्नातो दिवं व्रजेत् ।।४८
अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहनोति यथा दहेत् ।
अनिच्छयापि सस्नाता गङ्गा पाप तथा दलेत् ।।४९

अति शीघ्र पापों का हनन कर देने वाले गङ्गा में स्नान करने वाले पुरुष के पाप रुदन किया करते हैं कि अब हम कहाँ पर जाकर निवास करेंगे। वे लोभ मोह और मद आदि के साथ बारम्बार मन्त्रणा किया करते हैं वे यह भी सोचते हैं हम सब ऐसा कोई विघ्न उपस्थित कर देखें कि गङ्गा पर न जावे और गङ्गा पर गया हुआ यह पुरुष हमारा फिर उच्छेद नहीं करेगा। घर से गङ्गा के अवगाहन करने के लिए गमन करने वाले पुरुष के दम-कदम में इनके शरीर से, निराश होकर पाप भी गमन कर भागने लग जाते है। हे हरे ! पूर्व जन्मों में किए हुये पुण्यों के ही प्रभाव से लोभादिक का त्याग करके और समस्त वनों के सगृहों को हटाकर जो परम पुण्यात्मा पुरुष होता है वही गंगा पर पहुँचकर प्राप्त हुआ करता है। मूल रूप से—अनुषंग वंश से वाणिज्य से—सेवा से अथवा कामासक्त भी पुरुष गंगा में स्नान कर लेता है वह निश्चय ही दिवलोक को प्राप्त हो जाया करता हैं। बिना इच्छा के भी अग्नि का स्पर्श हो जाने पर वह जला दिया करता है वैसे ही विना इच्छा भी गङ्गा में स्नान करने वालों के पापों को गंगा भस्म कर दिया करती है, क्योंकि उसका यह प्रभाव अचूक होता है।४४।४६।

तावद् भ्रमति संसारे यावद् गंगा न सेवते।
संसेव्य गंगा नो जातुर्भवक्लेशं प्रपश्यति ॥५०
यो गंगाम्मतिनिस्नातो भक्तया सत्यक्तसंशयः।
मनुष्यचर्मणानद्धः स देवोनात्र संशयः ॥५१
गंगास्नानार्थंणुद्युक्तो मध्येमार्ग मृतो यदि।
गँगास्नानफलं सोऽपि तदाप्नोति संशयः ॥५२
माहात्म्यं ये च गंगायाः श्रृण्वन्ति च पठन्ति च।
तेप्यशेषैर्महापामुंच्यते नाऽत्र संशयः ॥५३
दुर्बुद्धयो दुराचारा हैतुका बहुसंशयाः।
पश्यन्ति मोहित विष्णो गंगामान्यनदीमिव ॥५४
जन्मान्तरकृतैर्दानैस्तपोभिनियमैर्व्रतैः।
इह जन्मनि गंगायां नृणां भक्तिः प्रजायते ॥५५

गंगाभक्तिमतार्थे महेन्द्रादि पुरेपु च ।
हर्म्याणि रम्यभोगानि निमितानि स्वयम्भुवा ॥५६

यह जन्तु संसार में तभी तक भ्रमण करता रहता है जब तक वह भागीरथी श्री गंगा सेवन नहीं करता है। गंगा का भलों भाँती सेवन करके फिर यह जन्तु संसार के क्लेश को कभी नही देखता है। जो भक्ति की भावना से भले प्रकार से संशय का त्याग करके भी गंगा के जल में स्नान कर चुका है वह मनुष्य के चमड़े से बँधा हुआ साक्षात् देवता ही हो जाता है—इसमें संशय नहीं है। गंगा स्नान करने के लिये उद्यु क्त हो और मध्य में ही मर्ण में मृत्युगत हो जावे तो यह भी संशय नही है। जो लोग गंगा के इस माहात्म्य का पाठ किया करते हैं तथा श्रवण भी कर लिया करते हैं वे लोग भी अपने समस्त किए हुए पापों से मुक्त हो जाया करते हैं इसमें कुछ संशय नहीं है। हे विष्णो ! दुष्ट बुद्धि वाले—दूषित आचार वाले हेतुक और बहुत अधिक संशय करने वाले मनुष्य इस गंगा को मोहित होकर अन्य नदी की ही भाँति देखा करते हैं। मनुष्यों की गंगा में भक्ति भी इस जन्म में तभी हुआ करती है जब उसके पूर्वजन्मों में कुछ किये हुए दान—तप नियम और ब्रत हुआ करते हैं। गंगादेवी मे भक्ति भाव रखने वाले मनुष्यों के लिये महेन्द्र आदि के पुरों में स्वयम्भू भगवान ने बड़े-२ सुन्दर और सुरम्य भवनों का निर्माण कर दिया है ।५०।५६।

सिद्धय: सिद्धिलिगानिस्पर्शलिंगान्यनेकश ।
प्रसादा रत्नरचिताश्चिन्तामणिगणा अपि ॥५७
गङ्गाजलान्तस्तिष्ठन्ति कलिकल्मषभीतित: ।
अत एव हि समेव्या कलौ गंगेष्टसिद्धिदा ॥५८
सूर्योदय तमासोववज्रपातभयान्नगा: ।
ताक्ष्र्येक्षणायथा सर्पा मेघा वाताहता इव ॥५९
तत्वाज्ञानाद्यथासोह: सिहं दृष्टवा यथामृगा: ।
तथा सर्वाणि पापानि यान्ति गंगेक्षणात्क्षयम् ॥६०

दिव्यौषधैर्यथा रोगा लोभेन च यथा गुणाः ।
यथा ग्रीष्मोसम्पत्तिरगाधह्रदमज्जनात् ॥६१
तूलशैलः स्फुलिंगेन यथा नश्यति तत्क्षणात् ।
तथा दोषाः प्रणश्यन्ति गङ्गाम्भः स्पर्शनाद् ध्रुवम ॥६२
क्रोधेन च तपोयद्वत्कामेन च यथा मतिः ।
अनयेन यथा लक्ष्मीर्विद्यमानेन वै यथा ॥६३
दम्भकौटिल्यमायाभिर्यथा धर्मो विनश्यति ।
तथा नश्यन्ति पापानि गङ्गा दर्शनेन तु ॥६४

सिद्धियाँ-सिद्धियों के चिह्न अनेक स्पर्श लिंग प्रसाद जो रत्नों से रहित हैं एवं चिन्तामणि गण भी ये सभी कलियुग के कल्मषों से भीत होकर गंगा के ही जल के अन्दर स्थित रहा करते हैं। अतएव अभीष्टों की सिद्धियों के प्रदान करने वाली गंगा का इस कलियुग में भली-भाँति सेवन करना चाहिए ।५७।५८। सूर्योदय होने पर अन्धकार की भाँति—वज्रपात के भय से पर्वतों के समान—गरुड़ के भय से सर्पों के सदृश-व्रतों से आहत मेघों के तुल्य-जैसे तत्व ज्ञान से मोह और सिंह को देखकर मृग दूर भाग जाया करते हैं ठीक उसी प्रकार से समस्त पाप भी गंगा के दर्शन मात्र करने से क्षण भर में ही क्षय को प्राप्त हो जाया करते हैं। जिस तरह से दिव्य औषधियों से रोग लोभ से सद्गुण और ग्रीष्म की उष्म सम्पत्ति किसी अगाध सरोवर के जल में मन्जन करने से नष्ट हो जाया करती हैं। तूलका (रुई का) विशाल ढेर जो एक पर्वत के ही समान होता है अग्नि के एक ही चिंगारी से क्षण भर में नष्ट हो जाया करता है उसी तरह से गंगा के जल के स्पर्श मात्र करने ही से एक ही क्षण में निश्चय ही समस्त दोष नष्ट हो जाया करते हैं। क्रोध करने से जैसे तप और काम से मति अनय के विद्यमान होने से लक्ष्मी दम्भ और कौटिल्य की माया से धर्म नष्ट हो जाया करता है ठीक उसी भाँति गंगा के दर्शन से ही सब पाप विनष्ट हो जाते हैं ।५९।६४।

मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य विद्युत्सम्भातवञ्चलम् ।
गंगा यः सेवने सोऽत्र बुद्धे पारम्परंगतः ॥६५

विधूतपापा ये मर्त्याः परं ज्योतिः स्वरूपिणीम् ।
सहस्रसूर्यप्रतिमा गंगा पश्यन्ति ते भुवि ॥६६
साधारणाभ्भ सा पूर्णा साधारण नदीमिव ।
पश्यन्ति नास्तिका गंगां पापोपहतलोचनाः ॥६७
संसारमोचकश्चाहं जनानामनुकम्पया ।
गंगांतरङ्गरूपेण सोपानं निममे दिवः ॥६८
सर्वं एव शुभः कालः सर्वोदेशस्तथाशुभः ।
सर्वो जनो दानपात्रं श्रीमती जाह्नवी तटे ॥६९
यथाऽश्वमेधो यज्ञानां हिमवान्यथा ।
व्रतानाञ्च यथा सत्यं दानानाम भयं यथा ॥७०

परम दुर्लभ मनुष्य जीवन प्राप्त करके जो कि बिजली के समान अतीत चञ्चल है जो गंगा का यहाँ सेवन किया करता है वही ही मनुष्य सचेत और बुद्धि के पर पार को प्राप्त हुआ अर्थात् बहुत ही बुद्धिमान होता है। जो मनुष्य अपने पापों का विघूनन कर देते हैं वे ही मनुष्य इस भूलोक में परम ज्योति स्वरूपिणी और सहस्रों सूर्यों के प्रतिभा वाली इस गंगा का दर्शन प्राप्त करते हैं। पापों से उपहृत नेत्रों वाले नास्तिक लोग ही इस गंगा को साधारण जल से परिपूर्ण एक मामूली नदी की ही भाँति देख या समझा करते हैं। जनों के ऊपर अनुकम्पा करके मैं संसार के भोजन कराने वाला हूँ। और मैंने गंगा की तरंगों के स्वरूप में ही स्वर्गलोक में जाने के लिए सीढ़ियों का निर्माण कर दिया है। श्रीमती गंगा के तट पर सभी काल परम शुभ होता है तथा सभी देश शुभकारी हैं और वहाँ पर सभी जन दान के योग्य पात्र हुआ करते हैं। जिस तरह समस्त यज्ञों में, अश्वमेध, समस्त पर्वत में हिमवान—सब व्रतों में सत्य का व्रत सम्पूर्ण दानों में अभय उत्तम माना जाता है।६५।७०।

प्राणायामश्च तपसां मन्त्राणां प्रणवो यथा ।
धर्माणामप्यहिंसा च काम्यानां श्रीर्यथा वरा ॥७१

यथात्मविद्याविद्यानां स्त्रीणां गौरी यथोत्तमा ।
सर्वदेवगणानाञ्च यथा त्वं पुरुषोत्तम ॥७२
सर्वेषामेव पात्राणां शिवभक्तो यथा वरा ।
तथा सर्वेषु तीर्थेषु गंगा तीर्थं विषिष्यते ।७३
हरे ! यश्चावयोर्भेद न करोति महामतिः ।
शिवभक्तः सविज्ञेयो महापाशुपतश्च सः ॥७४
पापपासुमहावात्या पापद्रुम कुठारिका ।
पापेन्धनदाग्नि गंगेय पुण्यवाहिनी ॥७५
नानारूपाश्च पितरा गाथा गायन्ति सर्वदा ।
अपि कश्चित्कुलेऽमाकं गङ्गास्नायी भविष्यति ॥७६
देवर्षीन्परिसन्तर्प्य दीनानाथांश्च दुःखितान् ।
श्रद्धया विधिना स्नात्वा दास्यते सलिलाञ्जलिम् ॥७७
अपि नः स कुले भूयाच्छिवे विष्णौ च साम्यदृक ।
तदालयकरोभक्तया तस्य सम्मार्जनादिकृत् ॥७८

जिस तरह से समस्त तपों में प्राणायाम सब मन्त्रों में प्रणव, सब धर्मों में अहिंसा, सब काम्य पदार्थों में वरा श्री सर्वोत्तम मानी जाती है । जैसे सब विद्याओं में आत्म विद्या, स्त्रियों में गौरी उत्तम होती है । हे पुरुषोत्तम ! समस्त देवों में जैसे आप सर्वश्रेष्ठ देव हैं, समस्त पापों में भगवान शिव का भक्त होता है । उसी प्रकार से सम्पूर्ण तीर्थों में गङ्गा का तीर्थ विशिष्ट तीर्थ होता है । हे हरे ! जो महामति पुरुष हम और आप इन दोनों में भेद का भाव नहीं रखता है वही शिव का भक्त जानना चाहिए और वहाँ महा पाशुपात होता है । पाप रूपी पासु (धूलि कण) के लिये महावात्या अर्थात् जोरदार आधी, पापों के दुर्गो को काटने वाली कुल्हाड़ी तथा पाप रूपी ईंधन के लिए दावाग्नि यह परम पुण्य वाहिनी गङ्गा है । अनेक रूपों वाले पितृगण सर्वथा गाथा का गायन किया करते हैं कि हमारे भी कुल में ऐसा गंगा का परम भक्त गंगा में स्नान करने वाला जन्म लेगा जो देवों को और ऋषियों को सन्तृप्त करके दीन, अनाथ और दुःखियों को श्रद्धा से विधिपूर्वक गंगा

में स्नान करके जलाञ्जलि देगा ? ये पितर लोग यह कहा करते हैं कि कभी कोई ऐसा भी उत्पन्न होगा जो शिव तथा विष्णु भगवान् में समान भावना रखे तथा भक्ति से उनके मन्दिर का निर्माण करावे और उस देवालय में सम्मार्जन आदि करे ।७१।७८।

अकमोकासकामोवातिर्यग्योनिगतोऽपिवा ।
गङ्गायां यो मृतोमर्त्योनरकंस न पश्यति ।।७९
तीर्थमन्यत्प्रशंसन्ति गङ्गातीरेस्थिताश्च ये ।
गंगां नवहुमन्यते ते स्थुर्निरयागामिनः ।।८०
मां चत्वां चैक्वयोद्वैष्दि गंगा च पुरुषाधमः ।
स्वकीयैः पुरुषैः सार्धंस घोरं नरकं व्रजेत् ।।८१
षष्टिणसहस्राणि गंगा रक्षन्ति सर्वदा ।
अभक्तानाञ्च पापानां वासेविघ्नभ्प्रकुर्वते ।।८२
कामक्रोधमहामोह लोभादिनिशितैः शूरैः ।
ध्नाति तेषां मनस्तत्र स्थितिचापयन्ति च ।।८३
गंगा समाश्रयेद्यस्तु सः मुनिस च पण्डितः ।
कृत्यकृत्यः सविज्ञेयः पुरुषार्थं चतुष्टये ।।८४

किसी भी कामना से युक्त हो अथवा रहित हो या किसी भक्ति तिर्यक योनि में रहने वाला ही प्राणी गंगा के समीप में अपने प्राणों का परित्याग किया करता है वह फिर भी नरक का मुख नहीं देखा करता है। जो मनुष्य गंगा के तीर पर स्थित होकर अन्य तीर्थों की प्रशंसा किया करते हैं और गंगा को विशेष महत्व वाली नहीं मानते हैं वे निश्चय ही नरक के गामी हुआ करते हैं। जो कोई मुझको या आपको द्वेष-भाव से देखता है वह पुरुषों में महान् अधम ही हुआ करता है। ऐसा प्राणी अपने पितरों के सहित अतीव घोर नरक में गमन किया करता है। साठ सहस्र गण सर्वदा गंगा की रक्षा किया करते हैं और जो भकत नहीं होते हैं या पापी होते हैं उनके यहाँ पर निवास करने में महान् विघ्नों को किया करते हैं। काम, क्रोध, महामोह और लोभ आदि पैने शिरों से उनके मन का हनन किया करते हैं और

उनकी वहाँ पर स्थिति का आगमन किया करते हैं। जो गंगा का समाश्रय ग्रहण किया करता है वह मुनि है और महान् पण्डित हैं। उसको चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति के लिए सफल ही समझना चाहिए।७६।८४।

गंगायाञ्च सकृत्स्नातो हयमेधफलं लभेत्।
तर्पयश्चपितृस्तत्र तारयेन्नरकार्णवात् ॥८५
नैरन्तूर्येण गंगायामासं यः स्नाति पुण्यवान्।
शक्रलाके स वसति यावच्छक्रः स पूर्वजः ॥८६
अब्दं यः स्नाति गंगायां नरन्तर्येण पुण्यभाक्।
विष्णोर्लोकं समासाणे स सुख सवसेन्नरः ॥८७
गंगायां स्नाति यो मृत्यो तावज्जीवं दिने दिने।
जीवन्मुक्त स विज्ञेयो देहान्ते एव सः ॥८८
तिथिनक्षत्रपूर्वादि नापेक्ष्यं जाह्नवी जले।
स्नानमात्रेण गंगायां संचिताचोविनश्यति ॥८९
पण्डितोऽपि स मूर्खः स्याच्छक्तिप्यशक्तिकः।
यस्तु भागीरथी तीरं सुखसेव्यं न संश्रयेत् ॥९०
किं वाऽऽयुषाऽप्यरोगेण विकासिन्याऽथ कि श्रिया।
किंवा बुद्धया निर्मलया यदि गंगा न मेवते ॥९१

गंगा के स्नान करने वाला पुरुष अश्वमेध यज्ञ के करने का पुण्यफल प्राप्त किया करता है। वहाँ पर पितृगणों का तर्पण करता हुआ उनको नरकों के सागर से तार किया करती है। जो निरन्तर रूप से पुण्यात्मा एक मास पर्यन्त गंगा का स्नान किया करता है वह इन्द्रलोक में जाकर जब तक वह इन्द्र वहाँ पर रहता है निवास किया करता है। जो पुण्यात्मा का एक वर्ष तक निरन्तर गंगा के पवित्र जल में स्नान करता है वह विष्णुलोक में जाकर सुख पूर्वक निवास किया करता है।८५।८७। जो मनुष्य जब तक जीवित रहता है तब तक नित्यप्रति गंगा में स्नान करता है उसको जीवन्मुनत ही समझना चाहिए और देह के अन्त होने पर मुक्त हो जाया करता है। गंगा के जल में तिथि नक्षत्र

और पूर्वादि की कभी अपेक्षा नहीं करनी चाहिए गंगा में तो केवल स्नान से ही मनुष्य संचित अघों का विनाश कर दिया करता है। वह पण्डित होते हुये भी महान् मूर्ख ही है और अपनी शक्ति से युक्त होने पर भी वह शक्ति शून्य ही है जो सुख से सेवन करने के योग्य भागीरथी के तट का समाश्रय नहीं लिया करता है। परम स्वस्थ रोग रहित आयु से क्या लाभ है और विकास से परिपूर्ण श्री से भी क्या प्रयोजन है तथा उस विमल बुद्धि में क्या सिद्धि, यदि मनुष्य ने अपने जीवन में गंगा का सेवन नहीं किया है।८८।६१।

५१—वाराणसी महिमा वर्णन

शृण्वगस्त्यमहाभागसचराजाभगीरथः।
आराध्तश्रीमहादेवमुद्दिधीर्षुः पितामहान् ॥१
ब्रह्माशापविनिर्दग्धान्सर्वान् राजर्षिसत्तमः।
महतातपसाभूमिमानिननाय त्रिवर्त्मगाम् ॥२
त्रयाणामपिलोकानां हितायमहतेनृपः।
समानैषीत्ततोगंगायत्राऽसीन्मणकर्णिका ॥३
आनन्दकाननं शम्भोश्चक्रपुष्करिणीहरेः।
परंब्रह्मैकसुक्षेत्रं लीलामोक्षसमर्पकम् ॥४
प्रापयामास ताँगगां दैलीपिः पुरतश्चरन्।
निर्वाणकाशनाद्यत्र काशीति प्रथितापुरी ॥५
अविमुक्तं महाक्षेत्रं न मुक्तं शम्भुनाक्वचित्।
प्रागेवहिमुनेऽनर्घ्यं जात्यंजाम्बूनदस्वयम् ॥६
पुनर्वारितरेणापि हीरेणयदिसंगतम्।
चक्रपुष्करिणीतीर्थप्रागेव श्रेयसम्पदम् ॥७

भगवान स्कन्द ने कहा—हे महाभाग अगस्त्य! अब आप श्रवण कीजिये वह राजा भागीरथ ने अपने पितामहों का उद्धार करने की इच्छा वाला होते हुये श्री महादेव की आराधना की थी। राजर्षियों में परम श्रेष्ठ भगीरथ ने अपने पूर्वजों का, जोकि सभी ब्रह्म शाप से विशेष निर्दग्ध

हो गये थे, उद्धार करने का निश्चय किया था और अपनी महती तपस्या से वह त्रिवर्त्म गामिनी गंगा को भूमण्डल में ले आये थे। तीनों लोकों के हित की महती कामना से राजा वहाँ से गंगा को लाये थे जहाँ पर मणिकर्णिका थी। भगवान् शम्भु के आनन्द कानन, हरि का चक्र पुष्क-रिणी, पर ब्रह्म के सुक्षेत्र जो कि लीला ही से मोक्ष का सम्पर्क था दिलीप के वंशज राजा ने आगे-२ चलते हुए उस गंगा को प्राप्त कर दिया था। जहाँ पर निर्वाण के काशन से यह पुरी 'काशी'—इस नाम से प्रथित हुई थी। यह अविमुक्ति महा क्षेत्र इसीलिये कहलाया गया है कि भगवान शम्भु ने इसकी किसी भी दशा में परित्यक्त नहीं किया था। हे मुने ! पहले ही परम अनर्घ्य जात्य जाम्बूनद स्वयं हुआ था। फिर वारितर हीर से यदि यह संगत हो गया तो अत्युत्तम बन गया है। यह चक्र पुष्करिणी तीर्थ पहिले ही श्रेयों के प्रदान करने वाला था।१—७।

ततः श्रेष्ठतरंशम्भोमणि श्रवणभूषणात्।
आनन्दकानने तस्मिन्नविमुक्ते शिवालये ॥८
प्रागेवमुक्तिः संसिद्धगंगासंगात्ततोधिका।
यदाप्रभृतिसांगंगामणिकर्ण्या समागता ॥९
तदा प्रभृतितत्क्षेत्रं दुष्प्रापन्त्रिदशैरपि।
कृतकर्माण्यनेकानिकल्याणानीतराणिवा ॥१०
तानिक्षणात्समुत्क्षिप्त काशीसंस्थोऽमृतोभवेत्।
तस्यां वेदान्तवेद्यस्य निदिध्यासनतो विना ॥११
विना सांख्येन योगेन काश्यां संस्थोऽमृतो भवेत्।
कर्मनिर्मूलनवता विना ज्ञानेन कुम्भज ! ॥१२
शशिमौलिप्रसादेन काशीसंस्थोऽमृतोभवेत्।
यत्नतोऽयत्नतो वापि कालाच्यक्त्वा कलेवरम् ॥१३
तारकस्योपदेशेनकाशीसंस्थोऽमृतोभवेत्।
अनेकजन्मसंसिद्धोबद्धोऽपिप्राकृतैर्गुणैः ॥१४
असिसम्भेदतोगेनकाशीसंस्थोऽमृतोभवेत्।
देहत्यागोऽत्रवैदानंदेहत्यागोऽत्रवैतपः ॥१५

इससे भी शम्भु के मणि श्रवण भूषण से वह अधिक श्रेष्ठ हो गया था। उस शिव का आलय अविमुक्ति कानन में पहले ही मुक्ति संसिद्धि ही थी। फिर गंगा के संग होने से और भी अधिक हो गई थी। अब से लेकर वह क्षेत्र देवों के द्वारा भी दुष्प्राप हो गया है। अनेक कल्याण-कारी कार्य तथा अन्य कार्य करके उन सबको क्षण भर समुत्क्षित करके काशी संस्थित अमृत हो जाता है। उस काशी में वेदान्त से जानने के योग्य के निदिध्यासन के विना ही तथा सांख्य और योग के बिना काशी में संस्थित होने वाला अमृत हो जाता है। हे कुम्भज ! क्योंकि निर्मूल करने वाले ज्ञान के विना भगवान शशिमौलि (शिव) के प्रसाद से काशी में निवास करने वाला अमृत हो जाता है। यत्न से काशी में अयत्न से काल से कलेवर को त्याग करके तारक के उपदेश से काशी में संस्थित होने वाला अमृत हो जाया करता है। अनेक जन्मों में संस्थिति करने वाला पुरुष अमृत हो जाता है। यहाँ पर अपने देह को त्याग कर देना ही दान होता है और देह त्याग ही तप है। यहाँ पुरी में रहकर देह का छोड़ देना ही बड़ा भारी योगाभ्यास है जो कि निर्वाण और सौख्य का देने वाला है।८।१५।

प्राप्योत्तरवहाँ काश्वामतिदुष्कृतवानपि ॥१६
यायात्स्व हेलया त्यक्त्वा तद्विष्णोः परमम्पदम् ।
यमेन्द्रिग्निमुखा देवा दृष्ट्वा मुक्तपथोन्सुखान् ॥१७
सर्वान्सर्वेसमालोक्य रक्षाञ्चक्रु पुरापुरः ।
असिमहासिरूपाञ्चप्राप्ययन्मतिखण्डनीम् ॥१८
दुष्टप्रवेशन्धुन्वानान्धुनीन्देवा वितिर्ममुः ।
वनणाञ्च व्यधुर्देवाक्षेत्रविघ्ननिवारिणम् ॥१९
दुर्वृत्तसुप्रवृत्तेश्च निवृंतिकरणींमुराः ।
दक्षिणोत्तरदिग्भागेकृत्वासि वरणां सुराः ॥२०
क्षेत्रस्यमोक्षनिक्षेपरक्षानिवृंतिमाप्नुयुः ।
क्षेत्रस्यपश्चाद्दिग्भागेतंदेहलिविनायकम् ॥२१

स्वयंव्यापारयांमास रक्षार्थं शशिमेखरः।
अनुज्ञातप्रवेशानां विश्वेसेन कृपावता ॥२२
ते प्रवेशम्प्रयच्छन्ति नान्येषांहि कदाचन।
इत्यर्थेकथयिष्येऽहमितिहासम्पुरातनम् ।
आश्चर्यंकारिपरमं काशीभक्तिप्रवर्धनम् ॥२३

एक महान् दुष्कृतों वाला भी भार के वहन करने वाला पुरुष काशी में उत्तर वहा गंगा को प्राप्त करके हेला ही से अपने शरीर का त्याग करके श्री विष्णु भगवान के परम पद को प्राप्त हो गया था। यम, इन्द्र और अग्नि जिनमें प्रमुख थे ऐसे देवगण मुक्तिपथ के उन्मुखों को देखकर सभी सबका समालोचन करके पहले इस पुरी की रक्षा किया करते थे। सन्मति का खण्डन करने वाली महासिरूपा असि को प्राप्त करके देवों ने दुष्टों के प्रवेश को रोकने वाली धुनी का निर्माण किया था। वहाँ पर क्षेत्र के समागत विघ्नों का निवारण करने वाली वरणा की रचना की थी। सुरों ने दुराचारियों की सुप्रवृत्ति की निवृत्ति करने वाली वरणा को असि दक्षिणोत्तर दिग्भाग में किया था। क्षेत्र को मोक्ष के निक्षेप की रक्षा करने की ही निवृत्ति को प्राप्त हुये थे। क्षेत्र के पश्चात् दिग्भाछ में शशिशेख भगवान ने स्वयं रक्षा के लिए देहलिवि नायक की नियुक्ति किया था। कृपालु विश्वनाथ के द्वारा जिनके प्रवेश की अनुज्ञा प्राप्त हो जाती थी उनके प्रवेश को वे होने देते हैं और दूसरों का नहीं होने दिया करते हैं। इस अर्थ में मैं एक पुरातन इतिहास कहूँगा जो परम आश्चर्य करने वाला और काशी की भक्ति बढ़ाने वाला है।१६।२३।

काश्यां प्रवेशं प्राप्याऽपि तदस्थीनि घटौद्भव ! ।
विना वैश्वेश्वरामाज्ञाम्वहिर्यांतानि तत्क्षणात् ॥२४
ऐवकाश्यांप्रविश्यापिपापोधर्मानुषंगतः ।
नक्षत्रफलमापनोतिवहिर्भंवति तत्क्षणात् ॥२५
तस्माद्वश्वेश्वराज्ञैवकाशीवासेऽत्र कारणम् ।
असिश्चवरणायत्र क्षेत्ररक्षाकृतौ कृते ॥२६

वाराणसीतिविख्याता तदारभ्यमहामुने ! ।
असेश्चवरणायाश्च संगमं प्राप्यकाशिका ॥२७
वाराणासीह करुणामयदिव्यमूर्ति
रुत्सृज्य यत्र तु तणु तनुभृत्सेरुखेन ।
विश्वेशदिङ्महसि यत्सहसा प्रविश्य
रूपेण तां वितनुतापदवीं दधाति ॥२८
जातो मृतो बहुषु तीर्थवरेषुरेत्व
जन्तो ! न जातु तव शान्तिरभूनिमज्जय ।
वाराणासी निगदतीह मृतोऽमृतत्व
प्रायाऽनुना मम बलात्स्मरशासनः स्याः ॥२९
अन्यत्र तीर्थसलिले पतितो द्विजन्ता
देवादिभावमयते न तथा तु काश्याम् ।
चित्र यदत्र पतितः पुनरुत्थितिं न
प्राप्नोति पुल्कसजनोऽपिकिमग्रजन्मा ॥३०

किसी प्रकार से काशी में प्रवेश प्राप्त करके भी हे घटोद्भव ! उसकी अस्थियाँ विश्वेश्वरी आज्ञा के विना उसी क्षण में बाहर चली जाया करती हैं। इस प्रकार से कोई प्राणी धर्म के धनुषग से काशी में प्रवेश करके भी उस पुण्य क्षेत्र के फल को प्राप्त नहीं किया करता है और उसी क्षण में वाहिर जाता है। इसलिए इस काशीपुरी में निवास करते हैं श्री विश्वनाथ भगवान की आज्ञा ही मुख्य कारण है जहाँ पर और वरणाये दोनों क्षेत्र की रक्षा करने वाली करदी गयी हैं।२४।२६। हे महामुने ! तभी से आरम्भ करके यह पुरी 'वाराणसी'—इस नाम से विख्यात हो गई। यह काशी असि और वरणा इन दोनों का संगम प्राप्त करने वाली हुई है। यहाँ पर यह वाराणसी करुणामय दिव्य मूर्ति है। जहाँ पर देहधारी सुखपूर्वक अपने देह का उत्सर्ग करके सहस विश्वनाथ की दिशा के तेज में प्रवेश करके रूप से उग्र वितनुता की पदवी को धारण किया करता है।२७।२८। हे जन्तो ! तू बहुत से श्रेष्ठ

श्रेष्ठ तीर्थों में उत्पन्न हुआ और मृत्युगत भी हुआ है किन्तु कभी भी निभज्जन करके तुझे क्रान्ति नहीं हुई है। वाराणसी कहती है यहाँ पर मृत हुआ अब अमृतत्व की प्राप्ति करके मेरे बल से स्मरशासन अर्थात् शिव हो जावेगा। अन्य जल में पतित होकर द्विजन्मा देवादि के भाव को प्राप्त होता है इस काशीपुरी में उस प्रकार की बात नहीं है। यह एक अत्यन्त विचित्र बात है कि यहाँ पर एक बार पतित हुआ फिर उत्थान को हीं नहीं प्राप्त किया करता है चाहे कोई पुल्कसजन भी क्यों नहीं फिर अग्रजन्मा ब्राह्मण की तो बात ही क्या है।२९।३०।

सैषा पुरी संसृतिरूपपारावारस्यपारम्पुरहापुरारिः।
यस्यां परं पौरुषमथमिच्छन्सिद्धिन्नयेत्पौरपरम्परां सः ॥३१
तीर्थान्तराणि मनुजः परितोऽवगाह्य
हित्वा तनुं कलुषितां दिवि दैवतं स्यात्।
वाराणसींपरिसरे तु विसृज्य देहं
सन्देहभाग्भति देहदाशाप्तयेऽपि ॥३२
वाराणसीसमरसीकरणादृतेऽपि
योगदयोगिजनतां जनतापहन्त्री।
तत्तारकं श्रवणगोचरतां नयन्ती
तद्ब्रह्म दर्शतति येन पुनर्भबो न ॥३३
वाराणसीपरिसरे तणुमिष्टधात्रीं
धर्मार्थं काममनिलयामहहा विहृज्य।
इष्टं पदं किमपि हृष्टतरोऽभिलष्य
लाभोऽस्तु मूलमपि नो यदवाप शून्यम् ॥३४
आः काशिवासिजनता ननु वञ्चिताऽभूद्
भाले वलोचनयत वनितार्धभाजा।
आदाय यत्सुकृतभाजनमिष्टदेह
निर्वाणमात्रमपवर्जयता पुनर्भूः ॥३५

पुरारी की यह ऐसी पुरी है जो संसार रूपी सागर का परला पार या तटरूप है, जिस पुरी में परम पौरुष अर्थ की इच्छा करता हुआ वह पौर परम्परा सिद्धि को प्राप्त करा देता है।३१। मनुष्य दूसरे तीर्थों का सभी ओर से अवगाहन करके इस कलुषित शरीर का त्याग करके दिव-लोक में देव हो जाया करता है। इस वाराणसी के परिसर में तो अपने देह का त्याग करके फिर देह दशा की प्राप्ति के लिए भी सन्देह भाक् हो जाया करता है। यह वाराणसी योग के बिना भी समरसत्ता से अयोगी जनों के तापों का हवन करने वाली है। यह उस तारक मन्त्र को श्रवणों का गोचर कराती हुई उस ब्रह्म का दर्शन करा दिया करती है जिससे फिर.दूसरा जन्म ही नहीं हुआ करता है। इस वाराणसी के परिसर में समस्त अभीष्टों का जनन करने वाले और धर्म—अर्थ—काम का निलय स्वरूप शरीर का त्याग करके अहहा !बड़े ही हर्ष की बात है कि परम हृष्ट होकर किसी भी, अभीष्ट पद की इच्छा करके उसका लाभ होता है और मूल को भी प्राप्त कर लेता है जिसको कि शून्य नहीं प्राप्त हुआ हैं। परम सुकृत का भोजन इस इष्ट देह को लेकर पुनर्जन्म के अप वर्णन करने वाले प्रभु ने निर्वाण मात्र ही प्रदान किया है वनितार्धं का भाजन करने वाले त्रिलोचन धारी के द्वारा निश्चय ही काशी के निवास करने वाली जनता वञ्चित हो गई हैं।३२।३५।

वाराणसीस्थुरदसीमगुणैकभूमिः
यत्र स्थितास्तनुभृतः शशिभुत्प्रभावात् ।
सर्वे गले गरलिनोऽक्षियुजो ललाटे
वामार्धवामतनवोऽतनवस्ततोऽन्ते ॥३६
आनन्दकाननमिदं सुखदं पुराणं
तत्रापि चक्रसरसीमणिकर्णिकाऽथ ।
स्वः सिन्धुसंगतिरथोपरमास्वदञ्च
विश्वेशितुः किमिह तन्नविमुक्तये यत् ॥३७
वाराणसीहं वरणासिसरिद्वरिष्ठा
सम्भेदखेदजननी ह्य नदी लसच्छ्रीः ।

विश्रामभूमिरचलामलमोक्षलक्ष्म्या
हैनांविहाय विप्र सीदति मूढ़जन्मः ॥३८
कि विस्मृतं त्वहह गर्भजमामनस्य
कातांन्तदूतकृतबन्धनताडनञ्च ।
शम्भोरनुग्रहपरिग्रहलभ्य काशी मूढो
विहाय किमु याति करस्थमुक्तिम् ॥३९
तीर्थान्तराणि कलुषाणि हरन्तिसद्यः
श्रेयो ददत्यपि वहु त्रिदिवं नयन्तिः ।
पानावगाहनविधानतनुप्रहाणै
वाराणसी तु कुरुते वंत मूलनाशनम् ॥४०
काशींपुरींपरिसरे मणिकर्णिकायां
त्यक्त्वा तनुन्तनुभृतस्तनुवमाप्नुन्ति ।
भाले विलोचनवर्ती गलनीललक्ष्मीं
वामार्धंबन्धुरवधूं विधुरावरीधाः ॥४१
ज्ञात्वा प्रभात्रमतुलं मणिकर्णिकायां
यः पुद्गलन्त्यजन्ति घाशुचि पूरगन्धि ।
स्वात्मावबोधमहसा सहसा मिलित्वा ।
कल्पान्तरेष्वपि स नैव पृथत्वमेति ॥४२

यह वाराणसी स्फुरित असीम गुणों की एक ही भूमि है जहाँ पर शिव के प्रसाद से शरीरधारी स्थित रहा करते हैं। सब गरल धारण करने वाले गले में हैं ललाट में अक्षि युज है और वामार्थ में सुन्दर शरीर वाले हैं किन्तु अन्य में फिर वे सव तनुरहित होता है। यह आनन्द कानन पहले ही सुख प्रदान करने वाला है उसमें सौ चक्र सर मणि-कर्णिका है। स्वयं नहीं की भगति से विश्वनाथ का परमास्पद ही गया है। यहाँ पर ऐसा गया है जो विमुक्ति के लिये न हो अर्थात् सभी विमुक्ति देने वाले है।३६।३७। यहाँ पर वाराणसी वरणाअसि सरिताओं से परम वरिष्ठ है और सम्भेद के भेद की जननी देव नहीं शोभा से सुसम्पन्न है। अचल और अमल मोक्ष की लक्ष्मी से युक्त यह विश्राम

की भूमि है। ऐसी इस पुरी का त्याग करके यह मूढ़ जन्तु क्यों दुःख पाया करता है। क्या तू हे जन्तो . गर्भ में उत्पन्न कष्ट को भूल गया है? और क्या तूने यमराज के दूतों के द्वारा बन्धन और ताड़ना को भुला दिया है? तू महान् मूढ़ है कि भगवान शम्भु के अनुग्रह से काशीपुरी को प्राप्त करके हाथ में स्थित मुक्ति का त्याग करके क्यों जा रहा है? ।३८।३९। अन्य समस्त तीर्थ कलुषों का हरण किया करते हैं और तुरन्त ही श्रेय प्रदान किया करते हैं और बहुतों को स्वर्ग में पहुँचा दिया करते हैं परन्तु यह वाराणसी जल पान अवगाहथ-विधान पूर्वक देह त्याग के द्वारा मूल का ही नाश कर दिया करती है।४०। काशीपुरी के परिसर में मणिकर्णिका में देहधारी देह का त्याग करके दूसरा ही कलेश्वर प्राप्त किया करते हैं जो कि भाल में विलोचन वाला होता है और जिसके कण्ठ में नीलिमा की शोभा हुआ करती है तथा वामार्ध भाग में जिसके सुडौल शरीर वाली वधू है और विधुरावरोध युक्त है। तात्पर्य यह कि शिव का सा ही शरीर प्राप्त हो जाया करता है।४१। मणिकर्णिका में अतुल प्रभाव को जान जो अशुचि और पूरा गन्धीर पुद्गल का त्याग करता है वह अपने आत्मा के अवरोध के तेज से सहसा मिलकर कल्पान्तरों में भी पृथकता को प्राप्त नहीं होता है।४२।

रागादिदोषपरिपरमनोहृषीकाः।
काशीपुरीमतुलदिव्यमहाप्रभावाम्।
ये कल्पयत्न्यपरतीर्थं समांसमन्ता
ते पापिनो नसहतैः परिभाषणीयम् ॥४३
वाराणसीं स्मरहरप्रिय राजधानी
त्यक्त्वा कुतो ब्रजसि मूढ! दिगन्तरेषु।
प्राप्याप्याजाक्रसुलभां स्थिरमोक्षलक्ष्मीं
लक्ष्मीं स्वभावचपलांकिमु कामयेथाः ॥४४
विद्याधनानि सदनादि गजाश्वभृत्यः
स्रक्चन्दनानि वनिताश्च नितान्तरम्याः।

स्वर्गोऽप्यगम्य इह नोद्यमभाजि पुंसि
वाराणसी त्वसुलभा शलभादिमुक्तिः ॥४४
धात्रा धृतानि तुलया तुलया तुलनामवेतुं
बैकुण्ठमुख्यभुवनानि च काशिका च ।४५
तान्युद्ययुर्लघुतयान्यगियं गुरुत्वात्तस्थो
पुरीय पुरुषार्थचतुष्टस्य ॥४६
काशीपुरीमधिवसह्नि नरो नैरोऽपि
ह्यारोप्माण इव मान्य इवैकरुदः ।
नानीपसर्गजनिरर्गजदुःखभारैः
कर्मापनुद्य स विशेत्परमेशधाम्नि ॥४७
स्थिरापायंकायञ्जन्मरणक्लेशनिलयं
विहायास्यांकाश्यामहहपरिगृह्लोतनकुतः ।
वपुस्तेजोरूपं स्थिरतरपरानन्दसदनं
विमूढोऽसौ जन्तुः स्फुटितभिव कांस्यं विनिमयन ॥४८

रोगादि दोषों से परिपूर्ण मन और इन्द्रियों वाले जो लोग इस अतुल एक दिव्य महान् प्रभाव वाली काशी को दूसरे ही तीर्थों के समान परि कल्पित किया करते हैं वे महापापी हुआ करते हैं उनके साथ भाषण नहीं करना चाहिए । हे मूढ ! यह वाराणसी कामदेव को भस्म कर देने वाले भगवान शिव की परम प्रिय राजधानी है । इसका परित्याग करके दिगन्तरों में कहाँ गमन कर रहा है ? इस अजा आद्य के सुलभ इस महालक्ष्मी को प्राप्त करके भी जो स्थिर मोक्ष के प्रदान करने वाली लक्ष्मी हैं फिर उस स्वभाव से चपत् लक्ष्मी को प्राप्त करने की क्यों कामना किया करता है ? विद्या-धन-सदन गज-अश्व-मृत्यु स्रक्-चंदन अत्यंत सुरम्य वनितायें और स्वर्ग भी उद्यम शील पुरुष को अगम्य नहीं हैं किन्तु यह वाराणसी असुलभा हैं वहाँ पर शलभ आदि की मुक्ति हो जाया करती है एक बार धाता ने तुलना कर परिज्ञान प्राप्त करने के लिये तुला में (तराजू) बैकुण्ठ मुख्य जिनमें हैं ऐसे समस्त भुवनों को और काशीपुरी को रक्खा था तो वे सब भुवन जिनमें बैकुण्ठ भी था लघु हुये ओर

पुरुषार्थ चतुष्टय की यह काशीपुरी गुरुत्व से युक्त सिद्ध हुई थी। काशीपुरी में अधिवास करने वाला मनुष्य भी यहाँ पर आरोप्यमाण एक रुद्र के ही समान मान्य हुआ करता है। अनेक उपसर्गज और सर्गज दुःखों के भारी के कर्मों का अवलोकन करके वह परमेश के धाम में प्रवेश किया करता है और वहाँ पर ही निवास करता है। इसी काशीपुरी में स्थित उपायों वाले और जनन तथा मरण के क्लेशों का निवास स्थान का त्याग करके उसे क्यों नहीं ग्रहण करते हो। बहुत तेज के स्वरूप वाले और स्थिर पर परानन्न के सदन को यह महामूढ़ जन्तु फूटे हुए काँसे के पात्र से बदल सा रहा है।४३।४६।

अहो ! लोकः शोकं किमिह सहते हन्त हतधो।
विपद्वारैः सारैर्नियतनिधनैर्ध्वंसितधनैः।
क्षितौ सत्यां काश्यां कथयति शिवो यत्र निधने।
श्रुतौ किञ्चिद् भूयः प्रविशति न येनोदरदरीम् ॥५०
काशिवासिनि जने वनेचरे द्वित्रिभुज्यपि समीरभोजने।
स्वैरचारिणिजितेन्द्रियेप्यहोकाशिवासिनिजनेविशिष्टता।५१
नास्तीहं दुष्कृतां सुकृताष्सनाँ वा।
काचिद्विशेषगतिरन्तकृतां हि काश्याम् ॥
बीजानि कर्मजनितानि यदूषरायां।
नाङ्क्रूरयन्ति हरदृग्ज्वलितानि तेषाम् ॥५२
शशका मशका वकाः शुकाः कलविंकाश्च वृकाः कजम्बुका।
तुरगोरगवानश नरा गिरिजे ! काशिमृताः परामृतम् ॥५३
अरुप्ररुद्राक्षफणीन्द्रभूषणास्त्रिपुण्ड्रच द्रार्धधरा धरां गताः।
निरन्तरंकाशिनिवासिनोजनागिरीन्द्रजेपरिषदामताम ॥५४

बहुत ही आश्चर्य और खेद की बात है—यह लोक शोक का इस संसार में क्यों सहन कर रहा है ? अत्यन्त ही दुःख है कि यह हत बुद्धि वाला मनुष्य विषदाओं के द्वारा रूप—निश्चित मृत्यु से युक्त और ध्वंसित धन वाले सारों से यह रात दिन विपत्तियों को सहता ही रहा करता है जबकि इस भूमि में काशीपुरी जैसा क्षेत्र विद्यमान है जहाँ साक्षात् शिव

विराजमान रहते हुए यह कहा करते हैं कि काशी में निधन हो जाने पर वे कान में कुछ अर्थात् तारक मन्त्र कह दिया करते हैं जिसके प्रभाव से पुनः उसको गर्भ में निवास करने की यन्त्रणायें नहीं सहनी होती है ।४९।५०। काशी में वास करने वाले मनुष्य वन में चरण करने वाला हो—दूसरे-तीसरे दिन में भोजन वाला हो या समीर (वायु) का ही भोजन करके जीवित रहने वाला हो—स्वतन्त्रता से विचरण करने वाला हो, जितेन्द्रिय हो तो उस काशीपुरी के निवास करने वाले पुरुष में विशिष्टता हुआ करती हैं। काशी में जिनका अन्त होता है वे चाहे दुष्कृत करने वाले हों वा सुकृतात्मा हों उनकी कोई भी विशेष गति यहाँ पर नहीं होता है। जिस तरह ऊपर भूमि में बोये हुये भी बीज अंकुरित नहीं होते हैं उसी तरह से उनके कर्मों से जनित बीजों का भगवान शम्भु की दृष्टि से भस्म हो जाने पर कोई भी अंकुर नही रहा करता है ।५१-५३। शशक—मशक—बक—शुक—कलविंक—वृक—जम्बुक—तुरंग—उरग बानर और नर हे गिरिजे ! काशी में मृत्युगत होने पर ये सभी परा मृतत्व को प्राप्त हो जाया करते है हे गिरीन्द्रजे ! अरुद्र रुद्राक्ष और फणीन्द्रो के भूषण तथा त्रिपुण्ड्र अर्धचन्द्रधारी भूमि में स्थित काशी के निवासी मेरे पार्षद ही माने गये हैं ।५४।

यावन्त एव निवसन्ति च जन्तयोऽत्र
काश्यांजलस्थल चरा झषजम्बुकाद्या ।
तावन्त एवमदनुग्रहरुद्रदेहा
देहावसानमधिगम्य मयि प्रविष्टा ।।:५५
ये तुवर्षेषवो रुद्रा दिवि देवप्रकीर्तिता:
वानेषत्रोऽन्तरिक्षे ये ये भुव्यन्नेषत्राप्रिये ! ।।५६
रुद्रा दणदशप्राच्यवाचींप्रत्यगुदक् स्थिता:
उर्ध्वंदिवस्थाश्च ये रुद्रा पठचन्ते वेदवादिभिः ।।५७
असङ्ख्याताः सहस्राणि ये रुद्रा अधिभुतले ।
तत्सर्वेभ्योऽधिका काश्यां जन्तवो रूद्ररूपिण: ।।५८

रुद्रावासस्ततः प्रोक्तमविमुक्तं घटोद्भव ! ।
यस्मात्समर्च्यं काशीस्थान्वर्णान्वर्णेतराश्रमात् ॥५९
श्रद्धयेश्वर बुद्धया च रुद्रार्चाफलभाङ्नरः ॥६०

इस काशी में जितने भी जन्तु निवास किया करते हैं वे जल में हो या स्थल पर रहने वाले हों जो कि मछली जम्बुक आदि हैं वे सब के सब उतने ही मेरे अनुग्रह से रुद्र देहावसान को प्राप्त करके मुझ में ही प्रविष्ट हो जाया करते हैं। जो वर्षेषय रुद्र हैं जो दिवलोक में देव कीर्त्तित किये गये हैं—जो वातेषव अन्तरिक्ष में है और हे प्रिये ! जो इस भूमण्डल में अन्वेषव है। प्राचीनवाची (पूर्व पश्चिम-प्रत्यक् और उदक्) (दक्षिण-उत्तर) दिशाओं में दश-दश रुद्र स्थित होते हैं। वेद वादियों के द्वारा जो ऊर्ध्व दिशा में स्थित रुद्र पढ़ जाया करते हैं और जो असंख्यात सहस्रों इस भूतल के मध्य में रुद्र है उन सबसे अधिक रुद्र स्वरूप वाले जन्तु काशी में हैं। हे घटोद्भव ! यह काशी रुद्रों का आवास स्थल है इसलिए इसको अविमुक्त कहा गया है। इसी कारण से काशी में स्थित वर्णो का और वर्णेतर आश्रमों का भली भाँति अर्चन करके चाहे वह श्रद्धा से किया जावे अथवा ईश्वर की बुद्धि से किया जावे मनुष्य रुद्र की अर्चा का पुण्य फल प्राप्त करने का अधिकारी हो जाया करता है।५७।६२।

श्मशब्देनवः प्रोक्तः शानं शयनमुच्यते ।
निर्वचन्ति श्मशानार्थमुने ! शव्दार्थ कोविदाः ॥६३
महान्त्यापि च भूतानि प्रलयेसमुपस्थिते ।
शेरतेऽत्र शया भूत्वा श्मशानतुततोमहत् ॥६४
अप्सु भूरिह लये लयं व्रजेदाप और्ववदनोग्रकन्दरे ।
मातारिश्वनि महातनूतपाद्वनीम्नि सक्षयति वै सदागतिः।६५
व्योम चापि लयमेत्यहंकृतो साऽपि षोडशविकारसंयुता ।
लीयते महति बुद्धिसंज्ञके हाँ ! महान्प्रकृतिमध्यगो भवेत्।६६
सा गुणत्रयमयी च निर्गुणन्तं पुमांसमवगुह्य तिष्ठति ।
पञ्चविंशतिः तमः परः पुमांन्देहगेहपतिरेषजीवकः ॥६७

'श्म'—इस शब्द से शव अर्थात् मृतक के शरीर को कहा गया है और 'शान'—यह शब्द शयन के लिए कहा जाया करता है। हे मुने ! शब्दों के अर्थ के मनीषी लोग श्मशान शब्द के अर्थ का इसी प्रकार से निर्वचन किया करते हैं। प्रलयकाल समुपस्थित होने पर महान् भूत गण भी यहाँ पर शव होकर शयन किया करते हैं। इसलिए यह महान् श्मशान है।६३।६४। यहाँ पर लय के समय में यह भूमि जल में लय को प्राप्त हो जाया करती है। यह जल उर्वी के बदन की परमोग्र कन्दराओं में चला जाया करता है। महान् तनूनपात वायु में लीन होता है और सद्गति अर्थात् वायु आकाश से लय को प्राप्त हो जाया करता है यह व्योम भी अहङ्कार में लीन होता है और सोलह विकारों से संयुत वह भी बुद्धि संज्ञक महान् में लय को प्राप्त होती है। यह महत्व बुद्धि और प्रकृति के मध्य में गमन वाला है। वह त्रिगुणमयी प्रकृति निर्गुण पुरुष में अवगूहित होकर स्थित रहा करती है। इन पच्चीस और तमसे पर देह गेह का पति महा पुमान् जीवक है।६६।६७।

प्राकृतः प्रलयः एष उच्यते हंसय।नहरिरुद्रवर्जितः।
कालमूर्त्तिरथ तञ्च पुरुषं हेलया कलयतीश्वरः परः ॥६८
स वै महाविष्णुरितीर्यं ते बुधैस्त वै महादेव मुदाहरन्ति।
सोऽन्तादिमध्यैःपरिवर्जितःशिवःसश्रीपतिःसोऽपिहिपार्थतीपति
दैनन्दिनेऽथ प्रलये त्रिशूलकोटौ समुत्क्षिप्य पुरीं हरः स्वात्।
विभर्त्तिसर्वत्रमहास्थिभूषणस्ततोहिकाशीकलिकालवसिता॥
वाराणसीति काशीति रुद्रावास इति द्विज !।
महाश्मशानमित्येबं प्रोक्तमानन्दकानम् ॥७१
इति देवीपुरः प्रोक्तं देवदेवेन शम्भुना।
यथा विष्णोः पुराख्यात तथैब च मयाश्रुतम् ॥७२
तच्च त्वदग्रे कथितं रहस्यं काशिजं महत्।
जप्त्वाध्यायमं पुण्यं महापातकनाशनम् ॥७३

श्रावयित्वा द्विजान्सम्यक् शिवलोकेमहीयते।
अतः परं कलशज ! किमुश्रूषसितद्वद ॥७४
काशीकथा कथ्यमाना ममाऽपि परितोषकृत् ॥७५

ब्रह्म---हरि और रुद्र से वर्जित यह प्राकृत प्रलय कहा जाता है। उस पुरुष को यह काल मूर्ति पर ईश्वर हेला ही से कलन किया करता हैं। वह ही बुधों के द्वारा महा विष्णु—इस शुभ नाम से पुकारा जाया करते हैं और उनको महादेव कहा करते हैं। वह अन्त-आदि और मध्य से रहित—श्री के स्वामी शिव हैं और वह ही पार्वती के पति हैं। वे हर इस दैनन्दिन प्रलय में अर्थात् दिनों दिन में होने वाली प्रलय में अपनी पुरी को त्रिशूल की कोटि में समुत्क्षिप्त करके सवर्त्तमहास्थि भूषण प्रभू धारण किया करते हैं। तभी से यह काशी काल के काल से वर्जित है। भगवान् स्कन्द ने कहा—हे द्विज ! इस पुरी के कई शुभ नाम हैं—वाराणसी—काशी—रुद्रावास—महाश्मशान और आनन्द कानन कहे गये हैं। यही देवों के देव भगवान शम्भु ने देवी के आगे कहा था। पहिले जिस प्रकार से विष्णु के सामने कहा गया था और मैंने जो उसी भाँति श्रवण किया था वहीं मैंने काशी में उत्पन्न होने वाला महान् रहस्य आपके सामने कह दिया था। इस परम पुण्यमय अध्याय का पाठ करके महापातकों का नाश हो जाता है। द्विजों को इस अध्याय का भली-भाँति श्रवण कराकर शिवलोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है। हे कलशज ! इस से आगे आप क्या सुनना चाहते हैं—यह मुझे बतलाईए। यह कथ्यमान काशी की कथा मुझको भी महान् परिमोष के करने वाली होती है।६८।७५।

५२—ज्ञानवापीमाहात्म्य वर्णन

स्कन्द ! ज्ञानोदतीर्थस्य माहात्म्यं वद साम्प्रतम्।
ज्ञानवापीं प्रशसन्ति यतः स्वर्गोकसोप्यलम् ॥१
घंटोद्भव महाप्राज्ञ ! शृणु पापप्रणोदिनीम्।
ज्ञानवाप्याः सप्रत्पतिं कथ्यमानां मयाधुना ॥२

अनादिसिद्धे संसारे पुरा देवयुगे मुने ।
प्राप्तः कुतश्चिदीशानश्चरन्स्वैरमितस्ततः ॥३
न बर्षन्ति यदाभ्राणि न प्रावर्तन्त निम्नगाः ।
जलाभिलाषी न यदास्नानपादिकर्मणि ॥४
क्षारस्वादूदयोरेव यदासीज्जल दर्शनम् ।
पृथिव्वाँ नरसंचारे वर्तमाने क्वचित्क्वचित् ॥५
निर्वाणकमलाक्षेत्रं श्रीमदानन्दकाननम् ।
महाश्मशानं सर्वेषाँ बीजानाँ परभूषणम् ॥६
महाशयनसुप्तानाँ जन्तूनाँ प्रतिबोधकम् ।
संसारसागरावर्तपनज्जन्तुतरण्डकम् ॥७

महा महर्षि—श्री अगस्त्यजी ने कहा—हे श्री स्कन्दजी ! अब आप कृपया ज्ञानोद तीर्थका माहात्म्य कहिए। इसको ज्ञानवापी कहकर प्रशंसा किया करते हैं जो कि स्वर्गलोक में निवास करने वाले देवों को भी दुर्लभ है। श्री स्कन्द भगवान ने कहा—हे घटोद्भव ! आपकी प्रज्ञा तो बहुत ही अधिक हैं। अब मेरे द्वारा वर्णित इस पापों को हटाने वाली ज्ञानवापी के माहात्म्य का श्रवण कीजिए। हे मुने ! इस अनादि सिद्ध संसार में पहिले देवयुग में इधर-उधर संचरण करते हुये भगवान शम्भु कही से यहाँ पर प्राप्त हो गये थे। जिस समय में मेघ नही बरसते थे, नदियाँ नही वहन किया करती थी और जिस काल में स्नान पानादि कर्मों में कही पर भी जल का अभिलाषा ही नही था। जिस समय में खारी स्वाद वाले जल का ही दर्शन था। पृथ्वी में कही-कही पर मनुष्यों के संचार में ऐसी ही दशा विद्यमान थी। निर्वाण कमला का क्षेत्र, श्रीमान आनन्द कानन, महा श्मशान समस्त बीजों का परम ऊपर क्षेत्र हो रहा था। महा शयन में सुप्त हुए जन्तुओं का प्रति बोध कराने वाला इस संसार सागर के आवर्त्त में पड़े हुए जन्तुओं का तरण्डक यह क्षेत्र था। १–७।

यातायातायिसंखिन्नं जन्तुबिश्राममंडलम् ।
अनेक जन्मगुणिताकर्मसूत्रच्छिदाक्षुरम् ॥८

सच्चिदानन्दनिलयम्परब्रह्म रसायनम् ।
सुखसन्तानजनकम्मोक्षसाधनसिद्धिदम् ॥९
प्रविश्य क्षेत्रमेतत्स ईशानो जटिलस्तदा ।
लसत्त्रिशूल विमल रश्मिजालसाकुलः ॥१०
आलुलोके महालिंग वैकुण्ठपरमेष्ठिनो ।
महामहमिकायां प्रादुरास यदादिता ॥११
ज्योतिर्मयींभिर्मालाभिः परितः परिवेष्टितम् ।
वृन्दैर्वृन्दारकर्षीणाँ गणानाञ्च निरन्तरम् ॥१२
सिद्धानां योगिनांस्तोमैरर्च्यमानं निरन्तरम् ।
गीयमानं चगन्धर्वैः स्तूयमानं च चारणैः ॥१३
अङ्गहारैरप्सरोभिः सेव्यमानमतेकधा ।
नीराज्यमानं सततन्नागीभिर्मणिदीपकैः ॥१४

इस संसार में गमनागमन से अच्छी तरह खिन्न हुए जन्तुओं का विश्राम करने का मण्डप, अनेक जन्मों में संचित किये हुए कर्मों के छेदन करने वाले छूरा के समान, चित्त और आनन्द का निलय, परब्रह्म का रसायन स्वरूप, सुख और सन्तुति का जनक और मोक्ष के साधन की सिद्धि की प्रदान करने वाला यह क्षेत्र है जिस समय में भगवान शम्भु ने जो माथे पर जटायें धारण कर रहे थे। हाथ में शोभित त्रिशूल की विमल किरणों के जाल से समाकुल उन भगवान शिव का स्वरूप था। जिस समय में आदि में बैकुण्ठ परमेष्ठियों का यह महालिङ्ग दिखलाई दिया था और महती अहमहमिका से अर्थात् मेरा ही सबसे आगे हो इस भावना से प्रादुर्भूत हो रहा था। उस समय में यह सभी ओर ज्योतिर्मयी मालाओं से परिवेष्टित था। देवों और ऋषियों के समूहों तथा गणों के द्वारा निरन्तर समर्चित था। सिद्ध योगी आदि के समुदायों से निरन्तर पूज्यमान हो रहा था। गन्धर्वों के द्वारा गीयमान और चरणों के द्वारा स्तूयमान हो रहा था। यह महालिंग अनेक प्रकारों से अप्सराओं के अंगहारों के द्वारा सेव्यमान था और नागस्त्रियों की फणों में रहने वाली

मणियों के दोषों के द्वारा नीराज्यमान हो रहा था अर्थात् नागिनियाँ अपनी मणियों के दीपों से आरती कर रही थीं ।८।१४।

विद्याधरीकिन्नरीभिस्त्रकालं कृतमंडनम् ।
अमरोरुनरीराजिवीज्यमानमितस्ततः ॥१५
अस्येशानस्य तल्लिगं दृष्टेच्छेत्यभवेत्तदा ।
स्नपयामि महल्लिगं कलशैः शीतलेर्जलैः ॥१६
चखान चत्रिशूलेन दक्षिणाशोपकंकंठतः ।
कुण्डं प्रचण्डं वेगेन रुद्रोरुद्रवपुर्धरः ॥१७
पृथिव्यावरणाम्भासि निष्क्रान्तानि सदा मुने ! ।
भूप्रमाणाद्दशगुणैर्यैरिवं वसुधावृता ॥१८
तैर्गलैः स्नापयाञ्चक्रे त्वस्पृष्टैरन्यदेहिभिः ।
तुषारैजडिच विधुरैर्जञ्जपूकौघहारिभिः ॥१९
सन्मनोभिरिवात्यच्छैरनच्छैर्योमवर्त्मवत् ।
ज्योत्स्नावदुज्ज्वलच्छायैः पावनैः शम्भुनामवत् ॥२०

विद्याधारी और किन्नरियों के द्वारा तीनों कालों में उस महालिग का अलङ्करण और मण्डन किया जा रहा था। देवाँगनाओं की चमरियों के समूह से इधर-उधर वीज्यमान था अर्थात् दोनों ओर चमर ढुराये जा रहे थे। इस ईशान के उस लिंग को देखकर इनकी भी इच्छा ऐसी उस समय में समुत्पन्न हो-गई थी कि महालिग भी शीतल जल से परि-पूर्ण कलशों से स्नपन कराऊँ। उसी समय से दक्षिण दिशा के समीप में भगवान् शम्भु ने अपने त्रिशूल के द्वारा खनन किया था। रुद्र वपु के धारण करने वाले रुद्रदेव ने बड़े वेग से एक परम प्रचण्ड कुण्ड तैयार कर दिया था। हे मुने ! उस समय में पृथ्वी के आवरण जल निकले थे। वह वसुधा भूप्रमाण के दशगुने जलों से समावृत हो गई थी। पापों के समूहों का हरण करने वाले अन्य देह धारियों के स्पर्श से रहित, तुषार और जाड्य विधुर उन जलों से स्नपन कराया था। ये जल सत्पुरुषों के मन की भाँति स्वच्छ थे तथा व्योम मार्ग के तुल्य अनच्छ थे चाँदनी के

समान अत्यन्त उज्ज्वल कान्ति वाले थे एवं भगवान् शम्भु के नाम के सदृश परम पावन थे ।१५।२०।

पीयूषवत्स्वादुतरैः मुखस्पर्शैर्गवांगवत् ।
निष्पापधीवद्गभीरैस्तरलैः पापिशर्मवत् ॥२१
विजिताब्जमहागन्धैः पाटलामोदमोदिभः ।
अदृष्ट पूर्व लोकानां मनोनयनहारिभिः ॥२२
अज्ञानतापसं तप्तप्राणिप्राणैकरक्षिभिः ।
पञ्चामृतानां कलशैः स्नपनाति फलप्रदैः ॥२३
श्रद्धोपस्पर्शि हृदयलिङ्गत्रितयहेतुभिः ।
अज्ञानतिमिरार्कभैर्ज्ञानदाननिदायकैः ॥२४
विश्वभर्तु रुमास्पर्शसुखाति सुखकारिभिः !
महावभृथसुस्नान महाशुद्धि विधायिभिः ॥२५
सहस्रधारैः कलशैः स ईशानोघटोद्भव ! ।
सहस्रकृत्वः स्नपयामास संहृष्टमानसः ॥२६
ततः प्रसन्नो भगवान्विश्वात्मविश्वलोचनः ।
तमुवाच तदेशानं रुदं रुद्रवपुर्धरम् ॥२७
तव प्रसन्नोऽस्मीशान कर्मणाऽनेन सुव्रत ! ।
गुरुणानन्य पूर्वेण ममाति प्रीतिकारिणा ॥२८
ततस्त्वं जटिलेशान ! वह ब्रूहि तपोधन ! ।
अदेय न तवास्त्यद्य महोद्यमपरायण ॥२९

यह जल अमृत के समान स्वाद वाला, गौ के अंग के सदृश सुख स्पर्श से युक्त, निष्पापबुद्धि के समान गम्भीर और पापी के सुख की भाँति तरल था। विजित अब्ज के समान महान् गन्ध वाला, पाटल के आमोद से आमोदित जो पहले कभी नहीं देखे गये ऐसे लोकों के मन और नेत्रों के हरण करने वाले ये जल थे। अज्ञान तापस को संतप्त प्राणियों के प्राणों की रक्षा करने वाले, फलप्रद पञ्चामृत के कलशी के द्वारा स्नपन से अति पुण्य-फल देने वाले थे। श्रद्धा के उपस्पर्श करने वाले हृदय के लिंगत्रितय के हेतु, अज्ञान रूपी अन्धकार का निवारण करने के लिये

सूर्य के समान, ज्ञान के दान देने वाले, विश्व के भरण करने वाले स्वामी और उमादेवी के स्पर्श से सुखातिसुखकारी, महान् अवभृथ के सुन्दर स्नान से होने वाली शुद्धि के विधायक, सहस्र धाराओं वाले कलशों के द्वारा हे घटोद्भव ! भगवान शम्भु ने सहस्रवार संप्रहष्ट मन वाले होते हुए स्नपन कराया था। इसके अन्तर विश्वलोचन, विश्वात्मा भगवान परम प्रसन्न हुये थे। फिर रुद्र के वपु को धारण करने वाले ईशान उन रुद्र से बोले—हे ईशान ! मैं आपसे प्रसन्न हूँ। हे सुव्रत ! आपके इस कर्म से मुझे बड़ा सन्तोष हुआ है। यह आपका कर्म महान् गुरु है और ऐसे पहले अन्त किसी ने भी नही किया है। यह मेरी अत्यन्त प्रीति का करने वाला है। हे जटिलेशान् ! महान् तपोधन ! आप कोई भी वरदान माँग लो। आज इस समय में मुझे आपसे इतनी प्रसन्नता हुई कि कुछ भी अदेय नही है अर्थात् चाहे जो कुछ भी माँगोगे सो दे दूँगा क्योंकि आप इस महान् उद्यम में परायण हो रहे हैं ।२१।२६।

यदि प्रसन्नो देवेश ! वरयोग्योऽस्म्यह यदि ।
तदेतदतुलं तीर्थं तव नाम्नास्तु शंकर !॥३०
त्रिलोक्यां यानि तीर्थानि भूर्भुवः स्वः स्थितान्यपि ।
तेभ्यो खिलेभ्यस्तीर्थेभ्यः शिवतीर्थमिदं परम् ॥३१
शिवं ज्ञानमिति ब्रु युः शिवशब्दार्थं चिन्तकाः ।
तच्च ज्ञानन्द्रवीभूतेमिहमे महिमोदयात् ॥३२
अतो ज्ञानोदनामैतत्तीर्थ त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
अस्य स्पर्शमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥३३
ज्ञानोदतीर्थ संस्पर्शादश्वमेधफलं लभेत् ।
स्पर्शनाचमनाभ्याञ्च राजयुयाश्वमेधयोः ॥३४
फल्गुतीर्थे नरः स्नात्वा सन्तर्प्य च पितामहान् ।
यत्फयसमवाप्नोति तदत्रश्राद्धकर्मणा ॥३५

ईशान ने कहा—हे देवेश ! यदि आप मुझ पर परम प्रसन्न हैं और मैं यदि वरदान देने के योग्य आपका पात्र बन गया हूँ तो हे शङ्कर ! यह आपके ही शुभ नाम से एक अतुल, अनुपम तीर्थ हो जावें। भगवान

विश्वेश्वर ने कहा—इस त्रिलोकी में जो भी भूर्भुवः स्वः में स्थित भी तीर्थ हैं उन समस्त तीर्थों से यह शिव तीर्थ परम शिरोमणि तीर्थ होगा ।३०।३१। 'शिव'—इस शब्द के अर्थ के चिन्तन करने वाले लोग शिव का ज्ञान ही कहा करते हैं। वही ज्ञान द्रवीभूत हो गया है और यहाँ पर मेरी महिमा के उदय होने से ही है। अतएव यह तीर्थ ज्ञानोद नाम से ही त्रैलोक्य में विश्रुत होगा। इसके स्पर्श मात्र से मनुष्य समस्त प्रकार के घोर पापों से भी मुक्त हो जाया करता है। इस ज्ञानोद तीर्थ के संस्पर्श मात्र से ही मानव अश्वमेध यज्ञ के फल को प्राप्त कर लेता है। स्पर्शन और आचमन से राजसूयं यज्ञ और अश्वमेध दोनों का फल प्राप्त कर लिया करता है। गया में फल्गुतीर्थं में स्नान, करके तथा अपने पितरों का भली भाँति तर्पण करके जो फल प्राप्त किया करता है। वह ही फल यहाँ पर श्राद्ध कर्म करने से प्राप्त हो जाया करता है।३२।३५।

गुरुपुष्यासिताष्टभ्यां व्यतीपातो यदा भवेत् ।
तदात्र श्राद्धकरणाद्गयःकोटिगुण भवेत् ॥३६
यत्फलं समवाप्नोति पितॄन्सन्तर्प्य पुष्करे ।
यत्फलं कोटिगुणितं ज्ञानतीर्थे तिलोदकैः ॥३७
सन्निहन्तां कुरुक्षेत्रे तमोग्रस्ते विवस्वति ।
यत्फलं पिण्डदानेन तज्ज्ञानोदे दिने दिने ॥३८
पिण्डनिर्वपणं येषां ज्ञानतीर्थेसुतैः कृतम् ।
मोदन्ते शिवलोके ते यावदाभूत संप्लवम् ॥३९
अष्टम्यांचतुर्दश्यामुपवापी नपोत्तमः ।
प्रातः स्नात्वाऽथ पीताम्भस्त्वन्तर्लिगमयो भवेत् ॥४०
एकादश्यामुपोष्यात्रप्राश्नातिचुलुकत्रयम् ।
हृदयेतस्य जायन्ते त्रीणिलिंगान्यसंशयम् ॥४१
ईशानतीर्थेय स्नात्वा विशेषात्सोमवासरे ।
सन्तर्प्य देवर्षि पितृन्दत्त्वानं स्वशशितः ॥४२
ततः समर्च्य श्रीलिंग मद्दासंभारविस्तारैः ।
अत्रापि दत्ता नानार्थान्कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥४३

गुरुवार से युक्त शुक्ल पक्ष की पुण्य समन्वित अष्टमी तिथि में जब व्यतीपात हो उस समय में यहाँ पर श्राद्ध करने से गया में किये गये श्राद्ध से करोड़ गुना फल प्राप्त होता हैं। उसी फल को पुष्कर में पितृगण का सन्तर्पण करके प्राप्त किया करता है। वही फल ज्ञान तीर्थ में तिलोदक के द्वारा करने पर करोड़ गुना हो जाया करता है।३६।३७। सन्निहति में कुरुक्षेत्र में सूर्य के तमोग्रह होने पर अर्थात् उपराग के अवसर में पिडों के दान से जो फल प्राप्त हुआ करता है वही फल ज्ञानोद में दिन-दिन में होता है। जिनके पुत्रों ने इस ज्ञान तीर्थ में पिण्डों का निर्वपण किया है वे सव शिव लोक जब तक भूत सप्लव होता है तब तक आनन्द का लाभ प्राप्त किया करते हैं। अष्टमी तिथी में और चतुर्दशी तिथि में उपवास करने वाला श्रेष्ठ पुरुष प्रातःकाल में स्नान करके इसके जल का पान करता है। वह अन्तर्लिङ्गमय ही हो जाया करता है।३८।४०। एकादशी तिथि में उपवास करके यहाँ पर जो तीन चुल्लू जल का अशन किया करता है उसके हृदय में विना किसी संशय के तीन लिंग उत्पन्न हो जाया करते हैं। इस ईशान तीर्थ में विशेष रूप से सोमवार के दिन में स्नान करके अपने पितृगणों को और देव तथा ऋषियों का भली भाँति तर्पण करके अपनी शक्ति के अनुसार दान दिया करता है और इसके अनन्तर महान् सम्भार से युक्त विस्तार वाले उपचारों के द्वारा श्री लिंग का अर्चन किया करता है और यहाँ पर भी नाना अर्थों को देकर मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है।४१।४३।

उपास्य सन्ध्यां ज्ञानोदे यत्पापं काललोपजम्।
क्षणेनतदपाकृत्य ज्ञानवान् जायते द्विजः ।।४४
शिवतीर्थमिदं प्रोक्तं ज्ञानतीर्थमिदं शुभम्।
तारकाख्यामिदं तीर्थं मोक्षतीर्थं मिदं ध्रुवम् ।।४५
स्मरणादपि पापौधो ज्ञानोदस्य क्षयेद्ध्रुवम्।
दर्शनात्स्पर्शनात्स्नानास्नत्पनाद्धर्मादि सम्भवः ।।४६
डाकिनीशाकिनीभूतप्रेतवेतालराक्षसाः।
ग्रहा कूष्माण्डझोटगाः कालकर्णी शिशुग्रहाः ।।४७

ज्वरापस्मारविस्फोट द्वितीयकचतुर्थका: ।
सर्वे प्रशममायान्ति शिवतीर्थजलेक्षणात् ॥४८
ज्ञानोदतीर्थं पानीयैर्लिगं य: स्नापयेत्सुधी: ।
सर्बतीर्थोदकैस्तेन ध्रुव संनापितम्भवेत् ॥४९

इस ज्ञानोदय तीर्थ में सन्ध्या की उपासना करके मनुष्य काल के लोप से समुत्पन्न पाप को एक ही क्षणमात्र में दूर करके द्विज ज्ञानवान् हो जाया करता है । यह शिव तींर्थ कहा जाता है और इस शुभ तीर्थ को ज्ञान तीर्थ भी कहा गया है । इस तीर्थ का नाम तारक तीर्थ भी है और यह तीर्थ निश्चित रूप से मोक्ष के देने वाला मोक्ष तीर्थ है । पापी का समुदाय इस ज्ञानोद तीर्थ के स्मरण करने ही से निश्चय क्षय को प्राप्त हो जाया करता है । इसके दर्शन से- स्पर्शन से और पान से धर्म आदि की समुत्पत्ति हुआ करती है ।४४।४६। डाकिनी, शाकिनी, भूत, प्रेत, बेताल, राक्षस, ग्रह, कुष्माण्ड, झोटिंग-काल कर्णी, शिशुग्रह, ज्वर अपस्मार, विस्फोट, द्वितीयक और चतुर्थक, अर्थात् चौथेयाज्वर—ये सभी शिव के तीर्थ के जल के ईक्षण दर्शन से प्रथम को प्राप्त हो जाया करते हैं ।४७।४८। जो सुधी पुरुष इस ज्ञानोद तीर्थ के जल से लिंग स्नपन कराया करता है उसने मानो समस्त तीथों के जल से ही निश्चित रूप से स्नपन करा दिया है अर्थात् अन्य सभी तीर्थों के जल से स्नपन का पुण्य फल प्राप्त उसे हो जाया करता है ।४९।

ज्ञानरूपोऽहमेवात्र द्रवमूर्ति विधाय च ।
जाड्यविध्वंसनंकुर्यां कुर्यां ज्ञानोपदेशनम् ॥५०
इति दत्वावराञ्छम्भुस्तत्रैवान्तरधीयत ।
कृतकृत्यमिवात्मानं सोप्यमंस्तत्रिशूलभृत् ॥५१
ईशानो जटिलो रुद्रस्तत्प्राश्य परमोदकम् ।
अवाप्तवात् परं ज्ञानं येन निर्वृ तिमाप्तवान् ॥५२
अलक्षा मोक्षलक्ष्मीर्या वेदान्ते परिपठ्यते ।
विमुक्तये सतां सैषा क्षीमती मणिकर्णिका ॥५३

मरणं मंगलं यत्र सफलं यत्र जीवितम् ।
स्वर्गस्तृणायते यत्र सैषा श्रीमणिकर्णिका ॥५४
यत्र सम्पत्तिसम्भाराविश्वाश्राण्य निधनेच्छया ।
यतिव्रतं समालम्ब्य तिष्ठते मूलकन्दभुक् ॥५५
यत्र त्रिमार्गगां गंगां मार्गमाणो मृतान्हरः ।
स्वमौलिं भालचन्द्रेण मुक्तिमार्गं प्रदर्शयन् ॥५६

यहाँ पर इस तीर्थ में ज्ञान वाला मैं ही हूँ और और द्रव मूर्ति धारण करके मैं जड़ता का विध्वस किया करता हूँ तथा ज्ञान का उपदेश भी दिया करता हूँ ।५०। ये इस प्रकार से भगवान शम्भु वरदान प्रदान करके वही पर अन्तर्धान हो गये थे । वह त्रिशूल धारण करने वाले भी अपने आपको परम कृत कृत्य मानने लगे थे । ५१ । ईशान जटाधारी रुद्रदेव ने उस परम पुण्यमय जल का पान करके परमोत्कृष्ट ज्ञान की प्राप्ति की थी जिससे वह निवृति को प्राप्त हो गये थे । ५२ । अलक्ष्मी के साथ जो मोक्ष लक्ष्य वेदान्त में पढ़ी जाया करती है। वह यह श्रीमती मणिकर्णिका सत्पुरुष की विमुक्ति के लिए होती है । जहाँ पर मरना भी परम मंगल होता है जहाँ पर जीवित भी सफल होता है । जहाँ का ऐसा प्रवल पुण्य का प्रभाव होता है कि स्वर्ग भी उसके सामने एक तुच्छ तिनके समान होता है ऐसी यह श्री मणिकर्णिका है । जहाँ पर सम्पत्ति के सम्भारों को विसर्जित करके निधन की इच्छा से गति के व्रत का समालम्बन करके मूल और कदों को उपभोग कर स्थित रहा करता है । यहाँ पर त्रिमार्गों में गमन करने वाली गंगा का अन्वेषण करते हुए भगवान हर मृतों को अपने मस्तक में स्थित बाल चन्द्र के द्वारा मुक्ति के मार्ग का प्रदर्शन कराया करते हैं ।५३।५६।

संसारं यत्र दुर्वारं प्रतारयति शङ्करः ।
मृता अप्यमृतायन्ते कर्णधाराद्यतो नराः ॥५७
संसारसारपदवी यत्रस्याददवीयसी ।
कर्णे जपान्महेशानात्करुणावरुणालयात् ॥५८

अनेकभवसम्भूतप्रभूतसुकृतैर्नरा ।
कर्णे जपं भवं यत्र लभन्ते ते भवापहम् ॥५९
स्वीकृत्य क्षेवसंन्यासं यदुबलेन महाधियः ।
तृणं कृतान्तं मन्यन्ते सेयं मणिकर्णिका ॥६०
तृणीकृत्य निज देहं यत्र राजर्षिसत्तमः ।
हरिश्चन्द्रः सपत्नीको व्यक्रीणाद् भूरियंहिसा ॥६१
अ· लष्यन्ति यत्रत्यमपिबैकुण्ठवासिनः ।
सैकतं मृदुलं तल्पं सैषा श्रीमणिकर्णिका ॥६२
अनेकजन्मजनतिकर्मसूत्रनियन्त्रणम् ।
उन्मुच्य यत्रसुक्ताः स्युः सैषा श्रीमणिकर्णिका ॥६३

यहाँ संसार अतीव दुर्त्तार और भगवान्—शङ्कर इससे तार दिया करते हैं इस मणिकर्णिका का ऐसा महान् प्रभाव है कि मरे हुये नर भी अमृत हो जाया करते हैं । देव स्वरूप बन जाते हैं और मोक्ष के अधिकारी हो जाया करते हैं । जहाँ पर संसार के सार की पदवी अदवीयसा होती है । कार्य में जप से प्रभाव से करुणा के सागर महेशान में संसार से मुक्त हो जाया करते हैं किन्तु मनुष्य जहाँ पर भव के अपहरण करने वाले कर्ण में जप करने वाले भव अनेक जन्मों में समुत्पन्न बहुत से सुकृतों से ही प्राप्त किया करते हैं । महान् बुद्धिशाली लोग जिसके बल से क्षेत्र सन्यास को स्वीकार करके यमराज को तुच्छ तिनके के समान ही माना करते हैं यह ऐसी श्रीमणिमर्णिका है । जहाँ पर राजर्षियों में परमश्रेष्ठ हरिश्चन्द्र ने अपने देह को तृण के तुल्य समझकर पत्नी के सहित बेच डाला था, यह वह ही परम पावन भूमि है ।५७।६१। जहाँ के परम मृदु बालुका की शय्या को बैकुण्ठ में निवास करने वाले भी चाहा करते हैं वही यह मणिकर्णिका है ।६२। अनेक जन्मों में समुत्पन्न कर्मों के सूत्र के निमन्त्रण का उन्मोचन कर जहाँ पर मनुष्य मुक्त हो जाया करते है यह वही मणिकर्णिका है ।६३।

सत्यलोकेऽपि येलोकास्तेऽर्थयन्ति निरन्तरम् ।
या महादीर्घनिद्रायै सेय श्रीमणिकर्णिका ॥६४

अयं हि स कुलस्तम्भो यत्र श्रीकालभैरवः ।
क्षेत्रपापकृतः शास्ति दर्शयंस्तीव्रथातनाम् ॥६५
अन्यत्र विहितम्पापं नश्येत्काशीनिरीक्षात् ।
काश्यां कृतानां पापानां दारुणेयन्तु यातना ॥६६
कपालमोचनं तीर्थमेत्तत्तदपि पावनम् ।
कपालं पतितं यत्र विधेः भैरवपाणितः ॥६७
ऋणत्रयद्विमुच्यन्ते यत्र स्नाता नरोत्तमाः ।
तीर्थंविशुद्धजनकं तदेतद्दणमोचनम् ॥६८
प्रणवाख्यं परं ब्रह्म यत्र नित्यं प्रकाशते ।
प्रणावाख्यं परं ब्रह्म यत्र नित्यं प्रकाशते ।
स पञ्चायतनोपेत ॐकारेशोऽयमदभुतः ॥६९
अश्व उश्चमकारश्च नादो विन्दुश्च पञ्चमः ।
पञ्चात्मकं परं ब्रह्मयत्र नित्यं प्रकाशते ॥७०

जो लोग सत्यलोक में भी रहा करते हैं वे भी निरन्तर इसकी याचना किया करते हैं । जिसको दीर्घ निद्रा के लिए चाहते हैं यह वही श्री मणिकर्णिका है ।६४। यह सकुल स्तम्भ श्री कालभैरव जहाँ पर क्षेत्र में पाप करने वालों पर शासन किया करते हैं और तीव्र यातना को दिखाया करते हैं अन्यत्र किये हुये पाप काशी के निरीक्षण ही से नष्ट हो जाते हैं । किन्तु काशी में रहकर जो पाप किये जाते हैं उनकी यातना अत्यन्त दारुण होती है । एक वहाँ पर कपाल माचन नाम वाला तीर्थ है और वह भी परम पावन होता है, जहाँ पर भैरव के हाथ से विधाता का कपाल गिर गया था । जिस तीर्थ में स्नान किएं हुये नरोत्तम तीनों प्रकार के ऋणों से मुक्त हो जाया करते हैं । इसीलिये विशुद्धि का उत्पन्न करने वाला यह ऋण मोचद तीर्थ है । प्रणव नाम वाला परम ब्रह्म जहाँ पर नित्य ही प्रकाश किया करता है । वह पञ्चायतन से युक्त अद्भुत ॐकारेश होता है । अकार, उकार, मकार, नाद और पाँचवा बिन्दु इस तरह से यह पञ्चात्मक अर्थात् पाँच के स्वरूप वाला परम ब्रह्म जहाँ पर नित्य ही प्रकाश किया करता है ।६५।

एषा कत्स्योदरी रम्या यत्स्नातो मानवोत्तमः ।
मातुर्जातूदरदरीं न विशेदेष निक्तयः ॥७१
त्रिलोचनी य भगवान्कुर्यादेव त्रिलोचनम् ।
निजभक्तं कृपायुक्तस्त्वपि देशान्तरस्थितम् ॥७२
असौ कामेश्वरी देवो यः कामान्पूरयेत्सताम् ।
दुर्वासाअपियत्रापानिजं काममहोदयम् ॥७३
स्वयंलीनो महेशोत्र भक्तकामसमृद्धये ।
तस्मात्स्वलीनसञ्ज्ञास्य देवदेवस्य शूलिनः ॥७४
वाराणस्यां महादेवी यः पुराणेषु पठ्यते ।
क्षेत्राभामिनी भगवांस्तत्प्रासादोऽयमद्भुतः ॥७५
असो स्कन्देश्वरादेवः श्रद्धयायद्विलोकनात् ।
आजन्मब्रह्मचर्यस्य फलमाप्नोति मानवः ॥७६
विनायकेश्वरश्चांय सर्वसिद्धिप्रदायकः ।
यत्सेवया प्रणयन्ति नृणा सर्वं बिनायकाः ॥७७

यह मत्स्योदरी है जो बहुत ही रम्य है और जिसमें स्नान किया हुआ परमश्रेष्ठ मानव फिर अपनी माता से उदर रूपिणी गुफा में कभी प्रवेश ही नहीं किया करता है यह परम निश्चित बात है, अर्थात् निश्चय पूर्वक फिर उसका मोक्ष हो जाने के दूसरा जन्म ही इस संसार में नहीं हुआ करता है ।७१। परमकृपा से युक्त भगवान त्रिलोचन फिर अपने भक्त को चाहे वह किसी भी सुदूर देश-देश में ही स्थित क्यों न हो उसे त्रिलोचन ही बना दिया करते हैं ।७२। यह कामेश्वर देव है जो सत्पुरुषों के कामों का परिपूर्ण उत्तर दिया करते हैं जहाँ पर दुर्वासा ऋषि भी अपनी कामनाओं के महान् उदय को प्राप्त हो गया था ।७३। यहाँ पर अपने भक्त की कामनाओं की समृद्धि के भगवान महेश्वर स्वयं ही लीन रहा करते हैं । इसी कारण से इन देवों के देव भगवान शूली की स्व-लीन'—यह संज्ञा होती है ।७४। वाराणसी से महादेव हैं जो पुराणों में पढ़े जाया करते हैं वह क्षेत्र के पूर्ण अभिमान रखने वाले भगवान् हैं उनका प्रसाद यह अत्यन्त अद्भुत होता है ।७५। यह स्कन्देश्वर हैं । श्रद्धा

से जिनका दर्शन करने से मानव अजन्म ब्रह्मचर्य के धारण करने के फल को प्राप्त कर लिया करता है। ७६। यह विनायकेश्वर हैं जो समस्त प्रकार की सिद्धियों के प्रदान करने वाले हैं जिनकी सेवा करने से मनुष्यों के सभी विघ्न नष्ट हो जाया करते हैं अर्थात् फिर उनको कोई भी विघ्न नहीं हुआ करते हैं।७७।

इयं वाराणसी देवी साक्षान्मुर्तिमयी शुभः ।
यस्या विलोकनात्पुंसाँ भूयो न गर्भसम्भवः ॥७८
रावन्ती वरलिंगस्य महादायतनं त्विदम् ।
यत्र नित्यं महेशानो गोर्यासह विमुक्तिदः ॥७९
एष भृङ्गीश्वरः श्रीमान्महापातकनाशनः ।
जीवन्मुश्चोऽभवद् भृङ्गी यस्य लिंगस्य सेवया ॥८०
चतुर्वेदेश्वरश्चैव चतुर्वेदधरो विधिः ।
लभेद्यद्वीक्षणाद्विप्रो वेदाध्ययनजं फलं ॥८१
यज्ञैः संस्थापितञ्चैतल्लिगं यज्ञ श्वराभिधम् ।
यदर्चनाल्लभेन्मर्त्यः सर्वयागभल महत् ॥८२
पुराणेश्वरनामैतल्लिगमष्टादशांगुलम् ।
अष्टादशानां विद्यानांस्यादाधारोयदीक्षणात् ॥८३
धर्मशास्त्रश्वरश्चाय स्मृतिभिश्च प्रतिष्ठितः ।
स्मृत्यध्ययनजम्पुण्यं यद्विलोकनतो भवेत् ॥८४

यह वाराणसी देवी हैं जो परम शुभ मूर्त्तिमयी साक्षात् देवी है जिनके द्वारा का पुनः गर्भवास में रहने की कोई सम्भावना नहीं रहा करती है।७८। पार्वतीश्वर लिंग का यह महान् आयतन है। जहाँ पर नित्य ही महेशान प्रभु गौरी के साथ विमुक्ति को प्रदान करने वाले विराजमान रहा करते हैं।७९। यह इस क्षेत्र में श्रीमान् भृंगीश्वर हैं जो महान् महापातकों के नाश करने वाले हैं जिस लिंग की सेवा से भृंगी जीवन्मुक्त हो गये थे।८०। यहाँ पर यह चतुर्वेदेश्वर भगवान हैं जो चारों वेदों के धारण करने वाले विधाता स्थित रहा करते हैं जिनके दर्शन करने से ही विप्र वेदों के अध्ययन से समुत्पन्न फल प्राप्त कर

लिया करता है ।८१। यह लिंग यज्ञों के द्वारा संस्थापित किया गया है जो यज्ञेश्वर नाम वाले हैं जिनके अर्चन से मनुष्य सम्पूर्ण भोगों के महान् फलों को प्राप्त कर लिया करता है ।८२। यहाँ पर यह एक पुराणेश्र नाम वाला अठारह अंगुल के प्रमाण वाला लिंग है जिसके दर्शन ही करने से अष्टादश विद्याओं का पूर्ण आधार मनुष्य हो जाया करता है यहाँ पर यह एक धर्मशास्त्रेश्वर प्रभु भी हैं जो स्मृतियों के द्वारा प्रतिष्ठित किये गये हैं। स्मृतियों के अध्ययन से उत्पन्न होने वाला पुण्य उनके दर्शन मात्र से ही प्राप्त हो जाया करता है ।८३।८४।

५३—योगाख्यान वर्णन

वेदानुवचनं ज्ञात्वा ब्रह्मचर्यं तपो दमः ।
श्रद्धोपवासः स्वातन्त्र्यमात्मनो ज्ञानहेतवः ॥१
स हि सर्वैर्विजिज्ञास्य आत्मैवाश्रम वर्तिभिः ।
श्रोव्यस्त्वथमन्तव्योद्दष्टव्यश्च प्रयत्नतः ॥२
आत्मज्ञानेन मुक्तिः स्यात्तच्चयोगादृतेन हि।
स च योगश्चिरं कालमभ्यासादेव सिध्यति ॥३
नारण्यसंश्रयाद्योगो न नाना ग्रन्थ चिन्तनात् ।
न दानैर्नव्रतैर्वापि न तपोभिर्नवा मखै ॥४
न च पद्मासनाद्योगो न वा घ्राणाग्रवीक्षणात् ।
न शौचेन न मौनेन न मन्त्राराधनैरपि ॥५
अभियोगात्सदाभ्यासात्तत्रैव च विनिश्चयात् ।
पुनः पुनर्निर्वेदात्सिध्येद्योगो न चान्यथा ॥६

वेदों के अनुवचन को जानकर ब्रह्मचर्य—तप दम—श्रद्धा उपवास और स्वातन्त्र्य आत्मा के ज्ञान के हेतु हैं ।१। समस्त आश्रमों में रहने वाले लोगों के द्वारा आत्मा ही जानने के योग्य है अर्थात् आत्मज्ञान-प्राप्त करना ही सर्वोपरि होता है। अतएव प्रयत्नपूर्वक आत्मा को श्रवण

करना चाहिये—उसका ही मनन करना चाहिए और उस आत्मा का दर्शन प्राप्त करना चाहिए।२। इसी आत्मा के ज्ञान से मुक्ति हुआ करती है और वह योग के विना नहीं होती है तथा वह योग चिरकाल तक अभ्यास करने से ही सिद्ध हुआ करता है।३। केवल अरण्य में अपना आश्रय बना लेंने मात्र से योग की सिद्धि नहीं हुआ करती है और अनेक ग्रन्थों के चिन्तन करने से भी योग सिद्ध नहीं हुआ करता है। दानों से व्रतों से—तत्पश्चर्याओं से और मखों से भी योग की सिद्धि नहीं है।४। यह योग पद्मासन बाँधकर बैठने से भी सिद्धि नहीं होता और नासिका के अग्रभाग के देखने से भी योग की संसिद्धि नहीं होती है। सोच, मौन, व्रत, और मन्त्रों के समाराध आदि से यह योग सिद्ध नहीं होता है।५। अभियोग से अर्थात् सभी ओर से मन को हटाकर एक निष्ठ उनकी वृत्ति के करने से—निरन्तर उसका ही अभ्यास करने से पूर्णरूप से निश्चय करने से तथा बारम्बार निर्वेद से ही इस योग कीं सिद्धि हुआ करती है, अन्य किसी भी प्रकार से यह कभी भी सिद्ध नहीं होता है।६।

आत्मक्रीडस्यसततं सदात्म मिथुनस्य च।
आत्मन्मेव सुतृप्तस्य योगसिद्धिरदूरतः ॥७
अत्रात्मव्यतिरेकेण द्वितीय यो न पश्यति।
आत्मारामः स योगींन्द्रो ब्रह्मीभूतो भवेदिह ॥८
संयोगस्त्वात्ममनयोर्योग इत्युच्यते बुधः।
प्राणापानसमायोगौ योग इत्यपि कश्चन् ॥९
विषयेन्द्रियसंयोगो योग इत्यप्यपण्डितैः।
विषयासक्त चित्तानां ज्ञानं मोक्षश्च दूरतः ॥१०
दुर्निवारा मनोवृत्तिर्यावत्सा नातिवर्तते।
किंवदन्त्यपि योगस्य तावन्नेदीयसी कुतः ॥११
वृत्तिहीनं मनः कृत्वा क्षेत्रज्ञे परमात्मनि।
एकीकृत्य विमुच्येत योगयुक्तः स उच्यते ॥१२

वहिर्मुखानि सर्वाणि कृत्वाख्यान्यन्तराणि वै ।
मनस्येवेन्द्रियग्राममंमनश्चात्मनियोजयेत् ॥१३
सर्वभावविनिर्मुक्तं क्षेत्रज्ञं ब्रह्मणि न्यसेतु ।
एतद्ध्यानचयोंगश्च शेषोऽन्यो ग्रन्थविस्तरः ॥१४

निरन्तर अपनी आत्मा के ही साथ क्रीड़ा करने वाले और सदा आत्मा के ही साथ जोड़ा बनाये रखने वाले तथा अपनी आत्मा में ही संतृप्त रहने वाले को योग की सिद्धि दूर नहीं रहा करती हैं ।७। जो अपनी आत्मा के अतिरिक्त दूसरे अन्य किसी को कहीं पर भी नहीं देखा करता है वही आत्माराम अर्थात् आत्मा में रमण करने वाला योगीन्द्र और ब्रह्मीभूत है । आत्मा और मन के साथ संयोग होने का ही नाम बुध पुरुषों के द्वारा योग कहा जाता है । कुछ विद्वानों के द्वारा प्राणवायु और अपान वायु के संयोग को भी योग कहा जाया करता है ।८।६। जो अपण्डित हैं उनके द्वारा विषयेन्द्रिय संयोग भी योग कहा गया है । सिद्धान्त यह है कि जो विषयों में समासक्त चित्त वाले पुरुष हैं जिसको ज्ञान और योग तथा मोक्ष बहुत दूर की वस्तु है तात्पर्य यह है कि उनको यह हो ही नहीं सकता है। यह मन की वृत्ति बहुत ही दुर्निवारण किये जाने वाली है और जब तक यह निवृत्त नहीं होता है तब तक इस योग की किम्बदन्ती भी सन्निकट नहीं होती है। इस मन की वृत्तियों से हीन करके उस क्षेत्रज्ञ परमात्मा में एकीकरण करके जो विमुक्त होता है वही योग युक्त कहा जाता है ।१०।१२। आकाश के अन्तर सब को बहिर्मुख करके और इन्द्रियों के समुदाय को मन में ही निहित कर और फिर उस मन को आत्मा में योजित कर देना चाहिए ।१३। सब भावों से विनिर्मुक्त उस क्षेत्र को ब्रह्म में व्यक्त कर देवे । बस, इतना ही ध्यान और योगशास्त्र है । शेष अन्य जो इस विषय में लिखा या कहा गया है वह सभी ग्रन्थों का विस्तार मात्र है । सार एवं तत्व की वस्तु तो केवल इतनी ही होती है ।१४।

यन्नास्ति सर्वलोकेषु तदस्तीति विरुध्यते ।
कथ्यमानं तदन्यस्त वदयेंनावतिष्ठते ॥१५

स्वसंवेद्य हि तद्ब्रह्म कुमारी स्त्रीसुखं यथा ।
अयोगीनैतद्वेत्ति जात्यन्ध इव वर्तिकाम् ॥१६
नित्याभ्यसनशीलस्य स्वसंवेद्यं हि तद्भवेत् ।
तत्सूक्ष्मत्वादनिर्देश्यं परं ब्रह्म सनातनम् ॥१७
क्षणमप्येकमूदकं मथानस्थिरतामियात् ।
वाताहतं यथाचित्तं तस्मात्तस्य न विश्वसेत् ॥१८
अतोऽनिलं निरुन्धीत चित्तस्वस्थैर्य हेतवे ।
मरुन्निरोधनार्थाय षडङ्गं योगमभ्यसेत् ॥१९
आसनं प्राणसंपोधः पत्याहारश्च धारणा ।
ध्यानं समाधिरेतानि योगांगानि भवन्तिषट् ॥२०
आसनानीह तावन्ति यावन्त्यो जीवयोनयः ।
सिद्धासनमिदं प्रोक्तं योगिनो योगसिद्धदम् ॥२१

जो सयस्त लोगों में नहीं है वह ऐसा जो कथन है वही विरुद्ध होता हूँ । यह अन्य का कथ्यमान हृदय में कभी भी अवस्थित नहीं हुआ करता है ।१५। जिस प्रकार से कुमारी स्त्री का सुख होता है उसी प्रकार से ब्रह्म स्वसंवेद्य ही होता है अर्थात् उसके आनन्द का अनुभव अपने ही द्वारा करने के योग्य हुआ करता है । जो योगी नहीं वह उस ब्रह्मानन्द को कभी भी नहीं जानता है जिस तरह से जन्मान्ध पुरुष वर्त्तिका का ज्ञान नहीं रखता है । जो नित्य ही अभ्यास करने के स्वभाव वाला होता है उसे स्वयं वह जानने के योग्य होता है । परब्रह्म इतना सूक्ष्म है कि उस सनातन का निर्देश किया जा सकता हैं । जिस प्रकार से वायु से आहत जल एक क्षण भी यथा स्थान पर स्थिर नहीं रहा करता है उसी भाँति ठीक इस मानव के चित्त की दशा हुआ करती है । अतएव इस महा चञ्चल चित्त का कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिये । इसलिये इस चित्त की स्थिरता के लिये प्राण वायु का विरोध करे अर्थात् प्राणायाम करना चाहिए । इस वायु के विरोध करने के लिए षडंग (छय अंगों वाले) योग का अभ्यास करे ।१६।१९। वे छह अंग ये हैं—आसन—प्राणायाम—प्रत्याहार—धारणा—ध्यान और समाधि

।२०। यहाँ पर उतने ही आसन होते हैं जितनी ये जीव योनियाँ हुआ करती हैं। योग की सिद्धि को प्रदान करने वाला यह सिद्धासन कहा गया है।२१।

एतदभ्यसनान्त्यि कर्मदाड्य मवाप्नुयात् ॥२२
दक्षिणं चरणं न्यस्य वामोरूपरि योगवित्।
याम्योरूपरि वामं च पद्मासनमिदं विदुः ॥२३
कराभ्यां धारयेत्पश्चादंगुष्टौ दृढबन्धवित्।
भवेत्पद्मासनादस्मादभ्यासद् दृढविग्रहः ॥२४
अथ बाह्यासने यस्मिन्सुखमस्योपजायते।
स्वस्तिकादौ तदभ्यास्य योगं युञ्जीत योगवित् ॥२५
न तोय वह्नि सामीप्ये न जीर्णारण्य गोष्ठयोः।
नदे शेमशकाकीर्णे न चैत्येन च चत्वरे ॥२६
केशभस्म तुषांगारकीकसादिप्रदूषिते।
नाभ्यसेत्पंतिग्रन्धदौ न स्थाने जल संकुले ॥२७
सर्वबाधाविरहिते सर्वेन्द्रियसुखावहे।
मनः प्रसादजनने स्रग्धूपामोदमोदिते ॥२८

इसके नित्य अभ्यास करने से कर्म की दृढ़ता को प्राप्त हुआ करता है।२२। योगा के वेत्ता पुरुष को चाहिए कि अपने दाहिने चरण को बाँये ऊरु के ऊपर रक्खे और याम्य ऊरु के ऊपर बाँये चरण को रक्खे —इसी प्रकार से स्थिति बनाकर बैठने के आसन को पद्मान्सन कहा करते हैं। दृढ़ बन्ध के वेत्ता को पीछे दोनों अंगूठों को हाथों से पकड़ना चाहिए। इस प्रकार के बाँधे हुये पद्मासन के अभ्यासन से दृढ़ विग्रह वाला हो जाया करता है। इसके अनन्तर जिस वाह्यासन में इस अभ्यास को सुख उत्पन्न हो जाता है। फिर स्वस्तिकादि में उसका अभ्यास करके योग के जानने वाले पुरुषों को योग का युञ्जन करना चाहिए।२३।२५। अब योगाभ्यास करने में निषिद्ध स्थलों को बताते हैं—जल के और अग्नि के समीप में कभी योगभ्यास न करे। किसी जीर्ण टूटे-फूटे पुराने मकान में—जंगल में और गोष्ठ में भी योगाभ्यास नहीं करना

चाहिए। जो स्थान देश और मशकों से घिरा हुआ हो उसमें—चैत्य (श्मशान) में—चत्वर (खुले आंगन) में तथा केश, भस्म, तुषाङ्गार तथा कीकस आदि से दूषित स्थान में और दुर्गन्ध दोष वाले स्थल में एवं जनों से समाकीर्ण जगह में कभी योग का अभ्यास नही करना चाहिए। सभी प्रकार की विघ्न-बाधाओं से रहित—सभी इन्द्रियों को सुख देने वाले तथा मन को प्रसन्नता देने वाले और माला, धूप आदि से परम सुगन्धित स्थान में योग का अभ्यास करे।२६।२८।

नातितृप्तः क्षुधार्तो वा नविण्मूत्र प्रवाधितः।
नाध्वखिन्नो न चिन्तार्तो योगं युञ्जीत योगवित् ॥२६
ऊरस्थोत्तानचरणः सव्ये न्यस्योत्तरं करम्।
उत्तानं किञ्चदुन्नम्य वक्त्रं विष्टभ्य चोरसा ॥३०
निमीलताक्षः सत्वस्थो दन्तैर्दन्तान्न सस्पृमेत्।
तालुस्थाचलजिह्वश्च सम्वृतास्यः सुनिश्चिलः ॥३१
सन्नियम्येन्द्रियग्रामं नाति नीचोच्छ्रितासनः।
मध्यमचोत्तमंचाथप्राणायाममुपक्रमेत् ॥३२
चलेऽनिलेचलं सर्वं निश्चले तत्र निश्चलम्।
स्थाणुत्वमाप्नुयाद्योगी ततोऽनिल निरुन्धनात् ॥३३
यावद्देहे स्थितिः प्राणोजीवितं तावदुच्यते।
निर्गते तत्र मरणं ततः प्राण निरुन्धयेत् ॥३४
यावद्बद्धो मरुद्देहे यावच्चेतोनिराश्रयम्।
यावद्दृष्टिभ्रुवोर्मध्ये तावत्काल भयं कुतः ॥३५

अब अभ्यासी को स्वयं कैसा होना चाहिये जब कि वह अभ्यास का आरम्भ करे—यह बताया जाता है—योग के ज्ञाता को योग का युञ्जन करने के समय अत्यन्त तृप्त नहीं होना चाहिए—क्षुधा से वह आर्त्त न हो तथा मल-मूल के उत्सर्ग करने की बाधा से युक्त न हो—मार्ग गमन के खेद से यह युक्त हो अर्थात् श्रान्त न हो और किसी भी चिन्ता से ग्रस्त न होवे। ऐसी परम नितान्त शान्त अवस्था में अवस्थित होकर ही योगाभ्यास करना चाहिये। उरू में स्थित उत्तान चरण वाला

सब्य में उत्तर करके रखकर कुछ ऊँचा उनमित होकर उरःस्थल से मुख की निस्तब्ध करे और आँखें मूंदकर साव में सप्तवस्थित होकर दाँतों को दाँतों से स्पर्श नही करना चाहिये। तालु में स्थित अचल जिह्वा वाला होकर मुख बन्द करके एक दम सुश्चल हो जावे। अपनी समस्त इन्द्रियों पर पूर्ण संयम रखे। आसन जो बैठने का हो वह न तो अधिक ऊँचा हो और न ज्यादा नीचा होवे। फिर मध्यम और उत्तम प्राणा-याम करने का उपक्रम करना चाहिए। इस वायू से चंचल होने पर सभी चलायमान होते हैं और जब यह निश्चल हो जाता है तो सब कुछ निश्चल हो जाया करते हैं। प्राण वायू के निरोध करने पर सब का निरोध हो जाने से योगी स्थाणुता को प्राप्त हो जाता है। सूखे हुए पेड़ के मूल भाग जमीन में कटे या उखड़े वृक्ष को होता है वही स्थाणु है। जब तक इस शरीर में प्राण स्थित रहता है तभी इस देह को जीवित कहा जाता है। इस प्राण वायू के शरीर से निकल जाने पर ही मरण होता है अतएव प्राणों का निरोध करना चाहिये। जब तक यह वायु इस देह में है और जिस समय तक चित्त निराश्रय होता है तथा अब तक भौंहों के मध्य में दृष्टि है तब तक काल का भय कैसे हो सकता है अर्थात् ऐसी दशा में कोई भी काल का भय होता ही नही है।२९।३५।

कालसाध्वसतो ब्रह्मा प्राणायामं सदाचरेत्।
योगिनः सिद्धिमापन्नाः सम्यक् प्राणनियन्त्रणात् ॥३६

मन्दोद्वादशमात्रास्तु मात्रालघ्वक्षरामता।
मध्यमो द्विगुणः पूर्वादुत्तमस्त्रिगुणस्ततः ॥३७

स्वेदं कम्प विषादं च जनयत्क्रमशस्त्वसौ।
प्रथमे न जयेत्स्वेदं द्वितीयेन तु वेपथुम् ॥३८

विषादं हि तृतीयेन सिद्धः प्राणोऽथ योगिनः।
भवेत्क्रमात्सन्निरुद्धः सिद्धः प्राणोऽथ योगिना।
क्रमेण सेव्यमानोऽसो नयते यत्र चेच्छति ॥३९

हठान्निरुद्धप्राणोऽयं रोमकूपेषु निःसरेत् ।
देहं विदारयत्येष कुष्ठादिजनयष्यपि ॥४०

इस दारुण काल के भय से भीत होकर ही ब्रह्माजी प्राणायाम का सदा वरण करते हैं। योगीजन भलींभाँति प्राण वायु का नियन्त्रण करके ही सिद्धि को प्राप्त हुये हैं।३६। मन्द प्राणायाम उसे कहा जाता है जो द्वादश मात्रा वाला होता है और मात्रा लघु अक्षर वाली मानी गई है। मध्यम प्राणायाम इस मन्द के दुगुना अर्थात् चौबीस मात्रा वाला होता है तथा उत्तम प्राणायाम तिगुना हुआ करता है। इसमें छत्तीस मात्रायें होती हैं। यह प्राणायाम क्रम से स्वेद—कम्प और विषाद को उत्पन्न किया करता है। प्रथम में स्वेद पर जय प्राप्त करे। द्वितीय से वेपथु (कम्पन) को जीते और तीसरे से विषाद पर जय प्राप्त करे तभी योगी का प्राण सिद्ध होता है। योगी के द्वारा क्रम से सन्निरुद्ध प्राण सिद्ध हुआ करता है। क्रम से इसका सेवन किया जावे तो यह सेव्य भाव होकर वहीं पर योगी को पहुँचा दिया करता है जहाँ भी यह जाना चाहता है। दूर से निरुद्ध किया हुआ यह प्राणवायु रोमों के छिद्रों से निकलने लगता है। यह फिर देह को विदीर्ण करा दिया करता है और कुष्ठ आदि रोगों को भी उत्पन्न कर दिया करता है ।३७।४०।

तत्प्रत्यायितव्योऽसौ क्रमेणाऽरण्यहस्तिवत् ।
वन्यो गजो गजारिर्वा क्रमेण मृदुतामियात् ॥४१
करोतिशास्तृनिर्देशं न च तं परिलंघयेत् ।
तथा प्राणो हृदिस्तोय योगिनाक्रमयोगतः ।
गृहीतः सेव्यमानस्तु विश्रम्भमुपगच्छति ॥४२
षट्त्रिशदंगुलो हंसः द्रयाणं कुरुते र्वहिः ।
स व्यापसव्यमार्गेण प्रयाणात्प्राणं उच्यते ॥४३
शुद्धमेति यदा सर्व नाड़ीचक्रमनाकुलम् ।
तदैव जायते योगो क्षमःप्राणानिराधने ! ॥४४

दृढासनो यथाशक्ति प्राणं चन्द्रेण पूरयेत् ।
रेचयेदथ सूर्येण प्राणायामोऽयमुच्यते ॥४५
स्रवत्पीयुषधारौघ ध्यायैश्चन्द्रसमन्वितम् ।
प्राणायामेन योगीन्द्रः सुखमाप्नोति तत्क्षणात् ॥४६
रविणा प्राणमाकृष्य पूरयेदौदरौ दरीम् ।
कुम्भयित्वाशनैः पश्चाद्योगोचन्द्रैणरेचयेत् ॥४७
ज्वलज्ज्वलनपुञ्जाभं शीलयन्तुष्मगुं हृदि ।
अनेन याम्यायामेन योगीन्द्रः शर्मभाग्भवेत् ॥४८
इत्थ मासत्रयाभ्यासादुभयायामसेवनात् ।
सिद्धनाडीगणो योगी सिद्धप्राणोऽभिधार्यते ॥४९

क्रम से ही इसका प्रत्यायन करना चाहिए जैसे जंगली हाथी को क्रम से ही इसका प्रस्थापित किया जाया करता है। वन में रहने वाला हाथी अथवा गज का शत्रु क्रम से ही मृदुता को प्राप्त हुआ करते हैं, ।४१। यह फिर अपने ऊपर शासन करने वाले के निर्देश किया करता है और फिर उसके आदेश का उल्लेखन नहीं किया करता है, ठीक उसी भाँति यह हृदय स्थल में स्थित रहने वाला प्राण वायु है, जो योगी के द्वारा योग के अभ्यास से क्रम पूर्वक गृहीत होता है और जब शनैः शनैः यह सेव्यमान हो जाया करता है तो फिर पूर्ण विश्वास को प्राप्त कर लिया करता है। यह छत्तीस अंगुल के परिमाण वाला हंस बाहिर प्रयाण किया करता है। सव्यादस का मार्ग से प्रयाण करने से ही यह प्राण कहा जाया करता है। जिस समय में सम्पूर्ण नाड़ी चक्र अनाकुल होता हुआ शुद्धि को प्राप्त होता है तभी उस समय में प्राण के निरोध करने में योग समर्थ हुआ करता है। आसन पर दृढ़ता से बैठकर यथा-शक्ति चन्द्र के द्वारा प्राण को पूरित करना चाहिए। सूर्य स्वर से प्राण वायु का रेचन करें—यही प्राणायाम कहा जाता है। योगिन्द्र को प्राणायाम के द्वारा स्तव करने वाले अमृत की धारा का समूह चन्द्र से समन्वित का ध्यान करते हुये वह उसी क्षण मे सुख की प्राप्ति किया करता है। सूर्य के द्वारा प्राणों का समाकर्षित करके उदर ही हरी को

पूरित करना चाहिये फिर कुम्भन करके अर्थात् प्राण वायु को रोंककर के वहुत ही धीरे पीछे योंगी को चन्द्र के द्वारा अर्थात् वाँये स्वर के द्वारा रेचन करना चाहिये। देदीप्यमान अग्नि के पुंज की आभा के समान आभा वाले उष्मगु कों हृदय में शीतल करते हुये इस याम्यायाम से योंगीन्द्र कल्याण का अधिकारी होता है। इस प्रकार से तीन मास के अभ्यास से उभय याम (प्रहर) तक सेपन करने से जिसके नाड़ियों का गण सिद्ध हो जाता है वह योगी सिद्ध प्राण वाला कहा है।४२-४६।

यथेष्ट धारणं वायोरनलस्य प्रदीपनम्।
नादाभिव्यक्तिरारोग्यं भवेन्नाडी विशोधनात ॥५०
प्राणोदेहगतोवायुरायामस्तन्निबन्धनम्।
एकश्वासमयीमात्रा प्राणायामो निरुच्यते ॥५१
प्राणायामेऽधमेधर्मः कम्पो भवति मध्यमे।
उतिष्ठेदुत्तमे देहो गद्धपद्मासनो मुहुः ॥५२
प्राणायामैर्दहेद्दोषान्प्रत्याहारेण पातकम्।
मनोधैर्यं धारणया ध्यानेनेश्वरदर्शनम् ॥५३
समाधिना लभेन्मोक्षं त्यक्त्वा धर्मं शुभाशुभम्।
आसनेन वपुर्दाड्यं षडङ्गमिति कीर्तितम् ॥५४
प्राणायामद्विषट्केन प्रत्याहार उदाहृतः।
प्रत्याहारेर्द्वादशभिर्धारणा परिकीर्तिता ॥५५
भवेदीश्वरसङ्गत्यै ध्यानं द्वादशाधारणम्।
ध्यानद्वादशकेनैव समाधिरभिधायते ॥५६

नाड़ियों के त्रिशोधन से जिस तरह वायु के इष्ट का धारण होता है और अनल का दीपन होता है, बाद की अभिव्यक्ति—आरोग्य होते हैं। प्राणवायु देह में गत होता है उसका निवन्ध ही आयम होता है और एक श्वासमयी मात्रा प्राणायाम कहा जाता है। अधम प्राणायाम में धर्म होंता है—मध्यम प्राणायाम में कम्प होता है। और उत्तर प्राणायामों में बद्ध पद्मासन वाला यह देह वार-२ ऊपर कों उठता है। प्राणायामों के द्वारा दोषों कों दग्ध करना चाहिए। प्रत्याहार के द्वारा

पातकों का दाह करें। धारणा के द्वारा मन को धैर्य दे और ध्यान के द्वारा ईश्वर का दर्शन करना चाहिए। समाधि के द्वारा मोक्ष प्राप्त करें और शुभ तथा अशुभ धर्म का त्यागकर देवे। आसन के द्वारा शरीर की दृढ़ता होती है। इस प्रकार से यह षडंग योग का वर्णन कर दिया गया है। बारह प्राणायामों से प्रत्याहार उदाहृत किया गया है बारह प्रत्याहारों से धारणा कही गई है। ईश्वर की संगति के लिये द्वादश धारणाओं का ध्यान होता है अर्थात् ध्यान में बारह धारणायें हुआ करती हैं। बारह ध्यानों के द्वारा समाधि होती है।५०-५६।

समाधेः हरतौ ज्योतिरनन्तं स्वप्रकीशकम्।
तस्मिन्दृष्टे क्रियाकाण्डे यातायात निवर्तते ॥५७
पवने व्योमसम्प्राप्ते ध्वनिरुत्पद्यते महान्।
घण्टादीनाम्प्रवाद्यानां ततः सिद्धिरदूरतः ॥५८
प्राणायामेन युक्तेन सर्वव्याधिक्षयौ भवेत्।
अयुक्ताभ्यासयोगेन सर्वव्याधिसमुद्भवः ॥५९
हिक्काश्वासश्च कासश्च शिरः कर्णाक्षिवेदना।
भवन्ति विविधा दौषाः पवनस्य व्यतीक्रमात् ॥६०
युक्तं युक्तं त्यजेद्वायु युक्तं युक्तं युक्तञ्च पूरयेत्।
युक्तं युक्तञ्च बध्नीयादित्थं सिध्यति योगवित ॥६१
इन्द्रियाणां हि चरतां विषयेषु यदृच्छया।
यत्प्रत्याहरणं युक्तचा प्रत्याहार स उच्यते ॥६२
प्रत्याहरति यः स्वानिकूर्मोङ्गनीवसर्वतः।
प्रत्याहृति विधानेन सस्याद्विगतकल्मषः ॥६३

समाधि से परे स्व प्रकाशक अनन्त ज्योति होती है और उस ज्योति के दर्शन प्राप्त कर लेने पर सम्पूर्ण क्रिया कांड और यातायात निवृत्त हो जाया करता हैं।५७। पवन के व्योम में सम्प्राप्त हो जाने पर महान् ध्वनि उत्पन्न हुआ करती है। यह ध्वनि घण्टा आदि प्रवाद्यों की होती है फिर उससे निकट ही में सिद्धि होती है।५८। युक्त प्राणायाम से समस्त

व्याधियों का क्षय हो जाता है किन्तु अयुक्त योग के अभ्यास योग से सब व्याधियों की समुत्पत्ति हो जाया करती है ।५९। वायु के व्यतिक्रम के होने से हिचकी, श्वांस, खाँसी, सिर दर्द, कानों में पीड़ा और आँखों का दर्द ऐसे अनेक दोप हो जाया करते हैं । ६० । युक्त-युक्त वायु का त्याग करे और युक्त-युक्त ही इसको पूरित करना चाहिए तथा युक्त-युक्त ही इसका बन्धन करे, इसी प्रकार से योग के वेत्ता की सिद्धि हुआ करती है ।६१। यदृच्छा से विषयों में इन्द्रियों के संचरण करने पर जो उनका युक्ति से प्रत्याहरण किया जाता है वही प्रत्याहरण कहा जाता है ।६२। जो अपनी समस्त इन्द्रियों को सभी ओर से कछुए के द्वारा अपने अंगों की समान प्रत्याहरण किया करता है और प्रत्याहार के विधान से जो वह प्रत्याहरण होता है । ऐसा प्रत्याहरण करने वाला पुरुष विगत कल्मष हो जाया करता है अर्थात् उसके सभी पाप क्षीण हो जाते हैं ।६३।

नाभिदेशेवसेद्भानुस्तालुदेशे च चन्द्रमाः ।
वर्षत्यधोमुखश्चन्द्रोग्रसेदूर्ध्वमुखोरविः ॥६४
करणन्तच्चकर्तव्य येन सा प्राप्यते सुधा ।
ऊर्ध्वं नाभिधस्तालुरूर्ध्वं भानुरधः शशी ॥६५
करणं विपरीताख्यमध्यासांदेव जायते ॥६६
काकञ्चुवदास्येन शीतलं शीतलं पिवेत् ।
प्राणं प्राणविधानज्ञो योगी भवति निर्जरः ॥६७
रसनां तालुविवरे निधायोर्ध्वमुखोऽमृतम् ।
धयन्निर्जरताङ्गच्छेदोषण्मासान्न संशयः ॥६८
उर्ध्वजिह्वः स्थिरो भूत्वा सोमपान करोति यः ।
मासार्धेन न सन्देहो मृत्युञ्जयति योगवित् ॥६९
सम्पीडय रसनाग्रेणराजदन्तविल महत् ।
ध्यात्वासुधामयीं देयी षण्मासेनकविर्भवेत् ॥७०

नाभि देश में भानु का निवास होता और तालु देश में चन्द्रमा रहा करता है । चन्द्रमा अधोमुख होकर वर्षा किया करता और सूर्य ऊर्ध्व मुख वाला होकर ग्रसता है । उस कारण को करना चाहिए जिससे

सुधा की प्राप्ति की जाया करे। ऊर्ध्व में नाभि है और अधो भाग में चन्द्रमा है विपतीराख्य कारण अभ्यास से ही हुआ करता है।६४।६६। काक और कौआ की चक्षु के समान मुख से शीतल-शीतल प्राण का पान करे प्राण के विधान का ज्ञाता योगी निर्जर देवता अर्थात् वृद्धता से रहित हो जाया करता है ।६७। तालु के छिद्र से रसना को रखकर उर्ध्वमुख वाला होकर अमृत चयन करते हुए निर्जरता छह मास में ही प्राप्त हो जाता है, इससे कुछ भी संशय नहीं है जो ऊपर की ओर जिह्वा करके स्थिर होकर सोम का पान किया करता है, वह योग का वेत्ता अर्द्ध मास में ही मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लिया करता है, इसमें लेश मात्र भी सन्देह नहीं है। महान् शोभित अन्तविल को रसना से अग्रभाग से सम्पीड़ित करके सुधामयी देवी का ध्यान करके छह मास में ही कवि हो जाया करता है।६८।७०।

अमृतापूर्णदेहस्य योगिनोद्वित्रिवत्सरात् ।
उर्ध्वं प्रवर्ततेरेतोह्यमणिमादिगुणोदयम् ॥७१
नित्यं सोमकलापूर्णं शरीरयस्य योगिनः ।
तक्षकेणापिदष्टस्यविषं तस्य न सर्पति ॥७२
आसनेन समायुक्तः प्राणायामेन संयुतः ।
प्रत्याहारेण सम्पन्नो धावणा मथचाभ्यसेत् ॥७३
हृदये पञ्चभूतानां धारण यत् पृथक्-पृथक् ।
मनसो निश्चलत्वेन धारणासाभिधीयते ॥७४
हरितालनिभां भूमिं सलकारां सवेधसम् ।
चतुष्कोणां हृदि त्यायेदेषास्यात् क्षितिधारणा ॥७५
कण्ठेऽम्बुतत्वमंर्धेन्दुनिभं विष्णु समन्वितम् ।
बकारबीजं कुन्दाभ ध्यायन्नम्बुञ्जयेदिति ॥७६
तालुस्थमिन्द्रगोपाभं त्रिकोणरेफसंयुतम् ।
रूद्रेणाधिष्ठितं तेजोध्यात्वावह्निजयेदिति ॥७७
वायुस्तत्वं भ्रुवोर्मध्ये वृत्तमञ्जनसन्निभम् ।
यम्बाजमोशदैवत्यं ध्यायन्वायुं जयेदिति ॥७८

योगाभ्यास करने वाले योगी के इस अमृत से परिपूर्ण देह का रेत ऊर्ध्व भाग को प्रवृत्त हो जाया करता है और फिर अणिमा आदि अष्ट सिद्धियों के गुणों का उदय हो जाता है ।७१। जिस योगी का नित्य ही सोम की कल्प से परिपूर्ण शरीर होता है उसको यदि साक्षात् स्वयं तक्षक सर्प का दर्शन करे तो भी उसमें विष का सर्पण नहीं होता है। आसन से समायुक्त, प्राणायाम से संयुत, प्रत्याहार से सुसम्पन्न होता हुआ धारणा का अभ्यास करना चाहिये । हृदय में पाँचों भूतों की पृथक्-पृथक् जो धारणा करता है और वह भी मन के परम निश्चलता के भाव से किया जाता है । इसीलिए इसको धारणा कहा जाता है।७२-७४। हरिताल के तुल्य सलकार और सवेधस चतुष्कोण भूमिका हृदया में ध्यान कर, यही क्षिति की धारणा कही जाती है। कण्ठ में अर्ध चन्द्र के समान विष्णु से समन्वित जल का तत्व है । वकार उसका बीज और वह कुन्द के पुष्प की आभा के सदृश आभा वाला है, इस भाँति अम्बु का ध्यान करना चाहिये । इसी से वह अम्बु के ऊपर जय प्राप्त करे ।७५-७६। ताल मे स्थित इन्द्र गोप के समान आभा वाला, त्रिकोण रेफ किसी आभा से युक्त, रुद्रदेव के द्वारा अधिष्ठित तेज का ध्यान करके वह्नि को जीतना चाहिए ।७७। वायु तत्व को दोनों भौंहों के मध्य भाग में अञ्जन के सदृश वृत्ताकार ध्यान करे जिसका संबीज है और ईश देव से वह अधिष्ठित है--इसी रीति से ध्यान करते हुए वायु पर जय प्राप्त करे ।७८।

आकाशञ्चमरीचिवारिसदृश यद्ब्राह्मरन्ध्रस्थित
यन्नथेन सदाशिवेन सहित हकाराक्षरम् ।
प्राणं तत्र विनीय पञ्चघटिकं चिन्तान्वित धारये-
देषा मोक्षकपाटनपटुः प्रोक्ता नभोधारणा ॥७९
स्तम्भनीप्लावनी चैव दहिनी भ्रामणीतथा
शसनीचभवन्ध्येताभूतानांपञ्चधारणाः ॥८०
ध्यैचिन्तायां स्मृतो धातुश्चिन्तातात्वे सुनिश्चला ।
एतद्ध्यानमिह प्रोक्तं सगुणं निर्गुण द्विधा ॥८१

सगुणंवर्णभेदेन निर्गुणंकेवलसम्मतम् ।
समन्त्र सगुणं विद्धि निर्गुणं मन्त्रवर्जितम् ॥८२
अन्तश्चेतो यहिश्चक्षुरवस्थाप्य सुखासनम् ।
समत्वञ्चशरीरस्यन्यानमुद्रातिसिद्धिदा ॥८३
नाश्वमेधेन तत्पुण्यं नच वै राजसूयतः ।
यत्पुण्यमेकध्यानेन लभेद्यागी स्थिरासन. ॥८४
शव्दादीनाञ्च तन्मात्रा यावत्कर्णादिषु स्थिता ।
तावदेव स्मृतं ध्यानं स्यात्समाधिरतः परम् ॥८५
धारणा पञ्चनाडीका ध्याम स्यात्षष्िनाडिकम् ।
दिनद्वादशकेन स्यात्समाधिरिह भण्यते ॥८६

आकाश तत्व मरीचि के बारि तुल्य है जो ब्रह्म रन्ध्र में स्थित है जिसका नाथ भगवान सदाशिव है उन्हीं के सहित वह रहता है। परम शान्त उसका स्वरूप है तथा हकाराक्षर उसका बीज है जिससे वह संयुत है। वहाँ पर पाँच घड़ी तक प्राण को लेजाकर ध्यान से युक्त होता हुआ धारणा करे। यह मोक्ष के कपाटों के पाटन करने में परम कुशल नभकी धारणा कही गई है ।७६। इस रीति से स्तम्भनी, प्लावकी, दहिनी, भ्रामणी और शमनी नामों वाली भूतों की पाँच धारणायें हुआ करती है ध्यै चिन्ता के अर्थ में धातु कहा गया है अतएव यह चिन्तन करने में सुनिश्चल होती है। इसलिए यह ध्यान कहा गया है। यह सगुण का ध्यान और निर्गुण का ध्यान दो प्रकार का होता है।८०। सगुण वर्ष भेद से कहा गया है और निर्गुण का ध्यान केवल माना गया है। सगुण ध्यान मन्त्र के सहित होता है और निर्गुण का ध्यान मन्त्र से वर्जित होता है। चित्त को अन्तर्मुख और चक्षु को बहिर्मुख अवस्थाहित करके सुखासन और शरीर का समत्व जो होता है यही ध्यान की मुद्रा अत्यन्त सिद्धि को प्रदान करने वाली होती है।८१।८२। उस पुण्य को अश्वमेध यज्ञ से तथा राजसूर्य यज्ञ से भी मनुष्य प्राप्त नहीं कर सकता है जिस पुण्य को स्थिरासन वाला होकर एक ध्यान से ही प्राप्त कर लिया करता है

।८३। शब्दादि की तन्मात्रा जब तक कर्णादि में स्थित हैं तभी तक उनको ध्यान कहा गया है इसके पश्चात् तो फिर समाधि की अवस्था प्राप्त हो जाया करती है।८४। धारणा पञ्च नाड़ी वाली होती है और ध्यान साठ नाड़ियों वाला होता है। समाधि बारह दिन की होती है—यहाँ पर ऐसा ही कहा जाता है।८५।

जलसैन्धवयौः साम्यं यथा भवति योगतः ।
तथात्ममनसौरैक्यंसमाधिरिहभण्यते ॥८६
यदासंक्षोयते प्राणो मानसञ्च प्रलीयते ।
तद् समरसत्वं यत्समाधिरिहोच्यते ॥८७
यत्समत्वद्वयोस्त्र जावात्मपरमात्मनोः ।
न नष्टसर्वसंकल्पः समाधिरभिधीयते ॥८८
नात्माननपरंवेत्ति न शीतं नोष्णमेव च ।
समाधियुक्तो योगीन्द्रोनसुखन सुखेतरत् ॥८९
काल्यते नैवकालेन लिप्यते नैव कर्मणा ।
भिद्यतेन च कस्त्रास्त्रंयोगीयुक्तः समाधिना ॥९०
युक्तहारविहारश्च युक्तचेष्टोहि कर्मसुः ।
युक्तनिद्रावबोधक्त योगीतत्वं प्रपश्यति ॥९१

जिस प्रकार से जल और सैन्धव का साम्य योग से होता है उसी रीति से आत्मा और मन का योग अर्थात् एकता का हो जाना हो यहाँ पर समाधि कही जाती है।८६। जिस समय प्राप्त संक्षीण हो जाता है और मानस प्रलीन हो जाया करता है उसी समय में समरसता होती है जिसको यहाँ पर समाधि कहा जाया करता है।८७। जो जीवात्मा और परमात्मा दोनों का यहाँ पर समत्व हो जाता है और जिसमें सभी संकल्प नष्ट हो जाया करते हैं उसी अवस्था का नाम यहाँ पर समाधि कहा जाता है।८८। समाधि में निरत हुआ योगी न तो आत्मा का ज्ञान उसे रहता और न पर को ही जानता है—शील और उष्ण का भी उसे ज्ञान नहीं होता है। समाधि में युक्त योगी को सुख तथा दुःख का भी कुछ ज्ञान नहीं रहा करता है। वह समाधिस्थ योगी काल से काल्याय-

मान नहीं होता है और कर्म से भी लिप्त नहीं करता है। शास्त्रास्त्रों से भी उसका भेदन नहीं किया जा सकता है। समाधि से युक्त रहने वाले योगी का ऐसा ही अद्भुत प्रभाव होता है।८६।६०। जो योगी युक्त आहार और विहार वाला होता है तथा कर्मों में भी युक्त चेष्टाओं वाला रहा करता है एवं युक्त निद्रा तथा उच्च बोध से युत है वही योगी तत्व का साक्षात्कार किया करता है।६१।

तत्वंविज्ञानमानन्दम्ब्रह्माविदोविदुः।
हेतुदृष्टान्तरहितं वाड् मनोभ्यामगोचरम् ॥६२
तत्र योगी निरालम्बे निरातंके निरामये।
षडङ्गयोगविधिना परब्रह्मणि लीयते ॥६३
यथा वृते क्षिप्तं घृतमेव हि तदभवेत्।
क्षीरेक्षीरं तथा योगी तत्रतन्मयता ब्रजेत् ॥६४
अलसं जातपानीयैर्विदघ्यादङ्गमर्दनम्।
त्यजेत्कटुष्णं लवणं क्षीरभोजी सदा भवेत् ॥६५
ब्रह्मचारीजितक्रोधो जितलोभो विमत्सरः।
अव्दमित्थं सदाभ्यसात्स योगीति निगद्यते ॥६६
महामुद्रां नभोमुद्रामुड्डीयानञ्जलन्धरम्।
मूलबन्धतुयोवेत्तिसंयोगीयोगसिद्धिभाक् ॥६७
शोधननाडीजालस्य घटनश्चन्द्रसूर्ययोः।
रसानां कोषणसम्यड महामुदाभिधीयते।६८

ब्रह्म के वेत्ता लोग हेतु और दृष्टान्त से रहित, मन वाणी के अगोचर विज्ञान और आनन्द स्वरूप ब्रह्मतत्व को जानते हैं वही पर योगी निरालम्ब, निरातङ्क निरामय परब्रह्म में षडंग योग की विधी से लीन हो जाया करता है। जिस प्रकार घृत में क्षिप्त हुआ घृत वह घृत हो जाया करता है कोई भी दोनों में भेद नहीं रहा करता है और इसी तरह से क्षीर से क्षिप्त ही हुआ करता है और तन्मयता को प्राप्त हो जाया करता है। बिना आलस्य के जात जलों से अंगों का योगी को मर्दन करना चाहिये। योगी को उष्ण लवण का त्याग कर देना चाहिये और

सव क्षीर का भोजन करने वाला रहना चाहिए। जो सदा ब्रह्मचारी, क्रोध पर विजय प्राप्त करने वाला लोभ को जीत लेने वाला, मत्सरता से रहित होकर एक वर्ष पर्यन्त सदा अभ्यास करने से वह व्यक्ति योगी कहा जाया करता है। जो महामुद्रा, नभो मुद्रा, उड्डीयान, जालन्धर और मूलबन्ध को भली-भाँति जानता है वही योगी योग की सिद्धि का पूर्ण अधिकार हुआ करता है। नाड़ियों के जाल का शोधन और चन्द्र-सूर्य दोनों का घटन, रसों का शोषण जिसके द्वारा हुआ करता है वही महामुद्रा कहा जाया करता है।९२-९८।

योनि वामङ्घ्रिणाऽऽपोढञ्च कृत्वा वक्षस्थले हतुम्।
हस्ताभ्यां प्रसृतम्पादं धारयेद्दक्षिणं चिरम् ॥९९
प्राणेन कुक्षिमापूर्य चिरं संरेचयेच्छनैः।
एषप्रो ता महामुद्रा महाघौघविनाशनी ॥१००
चन्द्रांगे तु समभ्यस्य सूर्यांगे पुनरभ्यसेत्।
यावत्तुल्या भवेत्संख्या ततो मुद्रां विसर्जयेत् ॥१०१
नहि पथ्यापथ्य वा रसाः सर्वेऽपिनीरसाः।
अपिघोर विषम्पीतम्पीयूषमिवजीर्यति ॥१०२
क्षयकुष्ठगदावर्तगुल्माजीर्णपुरोगमाः।
तस्य दोषाः क्षयं यान्ति महामुद्राश्चयोऽभ्यासेत् ॥१०३
कपालकुहरेजिह्वाप्रविष्टाविपरीतगा।
भ्रुवोरन्तर्गतादृष्टिर्मुद्रा भवति खेचरी ॥१०४
न पीडचते शरीघेण न चं लिप्येत कर्मणा।
वोध्यते नू स कालेन यो मुद्रां वेत्ति खेचरीम् ॥१०५

वाम चरण से योनि का सम्पीडन करके और वक्षस्थल में ठोड़ी लगाकर दोनों हाथों से प्रसूत दक्षिण पैर को चिरकाल तक धारण करना चाहिए।९९। प्राण से कुक्षि को आपूरित करके चिरकाल पर्यंत शनैः-शनैः भली भाँति रेचन करें। इसी को महामुद्रा कहा गया है जो कि महान् अघों के ओघ का विनाश करने वाली होती है। इसी प्रकार से चन्द्राग में भली भाँति अभ्यास करके फिर सूर्याङ्ग में अभ्यास करना

चाहिए। जब तक तुल्य संख्या हो तब तक करे फिर मुद्रा का विसर्जन कर देना चाहिए।१००-१०१। न तो कोई पथ्य (हितकर भोजन) है और न कुछ अपथ्य ही है। सभी रस भी नीरस हो जाते हैं। घोर विष भी पिया जावे और उसे पीयूष की ही भाँति जीर्ण कर जाता है। क्षय, कुष्ट, उदावर्त्त, गुल्म और अजीर्ण जिनमें प्रमुख हैं इन समस्त व्याधियों के दोष उस योगाभ्यासी के क्षय को प्राप्त हो जाया करते हैं जो महा-मुद्रा का अभ्यास किया करता है। कपाल के कुहर में जिह्वा प्रविष्ट हुई हो और अविपरीत गमन करने वाली हो तथा दृष्टि दोनों भोंहों के अन्तर्गत जानता है वह शरों के समुदाय से पीड़ित नहीं होता है और न कर्म से ही लिप्त हुआ करता है, उसको काल के द्वारा भी बाधा नहीं दी जाया करती है।१०२-१०५।

चित्तं चरति खे यस्माज्जिह्वा चरति खेगता।
तेनैषा खेचरीनाम मुद्रासिद्धैर्निषेविता ॥१०६
यावद्बिन्दुः स्थितो देहे तावन्मृत्युभयं कुतः।
यावद् वद्धः नभोमुद्रा तावद् बिन्दुर्नगच्छति ॥१०७
उड्डीनंकुरुतेवस्वोदहोरात्रं महाखगः।
उड्डीयानन्तः प्रोक्तं तत्र बन्धो विधीयते ॥१०८
जठरेपश्चिमं तानंनाभेरूर्ध्वञ्चारयेत्।
उड्डीयानो ह्ययस्बन्धो मृत्योरपिभयं त्यजेत् ॥१०९
बध्नातिहिशिराजालमधोगामिनभोजलम्।
एषजालन्धरोवन्धः कण्ठेदुःखौघनाशनः ॥११०
जालन्धरे कृतेबन्धे कण्ठसंकोचलक्षणे।
न पीयूषपतत्यग्नौ च वायुः प्रधावति ॥१११
पार्ष्णिभागेन सम्पीडचयोनिमाकुञ्चयेद्गुदम्।
अपानमूर्ध्वमाकृष्यमूलवन्धोविधीयते ॥११२
अपानप्राणयोरैक्ये क्षयो मूत्रपुरीषयोः।
युवाभवतिवृद्धोऽपि सततम्मूलबन्धनात् ॥११३

खेचरी मुद्रा के अभ्यास करने वाले पुरुष का चित्त तो आकाश में संचरण किया करता है और आकाश में गई हुई जिह्वा भी संचरण किया करती है इसी कारण से इस मुद्रा का नाम खेचरी पड़ गया है और यह मुद्रा सिद्धों के द्वारा निवेषित हुआ करती हैं ।१०६। जब तक इस देह में बिन्दु स्थित रहा करता है तव तक मृत्यु का भय कहाँ है अर्थात् मौत का भय होता ही नहीं है। जब तक नभोमुद्रा वद्ध होती है तव तक बिन्दु नहीं जाया करता है ।१०७। जो महान् खग अहोरात्र उड्डीन को किया करता है इसी कारण से इस मुद्रा को उड्डीयान नाम से कहा गया है। वहाँ पर वन्ध किया जाता है ।१०८। जठर में पश्चिम नाभ को नाभि के उर्ध्व भाग में धारण करना चाहिए। यही उड्डीयान बन्ध होता है जिसे मृत्यु के भी भय को त्याग देना चाहिये ।१०६। अधोगामी नभोजल शिराओं के जाल को बाँध लिया करता है। यही जालन्धर बन्ध होता है जो कण्ठ में दुःखों के ओघ का नाश करने वाला है ।११०। कण्ठ के संकोच लक्षण वाले जानकर बन्ध करने पर न तो पीयूष अग्नि में गिरा करता है और न वायु ही प्रधावन करता है ।१११। 'पार्णि भाग से योनि को सम्पीड़ित करके गुद को आकुंचित' करना चाहिये। अपान वायु को ऊर्ध्व भाग की ओर आकर्षित करना चाहिये। यही मूल बन्ध निहित किया जाता है ।११२। अपान वायु और प्राण वायु इन दोनों की एकता हो जाने पर मूत्र तथा मल का क्षय हो जाया करता है। ज़ो कोई वृद्ध भी होता है तो वह युवा हो जाया करता है यदि निरन्तर इस मूल बन्ध के करने का ऐसा महान् प्रभाव होता है ।११३।

इतियोगः समाख्यातो मयातेद्विविधो मुने ! ।
सषडंग समुद्रश्च मुक्तयेशम्भुभाषितः ।।११४
यावन्नेन्द्रियवैक्लव्यं यावद्व्याधिर्न वाधते ।
यावत्कालंविलम्बोऽस्ति तावद्योगरतो भवेत् ।।११५
उभयोर्योगयोमध्येकाशीयोगोऽयमुत्तमः ।
काशीयोगंसमभ्यस्यवाप्नुयाद्योग मुत्तमम् ।।११६

आधिव्याधिसहायिन्या जरया मृत्युलिंगया।
काल निकटतो ज्ञात्वा काशीनाथं समाश्रयेत् ॥११७

हे मुने ! इस प्रकार से मैंने यह योग दो प्रकार का आपको बतला दिया है। यही योग छह अंगों वाला होता है और उपयुक्त मुद्राओं से भी समन्वित हुआ करता है। भगवान शम्भु ने इसी योग को मुक्ति की प्राप्ति करने के लिए कहा है।११४। जिस समय तक इन इन्द्रियों में विकलता की प्राप्ति नहीं होती है अर्थात् ये विषयों के ग्रहण करने में असमर्थ नहीं होती हैं और जब तक इस शरीर को व्याधियों के द्वारा बाधा नहीं होती हैं तथा जब तक कराल का काल विलम्ब है अर्थात् मृत्यु का समय प्राप्त नहीं होता है तभी तक मनुष्य को योग के अभ्यास करने में रत हो जाना चाहिए।११५। इन दोनों के मध्य में वह काशी का योग अत्यूत्तम होता है। इस काशी के योग का अभ्यास करके उत्तम योग को प्राप्त करना चाहिए। आधि (मानसिक व्यथा) और व्याधि शारीरिक (रोग) जिसकी सहायता करने वाली हैं ऐसी वृद्धता (बुढ़ापा) से जो कि मृत्यु के समीप में होने का एक संकेत है अपने अन्तराल को अति निकट में ही जानकर भगवान काशी के स्वामी श्री विश्वनाथ का समाश्रय ग्रहण करना चाहिए।११६।११७।

५४—दशाश्वमेधमाहात्म्य वर्णनम्

गभस्तिमालिनि गते काशी त्रैलोक्यमोहिनीम्
पुनश्चिन्तामवापोच्चैर्मन्दरस्थोमुनेहरः ॥१
नाद्याप्यायान्ति योगिन्यो नाद्याप्यायाति तिग्मगुः।
प्रवृत्तिरपि मे काश्याश्चित्रमप्यन्तदुर्लभा ॥२
किमत्रचित्रं यत्काशी मदीयमपि मानसम्।
निश्चल चञ्चलयति गणना केतरेसुरे ॥३
अधाक्षिषमहंकामं त्रिजगज्जित्वर दृशा।
अहो काश्यभिलाषोऽत्रमामेवदुनुयात्तराम ॥४

काशीप्रवृत्तिमन्मेष्टुं कम्बा प्रहिणुयामितः ।
ज्ञातुं कएवनिपुणो यतः स चतुराननः ॥५
इत्याहूय विधातारं बहुमानपुरः सरम् ।
तत्रोपवेश्य श्रीकण्ठः प्रोवाच चतुराननम् ॥६
योगिन्यः त्रेषिताः पूर्वंप्रेषितोऽथसहस्रगूः ।
नाद्यापितेनिवर्तन्तेकाश्याः कमलसम्भव ॥७

भगवान श्री स्कन्द ने कहा—हे मुनिवर ! त्रैलोक्य को मोहित करने वाली काशींपुरी में भगवान भास्कर के जाने पर मन्दरगिरि पर समवस्थित भगवान हर पुनः बड़ी भारी चिन्ता को प्राप्त हो गये थे कि आज तक भी योगिनियाँ नहीं आती हैं और तभी तक सूर्य भी नहीं आता हैं । बड़ी विचित्र बात है कि मेरी काशीपुरी की प्रवृत्ति भी अत्यत दुर्लभ है ।१-२। यहाँ हर यह क्या विचित्रता है, कि यह काशीपुरी मेरे निश्चल मन को भी चंचल बना रही है तो फिर दूसरे देवों की तो विचार की गिनती है क्या ? मैंने तीनों जगतों पर विजय प्राप्त कर लेने वाले कामदेव को भी बहुत ही शीघ्र तीसरे नेत्र के द्वारा दग्ध कर दिया था । अहो ! वड़े आश्चर्य की बात है, कि यहाँ पर यह काशी की अभिलाषा मुझको ही अधिक सता रही है । इस काशी की प्रवृत्ति की खोज करने के लिये वहाँ से मैं किस के पास जाऊँ । इसके जानने के लिए कौन ऐसा निपुण हो सकता है । हाँ, वह एक ब्रह्म ही हो सकते हैं । इसीलिए उन्होंने विधाता का समाह्वान किया था । बहुमान पूर्वक ब्रह्माजी को वहाँ पर विठलाकर भगवान श्री कण्ठ ने चतुरानन ब्रह्माजी से पूछा था—हे भगवान ! मैंने पहिले तो योगनियों कों भेजा था और इसके भेजने के पश्चात् सहस्रांशु को प्रेषित वहाँ पर किया था । हे कमल से समुत्पति ब्रह्माजी ! काशीपुरी से वे सब अभी तक भी वापिस लौट कर नहीं आए हैं ।३-७।

ससामुत्सुकयत्काशी लोकेश ममभानसम् ।
प्राकृतस्यजनस्येव चञ्चलाक्षीवकीचन ॥८

मन्दरेऽत्र रतिर्मे न भृशं सुन्दरकन्दरे।
अनच्छतुच्छपानीय नक्रस्येवाल्पपल्वले ॥६
नाबाधिष्टतथामां स तापो हालाहलोद्भवः।
काशीविरहजन्माऽत्र यथामामतिबाधते ॥१०
शीतरश्मिः शिरस्थोऽपिवर्षन्पीपुषसीकरैः।
काशीविश्लेशजंतापं नाहोम्शनयितुं प्रभुः ॥११
विधेविधेहि मे कार्यं माधुर्यं महामते !।
याहिकाशीमितस्तूर्नं यतस्व च ममेहि ते ॥१२
ब्रह्मं स्त्वमेवतवेत्सिकाशीत्यजनकारणम्।
मन्दोपिनत्यजेत्काशीकिमुयोवेत्तिकिञ्चन ॥१३
अद्यैवकिंमगच्छेय काशींब्रह्मन्स्वमायया।
दिवोदासं स्वधर्मस्थं नतूल्लंगितुमुत्सहे ॥१४,

हे लोकेश ! वह काशीपुरी मेरे भी मन में बड़ी उत्सुकता समुत्पन्न किया करती है जैसे कोई चंचल नेत्रों वाली स्त्री प्रकृति (साधारण) मनुष्य के हृदय को चंचल कर दिया करती है। इस सुन्दर कन्दराओं से समन्वित इस मन्दराचल पर भी मेरे मन में अधिक रति नहीं होती है। जैसे मटमैले तुच्छ जलों वाले छोटे पोखरों में नक्र के मन को पूर्ण आनन्द की प्राप्ति नहीं करती है। मैंने जो सागर मन्थन में निकले हुए हलाहल का पान किया था उसका ताप भी मुझे उतनी बाधा नहीं पहुँचाता है जैसा कि यह काशीपुरी के वियोग से समुत्पन्न ताप मुझे अर्थात् मेरे मन को अत्यन्त सन्ताप दे रहा है। मेरे मस्तक पर शीतल किरणों वाला चन्द्र भी साक्षात् विराजमान रहता है जो कि सदा अमृत के सीकरों के द्वारा वृष्टि मेरे ऊपर करता रहता है किन्तु वह भी काशी पुरी के विरह से उत्पन्न होने वाले सन्ताप का शमन में समर्थ नहीं हो रहा है।८-११। हे विधाता ! हे आर्यों में परम श्रेष्ठ ! आप तो महान् मति से सुसम्पन्न हैं। इस समय मेरे इस कार्य को कर दीजिये। यहाँ से आप काशी पुरी चले जाइये और अत्यन्त शीघ्र मेरे हित के सम्पादन करने के लिए यत्न कीजियेगा। हे ब्रह्मन् !

काशी के त्याग का कारण आप ही भली भाँति जानते हैं। कोई मन्द से मन्द पुरुष काशीपुरी का त्याग नहीं किया करता है और जो कुछ भी उसकी महिमा का ज्ञाता है उसकी तो बात ही क्या है अर्थात् वह तो कभी उसे त्याग ही नहीं सकता है। आज ही अभी श्री हे ब्रह्मन्! अपनी माया से काशी क्यों न गमन कर लूँ? किन्तु अपने धर्मं में स्थित दिवोदास का उलङ्घन करने का मैं उत्साह नहीं कर पाता हूँ ।१२।१४।

विधेसर्वविधेयांनित्यमेवविदधोसियत् ।
इतिचेतिचवक्तव्यत्वप्यपार्थमतोऽखिलम् ॥१५
अरिष्टं गच्छपन्थास्ते शुभोदर्को भववलम् ।
आदायाऽऽज्ञां विधिर्मूर्ध्नि ययौ वाराणसी मुदा ॥१६
सिमहंसरथस्तूर्णं प्राप्यवाराणसीं पुरीम् ।
कृतकृत्यमिवात्मानमासन्यत तदात्मभू ॥१७
हंसायानफलं मेऽद्यजातं काशीसमागमे ।
काशीप्राप्तौयतः प्रोक्ता अन्तरायाः पदे पदे ॥१८
दृशिधातुरभूदहशीप्राप्यसान्वयः ।
स्पष्टंदृष्टिपथं प्राप्ता यदेषाऽऽतन्दवाटिका ॥१९
स्वयंजिञ्चतियामाद्भिः स्वामिः स्वर्गतरङ्गिणी ।
यत्रानन्दमयावृक्षायत्रानन्दमयाजनाः ॥२०
र्विशन्ति सदा काश्यां फलान्यनन्दवन्त्यपि ।
सदैवानन्दभूः काशी सदैवानन्ददः शिव ॥२१

हे विधे! आप ही समस्त कर्तव्य कर्मों को किया करते हैं इसी हेतु आपके सेवा में यह कहा जा रहा है, क्योंकि आपके विषय में सभी कुछ अरिष्ट व्यर्थ ही होता है। आप गमन कीजिए। आपका मार्ग शुभ फल दायक होवे। उस समय में ब्रह्माजी ने भगवान शम्भु की आज्ञा का मस्तक पर धारण करके वहुत ही प्रसन्नता के साथ वे वाराणसी पुरी को चले गये थे ।१५।१६। श्वेत हँस का रथ वहुत ही शीघ्र वाराणसी पुरी में पहुँच गया। उस समय वाराणसी पहुँच कर

ब्रह्माजी ने अपने आपको परम कृत-कृत्य माना। ब्रह्माजी ने मन में विचार किया था कि मुझे इस हंसों के यान का वास्तविक फल आज ही प्राप्त हुआ है कि मेरा इस काशीपुरी में सुन्दर समागम हो गया है क्योंकि इस काशी की प्राप्ति करने में कदम-कदम में बहुत से विघ्न कहे गये हैं। यह दृशिधातु मेरे दृष्टि की सार्थकता प्राप्त करके ही ठीक सफल हुई है क्योंकि यह आनन्द की प्रतिमा आज स्पष्ट रूप से मेरी दृष्टि के मार्ग से प्राप्त हो गई है, अर्थात् मैंने अपने नेत्रों से काशीपुरी का दर्शन प्राप्त करके नेत्रों के पाने का फल एवं सार्थकता पा लिया है। यह वाराणसी ऐसी पुरी है जिसका गया स्वयं अपने परम पावन जल से सिञ्चन किया करती है। यह ऐसी नगरी है जहाँ पर सभी वृक्ष भी आनन्द से परिपूर्ण होते हैं और जहाँ पर जन आनन्दमय जीवन व्यतीत किया करते हैं। काशीपुरी में सदा आनन्द वाले भी फल विशेष रूप से प्रवेश किया करते हैं। काशी सदा ही आनन्द की भूमि है और सदा ही आनन्द के प्रदान करने वाले प्रभु शिव है।१७।२१।

आनन्दरूपां जायन्ते तेनकाश्यांहिजन्तवः ।
चरणो चरितु वित्तस्तावेव कृतिनामिह ॥२२
चरणौविचरेतांयो विश्वभतृ पुरोभुवि ।
तावेव श्रवणौ श्रोतु सम्विदाते बहुश्रुतौ ॥२३
इहश्रुतिमतां पुंसांयाभ्यां काशीश्रुतासकृत् ।
तदेवमनुतेसर्वमनस्त्विहमनस्विनाम् ॥२४
येनानुमन्यतेचैषा काशीसर्वप्रमाणधूः ।
बुद्धिर्बुध्यति सा सर्वप्रिहबुद्धिमतां सताम् ।
ययैद्धूर्जटेर्धाम ध्रुवं स्वविषयीकृतम् ॥२५
वरतृणानि धायानि तानि वात्याहतान्यपि ।
काश्यां यान्यापतन्तीह न ज्ञनाः काश्यदर्शनोः ॥२६
अद्यमेसफलञ्चायु परार्मंमयसम्मितम् ।
यस्मिन्सतिमयाप्रापिदृष्प्रापाकाशिकापुरी ॥२७

अहोमेधर्मसम्पत्तिरहोमेभाग्यगौरवम् ।
यदद्राक्षिषमद्याहं काशी सुचिरचिन्तिताम् ॥२८

इसी कारण से आनन्द के स्वरूप वाले जन्तु काशीपुरी में जन्म ग्रहण किया करते हैं। यहाँ परम कृति पुरुष ही चरण संचरण करने के अधिकारी होते हैं। इस विश्व के भर्त्ता की पुरी की भूमि में जो-जो चरण विचरण करते हैं वे ही चरण सार्थक हैं। वे ही यथार्थता में श्रवण हैं और बहुश्रुत हैं जो काशीपुरी की महिमा का श्रवण किया करते हैं जिन कानों से एक वार भी काशी का श्रवण किया है वे ही वास्तव में पुरुषों के सफल कान हैं। यह पर मनस्वियों का यह ही मन सब कुछ माना जाता है जिसके द्वारा यह सबका प्रमाण रूपी काशीमान्य समझी जाया करती है। बुद्धिमान सत्पुरुषों की वही बुद्धि सब कुछ समझती या ज्ञान रखती है जिसके द्वारा भगवान धूर्जटि के इस धाम को अपने ज्ञान विषय बनाया गया है। वे तृण और धन्य भी, परम धन्य हैं जो वायु से समाहत होकर यहाँ काशी में समायतन किया करते हैं और वे कुछ भी नहीं है जिन्होंने इस काशीपुरी का कभी दर्शन तक भी नहीं किया है।२२।२६। आज ही मेरी यह परर्द्ध द्वय से समित आयु सफल हुई है जिसके होते हुए मैंने अपनी इस लम्बी अवस्था से आज इस दुष्प्राप्य काशीपुरी को प्राप्त कर लिया है। ब्रह्माजी ने अपने दिल में अपने सौभाग्य की सराहना करते हुये कहा कि ये धर्म का कितना विशाल वैभव है और मेरे इस भाग्य का कैसा महान् गौरव है कि मैंने आज इस समय में चिरकाल से चिन्तित काशीपुरी का दर्शन प्राप्त कर लिया है।२७।२८।

अद्यमेस्वतपोवृक्षो मनोरथफलैरलम् ।
शिवभक्त्यम्बुनासिक्तः फलिताऽतिवृहत्तरैः ॥२९
मयाव्यधामिबहुता सृष्टिः सृष्टिवितन्वता ।
परमन्याद्दृशोकाशीस्वयंविश्वेशनिर्मिता ॥३०
इति हृष्टमनावेधा दृष्ट्वा वाराणसी पुरीम् ।
वृद्धब्राह्मणरूपेण राजानञ्चददर्शह ॥३१

जलार्द्राक्षतपाणिश्चस्वस्त्युक्त्वापृथिवीभुजे ।
कृतप्रणामोराज्ञाथ भेजेतद्दत्तमानसम् ॥३२
कृतमानोनृपतिना सौभ्युत्थानासनादिभिः ।
विप्रोव्यजिज्ञपद्भूपं पृष्टागमनकारणम् ॥३३
भूपालबहुकालीनोऽस्म्यहमत्रचिरन्तनः ।
त्वन्तुमांनैवजानासिजानेत्वांहिरिपुञ्चतम् ॥३४
पराः शतंमयादृष्टाराजानोभरिदक्षिणा ।
विजितानेकसंग्रामा यायजूकाजितेन्द्रियाः ॥३५.
विनिष्कृतारिषड्वर्गाः सुशीलाः सत्वशालिनः ।
श्रुतस्य पारदृश्वानी राजनीतिविचक्षणाः ॥३६

आज मेरे तप रूपी वृक्ष के मनोरथ रूपी फल पर्याप्त रूप से प्राप्त हो गये हैं। यह तपोवृक्ष शिव की भक्ति रूपी जल से सिक्त होकर अति विशाल फलों से फलित हुआ है ! मैंने सृष्टि का विस्तार करते हुए अनेक प्रकारों से समन्वित सृष्टि की रचना की थी किन्तु यह शन्यादृशी काशी पुरी का निर्माण स्वयं भगवान विश्वनाथ के द्वारा ही किया गया है। इस प्रकार परम हर्षित मन वाले ब्रह्माजी ने उस वाराणसी पुरी का दर्शन करके एक अत्यन्त वृद्ध ब्राह्मण के रूप से राजा को जाकर देखा था ।२६।३१। जल से आर्द्र अक्षत हाथों में ग्रहण करने वाले उसने राजा को 'स्वस्ति'—कह आशीर्वाद दिया था और राजा को प्रणाम प्राप्त करके राजा के द्वारा किये हुए आसन पर बैठ गये नृपति के द्वारा उनका बहुत अधिक सम्मान किया गया था और राजा ने स्वयं उत्थान करके आसन आदि इनको समर्पित किया था। जब विप्र से राजा ने आगमन कारण पूछा तो उन्होंने राजा को विकसित किया था ।३२।३३। ब्राह्मण ने कहा—हे भूपाल ! मैं बहुत काल का हूँ और यहाँ पर मैं चिरकाल से निवास करने वाला हूँ। आप तो मुझको नहीं जानते हैं किन्तु मैं आप को भलीन्भाँति जानता हूँ। और इस रिपु को भी जानता हूँ। मैंने सैकड़ों से भी अधिक राजाओं को देखा है जो बहुत अधिक दक्षिणा देने वाले हुये

हैं और जिन्होंने अनेक संग्रामों में विजय प्राप्त की है तथा जो याजक और जितेन्द्रिय हुये हैं। ऐसे नृपों को मैंने देखा है जिन्होंने अपने काम क्रोध लोभ मोह मद मात्सर्य—इन ६ शत्रुओं को विनिष्कृत कर दिया है। जो परम सुशील—सत्वशाली—श्रुत के पारद्रष्टा और राजनीति के ज्ञान में परम विचक्षण थे ।३४।३६।

दयादाक्षिण्यनिपुणाः सत्सवतपरायणाः।
क्षमयाक्षमयातुल्यागाम्भीर्यंजितसागराः ॥३७
जितरोषरयाः शूराः सौम्यसौन्दर्यभूमयः।
इत्यादिगुणसम्पन्नाः सुसञ्चितयशोधनाः ॥३८
परं द्वित्राः पवित्रायेराजर्षे तव सद्गुणाः।
तेष्वेषु राजसु मम प्रायशो न दृशंगताः ॥३९
प्रजानिजकुटुम्बस्त्व त्वन्तु भूदेवदेवतः।
महातपः सहाकस्त्वं यथानान्ये तथानृपाः ॥४०
धन्योमान्योऽसि च सतां पूजनीयोऽसि सद्गुणैः।
देवाअपिदिवोदास ! त्वत्त्रासान्न विमार्गगाः ॥४१
किं नः स्तुत्या तव नृप ! द्विजानामस्पृहावताम्।
किं कुर्मस्त्वद् गुणग्रामाः स्तावकन्नः प्रकुर्वते ॥४२

हे राजन् ! मैंने ऐसे भी बहुत से राजाओं को देखा है जो दया और दाक्षिण्य में निपुण थे—सत्य व्रत के पालन में परायण थे—पृथ्वी के समान क्षमा से युक्त थे और गम्भीरता तो उनमें ऐसी थी कि जिन्होंने अपने गम्भीर्य गुण से सागर को भी जीत लिया था ।३७। मैंने ऐसे नृपों को भी देखा है जिन्होंने रोष के वेग को भी जीत लिया था—परम शूरवीर थे—सौम्यता और सौन्दर्य की भूमि थे। इत्यादि गुणों से सुसम्पन्न और भली भाँति सज्जित यश रूपी धन वाले थे। हे राजर्षे ! किन्तु आपके जो सद्गुण हैं वैसे दो तीन ही पवित्र सद्गुण थे। उन राजाओं में मेरी प्रायः दृष्टि नहीं गई थी। आप तो अपनी प्रजा को अपना कुटुम्ब ही मानने वाले हैं और आप तो इस भूमण्डल के देवता हैं। आप महान् तप की सहायता वाले हैं और नृप उस प्रकार के नहीं

हैं जैसे आप हैं। आप परम धन्य और सत्पुरुषों के मान्य एवं सद्गुणों से पूजनीय है। हे दिवोदास ! देवगण भी आपके त्रास से विमार्ग में गमन करने वाले नहीं होते हैं।३८।४१। हे नृप ! आपकी स्पृहा रखने वाले हमारे द्विज सदा स्तुति करने के योग्य हैं। क्या करे ! अपने गुणों के समुदाय हमको आपका स्तवन करने वाले बना रहे हैं।४२।

गोष्ठीतिष्ठत्वियं तावत्प्रस्तुतं स्तौमि साम्प्रतम्।
यष्टुकामोऽस्म्यहं राजंस्त्वां सहायमतो वृणे ॥४३
त्वया राजन्वती चैषाऽवनिः सर्वर्धिभाजनम्।
अहं चास्तिधनो राजन् ! न्यायोपात्तमहाधनः ॥४४
इयञ्चराजधानी ते कर्मभमावनुत्तमा।
यस्यां कृतानांकर्तॄणां सम्बर्तेऽपि न संक्षयः ॥४५
सञ्चित यद्धनं पुम्भिर्नयसन्मार्गगामिभिः।
तत्काश्यां विनयुज्येत क्लेशायेतरथा भवेत् ॥४६
महिमानं परं काश्याः कोऽपिवेदन भूपते।
ऋतेविनयनाच्छम्भोः सर्वज्ञानप्रदयिनः ॥४७
मन्ये धन्यतरोऽसि त्वं बहुलन्मशतार्जितः।
सुकृतैः पासि यत्काशीं विश्वभर्तुः पराः तनुम् ॥४८

यहाँ पर यह गोष्ठ उस समय तक रहे मैं इस समय में जब तक आपका स्तवन करता हूँ। हे राजन् ! मैं यजन करने की इच्छा वाला हूँ अतएव मैं आपकी सहायता का वरण करता हूँ। यह भूमि जो समस्त ऋषियों का आधार हैवह आप हीके द्वारा राजवन्ती है। हे राजन् ! आप न्याय से उपात्त महान् धन वाले हैं और मौन ही आपका बड़ा धन है। आपकी यह राजधानी इस कर्मभूमि भूमण्डल में परमश्रेष्ठ है जिसमें किये हुए कर्मो का सम्वर्त्त में भी कभी क्षय नहीं हुआ करता है। न्याय के मार्ग के गमन करने वाले पुरुषों के द्वारा जो धन संचित किया गया है उस धन का काशीपुरी में विनियोग करना चाहिये अन्यथा वह क्लेश के लिये हुआ करता है।४३।४६। हे भूपते ! इस काशीपुरी की बहुत बड़ी महिमा है, जिसको कोई भी नहीं जानता है। यदि कोई इसकी

महिमा को जानते हैं तो केवल सम्पूर्ण ज्ञान के प्रदान करने वाले तीन नेत्रों के धारी शम्भु ही जानते हैं। मैं तो यही जानता हूँ, कि आप अधिक धन्य हैं और सैकड़ों जन्मों के अर्जित पुण्यों से ही यह सौभाग्य आपको प्राप्त हुआ है कि आप भगवान विश्वनाथ के दूसरे वपु के समान इस काशी को सुकृतों से परिपालित किया करते हैं ।४७।४८।

काशीत्रिजगतीसारस्त्रिवेदीसार एव वै ।
त्रिवर्गोत्तरसारश्च निर्णीतेति महर्षिभिः ॥४६
विश्वेशानुग्रहेणैव त्वयैषापाल्यतेपुरी ।
एकस्याप्यवनात्काश्यांत्रैलोक्यांमवितम्भवेत् ॥५०
अन्यच्च ते हितं वच्मि यदि ते रोचतेऽनघ ! ।
प्रोणनीयः सदैवेको विश्वेशः सर्वकर्मभिः ॥५१
अन्यवेव धिया राजन् विश्वेश पश्य माक्वचित् ।
ब्रह्मविष्णिवन्द्रचन्द्रार्का क्रीडेयन्तस्य धूर्जटेः ॥५२
विप्रैरूदयमिच्छद्भिः शिक्षक्षीया य तो नृपः ।
अतस्तव हितं ख्यातं किम्बा मे चिन्तयाऽनपा ॥५३
इति जोष स्थितविप्रं प्रत्युवावनृपोत्तमः ।
सर्वमयाहृदिधृतयत्वयोक्तं द्विजोत्तम ! ॥५४
अनं यियक्षमाणस्य तव साहाय्यकर्मणि ।
दासोऽस्मि यज्ञसम्भारान्नयांगे कोशतोऽखिलान् ॥५५
यदस्ति मेऽखिलन्तत्र सप्ताङ्गेऽपि भवान्प्रभुः ।
भजस्वैकमनाब्रह्मन् ! सिद्धं मन्यस्व वाञ्छितम् ॥५६

यह काशीपुरी तीन भुवनों का सार है और तीन वेदों का भी सार स्वरूप है और महर्षियों ने वह निर्णय किया है कि यह तीनों वर्गो का उत्तर सार है। यह भगवान विश्वनाथ प्रभु का ही परम अनुग्रह हैं कि जिससे आपके द्वारा इस परम पावन पुरी का परिपालन किया जाता है। इस काशीपुरी में एक के भी अवन से सम्पूर्ण त्रैलोक्य ही संक्षिप्त हो जाया करता है। हे अनघ ! मैं एक और भी आपके हित की बात

कहता हूँ यदि वह आपको पसन्द हो जावे। सदा ही समस्त कर्मों के द्वारा एक ही भगवान विश्वनाथ को प्रसन्न करना चाहिए।४६।५१। हे राजन्! दूसरे देवता की बुद्धि से कभी भी कहीं पर विश्वेश प्रभु को मत देखना। उस भगवान धूर्जटि के ही अन्दर ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, चन्द्र और सूर्य-क्रीड़ा किया करते हैं। ५२। जो विप्र अपना अभ्युदय चाहने वाले हैं उनको चाहिये कि नृपों को शिक्षा देवें। इससे आपका हित ख्यात होगा। मेरी इस चिन्ता से आपको क्या प्रयोजन है। यह कहकर फिर मौन धारण करने वाले स्थित विप्र से वह श्रेष्ठ नृप बोला—हे द्विजोत्तम! जो भी आपने कहा है वह सब मैंने अपने हृदय में धारण कर दिया है। राजा ने कहा—यजन करने की इच्छा वाले आपकी सहायता के कर्म में मैं आपका दास हूँ। आप मेरे कोश से समस्त यज्ञ के सम्भारों को ग्रहण कीजिये। जो भी है वह सभा वहाँ पर है। सप्तांग में भी आप प्रभु हैं। ब्रह्मन्! आप एकचित्त होकर यजन करिये। आपका वांछित सिद्ध ही मानिये।५३।५६।

राज्यं करोमि यद ब्रह्मन् स्वार्थं तन्नमनागपि।
पुत्रैः कलत्रैर्देहेन परोपकृतये यते ॥५७
राज्ञांक्रतुक्रियाभ्योप्रितीर्थेभ्योपिसमन्ततः।
प्रजापालनमेवैकोधर्मः प्रोक्तोमनीषिभिः ॥५८
प्रजासन्तापजोवह्निर्वज्राग्नेरपिदारूणः।
द्वित्रानन्दहतिवज्राग्निः पूर्णं राज्य कुलंतनुम् ॥५९
यदाऽवभृथसिस्नासुर्भवेय द्विजसत्तम!।
तदाविप्रदाम्भोभिरभिषेकंकरोम्यहम् ॥६०
हवनं ब्राह्मणमुखे यत् करोमि द्विजोत्तम!।
अन्येक्रतुक्रियाभ्योऽपिताद्विकिष्टं महापते ॥६१
अभिलाषेषु सर्वेषु जागर्त्येकोहृदीह मे।
अद्यापिमार्गणः कोऽपि द्रष्टव्यः स्वमनोरपि ॥६२

हे ब्रह्मन्! जो मैं यह राज्य करता हूँ उसमें मेरा थोड़ा सा भी स्वार्थ नहीं है। हे यते! पुत्री के, कलत्रों के देह के द्वारा सभी

कुछ दूसरों के उपकार करने के लिये किया जाता है।५७। राजाओं को क्रतु की क्रियाओं से और समस्त तीर्थों से भी अधिक अपनी प्रजा का पालन करना ही मनीषियों ने एक ही धर्म बतलाया है।५८। प्रजा के सन्ताप से उत्पन्न होने वाला वह्नि वज्र की अग्नि से भी अधिक दारुण होता है। वज्र की अग्नि तो दो या तीन का दाह कर दिया करता है और जो पहिली जो प्रज्ञा के सन्तान से उत्पन्न अग्नि पूरे राज्य कुल और तनु को दग्ध कर दिया करता है।५९। हे द्विज श्रेष्ठ ! जिस समय में अभवृष में स्नान करने की इच्छा वाला मैं होता हूँ उस समय मैं विप्रों के पद कमलों के जल से मैं अपना अभिषेक किया करता हूँ। हे द्विजोत्तम ! ब्राह्मण के मुख में जो हवन किया करता हूँ उसको क्रतु की क्रियाओं से भी विशिष्ट मैं हे महामते ! माना करता हूँ। सम्पूर्ण अभिलाषाओं में मेरे हृदय में यहाँ पर एक ही जागरूक रहा करती है कि आप भी कोई अपने तनु का मार्गण देखना चाहिये। अहो ! बहुत ही प्रसन्नता की बात है कि बहुत से पुण्यों में मेरा यह मनोरथ फलित हो गया है कि हे द्विज आज आप कुछ प्रार्थना करने के लिये मेरे घर पर प्राप्त हो गये।६०।६३।

ईति राज्ञो महाबुद्धेधर्मशीलस्यभाषितम् ॥६४
श्रुत्वा तुष्टमना स्रष्टांक्रतुसम्भारमाहरत् ॥६५
साहाय्यप्राय्यं राजर्षिदिवोदासस्यपद्मभूः।
इयाजदशभिः काश्यामश्वमेधैर्महामखैः ॥६६
अद्यापि होमधूमौधैर्यद्व्याप्तंगगनान्तरम्।
तदाप्रभृति न व्योमनोलिमानंजहात्यदः ॥६७
तीर्थं दशाश्वमेधाख्य प्रथितं जगतीतले।
तदाप्रभृति तत्रासोद्वारणस्यां शुभप्रदम् ॥६८
पुरारुद्रसरीनाम तत्तीर्थ कलशोद्भव !
दशाश्वमेधिकं पश्चाज्जातं विधिपरिग्रह्यात् ॥६९
स्वधुंत्यथ ततः प्राप्ताभगीरथसमागमात्।
अतीवपुण्यवज्जातमतस्तत्तीर्थमुत्तमम् ॥७०

धर्म के शील स्वभाव वाले महान् बुद्धि से सम्पन्न राजा के इस प्रकार से यह भाषित सुनकर स्रष्टा बहुत ही सन्तुष्ट मन वाले हो गये थे और उन्होंने क्रतु के सम्पूर्ण सम्भारों का समाहरण किया था। उस राजर्षि दिवोदास की पूर्ण सहायता प्राप्त करके पद्मभू ब्रह्माजी ने काशी पुरी में दश अश्वमेधों के द्वारा यजन किया था। उन यज्ञों की होम की धूमों से आज तक भी वहाँ के आकाश का अन्तर व्याप्त हो रहा है। तभी से लेकर यह गगन नीलिमा का त्याग नहीं किया करता है। उसी समय से इस जगती तल में यह दशाश्वमेध नामक तीर्थ विख्यात हो गया था और तभी से यह शुभों का प्रदाता तीर्थ वाराणसी में स्थित है। हे कमलोद्भव ! पहले वह तीर्थ रुद्रसर नाम से प्रसिद्ध था फिर पीछे विधाता के परिग्रह से दशाश्वमेध हो गया था। फिर राजर्षि प्रवर भगीरथ के समागम से वहीं पर गङ्गा भी प्राप्त हो गई थी। इसलिये यह महातीर्थ अतीव पुण्यशाली एवं उत्तम हो गया था।६४।७०।

विधिर्दशाश्वमेधेशं लिङ्गं संस्थाप्य तत्र वै।
स्थितनान्नगतोऽद्यापि क्वापि काशी विहाय तु॥७१
राज्ञो धर्मरतेस्तस्यच्छिद्रं नावपकिञ्चन।
अत: पुरारे: पुरतो ब्रजित्वा किं वदेद्विधि: ॥७२
क्षेत्रप्रभावं विज्ञाय ध्यायन्विश्वेश्वरं शिवम्।
ब्रह्मेश्वरं च संस्थाप्य विधिस्तत्रैव संस्थित: ॥७३
परा तनुरियं काशी विश्वेशस्येति निश्चितम्।
अस्या: संसेवनाच्छम्भुर्न कुप्यति पुरी मयि ॥७४
क: प्राप्य काशीं दुर्मेधा: पुनस्त्यक्तुमिहेहते।
अनेकजन्मर्जितकर्मनिर्मूलनक्षामाम् ॥७५
विश्वसन्तापहर्तु: स्थाने विश्वपतेस्तनु:।
सन्ताप्यतेतरां काश्या विश्लेषजमहाग्निना ॥७६
प्राप्य काशीं त्जेद्यस्तु तमस्ताघोघनाशिनम्।
नृपशु: स परिज्ञेयो महासौख्यपराङ्मुख: ॥७७

निर्वाणलक्ष्मी यः काङ्क्षेत्यक्त्वा संसारदुर्गतिम् ।
तेन काशी न सन्त्यांज्या यद्याप्तैशादनुग्रहात् ॥७८

वहाँ पर श्री ब्रह्माजी ने दशाश्वमेधेश नामक एक शिवलिंग की संस्थापना की थी और स्वयं आप भी उस काशीपुरी को त्याग करके कहीं भी न जाकर वहीं पर स्थित हो गये थे जो कि आज तक वहीं पर विराजमान रहते हैं ।७१। धर्म में रति रखने वाला राजा का कुछ भी छिद्र प्राप्त नहीं किया था कि भगवान पुरारि के समक्ष में उपस्थित होकर उसके सम्बन्ध में क्या करते । उस क्षेत्र के महान् प्रभाव को जान कर विश्वेश्वर प्रभु शिव का ध्यान करते हुये ब्रह्मेश्वर की स्थापना करके ब्रह्माजी वहीं पर संस्थित हो गये थे ।७२।७३। यह निश्चित है कि यह काशीपुरी भगवान विश्वनाथ का दूसरा एक परमोत्तम वपु ही है । इसके भली भाँति सेवन करने से मुझ पर कभी भी कोप नहीं करेंगे ।७४। कौन-सा ऐसा दुष्ट बुद्धि वाला है जो इस महापावन काशीपुरी को प्राप्त करके फिर त्याग करने की इच्छा किया करता हो जो कि अनेक जन्मों में समुत्पन्न कार्यों के निर्मल करने में समर्थ हो । इस विश्व के सम्पूर्ण सन्तापों का संहार करने वाले प्रभु के स्थान में विश्वपति का तनु काशीपुरी के विश्लेष के समुत्पन्न महान् अग्नि से अत्यन्त ही सन्तापित होता है ।७५।७६। इस समस्त प्रकार के पापों के समुदाय का विनाश करने वाली काशीपुरी को प्राप्त करके कौन इसका त्याग करेगा ? अर्थात् फिर वहाँ पहुँचकर कोई भी इस पुरी को नहीं छोड़ना चाहता है । यदि कोई इस पुरी का त्याग करता भी है तो वह महान् सौख्य से पराङ्मुख होने वाला मनुष्यों में साक्षात् पशु के ही समान होता है ।७७। जो निर्वाण लक्ष्मी की इच्छा करता है और संसार की दुर्गति को त्याग देता है उस पुरुष को इस काशीपुरी का भी कभी त्याग नहीं करना चाहिये यदि यह भगवान ईश के परमानुग्रह से प्राप्त हो जावे ।७८।

५५–त्रिलोचनाविर्भाववर्णन

श्रुत्वोकारकथामेतां महापातकनाशिनीम् ।
न तृप्तोस्ति विशाखाथ ब्रूहि त्रैविष्टपीं कथाम् ॥१
कथं च कथिता देव्यै देवदेवेन षण्मुख ! ।
आविर्भूतिर्महाबुद्धे ! पुण्यात्रैलोचनीपरा ॥२
आकर्णये मुने ! वच्मि कथां श्रमनिवारिणीम् ।
यथा देवेन कथितां त्रिविष्टपसमुद्भवाम् ॥३
विरजाख्यं हि तत्पीठ तत्रलिङ्ग त्रिविष्टम् ।
तत्पीठदर्शनादेव विरजा जायते नरः ॥४
तिस्रस्तु सङ्गतास्तत्र स्रोतस्विन्यो घटोद्भव !
तिस्रः कल्मपहारिण्यो दक्षिणे हि त्रिलोचनात् ॥५
स्रोतोमूर्तिधराः साक्षाल्लिङ्गस्नपनहेतवे ।
सरस्वत्यथ कालिन्दीनर्मदाचातिशर्मदा ॥६
तिस्रोपि हि त्रिसन्ध्यन्तां: सरितः कुम्भपाणायः ।
स्नपयन्ति महाधाम लिंग त्रैविष्टपम्महत् ॥७

महर्षि अगस्त्य जी ने कहा—मैंने आपके द्वारा वर्णित ॐकार की कथा का श्रवण कर लिया है जो कि बड़े-बड़े महान् पावकों का विनाश करने वाली है किन्तु मेरी पूर्णतया तृप्ति नहीं हुई है। अब आप कृपा करके त्रैविष्टपी कथा का श्रवण कराइये। हे षण्मुख ! देवों के देव ने देवी जगदम्बा को यह कथा कैसे कही थी। आप तो महती बुद्धि वाले हैं। यह आविर्भूत परम पुण्यमय त्रैलोचनी है।१।२। भगवान स्कन्द ने कहा—हे मुने ! मैं उस श्रम के निवारण करने वाली कथा को कहता हूँ। अव आप सुनिये। जिस रीति से त्रिविष्टप के समुद्भव वाली कथा देव ने कही थी।३। एक विरजा नाम वाला उनकी पीठ स्थल है। वहाँ पर त्रिविष्टप मामधारी लिंग है। उस पुण्यमय पीठ के केवल दर्शन कर लेने ही से मनुष्य विरज हो जाया करता है। हे घटोद्भव ! वहाँ पर तो स्रोतस्विनी संगत हुई हैं। त्रिलोचन प्रभु से दक्षिण भाग में ये तीनों ही कलमषों के हरण करने वाली हैं। लिंग के स्नपन कराने

के कारण से ये साक्षात् स्रोत को मूर्तियों को धारण करने वाला है। ये तीनों में सरस्वती कालिन्दी और कल्याण प्रदान करने वाली नर्मदा है। वे तीनों ही सरितायें तीनों कालों में हाथों में कलश ग्रहण करके महा धाम उस त्रैविष्टप महत् लिंग का स्तवन किया करती है ।४।७।

लिंगानि परितस्ताभिः स्वनाम्ना स्थापितान्यपि ।
तेषां सन्दर्शनात्पुंसाँ तासाँ स्नानफलं भवेत् ॥८
सरस्वतीश्वरं लिंगं दक्षिणेन त्रिविष्टपात् ।
सारस्वतं पदं दकाद्दृष्टञ्च जाडचहृत् ॥९
यमुनेशम्प्रतीच्याञ्च नरैभक्त या समर्चितम् ।
अपि किल्विषवद्भिश्च यमलोक निवारणम् ॥१०
दृष्टं त्रिलोचनात्प्राच्यां नर्मदेश सुशर्मदम् ।
तल्लिगार्चनतो नृणां गर्भवांसो निषिध्यते ॥११
स्नात्वा पिलपिलातीर्थं त्रिविष्टसमीपतः ।
दृष्ट्वा त्रिलोचनं लिंग किं भूयः परिशोचति ॥१२
त्रिविष्टपस्त लिंगस्य स्मरणादपि मानवः ।
त्रिविष्टपपतिर्भूयान्नात्रयार्या विचारणा ॥१३
त्रिविष्टपस्य द्रष्टारः स्रष्टारः स्येर्नसंशयः ।
कृतकृत्याात एवात्र त एवात्र महाधियः ॥१४

उन तीनों के द्वारा सब ओर अपने-२ नामों से लिंगों की स्थापना की गई है। उन लिंगों के दर्शन करने से ही मनुष्यों को उन सरिताओं के स्नान करने का पुण्य फल प्राप्त हो जाया करता है।८। सरस्वतीश्वर नाम वाला लिंग त्रिविष्टप से दक्षिण दिग्भाग में है। यह लिंग ऐसा प्रभाव वाला है कि इसका दर्शन और स्पर्शन करने पर जड़ता का हरण कर सारस्वत पद प्रदान किया करता है। यमुनेश्वर नामक लिंग पश्चिम दिशा में है जो मनुष्यों के द्वारा भक्ति भाव से समर्चित होता है। इस लिंग की अर्चना से जो किल्विष वाले हैं उनके भी यम लोक का निवारण हो जाया करता है। भगवान् त्रिलोचन से पूर्व दिशा में श्रेय प्रदाता नर्मदेश प्रभु हैं। इनकी अर्चना करने से मनुष्यों का मोक्ष

होता है और फिर जननी के उदर में गर्भवास कभी नहीं हुआ करता है। त्रिविष्टप के समीप में जो पिलपिला तीर्थ है। उसमें स्नान करके और भगवान त्रिलोचन लिंग के दर्शन कर फिर क्या चिन्ता का विषय रह जाता है अर्थात् कुछ भी नहीं रहा करता है।६।११। त्रिविष्टप लिंग के स्मरण कर लेने से भी त्रिविष्टप का स्वामी हो जाया करता है इसमें कुछ भी विचारण नहीं करनी चाहिये। त्रिविष्टप के दर्शन करने वाले स्रष्टा हो जाया करता है—इसमें संशय नहीं है। ये ही लोग कृतकृत्य हैं और महा बुद्धिमान् है।१३।१४।

आनन्दकानने लिंगं प्रणतंयैस्त्रिविष्टपम्।
त्रिलोचनस्य नामापियैः श्रुत शुद्धबुद्धिभिः ॥१५
सप्त जन्मर्जितात्पात्ते पूता नात्र संशयः।
पृथिव्यां यानि लिंगानि तेषु दृष्टेषु यत्फलम् ॥१६
तत्स्यात्त्रिविष्टपेदृष्टे काश्यां मन्यततोधिकम्।
काश्यां त्रिविष्टपे दृष्टे दृष्टं सर्वं त्रिविष्टपम् ॥१७
क्षणान्निर्धूतपापोसौ न पुनर्गर्भभाग्भवेत्।
सस्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वाविभृथवान्स च ॥१८
यो वै पिलापिलातीर्थे स्नात्वींत्तरवहाम्भसि।
सरित्त्रयं महापुण्यं यत्रपाक्षाद्वसेत्सदा ॥१९
तत्र श्राद्धादिकं कृत्वा गयायां किं करिष्यति।
स्नात्वा पिलापिला तीर्थे कृत्वा वै पिण्डपातनम् ॥२०
दृष्ट्वा त्रिविष्टप लिंग कोटितीर्थफलं लभेत्।
यदन्यत्रार्जितं पापं तत्काशीदर्शनात्व्रजेत् ॥२१

आनन्द कानन में जो लिंग है उनको जिन्होंने प्रमाण किया है और त्रिलोचन प्रभु का त्रिविष्टप नाम वाले लिंग को जिन शुद्धि वुद्धि वालों ने सुना है वे अपने किए हुए सप्त जन्मों के पापों से भी पवित्र हो जाया करते हैं—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है। इस पृथ्वी में जितने भी संस्थापित लिंग हैं उन सबके दर्शन का जो पुण्य फल होता है वही त्रित्रिष्टप के दर्शन से हो जाया करता है और मैं ऐसा मानता हूँ कि

काशीपुरी में स्थापित विश्वनाथ लिंग दर्शन से इससे अधिक भी पुण्य फल होता है। काशी में त्रिवष्टप के दर्शन करने पर सभी त्रिविष्टप दर्शन का पुण्य होता है। क्षण भर में ही वह निर्धूत पापों वाला हो जाता है और वह पुनः गर्भ का व्यास प्राप्त नहीं करता है। उसको ऐसा पुण्य होता है कि मानो उसने सभी तीर्थों में स्नान कर लिया है और सभी अवभृथों वाला हो गया है। जो पुरुष उत्तराभ्यास में अर्थात् उत्तर की ओर वहने वाले जल में पिलपिला तीर्थ में स्नान कर लेता है उसको तीनों सरिताओं का पुण्य वहाँ पर सदा साक्षात् निवास किया करता। वहाँ पर श्राद्ध आदि जिसने कर लिया उसको गया आदि में श्राद्ध करने की कुछ भी आवश्यकता नहीं रहा करती है। क्योंकि गया में इससे अधिक क्या इस के बराबर भी पुण्य नहीं होता है। पिलपिला तीर्थ में स्नान करके वहाँ पिण्ड पातन करे और फिर भगवान त्रिविष्टप लिंग के दर्शन करे तो एक करोड़ तीर्थों का फल प्राप्त होता है। जो कहीं दूसरी जगह पर पापों का अर्जन किया है वह सव काशीपुरी दर्शन से मिट जाया करते हैं।१५।२१।

काश्यां तु यत्कृतं पापं तत्पैशाचपदप्रदम्।
प्रमादात्पातकं कृत्वा शम्भोरानन्दकानने ॥२२
दृष्ट्वा त्रिविष्टपं लिंगं तत्पापमपि हास्यति।
सर्वस्मिन्नपि भूपृष्ठे श्रेष्ठमानन्दकाननम् ॥२३
तत्राऽपि सर्वतीर्थानि ततोऽप्योङ्कारभूतिका।
ॐकारदपि सल्लिगान्मोक्षवर्त्म प्रकाशकात् ॥२४
अतिश्रेष्ठतरं लिगं श्रेयोरूपं त्रिलोचनम्।
तेजस्विषुयथः भानुदृश्येषु च यथा शशी ॥२५
तथा लिंगेषु सर्वेषु परं लिंग त्रिलोचनम् ॥२६
त्रिलोचनावकानां सा पदवी न दवीयषी
परं निर्वाणपद्मायामहासौख्यैकशेवधेः ॥२७
स कृत्त्रिलोचनार्चातो यच्छ्रेयः समुपार्ज्यते।
न तदाजन्म सम्पूज्य लिंगान्यानि लभ्यते ॥२८

काशीपुरी में जो भी कुछ पाप किया जाता है वह पैशाच पद का देने वाला होता है। भगवान शम्भु के इस आनन्द कानन में प्रमोद से पातक करके त्रिविष्टप लिंग के दर्शन करने से उस पाप का क्षय किया करता है। इत समस्त भूमण्डल के पृष्ठ पर यह आनन्द कानन परमातिपरम श्रेष्ठ है। इस मोक्ष के मार्ग के प्रकाश करने वाले सलिंग ॐकार से भी अतिश्रेष्ठ नरलिग श्रेय स्वरूप वाला त्रिलोचन है। जिस तरह से तेजस्वियों में भानु है और देखने के योग्यों में चन्द्रमा है उसी तरह से सभी लिङ्गों में परमाधिक श्रेष्ठ लिङ्ग त्रिलोचन हैं।२२।२६। इन त्रिलोचन लिंग के समर्थन करने वालों को यह पदवी कुछ दूर या कम नहीं है जो महा सौख्य की एक शेवधि निर्वाण पदूमा का परमपद होता है। एक बार में ही त्रिलोचन प्रभु की अर्चना से जिस परमश्रेष्ठ का समोपार्जन किया जाता है वह आजन्म अन्य लिङ्गों के पूजन से भी प्राप्त नहीं हुआ करता है।२७।२८।

काश्यां त्रिलोचनं लिंगं सेऽर्चयन्ति महाधियः।
तेऽच्यास्त्रिभूवनोकोभिर्ममप्रीतिमभीप्सुभिः ॥२६
कृत्वापि सर्वसन्यासं कृत्वा पाशुपतव्रतम्।
नियमेभ्यः स्खलित्वाऽपि कुतो विभ्यति मानवाः ॥३०
विद्यमाने महालिंगे महापापौघहारिणि।
त्रिविष्टपे पुण्यराशो मोक्षनिक्षेपद्भूमनि ॥३१
समाभ्यचयर्च्यं महालिंगं सकृदेवत्रिलोचनम्।
मुच्यते कलुषैः सर्वैःरपि जन्मशतर्जितैः ॥३२
ब्रह्महापिसुरापीबास्तेयी वा गुरुतल्पगः।
तत्संयोग्यपि वा वर्ष पहापापी प्रकीर्तितः ॥३३
परदाररतश्चापि परहिंसारतोऽपि वा।
परापवादशीलोपि तथा विस्रम्भधात्तकः ॥३४
कृतघ्नोऽपि भ्रूणहाऽपि वृषलीपतिरेव वा।
मातापितृमं रुत्यागी वह्निदागरदोऽपि वा ॥३५

जो महान् बुद्धिमान् लोग काशीपुरी में त्रिलोचन लिंग का अर्चन किया करते हैं वे त्रिभुवन में रहने वाले और मेरी प्रीति के चाहने वाले लोगों के द्वारा पूजन के योग्य हुआ करते हैं ।२६। सबका भली भाँति त्याग करके भी और पाशुपत व्रत को करके भी तथा नियमों से स्खलित होकर भी मानव क्यों डरा करते हैं ? ।३०। महालिंग के विद्यमान होने पर तथा महान् पापों के समूह के हरण करने वाले परम पुण्य के राशि और मोक्ष रूपी विक्षेप का आलय भगवान त्रिविष्टप के रहते हुए मानवों को कोई भी भय नही होना चाहिए। इस महालिंग की भली भाँति अर्चना करने और केवल एक ही बार भगवान त्रिलोचन का यजन करके सौ जन्मों में अर्जित्त किये हुये समस्त कलुषों से मनुष्य मुक्त हो जाया करता है। ब्रह्मा ब्राह्मण की हत्या करने वाला, सुपारी (सुरा का पान करने वाला)—स्तेयी चोरी करने वाला—गुरु पत्नी के साथ सहवास करने वाला उन सबके साथ एक वर्ष पर्यन्त संयोग एवं सम्पर्क रखने वाला पुरुष भी महापापी कहा जाता है। दूसरी की स्त्री में रति रखने वाला दूसरों की हिंसा शरीर और मन को ठेस या हानि पहुँचाने को ही हिंसा कहा जाता है केवल बध को ही नही कहा जाता। में रति रखने वाला—दूसरों के अपवाद बुराई या निन्दा करने के स्वभाव वाला—विश्वास देकर उसका घात करने वाला—कृतघ्न अर्थात् अपने साथ किये हुए उपकार को न मानने वाला—भ्रूण की हत्या करने वाला (गर्भ में स्थित बच्चे को भ्रूण कहते हैं) वृषली (वेश्या या शूद्र जाति की स्त्री) का पति—माता—पिता और गुरु का त्याग कर देने वाला—अग्नि लगाने वाला और बिप देने वाला पुरुष भी घोर पापी होंते हैं किन्तु ये भी सब भगवान त्रिलोंचन के लिंग कों नमस्कार करके ही पापों से निष्कृति कौ प्राप्त हों जाया करते हैं ।३१-३५।

गोघ्नः स्त्रीघ्नोऽपि शूद्रघ्नः कन्यादूषयितापि च ।
क्रूरो वा पिशुनो वापि निजधर्मपराङ मुखः ॥३६
निन्दको नास्तिको वाऽपि कूटसाक्ष्यप्रवाहकः ।
अभक्ष्यभक्षको वाऽपि यथाऽविक्रयविक्रयो ॥३७

इत्यादिपापशीलोऽपि मुक्त्वैकं शिवनिन्दकम् ।
पापान्निष्कृतिमाप्नोति नत्वालिंग त्रिलोचनम् ।३८
शिवनिन्दारतो मूढः शिवशास्त्रविनिन्दकः ।
तस्य नो निष्कुतिर्दृष्टा क्वापि शास्त्रेऽपि केनचित् ॥३९
आत्मघाती स विज्ञेयः सदा त्रैलोक्यघातकः ।
शिवनिन्दां विधत्ते यः सोऽनाभाष्योऽधमाधमः ।४०
शिवानिन्दारता ये च शिवभक्त जनेष्वपि ।
ते यान्ति नरके घोरे यावच्चन्द्रदिवाकरो ।४१
शैवाः पूज्याः प्रयत्नेन कायां मोक्षमभीप्सुभिः ।
तेष्वर्चितेऽष्वपि शिवः प्रीतो भवत्यसंशयः ॥४२

गाय के हनन करने वाला—स्त्रीका वध करने वाला—शूद्र जाति वाले पुरुषों को मार देने वाला—किसी कथा को दूषित कर देने वाला महान् क्रूर (निर्दयी)–पिशुन (पीछे से बुराई या चुगली करने वाला)–अपने धर्म से पराङ्मुख अर्थात् धर्म विरुद्ध आचरण वाला—निन्दा करने वाला नास्तिक अर्थात् ईश्वरीय सत्ता को न मानने वाला—जो भक्षण करने योग्य नहीं है या शास्त्र और सदाचार जिनके भक्षण करने का निषेध करता है उसको खाने वाला—जो वस्तु विक्री करनेके योग्य नहीं है उनको बेचने वाला इत्यादि बहुत से पापों के करने के स्वभाव वाला भी पुरुष इन किये हुए पापों से त्रिलोचन लिंग को नमन करके छुटकारा पा जाया करता है। केवल भगवान् शिव की निन्दा करने वाला पाप मुक्त नहीं होता है। जो शिवकी निन्दा में रति रखता है ऐसा मूढ और जो शिवके शास्त्र को विशेष निन्दा करने वालाहै उसकी तो कहीं पर भी निष्कृति देखी ही नहीं गयी हैं। किसी से भी किसी भी शास्त्र में शिव निन्दक के पापसे छुटकारा पाना नहीं देखा है। ऐसे पुरुष को तो आत्माका ही हनन करने वाला और सदा त्रैलोक्यका घातक ही समझना चाहिए जो भगवान् शिव की निन्दा किया करता है उससे भाषण कभी भी नहीं करना चाहिए क्योंकि वह तो अधर्म से भी

महान् अधर्म होता है। जो मनुष्य भगवान् शिवकीं निन्दामें रति रखने वाले हैं और शिव के भक्तों की भी निन्दा करते हैं,वे महान् घोर नरक में गिरा करते हैं और जब तक चन्द्र-सूर्य स्थित रहते हैं तब तक नारकीय यातनायें भोगते हैं। जो मनुष्य मोक्ष की प्राप्तिके इच्छुक है उन्हें में शैवों की पूजा प्रयत्न पूर्वक करनी चाहिए। उनके सर्मपित होने पर भगवान् शिव परम प्रसन्न हुआ करते हैं—इसमें कुछ भी संशय नही है।३६-४२।

५६—व्यासभुजस्तम्भवर्णन

श्रृणु सूत ! महाबुद्धे ! यथा स्कन्देन भाषितम् ।
भविष्य मम तस्याग्रे कुम्भयोने मिहामतेः ।१।
निशामय महाभाग ! त्वं मैत्रावरुणे ! मुने ! ।
पाराशर्यो मुनिवरो यथा मोरमुपैष्यति ।।२
व्यस्य वेदान्महाबुद्धिर्नानाशाखप्रभेदतः ।
अष्टादशपुराणानि सूतऽदीन्परिपाठ्य च ।३
श्रुतिस्मृतिपुराणानां रहस्यस्त्वचीकरत् ।
महाभारतसञ्ज्ञश्च सर्वलोकमनोहरम् ।४
सर्वपापप्रशमनं सर्वशान्तिकरम्परम् ।
यस्य श्रवणमात्रेण ब्रह्महत्याविनश्यति ।५
एकदा स मुनि श्रीमान्पर्यन्पृथिवीतले ।
सम्प्राप्तो नैमिषारण्यं यत्र सन्ति मुनीश्वराः ।६
अष्टाशीतिसहस्राणि शौनकाद्यास्तपोधनाः ।
त्रिपुण्डितमहाभालायसद्रूदाक्षचालिनः ।७
विभूषिधारणो भक्त्या रुद्रसूक्तजपप्रियान् ।
लिंगाराधनसंसक्तानिशवनामकृतादरान् ।८

श्री व्यास देवजी ने कहा—हे सूत ! आप तो अत्यन्त अधिक बुद्धि वाले हैं जिस प्रकार से मेरा भविष्य महापति वाले कुम्भ योनि से भग-

वान् स्कन्द ने कहा था उसी को आप अब श्रवण कीजिए । भगवान् स्कन्दजी ने कहा था—हे महाभाग ! हे मैत्रावरुणे ! हे मुनिवर ! अब पराशर के पुत्र मुनिवर जिस तरह से मोह को प्राप्त होंगे वह सुनिये । अनेक शाखा प्रशाखाओं के भेद से वेदों का विस्तार करके महान् बुद्धि वाले व्यास देव ने सूत आदि शिष्यों को अठारह पुराणों को पढ़ा दिया था । श्रुति-स्मृति और पुराणों का रहस्य जिन्होंने स्पष्ट कर दिया था और महाभारत नामक महान् विशाल ग्रन्थ की रचना की थी जो कि समस्त लोकों में एक परम मनोहर ग्रन्थ है और सभी तरह के पापो का प्रशमन करने वाला सभी तरह की परम शान्ति का करने वाला हैं जिसके केवल श्रवण करने से ही ब्रह्म हत्या विनष्ट हो जाया करतीहै । एक समय की बात है कि श्रीमान् वह मुनिवर इस पृथ्वी पर पर्यटन कर रहे थे और घूमते-घामते वे नैमिपारण्य में सम्प्राप्त हो गये थे जहाँ पर कि बहुत-से मुनीश्वर निवास किया करते हैं । जिनका केवल एक तप ही धन है ऐसे अट्ठासी हजार शौनकादि मुनि वहाँ पर रहते ये जो अपने विशाल भाल पर त्रिपुण्ड धारण किये हुए थे और उनके कण्ठ में रुद्राक्ष की मालायें शोभित थीं । वे सभी लोग विभूति धारी थे और भक्ति भाव से रुद्र सूक्त के जाप में प्रेम करते थे । ये सब लिंग की आराधना करने में संलग्न मन वाले थे और सभी भगवान् शिव के नाम में परम समादर करने वाले थे ।१—८।

एकएवहि विश्वेशो मुक्तिदो नान्य एव हि ।
इति ब्रुवाणन्सततं परिनिश्चित मानसान् ।९
विलोक्य सन्मुनिर्व्यासस्तान्सर्वान् गिरिशात्मनः ।
उत्क्षिप्य तर्जनीमुच्चैः प्रोवाचेदं वचः पुनः ।१०
परिनिर्मथ्य वाग्जालं सुनिश्चित्यासकृद्यहु ।
इदमेकं परिज्ञातं सेव्यः सर्वेश्वरो हरिः ।११
वेदे रामायणे चैव पुराणेषु च भारते ।
आदिमध्यावसानेषु हरिरेकोऽत्र नापरः ।१२

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं त्रिसत्यं न मृषा पुनः ।
न वेदादपरं शास्त्रं न देवोऽच्युततत: परः ।१३
लक्ष्मीशः सर्वदोनान्यो लक्ष्मीशोऽप्यपवर्गदः ।
एकएवहिलक्ष्मीशस्तमोध्येयोनचापरः ।१४

उन सबकी ऐसी परम दृढ़ धारणा थी की एक ही भगवान् विश्वेश मुक्ति देने वाले है और दूसरा कोई भी देव ऐसा नहीं है । वे सभी यही निरन्तर बोला करते थे और उनके मन में इसका ठीक निश्चयहो गया था । भगवान् व्यास देव ने गिरीश के स्वरूप से निरत उन सबको देख कर अपनी तर्जनी को ऊँचा उठाकर यह वचन बोले–।६-१०। सम्पूर्ण वाग्जालका अच्छी तरहसे मंथन करके अनेक वार बहुत कुछ भलीभाँति निश्चय करके मैंने यही एक बात को समझ लिया है कि एक सर्वेश्वर श्रीहरि को ही सेवनकरना चाहिए । वेदों में-रामायण में-पुराणोंमें और भारत से आदि-मध्य और अवसान में एक श्री हरि है दूसरा कोई भी अन्य नहीं है । यह सत्य पुनः सत्य है और तीसरी वार भी सत्य है इसमें तनिक भी मिथ्या नहीं है । वेदों से परे कोई भी शास्त्र नहीं है और भगवान् अच्युत से बड़ा अन्य कोई देव नही है । भगवान् लक्ष्मीके स्वामी सभी कुछ प्रदान करने वाले हैं अन्य कोई नहीं हैं । लक्ष्मीश भगवान् अपवर्ग के भी प्रदाता है । अतएव केवल एक लक्ष्मीश प्रभु का सदा ध्यान करना चाहिए दूसरे किसी भी देवता का नहीं ।११-१४।

भुक्तेर्मुक्तेरिहान्यत्रनान्योदाताजनार्दनात् ।
तस्माच्चतुर्भुजोनित्य सेवनाय: सुकेप्सुभिः ।१५
विहाय केशवादन्यं सेवन्तेऽल्पमेधसः ।
संसारचक्रे गहने ते विशन्ति पुनः पुनः ।१६
एक एवहि सर्वशो हृषीकेशो परात्परः ।
तं सेवमानः सततं सेव्यस्त्रि जगतां भवेत् ।१७
एको धर्मप्रदो विष्णुस्त्वेको बह्वर्थदोहरिः ।
एक कामप्रदश्चक्रीत्वेको मोक्षप्रदोऽच्युतः ।१८

शारंगिणये परित्यज्य देवमन्यमुपासते ।
तेसद्भिश्चबहिष्कार्या वेदहीना यथा द्विजाः ।१९
श्रुत्वेतिवाक्यं व्यासस्य नैमिषारण्यवासिना ।
प्रवेपमानहृदया परिप्रोचूरिदं वच ः।२०

भगवान् जनार्दन से अतिरिक्त अन्य कोई भी देव इस लोकमें मुक्ति और सुक्ति दोनों का प्रदान करने वाला नही। इसीलिए सुख की इच्छा रखने वाले पुरुषोंके द्वारा चतुर्भुज भगवान्की नित्य सेवा करनी चाहिए। जो अल्प वुद्धि वाले लोग भगवान् केशबको छोड़कर अन्यदेव का सेवन किया करते हैं वे इस गहन संसार चक्र में पुनः पुनः प्रवेश किया करते हैं। सर्वशी हृषीकेश एक ही पर से भी पर देव है। निरन्तर उनका सेवन करते हुए पुरुष तीनों जगतों का सेव्य हो जाया करता है। भगवान् विष्णु एक ही धर्म के प्रदान करने वालेहैं और यह हरि एक ही बहुत से अर्थों के दाता हैं। भगवान् चक्रधारी प्रभु कामनाओं के दाता हैं और अच्युत प्रभु एकही मोक्षके प्रदान करने वालेहैं। जो मार्ग मनुष्य के धारण करने वाले प्रभुको छोड़कर अन्यदेवकी उपासना किया करतेहैं उनका सत्पुरुषोंके द्वारा वहिष्कार कर देना चाहिए, जिस तरह वेदोंसे हीन द्विजों का बहिष्कार किया जाताहैं। नैमिषारण्य निवासी मुनि ने श्रीव्यास देव के इस वाक्य का श्रवण करके वे सब प्रकम्पित हृदय वालेहो गयेथे और उन्होंने यह वचन कहा था।१५-२०।

पाराशर्यमुने ! मान्यस्त्वमस्माकं सहामते !
यतो वेदास्त्वया व्यस्ताः पुराणान्यपि वेत्सि यत् ।२१
यतश्च कर्ता त्वमसि महतो भारतस्य वै ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां विनिश्चयकृतोध्रुवम् ।२२
तत्वज्ञः कोपरश्चात्रत्वत्तः सत्यवती सुत ।
भवतायत्प्रतिज्ञात निश्चित्ययोत्क्षिप्य तर्जनीम् ।२३
अस्मिन्माणवकास्तत्र परिश्रद्दधते नहि ।
प्रतिज्ञातस्यवचसस्तवश्रद्धाभवेत्तदा ।२४

यदाऽऽनन्दवने शम्भोः प्रतिजानासि वै वचः ।२५
गच्छ वाराणसीं व्यास ! यत्र विश्वेश्वरः स्वयम् ।
न तत्र युगधर्मोऽस्ति न च तग्ना वसुन्धरा ।२६
इति श्रुत्वा मुनिर्व्यासः किञ्चित्कुपितवद्धृदि ।
जगाम पूर्ण सह हितः स्पशिष्यैरयुतोन्मितं ।२७

ऋषियों ने कहा—हे पाराशर्य मुनिवर ! आप तो महती वाले हैं और हम सबके परम मान्य हैं क्योंकि आपने वेदों का विस्तार किया था और आप सभी पुराणों को भी जानते हैं। आप महा भारत जैसे महा विशाल ग्रन्थ की रचना करने वाले भी हैं। आपने तो धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष का विशेष निश्चय भी अवश्य ही कर लिया हैं । हे सत्यवती के पुत्र ! दूसरा कौन है जो आपसे भी अधिक तत्वोंका ज्ञाता हो। आपने जो अपनी तर्जनी अँगुली ऊँची उठाकर और पूर्ण निश्चय करके प्रतिज्ञा करके कहा है इसमें जो माणवक (बालक) हैं वे अच्छी तरहसे श्रद्धा नहीं करतेहैं। आपके इस प्रतिज्ञा किये हुए वचनकीं श्रद्धा तो तभी हो सकती हैं जब कि भगवान् शम्भु के वचनकी आनन्द वनमें प्रतिज्ञा को आप जान लेवें। हे श्री व्यासदेवजी ! आप स्वयं वाराणसी पुरीमें गमन कीजिये जहाँपर भगवान् विश्वेश्वर स्वयं विराजमान रहा करते हैं। वहाँ पर उस विश्वनाथ भगवान् की पुरी की ऐसी अद्भुत महिमा है कि वहाँ पर युग के धर्म का भी कोई प्रभाव नहीं हैं और न वहाँ पर वसुन्धरा ही लग्न है। यह श्रवण करके महामुनि व्यास कुछ अपने हृदय में कुपित से हुए थे और बहुत ही शीघ्र अपने दशों सहस्र शिष्यों के सहित वहाँ पर गये थे ।२१-२७।

प्राप्य वाराणसीं व्यासः स्नात्वा पञ्चनदेह्लदे ।
श्रीमन्माधवमभ्यर्च्य ययौ पादोदकं ततः ।२८
यत्र स्नानादिकं कृत्वा दृष्ट्वा चैवादि केशवम्
पञ्चरात्रं ततः कृत्वा वैष्णवैरभिनन्दितः ।२९
अग्रतः पृष्ठतः शंखैर्वाद्यमानैः प्रमोदितः :
जयविष्णो हृषीकेश गोविन्दमधुसूदनः ।३०

अच्युतानन्तवैकुण्ठमाधवोपेन्द्रः ! केशव ! ।
त्रिविक्रम गदापाणे शार्ङ्गपाणे जनार्दन ।३१
श्रीवत्सवक्षः श्रीकान्त पीताम्बरमुरान्तक ।
कैटभारेवलिस्वंसिन्कसारेकेशिसूदन ।३२
नारायणाऽसुररिपो कृष्ण शौरे ! चतुर्भज !
देवकीहृदयानन्द ; यशोदानन्दवर्धन ।३३
पुण्डरीकाक्ष ! दैत्यारे दामोदरुवलप्रिय ।
बलारातिस्तुत हरे ! वासुदेव वसुप्रद ! ।३४
विष्वक्चमूस्ताक्ष्यैरथ वनमालिन्नरोत्तम ।
अधोक्षज क्षमाधार पद्मनाभजलेशय ।३५

मुनिवर व्यास देवजी ने वाराणसी पुरी में पहुँचकर वहाँपर पञ्चमद ह्रद में स्नान किया था और श्रीमान् माधव देवका अभ्यर्चन करके फिर वे पादोदकपर चले गयेथे । जहाँपर स्नान आदि सब करके आदि केशव भगवान् का दर्शन किया था । वहाँ पर पाँच रात्रि तक निवास किया था जिसको वहाँ पर स्थित वैष्णवोंने बहुत ही अभिनन्दिन किया था—वहाँ पर आगे और पीछे सभी ओर वाद्यमान (वजाये गये) शंखों की ध्वनिके साथ श्रीव्यास देव अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होने भगवान् के अनेक शुभ नामोंका समुच्चारण किया था—यथा—हे विष्णो! आपकी जय हो, हे हृषीकेश—हे गोविन्द !मधुसूदन ! हे अच्युत ! अनन्त वैकुण्ठ ! माधव, उपेन्द्र, हे केशव ! त्रिविक्रम ! गदा हाथ में धारण करने वाले ! हे पार्ंगपाणें ! जनार्दन, श्रीवत्सवक्ष, श्रीकान्त, पीताम्वर, सुर असुर के अन्त करने वाले ! हे कैटभारे! बलि विध्वंसिन् ! कंसारे! हे केसी दैत्य के वध करने वाले ! नारायण, असुरों के रिपु—हे श्रीकृष्ण शोरे, चतुर्भुज, हे देवकी देवी के हृदय को आनन्द प्रदान करने वाले यशोदा माता के आनन्द को बढ़ाने वाले ! हे पुण्डरीक के समान नेत्रों वाले ! हे दैत्यों के अरि—दामोदर—बलप्रिय—बलारातिस्तु—हे हरे वासुदेव, हे वसुप्रद ! विष्वक्चमू—तार्क्ष्यैरथ—वनमालिन्—हे नरों में

सर्वोत्तम ! हे अधोक्षज ! हे क्षमाधार-पद्मनाथ-जल में शयन करने वाले ! ।२८-३५।

नृसिंह यज्ञवाराह ! गोपगोपालवल्लभ ! ।
गोपीपते गुणातीत गरुडध्वज गोत्रभृत् ।३६
जय क्राणूरमथन ! जयत्रैलोक्यरक्षण ! ।
जयानाद्य जयानन्द जयनीलोत्पलद्युते ।३७
कौस्तुभोद्भूषितोरस्कपूतनाघातुशोषण ।
रक्ष रक्षजगद्रक्षामणे ! नर संहारक ।३८
सहस्रशीर्ष पुरुष पुरुहूतसुखप्रद ।
यद्भूतं यच्च भाव्य वंतत्रैकपुरुषोभवान् ।३९
इत्यादिनाममालाभिः सस्तुवन्वनमालिनम् ।
स्वच्छन्दलीलयागायन्नत्यश्चपरयामुदा ।४०
व्यासो विश्लेशभवनं समायातः सहृष्टवत् ।
ज्ञानवारीपुरोभागे महाभागवतैः सह ।४१
विराजमानसत्कण्ठस्तुलसीवरदामभिः ।
स्वयं तालधरो जातः स्वयं जातः सुनर्तकः ।४२

हे नृसिंह ! हे यज्ञ वाराह ! हे गोपों और गोपालों के परम प्रिय? गोपीपते ! हें गुणों से अतीत वरुणध्वज गोत्रभृत—हे चाणूर के मन्थन करने वाले ! आपकी जय होवे । हे इस सम्पूर्ण त्रिलोकी की रक्षा करने वाले ! आपकी जय हो । हे अनाद्य, हे आनन्द ! नील कमल के समान द्युति वाले ! आपकी सदा जयहो । हे कौस्तुभ मणिसे विभूषित वक्ष-स्थल वाले ! हे पूतनाकी धातुओं का शोषण करने वाले! हे रक्षामणे ! इस समस्त जगत् की रक्षा कीजिए, इसका परिणाम करिये । आपतो नरकों के कारक हैं । आप ऐसे महापुरुष है जो सहस्र शीर्षो वाले हैं । हे इन्द्र को सुख प्रदान करने वाले ! जो भी हो चुकाहै और जो कुछ भी होने वालाहै वहाँ सभी स्थितिदोंमें आप एकही पुरुष है । इत्यादि अनेक प्रभु के शुभ नामोंकी मालाओंके द्वारा वनमाली प्रभु

का संस्तवन करते हुए—स्वच्छन्द लीलासे गान करते हुए और परमानन्द पूर्वक नृत्य करते हुए श्री व्यास देवजी परम हर्षित होते हुए भगवान् विश्वनाथ के भवन में आ गयें थे। वहाँ पर ज्ञानवापी के आगे के भाग में महा भागवतीके साथ व्यासदेवजी विराजमानहो गयेथे। तुलसी की सुन्दर मालाओंसे जिनका सुन्दर कण्ठ शोभित था। वे स्वयं वहाँपर भी तालधर होंकर स्वयं ही भगवान् विष्णु की भक्ति के भावावेश में मग्न होकर नृत्य करने वाले हो गये थे।३६-४२।

वेणुवादनतत्वज्ञः स्वयं श्रुतिधरोऽभवत्।
नृत्यपरिसमाप्येत्थव्यासः सत्यवती सुतः ॥४३
पुनरूर्ध्वंभुजंकृत्व दक्षिणशिष्यमध्यगाः।
पुनः पपाठ तानेवश्लोकान्नायन्निवोच्चकैः ॥४४
परिनिर्मथ्य वाग्जाल सुनिश्चित्याऽसकृद्‌बहु।
इदमेकपरिज्ञात सेव्यः सर्वेश्वरो हरिः ॥४५
यावत्पठति स व्यास सव्यमुत्क्षिप्य वै भुजम् ॥४६
तस्तम्भ तावत्तद्‌बाहुं सशैलादिः स्वलीलया।
वाक्स्तम्भश्चाऽपि यस्यासीन्मुनेर्व्यासस्य सन्मुने ॥४७
यतोगुप्तं सधागम्यविष्णुर्व्यासमभाषत।
अपराद्धं महच्चाऽत्रभवता व्यासनिश्चितम् ॥४८
तवतदपराधेन भीतिर्मेऽपि महत्तरा।
एक एव हि विश्वेशो द्वितीयो नास्ति कश्चन ॥४९

श्री व्यास देव वेणु वादन के तत्वों के परम ज्ञाता थे, वे स्वयं ही श्रुतिधर हो गये। इस प्रकार से सत्यवती के पुत्र व्यास देव ने अपना भगवत्प्रेम नृत्य समाप्त कर फिर अपने शिष्यों के मध्य स्थित होकर अपनी दाहिनी भुजा ऊपर उठाकर वहुत ही ऊँचे स्वर से गायन करते हुए उन्हीं श्लोकों को पढ़ा था कि मैंने समग्र वाग्जाल का शमन करके और वहुत ही अनेक बार अच्छी तरह से निश्चय करके यही एक सार की वात का ज्ञान प्राप्त किया हैकि सर्वेश्वर श्रीहरिका ही सेवन करना

चाहिए । इत्यादि अनेक श्लोकों के समुदाय को जो कि अपनी प्रतिज्ञा का प्रबोधक थे ज्यों ही श्री व्यास देव अपनी दाहिनी भुजा को ऊपर उठाकर पढ़ रहे थे, वैसे ही उनकी उस भुजा कों अपनी ही लीला से सशैलादि ने स्तम्भित कर दिया था उनकी महामुनि व्यासदेवकी वाणी का भी हे मुने ! उसी समय में स्तम्भन हो गया था। उसी समय में वहाँ पर भगवान् विष्णु गुप्त रूप में समागत हो गये थे और वे व्यास देवजी से बोले थे, कि हे व्यास ! आपने निश्चित रूप से यहाँ पर यह महान् अपराध किया हैं। आपके इस अपराध से मुझेभी भय समुत्पन्न हो गया है। हे व्यास ! विश्वेश ही एक सर्वोपरि विराजमान देव हैं। अन्य इस से ऊपर दूसरा कोई भी नहीं हैं ।४६-४६।

तत्प्रसादादहश्चक्री लक्ष्मीशस्तत्प्रभावतः ।
त्रैलोक्यरक्षासामर्थ्यं दत्तन्तेनैव शम्भुना ॥५०
तद्भक्त्यापरमैश्वर्यं मया लब्धं वरात्ततः ।
इदानींस्तुहि तं शम्भुं यदिनेशुभमिच्छासि ॥५१
अन्यादापि नवै कार्यभवताशेमुषीदृशी ।
पाराशर्यं इति श्रुत्वा सञ्ज्ञयाव्याजरारह ॥५२
भुजस्तम्भः कृतस्तेन नन्दिना दृष्टिमात्रतः ।
वाक्स्तम्भस्तद्भयाज्जातः स्पृश मे कण्ठकन्दलीम् ॥५३
यथास्तोतुम्भवानीश प्रभवामिभवान्तकम् ।
सस्पृश्यविष्णुस्तत्कण्ठंगुप्तमेवजगामह ॥५४
ततः सत्यवतीसूनुस्तथा स्तम्भितदोर्लतः ।
प्रारब्धवान्महेशानं परितुष्टोतुमुदारभीः ॥५५

मैं भीं उन्हीं विश्वेश का महिमा के प्रभावसे चक्रधारी बना हुआ हूँ तथा लक्ष्मीश का प्राप्त करने वाला हो गया हूँ। उन्हीं भगवान् शम्भु ने मुझे यह त्रैलोक्य की रक्षा इस परिपालन की शक्ति प्रदान की हैं। उनकी भक्ति से ही मैंने वरदान के द्वारा परम ऐश्वर्य प्राप्त किया है। जो कुछ किया सो किया अब आप उन्हीं शम्भु भगवान्का संस्तवनकरो यदि आप मेरा शुभ चाहते हो। मैं यह भी बतलाये देता हूँ कि फिरभी

कभी अन्य समय तथा स्नान में आपको ऐसी अपनी बुद्धि नहीं करनी चाहिये। पराशर के पुत्र व्यास देव ने होश में आकर यह श्रवण करके कहा—उन नन्दी ने अपनी दृष्टि मात्रसे ही मेरी इस भुजा का स्तम्भन कर दिया हैं और मेरी वाणी का स्तम्भन उस भय से ही हो गया हैं। अतएव हे प्रभो ! आप मेरे कण्ठ की कन्दलीका स्पर्श करिये।५०-५३। तभी मैं भवानी के पति का स्तवन करने के लिये समर्थ हो सकता हूँ जो कि इस समस्त संसार के अन्त करने वाले हैं। भगवान् विष्णु ने व्यास देव के कण्ठ का संस्पर्श किया था और गुप्त से हीं ऐसा करके वे चले गये थे इसके अनन्तर सत्यवती के पुत्र श्री व्यासदेव ने स्तम्भित भुजा वाला ही रहते हुए अपनी उदार बुद्धि से महेशान प्रभु को संतृप्त-कर दिया था।५४-५५।

एको रुद्रो न द्वितीयो यतस्तद्
ब्रह्मैवैकं नेह नानास्ति किञ्चित्।
यद्यप्यन्यः कोऽपि वा कुत्रचिद्वा
व्याचष्टान्यस्य शक्तिर्मदग्रे ॥५६
यः क्षारब्धेर्मन्दराघातजातो
ज्वालामाला कालकूटोऽतिभीमः।
तं सोढुं वा कोऽपरोऽभून्महेशा
द्यल्लीलाभिः कृष्णतामापविष्णुः ॥५७
यद्बाणोऽभूच्छ्रीपतिर्यस्य यन्ता
लोकेशो यत्स्यन्दनम्भूः समस्ता।
वाहा वेदा यस्य येनेषुपात
दग्धा ग्रामास्त्रैपुरास्यत्समः कः ॥५८
यं कन्दर्पो वीक्षमाणः समानं
देवैरन्यैर्भस्मजातः स्वयं हि।
पौष्पैर्बाणैः सर्वविश्वैकजेता
को वा स्तुत्यः कामजेतुस्ततोऽन्यः ॥५९
य वै वेदो वेद नो नैव विष्णु

नोंवा वेधा नो मना नैव वाणी ।
तं देवेशं माहृशः कोऽल्पमेधा
याथात्म्याद्वै वेत्यहो विश्वनाथम् ॥६०

श्रीव्यास देव ने कहा—इस विशाल विश्व ब्रह्माण्ड में एक ही रुद्र देव सबके समुच्च देव है क्योंकि ब्रह्म एकही है और वह अनेक न हो कर ही एक विभिन्न रूपों में रहता है। यद्यपि कहीं पर भी अन्य कोई बतलाया भी गया है और जिसकी शक्ति मेरे आगे हैं वह वही महेश हैं।५६। जो मदराचल के आघात से क्षीर सागर में ज्वालाओंकी माला बाला—अत्यन्त भयानक कालकूट उत्पन्न हुआ था उसको सहन करनेके लिये अन्य कौन समर्थ हुआ था। श्री महेश ही वैसी सामर्थ्य वाले थे जिन्होंने उसे कण्ठ में धारण कर लिया था जिसकी लीलाओं से भगवान् बिष्णु भी कृष्णता तो प्राप्त हो गये थे।५७। श्रीपति जिसका वाण हुआ था—जिसका यन्ता लोकेश थे—जिसका रथ यह सम्पूर्ण भूमि थी—जिसके वहन करने वाले वेद थे ऐसे जिन भगवान् महेश्बर ने त्रैपुर ग्रामों को वाणों से दग्ध कर दियाँ था उन देवेश्वरके समान अन्य कौन देब हो सकता हैं ? ।५८। जिस देवेश्बर की यह कन्दर्प (कामदेव) अन्य देवो के ही समान देखता हुआ स्वयं ही भस्म हो गया था। वह कामदेव अपने पुष्पों के बाणों द्वारा समस्त बिश्व विजय प्राप्त करने वाला था उस कामदेव को जीत लेने वालेसे अन्य कौन देव स्तुति करने के योग्य हो सकताहै अर्थात् उनसे अन्य ऐसा कोई भी देव हैं ही नहीं। जिस महेश्बर देव को वेद भी नहीं जान पाये हैं—न विष्णु भगवान् ने उसको समझ पाया हैं—ब्रह्मा भी उनके स्वरूप को नहीं पहिचान सके हैं तथा मन और वाणी उनको नहीं जान सकी है उन देवेश्बर विश्वानाथ को मुझ जैसा अल्प बुद्धि बाला कैसे जान सकता है ? उनकी यथात्मा मेरी बुद्धि के वाहिर की वस्तु है।५९-६०।

यस्मिर्वन्य यस्तु सर्वत्र सर्वो
यो वै कर्ता योऽविता योऽपहर्ता।

नोयस्यादिर्यः समस्तादिरेको
नोयस्याऽन्तो योऽन्तकृत्तं नतोऽस्मि ॥६१
यस्यैकाख्या वाजिमेधेन तुल्या
यस्या नत्या चकयाल्पेद्रलक्ष्मीः ।
यस्या स्तुत्या लभ्यते सत्यलोकः
यस्यार्चाती मोक्षलक्ष्मीरदूरा ॥६२
नान्यं देवं वेद्म्यहं श्रीमहेशा
न्नान्यं देव स्मामि शम्भोर्ऋ्तेऽहम् ।
नान्यं देवं वा नमामि त्रिनेता—
सत्यं सत्यं सत्यमेतन्मृषा न ॥६३
इत्थं यावत्स्तौति शम्भुं महर्षि—
स्तावन्नन्दी शाम्भवाद्दृक्प्रसादात् ।
तद्दोः स्तम्भं त्यक्तवांश्चाऽवभाये
स्मायं स्मायं ब्राह्मणेभ्यो नमो वः ॥६४
इदं स्तवम्भहापुण्यव्यासते परिकीर्तितम् ।
यः पढिस्यतिमेधवी तस्मात्तुष्यतिशंकरः ॥६५
व्यासाष्टकमिदस्प्रातः पठितव्यंप्रयत्नतः ।
दुःस्वप्नपापशमनं शिवसान्निध्यकारकम् ॥६६

जिसमें यह समस्त चराचर विश्व ब्रह्माण्ड रहता है जो सर्वत्र विराजमान हैं—इसके सृजन का करने बाला है—जो इस जड़—जङ्गम अगत् का परिपालन संरक्षण करने बाला हैं तथा अन्त में जो स्बयं ही इसका सहार कारी है। जिसका कोई आदि नहीं है,जो समस्त का एक ही स्बयं आदि हैं जिसका अन्त भी नहीं है और जो इस जगत् का अन्त करने बाला है उन्हीं प्रभु बिश्वेश्वरको मैं नमन करता हूँ।६१। जिसके एक ही शुभ एवं पावन नाम के उच्चारण का पुण्य—फल एक बाजिमेध यज्ञ के तुल्य होता है जिसके लिए एक ही बार प्रमाण करने के पुण्य फल के आगे इन्द्र की ऐश्बर्य लक्ष्मीभी अत्यन्त स्बल्प होती है, जिसकी स्तुति करनेका पुण्य फल ऐसा होता है,कि सत्यलोककी प्राप्ति

हो जाया करती है और जिस विश्वनाथ भगवान् की समर्चना से मोक्ष लक्ष्मी भी समीप रहा करती हैं ।६२। मैं तो श्री महेश देव से अन्य किसी भी देवका स्तवन नहीं करता हूँ । मैं त्रिनयन को छोड़कर अन्य देवको नमन भी नहीं करता हूँ—यह मेरा कथन सर्वदा सत्य—शत सत्य है और पूर्णतया सत्य है इसमें लेश मात्र भी मिथ्या नहीं हैं ।६३। इस प्रकार से जब तक व्यास देव शम्भु की स्तुति कर रहे थे जब तक शम्भु की दृष्टि के प्रसाद से नन्दी ने उन महर्षि की बाहु के स्तम्भनका त्याग कर दिया था और बारम्बार मुस्कराहट करते हुए कहा था आप ब्राह्मणों के लिये नमस्कार ।६४। नन्दिकेश्वर ने कहा—हे व्यास ! वह स्तव महान् पुण्यमय है जो आपने अभी तक किया हैं । जो भी कोई मेधावी इस स्तोत्र को पढ़ेगा उससे भगवान् शङ्कर बहुत प्रसन्न होंगे । यह व्यास के द्वारा रचित अष्टकहैं । इसको प्रयत्न पूर्वक अवश्य पढ़ना चाहिए । यह दुःस्वप्नों और पापों के प्रशमन का करने वाला तथा भगवान् शिव की सन्निधि में पहुँचा देने वाला है ।६५-६६।

।। काशी खण्ड समाप्त ।।

स्कन्द पुराण

अवन्ती खण्ड

५७—महाकालवन प्रशंसा वर्णन

स्रष्टारोपि प्रजानां प्रबलभवभयाद्यं नमस्यन्ति देवा-
यश्चित्तं सम्प्रविष्टोऽप्यवहितमनसां ध्यानयुक्तात्मनां च ।
लोकानानादिदेवः स जयतु भगवाञ्छ्रीमहाकालनामा
बिभ्राणः सोमलेखामहिवलययुतं व्यक्तलिंगं कपालम् ॥१
पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्याश्च सरितस्तथा ।
कथ्यतां तानि यत्नेन श्राद्धं येषु प्रदीयते ॥२
अस्तिलोकेषु विख्याता गङ्गात्रिपथगानदी ।
सेवितादेवगन्धर्वैर्मुनिभिश्चनिषेविता ॥३
तपनस्यसुतादेवी यमुनालोकपावनी ।
पितृणांवल्लभादेवि ! महापातकनाशिनी ।४
चन्द्रभागावितस्ताच नर्म्मदाऽमरकण्टकम् ।
कुरुक्षेत्रं गयां देवि ! प्रभास नैमिषन्तथा ।५
केदारं पुष्करञ्चैव तथा कायावरोहणम् ।
तथा पुण्यतमन्देवि महाकालवनं शुभम् ।।६
यत्रास्ते श्रीमहाकालः पापेन्धन हुताशनः ।
क्षेत्रं योजनपर्यन्त ब्रह्महत्यादिनाशनम् ॥७
भुक्तिदं मुक्तिदं क्षेत्रं कलिकल्मषनाशनम् ।
प्रलयेऽप्यक्षयं देवि दुष्प्राप्यं त्रिदशैरपि ।८

प्रजाओं के सृजन करने वाले देव भी जिनको महान.प्रवल भय से नमस्कार किया करते है जो परम अवहित मन वाले ध्यान से युक्त आत्माओं वाले लोगों के चित्त में भली भाँति प्रविष्ट हुआ रहा करता है। समस्त लोगों का आदि देव चन्द्रमा के लेख और व्यक्त लिंग वाले कपाल को तथा सर्पों के वलय को धारण करने बाले भगवान् श्री महा काल नाम बाले वह प्रभु हैं उनकी सदा जय होवे। जगज्जनी श्री उमा देवी ने कहा—हे देवेश्वर ! इस भू मण्डल में जो भी तीर्थ रूपहैं तथा परम पुण्यमयी सरितायेंहैं उनको आप प्रयत्नपूर्वक कहिए जिनमें श्राद्धों का प्रदान किया करता हैं। श्री ईश्वर ने कहा—समस्त लोकों में परम बिख्यात गङ्गा नदी है जो देवों गन्धर्वों और मुनियों द्वारा सेवित और उपासित होती है। हे देवि ! सवितादेव की पुत्री लोकोंको पावन करने वाली यमुना हैं जो पितृगणों की बहुत ही अधिक प्यारी है और बड़ें से वड़े पातकों के बिनाश कर देने वाली है।१–४। हे देवि ! चन्द्रभागा, वितस्ता और नर्मदा सरितायें भी हैं तथा अमरकण्टक—कुरुक्षेत्र–गया प्रभास क्षेत्र—नैमिषारण्य–केदार–पुष्कर–कायाबरोण—महान् पुण्य-तम एवं शुभ महाकाल बन है जहाँ पर पापों के ईंधन के लिए भस्म करने वाले अग्नि के तुल्य श्री महाकाल विराजमान रहते हैं। वह एक योजन पर्यन्त क्षेत्रहै जो ब्रह्म हत्या आदि महान् पातकों का भी विनाश कर देन वाला है। यह सम्पूर्ण सुखोंके उपभोगों को प्रदान करने वाला तथा संसार के जन्म मरण के आगमन से छुटकारा देने वाला क्षेत्र है और सभी कलियुग के कलमषों का विनाशक है। हे देवि ! वह प्रलय काल में भी जब कि सभी का विनाश हो जाया करता है अक्षयही रहा करता है और देवों के द्वारा भी दुष्प्राप्य होता है।५-८।

प्रभावः कथ्यतां देव ! क्षेत्रस्याऽस्य महेश्वर ! ।
यानि तीर्थानि विद्यन्ते यानि लिंगानि सन्ति वै ॥९
तान्यहं श्रोतमिच्छामि परं कौतूहलं हि मे ॥१०

श्रृणु देवि प्रयत्नेन प्रभावं पापनाशनम् ।
क्षेत्रमाद्यं महादेवि ! सर्वपापप्रणाशनम् ॥११
श्रीमेरोस्सन्निधाने यच्छिखरं रत्नचित्रितम् ।
वैराजभवनं नाम ब्रह्मण: परमात्मन: ॥१२
तत्र दिव्यांगनागीतमधुरस्वरनादिता ।
पारिजाततरुच्छन्नमञ्जरीदामशोभिता ॥१३
बहुवाद्यसमुत्पन्न सुमहास्वरनादिता ।
लयतानयुतानेक गीतावाद्रित्रनादिता ।
विन्यस्ता कोटिभि: स्तम्भैनिर्मलादर्श शोभिता ॥१४
अप्सरोनृत्यविन्यास विलासोल्लासशोभिता ।
सभाकान्तिमतीनाम्नी देवानां हर्षदायिका ॥१५

जगदम्बा उमा देवी ने कहा--हे देव ! आप तो महान् ईश्र हैं। कृपया इस क्षेत्र का प्रभाव मुझे श्रवण करायें। जोभी तीर्थ विद्यमान रहते हैं और जो लिंग हैं उन सभी को मैं सुनाना चाहती हूँ। मेरे चित्त में इसके श्रवण करने का बड़ा भारी कौतूहल हो रहा हैं।९-१०। श्री महादेवजी ने कह्वा—हे देवि ! यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो पापों के नाश करने वाले प्रमाव को सुनिए। हे महादेवि! यह सबसे आदिमें होने वाला क्षेत्र है और सभी प्रकारके पापोंका नाश कर देने वाला है।११। श्रीमेरु पर्वत के सन्निधानमें जो रत्नोंसे चित्रित शिखर है वह परमात्मा ब्रह्मा का वैराज भवन नाम वाला है। वहाँपर एक कान्ति से सुसम्पन्न और कान्तिमयी ही नाम वाली सभा है जो दिव्यांगनाओं के गीतों के परम मधुर स्वर से शब्दायमान रहा करती है, जो पारिजात बृक्ष की छन्न मजरियों के मालाओं से शोभा वाली है। जहाँ पर बहुत प्रकारके उत्तमोत्तम वाद्योंके उत्पन्न सुन्दर समुत्पन्न ध्वनियों से निनादित रहा करती हैं। जो लय और तालों से युक्त बहुत से प्रकार के गीत और वादित्रों की ध्वनियों वाली है । जिसमें परम स्वच्छ आदर्शो (दर्पणों) से शोभित करोड़ों ही स्तम्भ बने हुए हैं और जो अप्सराओं के नृत्यों से एवं विन्यासों के उल्लासों एवं विलासों से

शोभा वाली है। यह देवों को बहुत ही हर्ष के प्रदान करने वाली है ।१२-१५।

तस्यां निर्विष्टं वागीशा शंकराराधने रतम् ।
सनत्कुमार ब्रह्मर्षि ब्रह्मणो मानसं सुतम् ॥१६
मुनिमध्यात्समुत्थाथ क्रष्णद्वैपायनो मुनिः ।
पराशरसुतो व्यासः प्रणिपत्य यथाविधि ॥१७
कृताञ्जलिपुटोभूत्वा भवभक्त्यानुभावितः ।
प्रपच्चपरयातुष्टचा हृषितो गरुडाननः ॥१८
महाकालस्य माहात्म्यं प्राणिनां मोहनाशनम् ।
भगवन् ! क्षेत्रमाहात्म्य महाकालस्य कथ्यताम् ॥१९
महाकालवनंकस्मात् प्रोच्यते सर्वतोवरम् ।
कथ गुह्यवनं प्रोक्तं पीठ सऊषरन्तथा ॥२०
फलं यथास्यक्षेत्रस्य मृतानाञ्च गतिर्यथा ।
स्नानेन यद्भवेत्पुण्यं दानेनाऽपि च यत्फलम् ॥२१
कथमेतच्छमशानञ्च क्षेत्रं प्रोक्तं यथातथा ।
पृष्टोमेशशकरेभक्ति ब्रूहि त्वं शास्त्रकोविद ॥२२

उस सभा में निविष्ट—वागीश श्री शंकर भगवान् के समाराधना में रति रखने वाले—ब्रह्माजी के मानस पुत्र—महर्षि सनत्कुमार मुनि को समस्त मुनिमण्डली के मध्य से उठकर पराशर के पुत्र क्रष्ण द्वैपा-यन व्यासजी ने यथा विधि प्रणाम किया था ।१६-१७। भगवान भव की भक्तिसे अनुभावित होकर दोनों अपने हाथोंको जोड़कर परम तुष्टि से हर्षित गरुडासन ने पूछा था कि इस महाकाल का क्या प्रभाव हैं जो प्राणियों के मोह के नाश कर देने वाला होता हैं। व्यास देव ने कहा था हे भगवन् ! आप इस महाकाल के क्षेत्र के प्रभाव एवं माहात्म्य को कहिये। यह सबसे परम श्रेष्ठ महाकालवन कैसे कहा जाता है ? यह सऊषर पीठ कुह्यवन क्यों कहा गया है ? जिस प्रकार से इस क्षेत्र का फल होता है और जैसे यहाँ पर मृत मानवों की गति हुआ करतीहै तथा जो यहाँ दान देने से पुण्य होताहै एवं यहाँ स्नान करवेसे जो फल

प्राप्त होता है वह सभी बतलाइये। इस क्षेत्रको श्मशान कैसे और क्यों कहा गया है ? मेरे द्वारा पूछे गये आप भगवान् शंकर में भक्ति को भी बतलाइये क्योंकि आप तो सभी शास्त्रों के महान् मनीषी है ।१८-२२।

क्षीयते पातक यस्मात् तेनेदं क्षेत्र मुच्यते ।
यस्मात्स्थानञ्च मातृणा पीठन्तेनैवकथ्यते ॥२३
मृता: पुनर्नजायन्ते तेनेदमूषर स्मृतम् ।
गुह्यमेत्तत्प्रियन्नित्यं क्षेत्रं शम्भोमहात्मन: ॥२४
यस्मादिष्टं हि भूतानां श्मशानमतिबल्लभम् ।
महाकालवन यच्च तच्चैत्रापि विमुक्तिदम् ॥२५
एकाम्रक भद्रकालं करवीरवनन्तथा ।
कोलगिरिस्तथा काशीप्रयागमरेश्वरम् ॥२६
भरञ्चैव केदारं दिव्यं रुद्रमहालयम् ।
दिव्यश्मशानान्येतानि रुद्रस्येष्टानि नित्यश: ॥२७
रमते भगवानेषु सिद्धिक्षत्रेषु सर्वदा ।
पृथिव्यान्नैमिषतीर्थमुत्तमतीर्थंपुष्करम् ॥२८

भगवान् सनत्कुमार जी ने कहा—जिससे पातकों का क्षयहो जाया करता है इसी कारण से इसका नाम क्षेत्र यह पड़ गया है और क्षेत्र कहा जाया करता हैं। क्योंकि यह मातृगण का स्थान है इसी कारण से इसको पीठ कहा जाता है। इससे अपने प्राणों का परित्याग करने वाले फिर दूसरी बार जन्म ग्रहण नहीं किया करते हैं इससे इसको ऊपर कहा गया है। यह महान् आत्मा वाले शम्भु का परम गोपनीय और नित्य ही अतिशय प्रिय क्षेत्र है। इस कारण समस्त भूतों का यह इष्ट है और अत्यन्त बल्लभ श्मशान है और जो महाकाल वन है वह भी विमुक्ति के प्रदान करने वाला है। एकाम्रक–भद्रक—करवीर वन-कौलागिरि—काशी–प्रयाग—अमरेश्वर–भरत–केदार यह दिव्य रुद्र महालय है। ये भगवान् रुद्र को अत्यन्त ही नित्य इष्ट दिव्य श्मशान हैं। भगवान् शम्भु इन सिद्धि क्षेत्रों में सर्वदा रमण किया करते हैं। इस पृथ्वी में परमोत्तम नैमिष तीर्थ ओर पुष्कर तीर्थ हैं ।२३-२८।

त्रयाणामपिलोकानां कुरुक्षेत्रं च शस्यते ।
कुरुक्षेत्राद्दशगुणा पुण्यावाराणसीमता ॥२९
तस्माद्दशगुणं व्यास ! महाकालवनोत्तमम् ।
प्रभासाद्यानि तीर्थानि पृथिव्यामिहयानितु ॥३०
प्रभासमुत्तमं तीर्थं क्षेत्रमाद्यं पिनाकिनः ।
श्रीशैलमुत्तमं तीर्थंदेवदारुवनं तथा ॥३१
तस्मादप्युत्तमा व्यास ! पुण्या वाराणसी मता ।
तस्माद्दशगुण प्रोक्तं सर्वतीर्थोत्तम यतः ॥३२
महाकालवन गुह्यं सिद्धिक्षेत्रं तथोपरम् ।
किञ्चिद् गुह्यान्यथान्यानि श्मशानान्यूषराणि च ॥३३
सर्वमस्तु समाख्यातं महाकालवनं मुने !
श्मशानमूषं क्षेत्र पीठन्तु वनमेव च ॥३४
पञ्चैकत्र न लभ्यन्ते महाकालपुरादृते ॥३५

इन तीनों लोकों में कुरुक्षेत्र परम प्रशस्त माना जाता है । कुरुक्षेत्र से दश गुणा तथा परम गुण स्वरूपा वाराणसी मानी गईहै । वे व्यास! यह महाकाल उत्तम बन उससेभी दश गुना महत्व वाला है । यहाँ पृथ्वी में जो भी प्रवास आदि तीर्थ है उन सबसे यह प्रभाव सबसे उत्तम तीर्थ है और प्रभु पिनाकी का यह आद्य क्षेत्र है । श्रीशैल भी परमोत्तम तीर्थं है तथा देवदारुवन भी श्रेष्ठ तीर्थं है । हे व्यास ! इससे भी उत्तम एवं पुण्यमयी वाराणसी को माना गया है । उससे भी दश गुना सव तीर्थोंमें उत्तम महाकाल बन को कहा गया है । परम गुह्य एवं सिद्धि का क्षेत्र है तथा ऊपर भी इसी प्रकार की महिमा वाला है । इसी प्रकार से कुछ गुह्य अन्य भी श्मशान तथा ऊषर है । हे मुने! इन सबसे महाकाल वन समाख्यात है । श्मशान—ऊषर क्षेत्र—पीठ और वन ये पाचों एक ही स्थान में महाकाल पुर में अतिरिक्त कहीं भी प्राप्त नहीं हुआ करते हैं ।२९-३५।

५८ अग्नि आविर्भाव वर्णन

कथमग्निः समुत्पन्नो योनिः शर्वेणधारितः।
विस्तरेणसमाचक्ष्व भगवन्मुनिवन्दितः ॥१
अव्यक्तादीन्ससर्जादावण्डहितद जायत।
जज्ञे सोवर्णाभो ब्रह्मालोकपितामहः ॥२
स्वयम्भूः स तपस्तप्त्वा दिव्यं वर्षशतं महत्।
सन्तस्थौव्याजहाराऽथभूर्भुवः स्वरितिश्रुतिः ॥३
श्रुतियोगात्तु मनसः पश्चादग्निरत्यजायत।
अधोमुखः पपाताऽग्नि पृथिवीनिर्दहन् यदा ॥४
पाणिभ्यां ब्रह्मणा सोऽग्निर्भूमेरूर्ध्वं निवेशितः।
ततो दक्षिणहस्तेन वेद्यामग्निः प्रणीयते ॥५
तुरापतन्नधोज्वालऊर्ध्वज्वालोयतोधृतः ।
उत्तानश्चकृतोयस्माद्ब्रह्मणानिर्मितस्त्रिधा ॥६
ज्वालाभिः प्रज्वलन्नूर्ध्वं सर्वशब्दः स्फुलिंगवान्।
हिरण्यवर्णं ब्रह्माणं स उवाचाऽग्निरुत्कटम् ॥७

महर्षि व्यासदेव जी ने कहा—हे मुनियों के द्वारा महा वन्दित भगवान्! यह सबका योनि भगवान् शम्भु के द्वारा धारण किया हुआ अग्नि कैसे समुत्पन्न हुए थे ? आप इसको विस्तारसे बतलाइये । भगवान् सनत्कुमारजी ने कहा—सबसे अधिक काल में अव्यक्तादि का सृजन किया और वह अण्ड समुत्पन्न हुआ था। सुवर्ण के समान आभा वाला लोकों के पितामह ब्रह्माजी उत्पन्न हुए थे।१-३। उन भगवान् स्वयम्भू ने दिव्य सौ वर्ष तक महान तप का सन्तपन किया था इसके अनन्तर 'भूर्भुवः स्वः—इस श्रुति का कथन हुआ। इसके पीछे श्रुति के योग से मन से अग्नि की समुत्पत्ति हुई थी। वह अग्नि नीचे ओर मुखवाला होकर गिर गया था। जब वह पृथ्वी का दाह कर रहा था तब ब्रह्मा ने दोनों हाथों से उस अग्नि को भूमि के ऊपर निवेशित कर दिया था। इसके दाहिने हाथ से वेदों में वह अग्नि प्रणीत किया जाता है।३-५।

पहिलेयह नीचेंकी ओर ज्वाला वाला होकर गिराथा उर्ध्व ज्वाला वाला इसे धारण किया गया था, इस प्रकार ब्रह्माजी के द्वारा यह तीन प्रकार से निर्मित किया गया था। ज्वालाओं के ऊर्ध्व भाग की ओर प्रज्वलित होता हुआ—सर्वशब्द वाला—स्फुलिंगों से युक्त यह अग्नि हिरण्य के समान वर्ण वाले ब्रह्माजी से उत्कृष्ट बोला।६-७।

किमर्थं तु मया देव भूमिभक्ष्यं निवारितम् ।
बुभुक्षयाहमाविष्टआहारोमेप्रदीयताम् ॥८
एकमुक्तोऽनयेब्रह्मा स्वरोमाणिजुहावसः ।
कृशश्चखादन्नग्निस्तु सर्वरोमाणिब्रह्मणः ॥९
त्वचंजुहावब्रह्मा स चखादाऽग्निस्तमेव च ॥१०
अब्रवीच्चनमेतृप्तिर्नचमेदेहनिर्वृतिः ।
अब्रवीत्तं ततो वह्निस्तृप्तिर्नास्ति ममैव हि ।
जुहाव स्वानि मांसानि त्वचोत्कृत्य प्रजापतिः ॥११
अब्रवीच्चनमेतृप्तिर्नचमेदेहनिर्वृतिः ।
जुहाव ब्रह्माचास्थीनि तान्यश्नन्स बुभुक्षितः ॥१२
ततोब्रह्माहुताशेन कृतोदेहीविधातुकः ।
तमदेहमथोवह्निर्ब्रह्माणः भवेदच्च सः ॥१३
अहोब्रह्मन्नमेतृप्तिर्नश्चमेदेहनिवृतिः ।
क्रुद्धेनब्रह्मणाणोऽग्निहुंकारेणद्विधाकृतः ॥१४

अग्नि ने कहा—हे देव ! मेरे द्वारा भूमि का भक्षण आपने किस कारण से निवारित कर दिया है। मैं तो बुभुक्षा (भूख) से आविष्ट हूँ। मुझे आप आहार प्रदान कीजिये।८। इस तरह अग्नि के द्वारा कहे गये ब्रह्माजी ने उस अग्नि के लिये अपने रोमों का हवन किया था। उस कृश अग्नि ने ब्रह्माजी के समस्त रोमों को खा लिया था और फिर वह अग्नि बोला—मेरी तृप्ति नहीं हुई है और मेरे देह की निवृत्ति भी नहीं हुई हैं। फिर ब्रह्माजी ने अपनी त्वचा का हवन किया था। अग्नि ने उसे भी खा लिया था। और फिर उस अग्नि ने कहा था—मेरी तृप्ति तो अभी भी नहीं हुई है। तब उस प्रजापतिसे त्वचासे उखाड़कर

अपने मांसकी पेशियों का हवन किया था। फिर भी अग्निने यही कहा था—मेरी अब भी तृप्ति नहीं है और न मेरे इस देह की ही निवृत्ति हुई है। इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने अपनी अस्थियों की आहुतियाँ उसे दे दी थीं। उनको भी खाते हुए वह भूखा ही रहा था। इसके पश्चात् उस अग्नि ने ब्रह्माजी को विद्यानुक देह वाला कर दिया था। फिर वह अग्नि विना देह वाले ब्रह्माजी से वोला—अहो! हे ब्रह्मन् ? मेरी तृप्ति नहीं होती हैं और मेरे देह की निवृत्ति भी नहीं हो रहा है तवतो ब्रह्मा अत्यन्त क्रुद्ध हो गये थे और उन्होंने अपनी हुंकार के द्वारा उस अग्नि के दो भाग कर दिये थे।९-१४।

आहतूरुदतावग्नी आहारार्थं प्रजापतिम्।
हुंकारेणपुनर्ब्रह्माद्विधैकैकचकार वै ॥१५
त्रयस्तेषां रुदन्तिस्म रुद्रमेकोहि संश्रितः।
क्रुद्धेनब्रह्माणाव्यास हुंकारेणैवताडितः ॥१६
रारूयमाणे चाग्नौ तु पुनर्ब्रह्मा कृपान्वितः।
आह कामाभिभूतानां भुङ्क्ष्व त्वं देहधातवः ॥१७
ते काले लब्धकामस्य सावृत्तिः सम्प्रकल्पिता।
अकाराग्निं सन्निविष्टं दृष्ट्वा मनसि मानसम् ॥१८
अकाराग्निः प्रजज्वाल किमेतदितिचाब्रवीत।
ब्रह्मातमाहत्वमपि यथेष्टांवृत्तिमाश्रय ॥१९
देवमध्येबहिर्वापि मुनीनामाश्वयेषु च।
इत्येवमुक्तस्तेनाऽऽशु वृत्तिमेतामरोचयत् ॥२०
अहमेव प्रदास्यामि पुनः पुनरुवाच ह।
यस्मादेषद्वितीयोऽग्निर्हुंकारात्समजायत ॥२१

वे दो भागों में हो जाने वाले अग्नियों ने रुदन करते हुए प्रजापति से अपने आहार के लिये कहा था। फिर ब्रह्माजीने उन दोनों भागोंको एक-एक करके तीन भागों में कर दिया था। वे तीनो भाग रुदन करते थे। उनमें से एक भाग ने रुद्र देव का सश्रय ग्रहण कर लिया था। हे व्यास ! क्रुद्ध हुए ब्रह्मा जी ने फिर हुंकार के द्वारा उस अग्नि को

ताड़ित किया था। वे दोनों अग्नियाँ रो रहेथे तब पुनः ब्रह्माजीको उस पर दया आ गयी और कृपा से समन्वित होकर ब्रह्माजी ने अग्नि से कहा—जो पुरुष काम से अभिभूत हो उनके देहों की धातुओं का तू भक्षण किया कर।१५-१८। उन्होंने काल में लब्ध काम की वह वृत्ति संप्रकल्पित करली थी। मनमें मानस अकाराग्नि की सन्निविष्ट देखकर अकाराग्नि प्रज्वलित हुआ और यह क्या है—ऐसा बोला—ब्रह्माजी ने उससे कहा—तू भी यथेष्ट वृत्ति का समाश्रय ग्रहण कर ले देह के मध्य में—बाहिर भी और मुनियों के आश्रमों में अपनी वृत्ति ग्रहण करो। इस प्रकार से कहे हुए उस अग्नि ने इस बृत्तिको वहुत पसन्दकर लिया था। क्योंकि यह दूसरा अग्नि हुंकार से समुत्पन्न हुआ है मैं इसप्रकार से दूँगा—यह पुनः कहा था।१९-२१।

साभितानोऽपमानो वा हुंकारो यत्र कथ्यते।
साच वृत्तिर्ममादेशाद् बुभुक्षा शान्तये तव ॥२२
इकाराग्नि समाहूय ब्रह्मावचनमब्रवीत्।
भवतोऽग्नेरियंवृत्तिरन्नभुक्तं दहेरिति ॥२३
उकाराग्नि समाहूय ब्रह्मा वचनमब्रवीत्।
यत्पृथिव्यां मरुस्थानं वगवस्तत्वमाश्रय ॥२४
अहं तव विधास्यामि स्थानमाहारत्रेवच।
इत्युक्तः सुततेनाग्निर्ग्यः पृथिव्यांशिलाचयः ॥२५
यतोऽग्निर्व्यासतेनोक्तो गिरौदुर्गमहामुने।
उकाराग्निः सचाप्येष समुद्रर्वडवामुखः ॥२६
सोऽपि भिन्नः समाहूतो ब्रह्मणा स्थानलिप्सया।
त्वञ्चक्षु सर्वलोकस्य ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ॥२७
तस्मात्व संस्कृतां वाणीं द्विजातीनां प्रकाशय।
दैवी पुण्या संस्कृताच आयुष्यंहन्त्यसंस्कृता ॥२८

अभिमान या अपमान के साथ जहाँ पर भी हुंकार को कहा जाता है, वह वृत्ति मेरे आदेश से तुम्हारी भूख शान्ति के लिये है।२२। अकाराग्नि को बुलाकर ब्रह्माजीने यह वचन बोला था—अग्नि आपकी

यह वृत्ति होवे कि जो भी अन्न खाया गया हो उसे आप दग्ध कर दो ।२३। फिर उकाराग्नि को बुलाकर ब्रह्माजीने कहा—जो भी इस पृथिवी में मरुस्थल हो, हे भगवान् ! वहाँ पर आप अपना आश्रम बनाइये मैं आपके लिये स्थान और आहार को करूँगा । इस तरह से ब्रह्माजी के द्वारा कहे हुए ! व्यास ! उनके द्वारा कहे हुए अग्नि ने गिरि में—दुर्गमें स्थिति की और वहाँ पर उकाराग्नि के द्वारा स्थान की लिप्तासे भिन्न वड़वा मुख अग्नि । वह भी ब्रह्माजी के द्वारा स्थान की लिप्तासे भिन्न ब्रह्माजी के द्वारा समाहूत किया गया था । ब्रह्माजी ने उससे कहा—आप समस्त लोक की चक्षु है । इसलिए आप द्विजातियों की परम संस्कृत वाणी को प्रकाशित करिये । वाणी दैवी-पुण्या और संस्कृत ही होनी चाहिये । जो वाणी विना संस्कारों वाली होती है वह आयुष्यका हनन किया करती है ।२४-२८।

तस्माद्द्विजातेर्विज्ञे या वाणी पुण्याप्रकाशिता ।
वाक्चमाताद्विजातीनां मुखे सा सम्प्रतिष्ठिता ॥२९
अनृताक्षरविन्यासादमंगल्याह्यसंस्कृता ।
वक्तारहन्त्यतोह्यग्निः सदासंस्कृतवाग्द्विजः ॥३०
आहूयभूयोऽकाराग्नि प्रजापतिरचक्षुषम् ।
तां देववाणीमवदत्सोऽपिसंमीलितेक्षणः ॥३१
ब्रह्माणमाहवह्निस्तु वाचोऽहमुखमास्महे ।
स्थानं ममप्रयच्छस्य सर्वतेजोवरं परम् ॥३२
ब्रह्मातमाहयस्मात्वंतेजः स्थानंसमीहसे ।
तस्मात्तेजोमयत्तै रविस्थानं भविष्यति ॥३३
यस्मात्प्रपद्यतेतेजश्चक्षुर्भवतिदुर्बलम् ।
तस्मात्वांतेजयुक्तं पश्येदनिमिषश्चकः ॥३४
इकारमथसंभिन्नमग्निमाहपितामहः ।
सौम्यदृष्टधातुब्रह्माणं समुदीक्ष्यह्युपागतः ॥३५

इस कारण से द्विजाति की वाणी पुण्या और प्रकाशिता जाननी चाहिए। द्विजातियों की वाक् माता और वह मुख में सम्प्रतिष्ठिता होती है।२६। मिथ्या से युक्त अक्षरों के विन्यास से—अमांगल्य से असंस्कृत वाणी बोलने वाले का अग्नि हनन किया करती है। अतएव द्विज को सदा ही सुसस्कृत वाणी वाला होना चाहिए।३०।फिर अकाराग्नि को बुलाकर जो कि अचक्षुष था, प्रजापति ने उस देव वाणी को कहा था कि वह भी संमीलित ईक्षण वाला होगया था। वह्निने ब्रह्मा जी से कहा था—हम मुख की वाणी है-आप समस्त तेज से परमश्रेष्ठ स्थान मुझे प्रदान कीजिए। ब्रह्माजी ने उनसे कहा—क्योंकि आप तेज का स्थान चाहते हैं इसलिए परम तेजोमय तेरा रवि का स्थान होगा जिसमें तेज चला जाताहै वह चक्षु दुर्वश हो जाया करता है। इसीलिए तेज से युक्त आपको अनिमिष कौन देखता है। इसके पश्चात् संभिन्न इकार अग्नि को ब्रह्माजीने कहा था। वह अग्नि भी परम सोम्य दृष्टि से ब्रह्माजी को देखकर समुपस्थित हुआ।३१-३५।

यस्माच्छीघ्रं महासत्व ! सौम्यदृष्टिरिहागतः।
तस्माद्दास्यामह स्थान सर्वभूतमनोरमम् ॥३६
त्वं सितात्माश्वेतरश्मिश्चन्द्रमास्त्वं भविष्यसि।
सर्व तेजोऽधिको दिव्यः सौम्य परमाभासुरः ॥३७
तत्रस्थ सर्वतेजांसि तेजमाऽभिभविष्य।
इत्युक्त्वा त विसर्ज्याऽथ उकाराग्निमथाऽऽह्वय ॥३८
इहैह्यहोतिशिरसि समादायन्यवेशयत्।
तत्रस्थः पञ्चमंवक्त्रमुर्ध्वमेतदजायत् ॥३९
एषएवं पवह्निरुकाराग्निः प्रतिष्ठितः।
तस्मादग्निश्च सूर्यश्च रुद्रावेतौविनिर्दिशेत् ॥४०
भवाग्निरूप परमो ब्रह्माणमिदमब्रवीत्।
ममाऽपिरुचिरं स्थान प्रयच्छस्वयथातथम् ॥४१
ब्रह्मातमातकतमत् स्थानं तेरोचतेतले।
अग्निस्तु.... स्थानं कथयमेपरम ॥४२

स्थानं नैवाऽस्ति नो भव्यं यतो ह्येवं भविष्यति ।
अत्र त्वास्थातुमिच्छामि यदि संरोचते तव ॥४३

ब्रह्माजीने कहा—हे महासत्व ! क्योंकि आप यहाँ पर परम सौम्य दृष्टिसे प्राप्त हुयेहैं इसी कारणसे मैं आपको समस्त प्राणियोंका मनोरम स्थान दूँगा । आप सित स्वरूप वाले-श्वेत किरणों से सम्पन्न चन्द्रमा होंगे । समस्त तेजोंसे अधिक, दिव्य, सौम्य, परमभामुर वहाँ पर स्थित रहने वाले होंगे जो अपने तेज में समस्त तेजों को अभिभूत कर देगा । यह कहकर ब्रह्माजीने उसको विसर्जितकर दियाथा और इसके पश्चात् उकाराग्नि को समाहूत किया था ।३६-३८। आओ-आओ यह कहकर उसे लेकर शिरमें निवेशित कर दियाथा वहाँ पर स्थित होते हुए उर्ध्व में पाँचवा मुख समुत्पन्न होंगया था ।३९। इस प्रकारसे वह उकाराग्नि स्वरूप वाला वह्नि प्रतिष्ठित हो गया था । इसलिए अग्नि और सूर्यसे दोनों को रुद्र विनिर्दिष्ट करने चाहिए।४०। परम भावाग्नि रूपने ब्रह्मा जी से यह कहा था—मुझे भी कोई अत्यन्त रुचिर स्थान ठीक-ठीक प्रदान कीजिए ।४१। ब्रह्माजी ने उससे कहा—आपको कौन का स्थान इन भूमि में पसन्द है ? अग्नि ने उत्तर दिया कि मुझसे आप परम सुन्दर स्थान बतलाइये । हमारा कोई भी स्थान एसा भव्य नहीं हैं तो ऐसा ही होगा कि यहाँ पर मैं आपकी स्थित करने की बात चाहता हूँ यदि आपको वह पसन्द हो जाता है ।४२-४३।

५९-महाकालवननिवासविधि वर्णन

भगवन्केनविधिना महाकालवनेऽमरैः ।
रुद्रलोकमभीप्सद्भिर्वस्तव्यं क्षेत्रवासिभिः ॥१
किमनुष्ठरुतस्त्रीभिः सिद्धयश्रमान्वितैः ।
वसद्भिः किमनुष्ठेयं तत्सर्वं प्रब्रवीहिनः ॥२
नरैः स्त्रीभिश्चवस्तव्यं वर्णैश्चाश्रमवासिभिः ।
स्वधर्माचारनिरतैर्दम्भमोहविवर्जितैः ॥३

किंकुर्वाणैर्नरैः कर्म रुद्रभक्ति ब्रूवीहि नः ।
त्रिविधाकथिताह्यत्र मनोवाक्वायसम्भवा ॥४
लौकिकी वैदिकी चान्या भवेदाध्यात्मिकी तथा ।
ध्यानधारणया बुद्ध्या रुद्राणां स्मरणं हि यत् ॥५
रुद्रभक्तिकरीचैषा मानसीभक्तिरुच्यते ।
व्रतोपवासतियमैर्जितेन्द्रियनिरोधिनाम् ॥६
रुद्रस्य कायिकीभक्तिर्जानस्थधर्मिणाम् ।
गोघृतक्षीरदधिभिर्गन्धरक्तकुशोदकैः ॥७

महर्षि प्रवर व्यास देवजी ने कहा—हे भगवान ! किसी विधि से रुद्र लोक की इच्छा रखने वाले क्षेत्र बासी असुरोके द्वारा महाकाल वन में वास करना चाहिए ? क्या मनुष्यों–स्त्रियों तथा सिद्धि-आश्रमो से सन्वितों के द्वारा निवास करते हुए क्या करना चाहिए यह सब आप कृपा करके हमको बतलाइए पुरुष और स्त्रियों के द्वारा वास करना चाहिऐ । समस्त वर्णों वाले—सब आश्रमों में रहने वाले–अपने धर्म और आचार में निरत रहने वाले—दम्भ, मोह से वर्जित रहने वाले मनुष्यों को क्या कर्म करते हुए भगवान रुद्र की भक्ति होवे–यह हमको आप बतलाइये । सनत्कुमारजीं ने कहा-तीन प्रकार की भक्ति कहीगयी है, जो मन, वाणी और शरीर से उत्पन्न होने वाली है ।१-४। दूसरेभी इसके तीन प्रकार होते हैं वे लौकिकी, वैदिकी और आध्यात्मिकी हैं । ध्यान और धारण की बुद्धि से रुद्र का स्मरण है या रुद्र की भक्ति करने वाली मानसी भक्ति कहा जाया करती हैं । अपनी इन्द्रियों को जीतकर निरोध करने वाली की व्रत—उपवास और नियमों के द्वारा तो भगवान रुद्र की जो भक्ति की जाती हैं वह काय्रिकी भक्ति कही जाती है । ज्ञान और ध्यान में स्थित धर्म वालों की गौ का घृत-क्षीर-दधि से तथा गन्ध रक्त–कुशोदकों से ।५-७।

गन्धमाल्यैश्चविविधैर्धातुभिश्चोपपादिता ।
घृतगुग्गुलधूपैश्च कृष्णागुरुसुगन्धिभिः ॥८

भूषणैर्हेमरत्नानां चित्राभिः स्त्राग्भिरेव च।
वाजः प्रतिसरस्तोत्रः पताकाव्यजनादिभिः ॥९
नृत्यवादित्रगीतैश्च सर्वप्रत्युपहारकैः।
भक्ष्यभोज्यानुपानैश्च या पूजाचाक्षतैर्नरैः ॥१०
महेश्वरं पुरस्कृत्य भक्तिः सालौकिकी मता।
देवमन्त्रैर्हवियोगर्या क्रिया वैदिकी मता ॥११
दशचपौर्णमास्यांवा कर्त्तव्यं चाग्निहोत्रकम्।
प्राशनन्दक्षिणादानं पुरोडाशश्चरुक्रिया ॥१२
इष्टिवृत्तिः सोमपानं याज्ञिकंसर्वं कर्म च।
ऋग्यजुस्सामजाप्यानिसंहिताध्ययनाचि ॥१३
क्रियन्ते रुद्रमुद्दिश्य या भक्तिर्वैदिकीस्मृता।
अग्निभूम्यनिलाकाशनिशाकरदिवाकारन् ॥१४
समुद्दिश्यकृतंकर्म तत्सर्वं दैवतंभवेत्।
आध्यात्मिकीतुत्रिबिधारुद्रभक्तिः स्थितामुने ॥१५

गन्ध माल्य और अनेक धातुओं से उपपादित घृत-गुग्गुल-धूपों से—कृष्णागुरु सुगन्धियों से-हेम और रत्नों के भूषणों से—विचित्र प्रकारकी मालिका से-निबासकर प्रतिसुर तथा स्तोत्रों से-पताका और व्यंजन आदि से-नुत्य वादित्र और गीतों द्वारा—सर्व प्रत्युपहारों से—भक्ष्य भोज्यों के अनुपालों से अक्षतों से जो मनुष्यों के द्वारा महेश्वर भगवान् को आगे करके पूजा की जातीहै वह लौकिकी शिव भक्ति कही गयी है। वेद मन्त्रों के द्वारा और योगो के द्वारा जो हवि की क्रिया है वही वैदिक पूजा मानी गयीहै।८-११। दर्श में-पौर्णमासी में अग्नि होत्र करना चाहिए-प्राशनु-दक्षिणादान-चरु क्रिया-इष्टिवृत्ति—सोमपान सम्पूर्ण याज्ञिक कर्म, ऋक्, यजु और सामवेद के जाप तथा संहिताओं का अध्ययन को भगवान रुद्रका उद्देश्य लेकर किये जातेहैं वही वैदिकी भक्ति कही गयी हैं। अग्नि, भूमि, वायु, आकाश, चन्द्रमा, दिवाकर, इनका उद्देश्य ग्रहण करके किया हुआ कर्म दैवत कर्म कहा जाता है।

हे मुने ! आध्यात्मिकी रुद्र की भक्ति तीन प्रकार की स्थित मानी गयी है ।१२-१५।

साङ्ख्या च यौगिकी चान्या विभारन्तत्र मे शृणु ।
चतुर्विंशतितत्वानि प्रधानादीनिसङ्ख्यया ॥१६
अचेतनानियोज्यानि पुरुषः पञ्चविंशकः ।
चेतनः पुरुषोभोक्ता न कार्यं तस्यकर्मणा ॥१७
रुद्रः षडविंशक कर्तासर्वज्ञश्चेतनः प्रभुः ।
अजन्मनित्यमव्यक्तमधिष्ठाता प्रयोजकः ॥१८
पुरुषोऽव्यक्तोनित्यः स्यात्कारणश्चमहेश्वरः ।
तत्वसर्गोभवेत्पूर्वं भूतसर्गश्चतत्वतः ॥१९
संख्ययापरिसर्गाय प्रधानत्रिगुणात्मकम् ।
साधर्म्यंभात्म्यमैश्वर्यं प्रधानवविधाम च ॥२०
कारणंतच्चरुद्रस्य काम्यत्वमिदमुच्यते ।
सर्वत्रकर्तृतारुद्रे पुरुषेचऽप्यकर्तृता ॥२१
अर्चैतन्यं प्रधाने च तच्च तत्वमिदं स्मृतम् ।
तत्वान्तरेण मुच्येते कार्यकारणमेव च ॥२२

साँख्या और योगिक दूसरी होती है । वहाँ हर विभागों को अब आप मुझसे श्रवण करो । संख्या के द्वारा गणना करने पर प्रधान आदि चौवीस तत्व होते हैं । ये सब अचेतन योज्य किये हैं चेतन एक पुरुष हैं जो पच्चीसवाँ होता है चेतन पुरुष ही भोक्ता होता हैं उसका कर्मसे कुछ भी करने के योग्य नहीं है ।१६-१७। भगवान रुद्र छब्बीसवें हैं जो कर्त्ता सर्वज्ञ और चेतन प्रभु है । यह अजन्मा नित्य, अव्यक्त अधिष्टाता प्रयोजक हैं । पुरुष अव्यक्त, नित्य और कारण महेश्वर है । पहिलेतत्वों का सर्ग होता है और तत्वों से भूत सर्ग हुआ करता है । संख्यासे परि सर्गके लिए प्रधान त्रिगुणात्मक अर्थात सत्व,रज और तम इसके स्वरूप वाला होता है । प्रधान सधर्म्य, आत्व्य, ऐश्वर्य और विधर्मि होता है । और वह रुद्र का कारण है । यह काम्यत्व भी कहा जाता है । रुद्र में सर्वतत्र कर्तृत्व है और पुरुष में भी आकर्तृता होतीहै प्रधानमें अचैतन्य

है और यह तत्व यह कहा गया है। तत्वान्तर से कार्य्य कारण होते हैं ३८-२२।

प्रयोजके च गौ जात्यं ज्ञात्वातत्वस्य सङ्ख्यया।
संख्याऽस्तीत्युच्यतेप्राज्ञै रुद्रतत्वाथचिन्तकैः ॥२३
इति तस्यतत्वभावं तत्वसङ्ख्या च तत्वतः।
रुद्रतत्वाधिकश्चापि ज्ञानतत्वं बिदुर्बुधाः ॥२४
सांख्ये ततो भक्तिरेषा सद्भिराध्यात्मिकी मता।
यौगिकीमपिमे भक्त्या शृणु भक्ति महासुराः ॥२५
प्राणायामपरानित्यंध्यायेत् नियतेन्द्रियः।
धारणां हृदयेधृत्वा ध्यायते यो महेश्वरम् ॥२६
हृत्कञ्जकर्णिकासीन पञ्चवक्त्रत्रिलोचनम्।
शशांकद्योतितजटाव्यालावृताकटीतटम् ॥२७
श्वेत दशभुजं भद्रं वरदाभयहस्कम्।
योगजामानसीव्यास रुद्रभक्तिः परास्मृता ॥२८

तत्व की संख्या से प्रयोजक में जात्य का ज्ञान प्राप्त करके संख्याहै यह रुद्र के तत्वार्थ के चिन्तक प्राज्ञों के द्वारा कहा जाता है।२३। इस प्रकार से उनके तत्व भाव को और तात्विक रूप से तत्वों की संख्या और जिसमें रुद्र तत्व अधिक है ऐसे ज्ञान तत्व को बुधजन जानते हैं। सांख्य में यह भक्ति सत्पुरुषों के द्वारा आध्यात्मिकी भक्ति मानी गयी है। यौगिकी भी भक्ति की अब मूझसे आप श्रवण कीजिए। जो यह महान स्वर वाली होती है। जो कोई पुरुष नियत इन्द्रियों वाला होकर हृदय में धारणा करके नित्य ही प्राणायाम परायण होता हुआ ध्यानकरे और महेश्वर प्रभुका ध्यान किया करता है। ध्यानमें महेश्वर प्रभु के स्वरूप का ऐसा चिन्तन करता हैं कि वे मेरे हृदय रूप कमलकी कर्णिका में समासीन हैं, उनके पाँच मुख हैं तथा तीन नेत्र हैं, चन्द्रमाकी प्रभा से उनकी जटाएँ द्योतित हैं और कटि कट स्थानों में समावृत है उनका एक दम श्वेतवर्ण है, दश भुजायें हैं, परम भद्र और वरद तथा अभय हाथों से प्रदान करने वाले हैं इस प्रकार से जिसमें रुद्र की भक्ति

की जाया करती हैं वही योगजा मानसी रुद्र भक्ति होती है। हे व्यास देवता यह भक्ति कही गयी है।२३-२८।

य एवंभक्तिमारुन्द्रे रुद्रभक्तः स उच्यते ।
विधिन्तुश्शृणुमेव्यासयः स्मृतः क्षेत्रवासिनाम् ॥२९
स्वयंरुद्रेणविहितो ब्रह्मादीनां समागमे ।
कथितो विस्तारात्पूर्वं पूर्वेषांतत्रसन्निधौ ॥३०
निर्ममा निरहङ्कारा निस्सङ्गानिष्परिग्रहाः ।
बन्धुवर्गे च निः स्नेहा समलोष्टाश्मकाञ्चनाः ॥३१
भूतानांकर्मभिर्नित्यं त्रिविधैरभयप्रदाः ।
सांख्ययोगविधिज्ञाश्चधर्मज्ञाश्छिन्नसंशयाः ॥३२
यजन्तेविविधैर्यज्ञैर्येविप्राः क्षेत्रवासिनः ।
महाकालवनेतेषां मृतानांयत्फलं शृणु ॥३३
व्रजन्त्येवसुदुष्प्रापं ब्रह्मसायुज्यमक्षयम् ।
सस्प्राप्यमपुनर्जन्त्र लभन्तेमोक्षमक्षयम् ॥३४
पुनरावर्तनं हित्वा विधि माहेश्वरं स्थिताः ।
पुनरावृत्तिरन्येषां प्रपञ्चाश्रमवासिनाम् ॥३५
गार्हस्थ्यविधिमासाद्य षट्कर्मनिरतास्सदा ।
वेदोक्तविधिनासम्यग्मन्त्रस्तोत्रनियन्त्रिताः ॥३६

जो जिस प्रकार से रुद्र में भक्तिमान होता है वह रुद्र का हर भक्त कहा जाया करता है। हे व्यास ! उसकी विधि भी आप मुझसे सुनिए जो क्षेत्र वासियोंके लिए कहीं गयी है। ब्रह्मादि देवोंके समागण में स्वयं ही रुद्र प्रभु ने किया है। वहाँ पर पूर्व पुरुषों की सन्निधि में पहिले विस्तार से कही गयी है। ममता से रहित, अहंकार से शून्य, सर्ग से हीन, बिना परिग्रह वाले, अपने बन्धुवर्ग में भो स्नेहसे रहित, मिट्टीके ढेले और सुवर्ण दोनोंको समान भावसे समझने वाले,अपने अनेक प्रकार के कर्मों के द्वारा प्राणियों को अभय प्रदान करने वाले, सांख्य योग की विधि के ज्ञाता, धर्म के तत्व को जानने वाले और ऐसे जिनकेसभी संशय छिन्न हो गए हैं ऐसे विविध प्रकारके यज्ञोंके द्वारा क्षेत्रवासीविप्र

यजन किया करते हैं। महाकाल वन में उन मृत होने पर जो उन्हें फल प्राप्त होता है उसका श्रवण करो। वे लोग परम दुष्प्राप्य और अक्षय ब्रह्म सायुज्यको ही सीधे गमन किया करतेहैं वहाँ सम्प्राप्य होकर अक्षय मोक्ष उनका हो जाता हैं कि वे पुर्जन्म नहीं प्राप्त किया करते है। माहेश्वर विधि में स्थित होते हुए वे पुनरावर्त्तन का एकदम त्याग कर दिया करते हैं। जो प्रपञ्चाश्रम के वासी लोग हुआ करते हैं। ऐसे अन्य जनों का ही पुनरावर्त्तन हुआ करताहै। गार्हपस्थ्य आश्रमकी विधि को प्राप्त करके सदा षट्कर्मों में निरत रहा करते हैं वे पुरुष वेदान्त विधि के द्वारा भली-भाँति मन्त्रों और स्तोत्रोंमें नियन्त्रित रहते हैं।२६-३६।

६०—विद्याधरतीर्थंमाहात्म्य वर्णन

कथं तीर्थमिदं क्षेत्रं जातमत्र महामुने।
प्रसादाद् ब्रूहि मे ब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम् ॥१
विद्याधरपतिः कश्चिदासीद्रूपधरः पुरा।
ग्रथिता पारिजातस्य माला तेन मनोरमा ॥२
गृहीत्वा स च तां मालां गतोवासव वेश्मनि।
नृत्यन्ती वासवस्याग्रे दृष्टा तेन च मेनका ॥३
दत्ता तस्यदातेन सा माला नृत्य संसदि।
सा मेनका तु तत्स्थाने मालया माहिता सती ॥४
कोपाविष्टेन शक्रेण शप्तो विद्याधरस्तदा।
पृथिव्यां गच्छ पापिष्ठ ! नृत्यभङ्गस्त्वया कृतः ॥५
विद्याधरपदं त्यक्त्वा मम शापाच्च साम्प्रतम्।
एवमुक्तस्तु शक्रेण वाक्यं विद्याधरोऽब्रवीत् ॥६

महर्षि वरिष्ठ श्रीव्यासजी ने कहा–हे महामुने ! यहाँ पर यह क्षेत्र तीर्थ कैसे होगया है ? हे ब्रह्मन्! आपकी महती दया होगी आप इसको मुझे बतला दीजिए। मैं इस समयमें वही श्रवण करने की उत्कट अभिलाषा रखता है श्री सनत्कुमारजी ने कहा-पहिले परम पुरातन काल में

कोई रूपधारी विद्याधरों का पति था उसने परिजात के पुष्पों की एक परम सुन्दर मालाका मन्थन किया था। वह उस मालाका ग्रहण करके इन्द्र देव के गृह में गया था। उसने वहाँ पर इन्द्र देव के समक्ष मेनका नाम वाली अप्सरा को नृत्य करती हुए देखा था। उस नृत्य सभामें वह परम मनोरम माला उसने उस अप्सरा को दे दी थी। मेनका अप्सरा उसी स्थान में उस माला से परम मोहित हो गयी थी। उस समय में इन्द्र को बहुत अधिक क्रोध हो गया और उसने कोपाविष्ट होकर उस विद्याधरको शाप दे दिया था—हे पापिष्ठ ! तुम पृथिवी पर चले जाओ क्योंकि तुमने आज हमारी इस सभा में अतीव सुन्दर नृत्य को भंगकर दिया है। तुम अभी इस विष धर के पद का त्याग करके मेरे शाप से भूमि वाली बन आओ। उस तरह से वाक्य की श्रवण करके यह विद्या धर बोला—।१-६।

अजानतामया अपराधः कृतोऽधुना ।
अनुग्रहमतो देव कुरु मे त्वं प्रसादतः ॥७
एवमुक्तस्सशक्रो वविद्याधरमुवाच ह ।
गच्छावन्ती त्वमद्यैव यत्रास्तेगाङ्कटीगुहा ॥८
तस्याश्चोत्तरभागे तु विद्यते तीर्थमुत्तमम् ।
ख्यातं तात्त्रिषुलोकेषु नाम्ना विद्याधरं शुभम् ॥९
भक्त्या तत्र कृते स्नाने विद्याधरपतिर्भवेत् ।
अतस्त्वमपि तत्रैव कुरु स्नान प्रयत्नतः ॥१०
एवमुक्तः स शक्रेण लागतोऽवन्ति मण्डले ।
स्नानं कृतश्च तेनैव तीर्थे तस्मिन्मनोरमे ॥११
प्रभावात्तस्य तीर्थस्यस विद्याधरोऽभवत् ।
एवं व्यास ! समाख्यातं तीर्थं विद्याधरं शुभम् ॥१२
तत्र पुष्पाणि यो दद्याच्चन्दनश्च विलेपनम् ।
लभेत्समस्तभोगान्स इहलोके परत्र च ॥१३

हे देव ! अज्ञान के वश आज इस समय मैंने यह अपराध कर दिया है। अतएव मेरे ऊपर प्रसन्नता करके आप अमुग्रह करिए।७।

जब इस तरह से प्रार्थना की गई तो इन्द्र देव उस विद्याधर से बोले—आप आजही अवन्तीपुरीमें चले जाओ जहाँ पर गाङ्गटी गुहा विद्यमान है। उनके उत्तर दिशा के भाव में यह उत्तम तीर्थ विद्यमान है। यह तीर्थ त्रिलोंकी में नाम से परम शुभ विद्याधर प्रसिद्ध है। भक्ति भावसे वहाँ पर स्नान करने से मनुष्न वेद्याक्षरों का स्वामी बन जाया करता है। इसलिए तुम भी वहाँ पर प्रयत्न पूर्वक स्नान करना। इस रीतिसे इन्द्र देब के द्वारा कहे गये उस विद्याधर ने अवन्ती मण्डप में समागमन किया। उसके परम तीर्थ में स्नान किया था। हे व्यास ! इस प्रकार के यह परम शुभ विद्याधर तीर्थ समाख्यात हुआ था। वहाँ पर जो भी कोई पुष्पों का समर्पण किया करताहै तथा चन्दन और विलेपन अर्पित करता है वह इस लोक में समस्त प्रकार के सुखों का उपभोग प्राप्त किया करता और परलोक में सदगति पाता हैं ।८-१३।

अत: परं प्रवक्ष्यामि मर्कटेश्वरमुत्तमम् ।
तत्र तीर्थं विख्यातं सर्वकामप्रदायकम् ॥१४
तस्मिन्तीर्थे नर: स्नात्वा गोशतस्य फलं लभेत् ।
विस्फोटानां प्रशान्त्यर्थं बालानाञ्चव कारणे ॥१५
माषेण मिश्रितान्कृत्वामसूरांस्तत्र कुट्टयेत् ।
शीतलाया: प्रभावेण बाला: सन्तु निरामया: ॥१६
ये पश्यन्ति नरा भक्त्या शीतलान्दुरितापहाम् ।
न तेषां दुष्कृतं किञ्चन्न दारिद्रयं द्विजोत्तम् ॥१७
न च रोगमय तेषां ग्रहपीडा तथैव च ॥१८

भगवान् सनत्कुमारजी ने कहा—अव मैं उत्तम मार्कंटेश्वर के विषय में वर्णन करूँगा। वहाँ पर विख्यात तीर्थ है जो सभी कामनाओं के प्रदान करने वाला है। उस तीर्थमें मनुष्य स्थान करके एक सौ गौओंके दान करने का पुण्य-फल प्राप्त किया करता है। विस्फोटों की प्रशांति के लिए और बालों के कारण में उदों के साथ मिश्रित करके वहाँ पर मसूरोको कूटना चाहिए। इसका यह प्रभाव होलाहै कि वालक शीतला

देवो के प्रभाव से नीरोग एवं स्वस्थ हो जाया करते हैं। हे द्विजोत्तम! जो मनुष्य भक्तिभाव से दुरितों के अपहरण करने वाली शीतला देवी का दर्शन किया करते हैं उनको कुछ भी दुष्कृत नही हुआ करते हैंऔर कभी भी उन्हें दरिद्रता नहीं सताया करती है। उनको कभी भी किसी का भय नहीं होता है तथा ग्रहों को पीढ़ा नहीं हुआ करती है। सभी ग्रह शान्त हो जाया करते हैं।१४-१७।

६१—दशाश्वमेधमाहात्म्यवर्णन

दशाश्वमेधिकेस्नात्वा दृष्ट्वा देवं महेश्वरम्।
दशानामश्वमेधानां फलं प्राप्नोति मानव ॥१
मनुनामानवेन्द्रेण राज्ञां चैव ययातिना।
रघुणोशनमाचैव लोमाशेन महर्षिणा ॥२
अत्रिणा भृगुणाचैव दत्तात्रेयेण धीमता।
पुरूरवसापुण्येन नहुषेण नलेन च ॥३
अत्र स्नाने संप्राप्टं दशाश्वमेधिकं फलम्।
संप्राप्ते द्वापरस्यान्ते राज्ञा बाष्कलिना तथा ॥४
दशानामश्वमेधानां फलं प्राप्तं द्विजोत्तम!।
कृष्णवर्णं तथा लिङ्गं पूजितं भक्तितः सदा ॥५
दृष्टावान्पृष्टवा चेतं देवं प्रायुक्तं लभते फलम्।
चैत्रेमासिसिमाष्टम्यां देवं संपूज्य भक्तितः ॥६
अश्वं दद्याच्च विप्राय सुरूप च गुणान्वितम्।
यावन्ति तस्य रोमाणि गणयन्ते सङ्ख्यया द्विज ॥७
तावद्वर्ष सहस्राणि शिवलोके महीतटे।
शिव लोकात्परिभ्रष्टः सार्वभौमो भवेद् भुवि ॥८

श्री सनत्कुमार जी ने कहा—अधिक मासमें दशाश्वमेध घाट पर गङ्गा श्री विश्वनाथ जी के दर्शन करके मनुष्य दश अश्वमेध यज्ञों के भगवान् श्री विश्वनाथजी के दर्शन करके मनुष्य दश अश्वमेध यज्ञोंके

करने का फल प्राप्तकर लिया करता है। इस प्रकारके फल प्राप्त करने के अनेक उदाहरण दिये जाते हैं—मानवों में परम शिरोमणि मनु राजा ने यथाति ने रघु उशना और महर्षि लोमश ने—अत्रि ने—भृगु ने —श्रीमान् दत्तात्रेय ने परम पवित्र पुरुरवा ने—नहुष ने तथा राजा नल ने यहाँ दशाश्वमेध पर स्नान करने के द्वारा दश अश्वमेध यज्ञों के करने का फल प्राप्त किया था। हे द्विजोत्तम ! द्वापर के अन्त के प्राप्त होने पर राजा कलि ने दश अश्वमेध यज्ञों का पुण्य फल प्राप्त किया था। तथा कृष्ण वर्ण वाले लिङ्ग को सदा भक्ति भाव से पूजित किया था। ' उस देव का दर्शन और स्पर्शन करके पहिले बताया हुआ फल प्राप्त करता है। चैत्र मासकी शुक्लपक्ष की अष्टमी तिथि में भक्तिभाव से देह की भली भाँति पूजा करके विप्र के लिए सुन्दर रूप वाले पुत्र गण से युक्त अश्व का दान करे। हे द्विज ! उनके जितने भी संख्या मे रोम होंते हैं उतने ही सहस्र वर्ष पर्यन्त वह शिवलोक में प्रतिष्ठित होता है। शिवलोक में परिभ्रष्ट होकर इस भूमण्डल में सार्व भौम (सम्राट) हुआ करता है।१-७।

६२—महाकालयात्रामाहात्म्य वर्णन

अथ यात्रां प्रवक्ष्यामि महाकालस्य यत्नतः।
शिवश्रेयस्करीं पुण्यां पुण्यलोकप्रदायिनीम् ॥१
स्नात्वा सरसि रुद्रस्य दृष्ट्वा कोटीश्वरं शिवम्।
नमस्कृत्य ततो गच्छेन्महाकालं सनातनम् ॥२
गन्धः पुष्पैर्नमस्कारैः सम्पूज्य त्रिदशेश्वरम्।
प्रणिपत्य ततो गच्छेद्देवं कपालमोचनम् ॥३
तत्र वै देवदेवेशः कपालं न्यस्तवान्क्षितौ।
कपाले तत्क्षणान्न्यस्ते तत्राभूल्लिङ्गमुत्तमम् ॥४
कपालमोचनं नाम सर्वपापप्रणाशनम्।
तत्र वै स्नपनं कुर्याद्दान्यंपलशतन्तु वै ॥५

तदर्धाछोनपादेन ।वत्तशाठ्य विवर्जितः ।
काले पूर्णे स विप्रेन्द्र ! शिवलोके महीयते ॥६
नमस्कृत्यततो गच्छेत्कपिलेश्वरमुत्तमम् ।
दर्शनात्तस्यदेवस्य मुच्यते ब्रह्मघातकः ॥७

महर्षि सनत्कुमारजी ने कहा—इसके अनन्तर यत्नपूर्वक महाकाल की यात्रा को कहूँगा जो शिव और श्रेय के करने वाली—पुण्यपूर्ण और पुण्य लोक के प्रदान करने वाली हैं ।१। भगवान रुद्र के सरोवर मे स्नान करके तथा कोटीश्वर शिव का दर्शन करके और नमस्कार करके इसके पश्चात सनातन महाकाल को गमन करना चाहिए ।२। गन्ध और पुष्पों से तथा नमस्कारोंसे त्रिदशेश्वरका समर्चन करके तत्पश्चात् प्रणिपात करके फिर कपाल मोचन देव की ओर यात्रा करे ।३। वहाँ पर देव देवेश ने भूमिपर कपालको न्यस्त कियाथा । कपालके विन्यस्त करने पर उसी क्षणे में वहाँ पर उत्तम लिंग हो गया था ।४। यह मोचन नाम वाला तीर्थ सभी पापों का नाश करने वाला है । वहाँ पर स्नान करावे और नौ पल घृतःसे करावे ।५। उससे आधा पादसे करावे किन्तु वित्त की शठता[ल रहित होकर करावे । हे विप्रेन्द्र ! काल के पूर्ण होने पर वह शिवलोक के महिमान्वित होता है ।६। फिर उत्तम कपिलेश्वर को प्रणाम करके वहाँ से गमन करे । उनके दर्शन से ब्रह्म घातक भी पापों से मुक्त हो जाय करता है ।७।

हनुमत्केश्वरं देवं ततो गच्छेत्समाहितः ।
ऐश्वर्यमातुलं व्यास ! दर्शनादस्य जायते ॥८
ततो गच्छेन्महादेव पिप्लादं सनातनम् ।
यस्य दर्शनमात्रेण मुक्ति स्याद् द्विजसत्तम् ॥९
स्वप्नेश्वरं ततो गच्छेद्भक्तिश्रद्धा समन्वितः ।
दर्शनादस्यदेवस्य दुःस्वप्नश्च विनश्यति ॥१०
ततो गच्छेन्महादेवमीशानं विश्वतोमुखम् ।
यस्य दर्शन मात्रेण [illegible] ॥११

सोनेश्वरन्ततो गच्छेज्जिनक्रोधो जितेन्द्रयः।
कुष्ठरोगादि दोषेभ्यो दर्शनादस्यमुच्यते ॥१२
वैश्वानरेश्वरं व्यास ततो गच्छेत्समाहितः।
तस्य वृद्धिस्सदा लोके जायते तस्य दर्शनात् ॥१३
बीजापूरकहस्तन्तु लकुलीशन्ततो व्रजेत्।
रुद्रत्वं दर्शनात्तस्य जायते नात्र संशयः ॥१४

वहाँ से सावधान होकर हनुमत्केश्वर देव को लाना चाहिए। हे व्यास ! इसके दर्शन से अतुल ऐश्वर्य हो जाता है।८। हे द्विजश्रेष्ठ ! फिर सनातन पिप्पलाद को जावे जिसके दर्शन मात्र से ही भुक्ति हो जाया करती है।६। भक्ति और श्रद्धा के भाव से युक्त होकर फिर स्वप्नेश्वर को गमन करे। उसे देव के दर्शनसे दुःस्वप्न विनष्ट होजाता है।१०। फिर विश्वतोमुख ईशान महादेव का गमन करे जिसके केवल दर्शन ही से पूर्ण विश्व का स्वामी हो जाता हैं।११। क्रोध को जीतकर और इन्द्रियों को वश में कर सोमेश रको गमन करना चाहिए। इसके दर्शन से कुष्ठ रोगादि के दोषों सें मुक्त हो जाता है ।१२। हे व्यास ! वहाँ से फिर समाहित होकर वैश्वानरेश्वर को जावे। उसके दर्शन से लोक में उसकी वृद्धि सदा होती है।१३। वहाँसे वीजा पूरक हस्त और लकुलीश को जावे। उनके दर्शन से रुद्र का स्वरूप प्राप्म कर लेता है—इसमें बिल्कुल संशय नहीं है।१४।

ततो गच्छेन्महादेवं गणपेश्वरमुत्तमम्।
यस्य दर्शनमात्रेण जायन्ते सर्वसिद्धयः ॥१५
अभ्यर्थितस्सदा देवैः पूजितस्सिद्धिकारणात्।
तेनाभ्यर्थितपूरोऽयं विख्यातो विघ्ननायकः ॥१६
वयोवृद्ध ततो गच्छेन्महाकालं सनातनम्।
न रोगो न जराव्याधिर्दर्शनान्नात्र संशयः ॥१७
विघ्ननाशं ततो गच्छत्प्राणीशं देवमुत्तमम्।
स्नानं शतघटैस्तस्य कुर्याद्भक्त्या समाहितः ॥१८

तस्य चैव कृत स्नाने लभ्यन्ते सर्वसिद्धयः ।
स्वर्गश्चापि सदा व्यास ! दर्शनादस्य जायते ॥१९
मार्गेगतमनुल्लङ्घ्य दण्डपाणिस्ततो व्रजेत् ।
यस्य दर्शन मात्रेण यमलोकेन दृश्यते ॥२०
पुष्पदन्तं ततो गच्छेद्भक्तिश्रद्धा समन्वितः ।
यस्य दर्शनमात्रेण मुच्यते सर्वपातकैः ॥२१

इसके पश्चात उत्तम गणेश्वर महादेव की ओर गमन करे जिसके केवल दर्शन से ही समस्त सिद्धियाँ हो जाया करतीं हैं ।१५। सदा देवों के द्वारा अभ्यर्चना की गई है और सिद्धि प्राप्त करनेके कारणसे उनकी अर्चना भी की गई हैं । इसी से यह विघ्नों के स्वामी अभ्यर्चन को पूरी करने वाले विख्यात हो गये है ।१६। वहाँ से सनातन महाकाल वयोयुद्ध को गमन करे । इसके दर्शनसे रोग नहीं होताहै और बुढ़ापे की व्याधि भी नहीं होती हैं इसमें संशय नहीं है ।१७। इसके अनन्तर विघ्न नाश उत्तम देव प्राणीश की ओर गमन करे । भक्ति से समाहिता होकर सौ घड़ों से उसे स्नान करावे ।१८। उसके स्नान करने पर सम्पूर्ण सिद्धियों की प्राप्ति हो जाती है । हे व्यास इनके दर्शन से सदा स्वर्ग का वास भी हो जाया करता है ।१९। मार्ग में रहने वाले का उल्लघन न करके वहाँ से दण्डपाणि को जावे जिसके केवल दर्शन से ही यमलोक नहीं दिखाई देता है ।२०। फिर वहाँ से भक्ति श्रद्धा से युक्त होकर पुष्पदन्त को जावे जिसके दर्शन मात्र से ही समस्त पातकोंसे छुटकारा पा जाया करता है ।२१।

गुह्यञ्चैव महाकालं ततो गुच्छत्समाहितः ।
यस्य दर्शनामात्रेण गुह्यपापैः प्रमुच्यते ॥२२
तता गच्छेत्समाधिस्थो दुर्वासेश्वरमुत्तमम् ।
यस्य दर्शनमात्रेण कृतकृत्यो नरो भवेत् ॥२३
श्वासावरोधन कृत्वा दुर्यासस्य समीपतः ।
गौरीं गत्वा महादुर्गां त्यजेत्सत्वा समन्ततः ॥२४

तत्रोच्छ्वासोविमक्तव्यस्तामर्चेत्सुसमाहितः ।
कालेश्वरं ततो वच्छेद्देवदेवं महेश्वरम् ।।२५
यस्य दर्शनमात्रेण यमलोकं न पश्यति ।
वधिरेशंततो गच्छेद्देवद्देव महेश्वरम् ।।२६
यस्य दर्शनमात्रेण वधिरत्वं न जायते ।
यात्रेश्वरन्ततो गच्छेद्यात्रा पूर्णफलप्रदम् ।।२७
कीर्त्तयेदात्मनोनाम स्थान गोत्रञ्च तत्र वै ।
न कीर्त्तयेद्यदानमतद् यात्रा विफली भवेत् ।।२८

इसके पश्चात् सावधान होकर गुह्य महा काल की ओर जिसके केवल दर्शन से ही गुह्य पातकों से मुक्त हो जाता है ।२२। फिर समाधि में स्थित होकर उत्तम दुर्वासेश्वर को गमन करे जिनके दर्शन से मनुष्य कृतकृत्य (सफल) हो जाया करता हैं ।२३। दुर्वासा के समीप में श्वास का अवरोध करे और महा दुर्गा गौरी के समीप जाकर बाद में श्वाँस का त्यागकरे ।२४। वहाँपर उच्छ्वासका विमोचन करना चाहिए और उस देवी का सावधान होकर अर्चन करे । इसके उपरान्त वहाँ से देवों के देव महेश्वर कालेश्वर को गमन करे ।२५। जिसके केवल दर्शनसे ही यमलोक को नहीं देखता । फिर देबदेव महेश्वर वधिरेश को जावे ।२६। जिसके दर्शन मात्र से ही वधिरत्व नहीं होता है । फिर यात्रा के पूर्ण फल को प्रदान करने वाले यात्रेश्वर को जावे ।२७। वहाँ अपने नाम स्थान और गोत्र का कीर्तन करे । यदि नाम आदि का कीर्तन नहीं करता है तो वह यात्रा बिफल हो जाया करती है ।२८।

देवस्यांऽग्रे ततो व्यास ! उपविश्य समाहितः ।
भक्तियुक्तः स्तुति ब्रूयान्नमस्कृत्वा पुनः पुनः ।।२९
मया समर्पिता यात्रा त्वत्प्रसादान्महेश्वर !
संसारसागराद् घोरान्मामुद्धर जगत्पते ।।३०
अनेन विधिना यस्तु महाकालं प्रदक्षयेत् ।
प्रदक्षिणीकृत्वा तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा ।।३१

गोलक्षं द्विजवर्य्याय दत्वाल्लभत् यत्फलम् ।
तत्फलंदेयदेवस्य सकृत्कृत्वा प्रदक्षिणम् ॥३२
भक्त्या परमयायुक्ता महाकालं प्रदक्षयेत् ।
पदे पदे यज्ञफलमिति मे शंकरोऽब्रवीत् ॥३३
षष्टिकोटिसहस्राणि षष्टिकोटिशतानि च ।
पूजितानि भवन्त्यत्र यात्रेश्वर समर्चनात् ॥३४
य एव कुरुते यात्रां शिवध्यानपरायण: ।
स वस्त्रन्दक्षिणां दद्यात्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥३५

हे व्यास ! फिर देवता के सामने समाहित होकर बैठ जावे और भक्ति से युक्त होकर बारम्बार नमस्कार करके स्तुति बोले ।२६। हे महेश्वर मैंने अपनी यात्रा समर्पित कर दी है। आपके प्रसाद से ही हे जगत्पते ! इस घोर संसार सागर से मेरा उद्धार करो ।३०। जो इस विधिसे महाकाल की प्रदक्षिणा करताहै उसने सातद्वीपसे युक्त वसुन्धरा की परिक्रमा करली है ।३१। द्विज को एक लाख गावों का दान करने से जो फल प्राप्त होता है वही देवोंके देव की एक बार प्रदक्षिणा करने से प्राप्त होता है ।३२।परम भक्तिसे युक्त होकर महाकाल की प्रदक्षिणा करे। भगवान् शङ्करने कहा है कि मेरी परिक्रमा में पद-पद में यज्ञका फल होता है ।३३। यहाँ पद यात्रेश्वर के समर्थन से साठ हजार करोड़ और साठ सौ करोड़ पूजित होते हैं ।३४। जो शिव के ध्यानसे परायण होकर इस प्रकार से यात्रा करता है और वस्त्र के सहित दक्षिणा देता है उसका पुण्य फल श्रवण करो ।३५।

सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यतेनात्र संशय: ।
एव यात्रां समाप्याऽथ गत्वा च स्वगृहं नर: ॥३६
यात्रादैवत संख्यान्वै षड्विंशति द्विजोत्तमान् ।
भोजयेच्छिवभक्तांश्च शिवध्यानपरायणान् ॥३७
सवस्त्रां दक्षिणां दत्वा प्राप्यानुज्ञां विसर्जयेत् ।
यात्राक्रमेण नैकेकं तीर्थानामनुव्रजेत् ॥३८

धर्मोपदेशकेपश्चात् सर्वोपस्करसंयुताम् ।
धेनुम्पयस्विनी दद्याद्वित्तशाठ्य विवर्जितः ॥३९
भुञ्जीताथ स्वयं व्यास ! सर्वभृत्यसमन्वितः ।
दीनानाथ दरिद्रान्ध विकलांश्चापि भोजयेत् ॥४०
यदत्रफलमुद्दिष्टं तद्वदामिश्शृणुष्व मे ।
कुलानां शतमुद्जृत्य मातापितास्समाहितः ॥४१
कल्पकोटिसहस्राणि शिवलोके स मोदते ॥४२

सात जन्मों में किये हुए पाप से मनुष्य छुटकारा पा जाता है—इनमें कुछ भी संशय नहीं है इस प्रकार से यात्राको समाप्त करके इसके अनन्तर मनुष्य अपने घर जावे ।३६। यात्रा के देवों की संख्या के अनुसार छब्बीस परम श्रेष्ठ शिव के भक्त और शिव के ध्यान में परायण द्विजों को भोजन करादे ।३७। वस्त्रों के सहित दक्षिणा देकर उनसे आज्ञा प्राप्त करके उनको विदा करना चाहिए । यात्रा के क्रम से एक चक्र अन्य तीर्थ में जावे ।३८। उसके पीछे किसी धर्म के उपदेश करने वाले द्विज को सभी उपस्कारों युक्त दूध देने वाली धेनु को (चित्त धन) की शठता से रहित होकर दान करना चाहिए ।३९। हे व्यास ! फिर सभी भृत्यों से युक्त स्वयं भोजन करे और जो दीन—अन्धे—अनाथ—दरिद्री और इन्द्रियोंसे विकल मनुष्यहों उनकोभी भोजन करानाचाहिये ।४०। जो भी इसमें पुण्य-फल उद्दिष्ट है उसे हम बतलाते हैं । उसको मुझसे आप श्रवण करो । वह यात्री अपने सौ कुलों का उद्धार करके माता-पिता का उद्धार समाहित होकर कर देता है और सहस्रों करोड़ कल्पों तक शिवलोक में निवास करता हुआ आनन्द प्राप्त किया करता है ।४१-४२।

६३—वाल्मीकेश्वर महिमा वर्णन

वाल्मीकेश्वरं व्यास ! भक्त्या देवं प्रपूजयेत् ।
मौनी [illegible] भूत्वा मुक्तवित्तसवानवात ॥१

कथमत्र समुत्पन्नो को वाल्मीकेश्वरः प्रभुः ।
यस्य दर्शनमात्रेण कवित्वमपजायते ।२
आसीद्व्यास पुराः विप्रःसुमतिर्भृगुवंशजः ।
रूपयौवन सम्पन्ना तस्या भार्याऽथ कौशिकी ।।३
तस्या पुत्रः समुत्पन्नस्त्वग्निशर्मेतिनामतः ।
सपित्राप्रोच्यमानोऽपि वेदाभ्यासं न मान्यते ।।४
ततो वहुतिथे काले जनावृष्टिरजायत ।
तद्रापि बहवश्चाऽसौ दक्षिणामाश्रितोदिशम् ।।५
ततोऽसौ सुमतिर्विप्र सभार्यः ससुतस्तथा ।
विदिशं काननं प्राप्तः कृत्वाचाश्रममाश्रितम् ।।६
आभीरैर्दस्युभिः सार्द्धं संगोऽभूदग्निशर्मणः ।
आगच्छति यथा तेन यस्त हस्ति स पापकृत् ।।७

महर्षि सनत्कुमार योले—हे व्यास ! बालमीकि के ईश्वर देव की भली भाँति पूजा करनी चाहिए । मौनी और ध्यान में परायण होकर पूजा करने से वह मनुष्य सुकवि होने पर पद प्राप्त कर लिया करताहै ।१। व्यासजी ने कहा—यह बालमीकेश्वर प्रभु कौन हैं और कैसे यहाँ पर समुत्पन्न हुए हैं जिसके दर्शनमात्र से ही कवित्वहो जाया करता हैं ।२। श्री सनत्कुमार जी ने कहा—हे व्यास ! प्राचीन समय में भृगु के वंश में जन्म लेने वाला सुमति विप्र था । रूप लावण्य से युक्त उसकी कौशिकी भार्या थी ।३। उसका एक अग्नि शर्मा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था । वह पिता के द्वारा कहा गया भी नदी के अभ्यास को नहीं मानता था ।४। इसके अनन्तर बहुत लम्बे समय तक वहाँ अनावृष्टि हो गई थी । उस समय में भी बहुत से लोग यह दक्षिण दिशा का आश्रय वाला हो गया था ।५। फिर वह सुमति विप्र पुत्र और भार्या के सहित विदिश मन में प्राप्त हो गया था और आश्रम बनाकर वहाँ पर ही समाश्रित हो गया था ।६। उस अग्नि शर्मा का अहीर और दस्युयों के साथ सङ्ग हो गया था । उस मार्ग में जो भी आता था उसको वह पापकारी मार दिया करता था ।।७।

स्मृतिर्नष्टागतावेदा गतं गोत्र गताश्रु तिः।
कस्मिश्चिदथ काले तुतीर्थयात्रा प्रसंगतः ॥८
सप्तर्षयः यथा तेन सुव्रता समुपस्थिताः।
अग्निशर्माऽथतान् दृष्ट्वा हन्तुकामोऽब्रवीदिदम् ॥९
वस्त्राणीमानिमुञ्च छत्रकोपानहोतथा।
हन्तव्याहिमयायूयं गन्तारोयमसादने ॥१०
तस्यातद्वचश्रुत्वा अत्रिर्वचनब्रवीत्।
अस्मात्पीडनजपापं कथतेहृदिवर्तते ॥११
वयं तपस्विनी भूत्वा तीर्थयात्राकृतोद्यमाः।
ममास्ति माताऽथ पिता सुतो भार्या गरीयासी ॥१२
पोषयामि तदातांस्तु एतन्मे हृदि संस्थितम्।
पित्रादीयनुपृच्छत्वं स्वकर्मोपार्जितं प्रति ॥१३
यद्युष्मादर्थक्रियते पापतत्कस्यकथ्यताम्।
चेन्नतेकथयन्तिस्ममामृषाप्राणिनोवधीः ॥१४

इसकी सम्पूर्ण स्मृति नष्ट हो गयी थी, वेदों को भी खा चुका था गोत्र नष्ट हो गया और श्रुति भी चली गयी थी। किसी समय वहाँ तीर्थयात्रा के प्रसग से उसी मार्ग से सुव्रत सप्तर्षि वृन्द समुत्पस्थित हो गये थे अग्निशर्मा ने उनको देखकर उन्हें मार डालने की इच्छा वाला होकर उनसे यह बोला—।८-९। इन वस्त्रों तथा छत्र एवं जूतों को यही पर छोड़ दो। मेरे द्वारा आप लोग मारे जाओगे और यमपुर को आप अब जाने वाले होंगे।१०। उसके इस वचन सुनकर अत्रि ऋषि ने यह वचन कहा—हमारी पीड़ा का उत्पन्न होने वाला पाप तेरे हृदय में कैसे विद्यमान हो गया है।११। हम लोग तो तपस्वी हैं और तीर्थयात्रा करने के लिये उद्यत हैं। अग्नि शर्मा ने कहा—मेरी माता है—पिता—सुत और बड़ी भार्या है।१२। इनका सदा पोषण करता हूँ, यही मेरे हृदय में स्थित है। अत्रि ने कहा, तू अपने पिता आदि से अपने इस कर्म के द्वारा उपार्जित किये हुए धन के विषय में पूछ ले।१३। मेरे द्वारा यह पाप कर्म आप लोगों के पोषण के लिये ही किया जाता है।

वह पातक किसका है, वह कहो। उन्होंने यह नहीं कहा था कि व्यर्थ प्राणियों का वध मत करो।१४।

नकदाचिन्मयातेतु संपृष्टाईदृशवचः।
युष्माकंवचसामेऽद्य प्रतिबोधः प्रवर्तते ॥१५
गत्वा पृच्छामि तान्वान् कस्य भावश्च कीदृशः।
यूयमत्रैव तिष्ठध्वं यावदागमनं मम् ॥१६
इत्युक्त्वाताञ्जगामाशुपतिरं स्वभुवाचह।
धर्मस्याप्रतिघातेन प्राणिनां पीडनेनच ॥१७
सुमहद्दृश्यतेपापं कस्यैतत्कथ्यातांमम।
पिताप्राहाथतन्माता नापुण्यामावयोरिह ॥१८
त्वंजानासिकुरुषे यत्कृतभोग्यंपुनस्त्वया।
तयोस्तद्वचनंश्रुत्वा भार्या वचनमब्रवीत् ॥१९
तयाप्युक्तं नमेपापं पापमेतत्तवंवतु।
तद्वावाक्यमब्रवीत्पुत्र बालोऽहमितिसोऽब्रवीत् ॥२०
तज्ज्ञात्वाभाषितंतेषां चेष्टितञ्चैवतत्वतः।
नष्टोऽसमितिमन्वानः शरणमेयपस्विनः ॥२१

अग्नि शर्मा ने कहा—मैंने तो इस प्रकार से उनसे कभी नहीं पूछा हैं। आज आपके वचन से ही मुझे यह प्रतिबोध हो रहा है।१५। मैं जाकर उन सभी से पूछता हूँ और देखता हूँ कि इस विषय में किसका क्या भाव है। आप लोग यहीं पर ठहरिये जब तक मैं वापिस लौटकर यहाँ पर आता हूँ।१६। यह कह कर वह उनके पास गया और अपने पिता से बोला कि यह धन जो मैं लाता हूँ वह धर्म का प्रतिघात करके और प्राणियों को पीड़ा देकर ही लाता हूँ।१७। यह एक महान् पाप दिखाई देता है सो यह मुझे बतलाओ कि यह पाप किसको होता है। तब उसके माता और पिता ने कहा कि इसमें हम दोनो का यह कुछभी पाप नहीं है।१८। तू ही इसे जानता हैं, क्या करता है। जो तू करता है वह तुझे ही भोगना भी है। उन दोनों के वचन को सुनकर उसकी भार्या ने यह वचन कहा था।१९। उसने भी यही कहा कि मुझे इसका

कुछ भी पाप नहीं है यह तो तुम्हारा ही पाप हैं। यही वचन पुत्र ने कहा तो वह बोला—मैं तो बच्चा हूँ।२०। उन सबके कथन को जानकर और उनके चेष्टित को तात्त्विक रूप से समझ कर वह यह मानता हुआ कि मैं तो विनष्ट हो गया अब तो मेरा रक्षक वे तपस्विगण ही है।२१।

क्षिप्त्वाथलकुटं कृष्णयेनवैजन्तवोहता:।
प्रकोर्यकेशांस्त्वरितोऋषीणामग्रत: स्थित: ॥२२
प्रणम्या दण्डपातेन ततो वचनमाब्रवीत्।
न मे माता न च पिता न भार्या न च मे सुत: ॥२३
सर्वे तै: परित्यक्तोऽहं भवतांशशरणंगता।
सुष्ठपदेशदानान्मांनरकान्त्रातुमर्हथ ॥२४
एवंतेवादिनदृष्ट्वाऋषयोऽत्रिमथाब्रुवन्।
भवतोवचनादस्ये प्रतिवोधस्समागत: ॥२५
भवताऽयमनुग्राह्य: शिष्योभवतुनेसुने !।
तथेत्युक्त्वाथतम्प्राह इमध्यानंसमाचर। ॥२६
अनेनध्यानयोगेन पापपुञ्जं प्रणाशय।
संस्थितो वृक्षमूलेत्व परांसिद्धिगमिष्यसि ॥२७
इत्युक्त्वा ते ययुस्सर्वेसकाम: सोऽपि तत्र वै।
तद्धयानस्थोऽभवद्योगी वत्सराणि त्रयोदश ॥२८

हे कृष्ण ! इसके अनन्तर उस लाठी को फेंक कर जिससे बहुत-से जन्तुओं को मारा था, केशों को फैलाकर शीघ्रही वह ऋषियोंके सामने स्थित हो गया था। दण्ड के समान गिर कर प्रणाम किया और इसके पश्चात् यह वचन बोला—मेरी माता नहीं है और न पिता-भार्या और कोई सुत ही है। मैं उन सबके द्वारा परित्यक्त हूँ और आपकी शरणागति में हूँ। बहुत अच्छा उपदेशका दान करके मेरी नरकों से रक्षाकरो।२२-२४। इस प्रकार से इसको प्रतिबोध आ गया है। हे मुने ! आपके ही वचन से इसको प्रतिबोध आ गया है। हे मुने ! आपके द्वारा इस पर अनुग्रह करना ही चाहिए यह आपका शिष्य हो जावे।

ऐसा ही होगा, यह कहकर उसके अनन्तर उनसे कहा कि इस ध्यानका आचरण करो।२५-२६। इस ध्यान के योगसे पापीके समूह का विनाश कर। इस वृक्ष के मूल में स्थित होकर ही तू पर सिद्धि को प्राप्त हो जायगा।२७। यह कहकर वे सब चले गये थे। रामनाम से युक्त वह भी उसी ध्यान में स्थित त्रयोदश वर्ष में योगी हो गया था।२८।

निवृत्तास्तुयथातेनमुनयस्तत्प्रशुश्रुवु:।
उदीरितध्वनिन्तेनवाल्मीकेयिस्मयान्विता ॥२९
ततस्तु दृष्ट्वा वल्मीकं काष्ठीभूतोरुशंकुभिः।
तं दृष्ट्वोत्थापयामासुर्मुनयो नवसंयुतम् ॥३०
नमश्चक्रेऽथतान्सर्वान् समुनिर्मुनिङ्गपुवान् ।
तान्प्राहृणतोभूत्वातपसादीप्ततेचसः ॥३१
प्रसादाद्भवतामद्य ज्ञानंलन्धमयाशुभम्।
दीनोऽहमुद्धृतस्सवीमग्नोहापापकर्दमे ॥३२
श्रुत्वा तस्येति तद्वाक्यमुचुः परमधार्मिकाः।
बालमीकेऽस्मिन् स्थितः पुत्रः ! यतस्त्वमेकचित्ततः ॥३३
वाल्मीकिरीति ते नाम भुवि ख्यातं भविष्यति।
इत्युक्त्वा मुनयोजग्मुः स्वां दिशं तपसान्विताः ॥३४
गतेषुमुनिमुख्येषु वाल्मीकिस्तपसाम्बरः।
कुशस्थल्यामथागम्य समाराध्यमहेश्वरम् ॥३५
तस्मात्कगित्वमासाद्य चक्रे काव्यं मनोरमम्।
रामायणञ्च यत्प्राहुः कथासु प्रथमं स्थितम् ॥३६
ततः प्रभृति देवेशो वाल्मीकेश्वरसंराकः।
ख्यातोऽवन्त्यां ततो व्यास ! कवित्वदायकोनृणाम् ॥३७

जिस प्रकार से उसके द्वारा निवृत हुए थे उन मुनियों ने उसे शुश्रूषण किया था। उसने बालमीकि में ध्वनि कही थी। मुनिगण विस्मयमें युक्त हो गये थे। इसके अनन्तर ऊरु शंकुओं से काष्ठ के सदृश हुआ वाल्मीकि को देखा था।२९। उसको देखकर जो तप से पूर्व संयुतया

मुनिगण ने उसको उठाया था।३०। उसने उन सब मुनिश्रेष्ठ को नमस्कार किया था और परम प्रणरत होकर तप से दीप्त तेज होने वाले उन से बोला—।३१। आपके प्रसाद से मैंने आज शुभ प्राप्त किया है। मैं बड़ा दीन हूँ, मैं पापों के बीच में मग्न (फँसा हुआ) था आप सब ने मेरा उद्धार कर दिया है।३२। उसके इस वचन को सुनकर परम धर्म के ज्ञाता उन ऋषियों ने कहा—हे पुत्र ! इस वल्मीकि में एक चित्त होकर आप स्थित रहे थे। इसलिए भूमण्डल में तेरा नाम 'वाल्मीकि' यह प्रसिद्ध होगा। यह कह कर मुनिगण तपश्चर्या से युक्त हुए अपनी अभीष्ट दिशा की ओर चले गये थे।३३-३४। उन प्रमुख मुनियोंके चले जाने पर तपस्वियों में श्रेष्ठ वाल्मीकि ने कुश स्थलीमें समणान होकर महेश्वरकी समाराधना की थी। उससे कवित्व प्राप्त करके उन्होंने एक परम सुन्दर काव्य की रचना की थी जिसको रामायण कहते हैं औरजो कथाओं में प्रथम स्थित है।३५-३६। तभी से लेकर वाल्मीकेश्वर नाम के देवेश अवन्ती पुरी में विख्यात हो गये थे। हे व्यास ! यह मनुष्यों को कवित्व प्रदान करने वाले हैं।३७।

६४—गणेशमाहात्म्यवर्णन

लड्डुकैश्चततोदेवैर्विघ्ननाथस्समर्चितः।
तदाप्रभृतिविख्यातो विघ्नेशीलड्डुकप्रियः ॥१
यस्समर्चयतेभक्तया तस्यविघ्नेनजायते।
तस्मैददातिसन्तुष्टस्सर्वकामाम्विनायकः ॥२
नक्ताषारश्चतुर्थ्यां च स्नात्वाशिप्रांविशेषतः।
रक्ताम्बरधरोभूत्वा रक्तपुष्पैर्विनायकम् ॥३
रक्तचन्दनतोयेन तन्त्रस्स्नपनपूर्वकम्।
चन्दनेनापिरक्तेन तविलेप्य प्रपूजयेत् ॥४
धूपंदद्यात्तथादिव्यं सुगन्धलड्डुकप्रियम्।
नैवेद्यलड्डुकादद्याआज्यखण्डपरिप्लुताः ॥५

नतस्यजायतेव्यास भयंविघ्नं कदाचन ।
लभतेचतथाभीष्टं मृतश्शिवपुरंव्रजेत् ॥६
अवतीर्णः पुनर्लोके जायते बसुधाधिपः ।
मतिमान् पुत्रानाञ्छूरो नामकार्याविचारणा ॥७

महर्षि सनत्कुमारजी ने कहा—इसके अनन्तर लड्डुक देवोंके द्वारा विघ्नों के नाथ की अर्चना की गयी थी तभी से लेकर विघ्नेश लड्डुक प्रिय विख्यात हो गये थे ।१। जो भक्तिभाव से इसकी पूजा करता है उसको विघ्न सभी कार्यों को दे दिया करतेहैं ।२। चतुर्थी तिथिमें रात्रि को एक बार आहार करे विशेष रूप से क्षिप्रामें स्नान करे । स्वयं रक्त वस्त्र धारी होकर रक्त ही पुष्पों से और लाल चन्दन जल से मन्त्रों के द्वारा स्नपन करावे फिर रक्त चन्दन से गणेशके शरीर पर विलेपन करे और विनायक की पूजा करे ।३-४। इसके उपरान्त लड्डुक प्रिय को परम सुगन्ध सम्पन्न क्षूपका आघ्राण कराना चाहिए । नैवेद्यमें घृत और खांड से खूब परिप्लुत लड्डू देने चाहिये ।५। हे व्यास ! उस अर्चना करने वाले मनुष्य को भय और विघ्न कभी भी नहीं होते है और वह अभीष्ट पदार्थो की प्राप्ति किया करता है । मृत्यु होने पर वह सीधा शिवपुर गमन करता है ।६। फिर लोक में जन्म लेकर राजा होता है, बुद्धिमान्, पुत्रवान् और शूर होता है, इस विषय में कुछ भी विचार नहीं करना चाहिये ।७।

६५—सोमवती तीर्थ माहात्म्य वर्णन

तीर्थसोमवतीनाम लिङ्गं सोमेश्वरं तथा ।
अभूदेतत्कथंनाम श्रोतुमिच्छामितत्वतः ॥१
शृणुव्यासयथोत्पन्नं सोमतीर्थं सुशोभनम् ।
सोमेश्वरं तथालिङ्गमेतत्सत्यंवदामिते ॥२
यो देवो भगवान्सोमो लोकस्याप्ययनं परम् ।
आसत्तस्य पुरा व्यास ! पिता विप्रो महातपाः ॥३

अवन्त्याञ्च महाभागो योऽनिनामातमोनिधिः ।
वर्षाणां त्रीणि दिव्यानि सहस्राणि तपो महत् ॥४
उर्ध्वंबाहुस्सवैतेपे ब्रह्मध्यानपरायण: ।
उर्ध्वंगतंतत्तोव्यासब्राह्मतेजोमहात्मनः ॥५
नेत्राभ्यातस्यसुस्राव काशयंश्चदिशोदश ।
तेजस्तत्सहसत्दृष्टवा ततोदेशोद्भवस्वतः ॥६
दिशश्च तद्यदा व्यास ! सर्वान्धर्तुं मशक्नुवन् ।
सुस्राव च तदा दिग्भ्यस्तद्धि तेजोऽतिदुस्सहम् ॥७

महर्षि व्यासजी ने कहा—तीर्थ का नाम सोमवती तथा लिंग का नाम सोमेश्वर हुआ था - यह कैसे हुआ—यह मैं तात्विक रूपसे सुनना चाहता हूँ ।१। सनत्कुमारजी ने कहा—हे व्यास ! जिस तरह से सुशोभन सोमतीर्थ समुत्पन्न हुआ तथा सोमेश्वर लिंग—यह सभी आपको सत्य बतलाता हूँ ।२। जो भगवान् सोमदेव है जो कि लोक को परम तृप्ति करने वालेहैं । हे व्यास! पहिले उसका महान् तपस्वी विप्र पिता था ।३। अवन्ती पुरी में जो महान् तपस्वी महाभाग अत्रि नाम वाला था । उसने दिव्य तीन हजार वर्ष तक महान् तप किया था ।४। ब्रह्म के ध्यान में तत्पर होते हुए उसने उर्ध्वबाहु होकर तप किया था । हे व्यास ! तब उस महात्मा का ब्रह्म तेज उर्ध्व को चला गया था ।५। दशों दिशाओं में प्रकाश करता हुआ उसका तेज नेत्रों से स्रावित हुआ था । सम्पूर्ण देश में स्वतः उत्पन्न हुए उस तेज को सहसा देखकर हे व्यास ! जब दिशायें सबको धारण करने में असमर्थ हो गई थी तो वह अत्यन्त दुस्सह तेज दिशाओं से स्रावित हुआ था ।६—७।

लोकांश्चभासवन्सर्वान् धरण्यांवैपपातह ।
सोमोजातस्ततस्तेनशीतांशुश्चजनप्रियः ॥८
सरित्सोमासमुत्पन्ना व्यासतेनैवतेजसा ।
प्रविष्टासा नदीशिप्रामम‍ृतेनाति पूरिता ॥९
ततस्सोमगती शिप्रा विख्याता ह्यतिपुण्यदा ।
सोमयुक्तां नदीं शिप्रां दृष्टवा पापं व्यपोहति ॥१०

ख्यातचत्रिषुलोकेषु पापिनांपुण्यदायिनी ।
ब्रह्महावासुरापोवास्तेजोवागुरुतल्पगः ॥११
चत्वरोऽप्यत्रपापेन मुच्यन्तेदर्शनाद्ध्रुवम् ।
अमासोसौयदायुक्तौ सोमवत्यां तदामुने ॥१२
स्नानंदानंचयोधीमाञ्जपहोमं समाचरेत् ।
अक्षयन्तस्यतत्सर्वं यावच्चन्द्रदिवाकरो ॥१३
तिलोदकप्रदानेनपिण्डदानेनकालिज ! ।
अकालेकालिकीतृप्ति पितृणाश्चयथोदिता ॥१४

समस्त लोकोंमें प्रकाश करता हुआवह तेज फिर भूमिमें गिराथा। उससे सोम समुत्पन्न हुआ उससे वह शीतल किरणों वाला और जनोंका परम प्रिय था ।८। हे व्यास ! उसी तेजसे एक सोमा नदी समुत्पन्न हुई थी वह अमृत से अतिपूरित नदी शिप्रा नदी में प्रविष्ट हो गई थी ।९। तभी से फिर अत्यन्त पुण्य देने वाली शिप्रा सोमवती विख्यात हो गई थी । सोम से युक्त शिप्रा के दर्शन करके मनुष्य पापों से छुटकारा पा जाता है ।१०। तभी से वह नदी तीनों लोकों में पापियोंको पुण्य प्रदान करने वाली विख्यात हो गई थी । चाहे कोई ब्राह्मण की हत्या करने वाला हो अथवा सुरा पीने वाला हो–चोर हो या गुरु शय्या पर गमन करने वाला हो ।११। ये चारों ही महापातकी यहाँ पर केवल दर्शन से ही निश्चय ही पाप मुक्त हो जाया करते है । हे मुने ! अमावस्या और सोम जब दोनों युक्त हों तो वह सोमवती होती हैं ।१२। उसमें जो श्रीमान् स्नान–दान–जप—होमका समाचरण करताहै उसका वह सभी अक्षय होता है और वह जब तक चन्द्र और सूर्य स्थित है रहा करता है ।१३। हे कालिज ! तिलोदक दान से—पिण्ड दान से अकाल में कालिका तृप्ति और पितृगणों की जैसी कही गयी है ।१४।

सर्वत्रदुर्लभा शिप्रा सोमस्सोमग्रहस्तथा ।
सोमेश्वरस्सोमवारस्कारा: पञ्चदुर्लभाः ॥१५
शिप्रासोमजलव्यास कोटितीर्थफलप्रदम् ।
अमासोमसमायोगेपितृतीर्थसमंमृतम् ॥१६

अमायांसोमवारश्चेद्व्यतीपातोयदाभवेत् ।
शतगुणंग्रयायास्तुसोमवत्यांप्रकीर्तितः ॥१७
एवंसोमवतीतीर्थं जातमंत्रमहामुने ! ।
सोमदृष्ट्वार्थपतित क्षितौब्रह्माजगद्गुरु ॥१८
रथे तं स्थाहृयामास लोकानां रितकाम्यया ।
स तु वेदमयो व्यास ! धर्मज्ञस्सत्यसङ्ग्रहः ॥१९
युक्तोवाजिसहस्रेण ब्रह्मणाप्रेरितस्तदा ।
दृष्ट्वातोधततोदेवा रथे तं ब्रह्मणायुतम् ॥२०
तुष्टुवुस्सुर्वभावेन हृष्टाः सर्वसमाहिताः ।
तस्य संस्तूयमानस्य तेजस्सोमस्य भावस्वरम् ॥२१

सर्वत्र शिप्रा दुर्लभ है । सोम सोमग्रह—सोमेश्वर और सोमवार ये पाँच सकार दुर्लभ होते हैं ।१५। हे व्यास ! शिप्रा का सोमजल करो तीर्थों का पुण्य-फल प्रदान करने वाला है । अमा और सोमका या होने पर—पितृ तीर्थ के सदृश कहा गया है ।१६। अमा में सोमवार और जब यदि व्यतीपात हीवे, गया से सौ सुना सोमवती में कहा गया है ।१७। हे महामुने ! इस प्रकार से यहाँ पर सोमवती तीर्थं हुआ था । लोकोंके हित की कामनासे उसको रथमें स्थापित कर यिा । हे व्यास ! वह तो वेदों से परिपूर्ण—सत्य संग्रह वाले और धर्म के ज्ञाता थे ।१९। उस समय में एक सहस्र अश्वों से युक्त और ब्रह्माजी के द्वारा प्रेरित था । रथ मे ब्रह्मा से युक्त सोम को देवों ने देखा था ।२०। सर्व भाव से परम प्रसन्न और सावधान होकर सबने स्तवन किया था । संस्तूयमान उस सोम का तेज परम भास्वर हो गया था ।२१।

आप्यायमानं त्रील्लोकान् पपातधरणीतले ।
ब्रह्मातेनरथेनाथ सागरान्तांवसुन्धराम् ॥२२
त्रिः सप्तकृत्वोतिशयाच्चकारसप्रदक्षिणम् ।
तस्ययत्पतितंतेजो व्याससोमस्यशीतलम् ॥२३

तनेवौषधयोदिव्याजाताभूविसुनिर्मला: ।
याभिर्धार्य्योंह्यलोक: प्रजाश्चैवचतुर्विधा: ॥२४
तुष्टोऽथभगवान्सोमो जगतस्सर्वदोमुने !
दशवर्षसहस्राणि तेपेऽतिदुस्सहंतप: ॥२५
ततस्तस्मैददौस्वाम्पंब्रह्मलोकपितामह: ।
बीजौषधीनां विप्राणां सोमोराजावभूवह ॥२६
सप्तविंशतिसोमाय दाक्षायण्योमहाव्रता: ।
पत्न्य: प्राचेतसोदक्षोददौनक्षत्रसंञ्ज्ञका: ॥२७
सतत्प्राप्यमहद्राज्यं सोमोभार्य्यायुतस्तदा ।
समारेभेराजसूय सहस्रशतदक्षिणम् ॥२८

तीनों लोकों की तुष्ति करने वाला वह धरती तल पर गिर गया था । ब्रह्माजी ने उस रथसे सागरों के सहित बसुन्धरा की इक्कीस बार अतिशय से प्रदक्षिणा की थी । उसका जो तेज हे व्यास ! सोम का जो शीतल गिरा था वे ही परम दिव्य सुनिर्मल औषधियाँ भूमि में उत्पन्न हो गई थीं जिनसे यह लोक चार प्रकार की प्रजा धारण करनेके योग्य हो गया था ।२२-२४। हे मुने ! जगत् को सब कुछ देने वाले भगवान् सोम परम तुष्ट हो गयेथे और दस हजार वर्ष पर्यन्त अतीव दुस्सह तप किया ।२५। इसके अनन्तर ब्रह्म लोक के पितामह ब्रह्माजी ने उसको स्वामी पद प्रदान किया था । सोम औषधियों का विप्रों का राजा हो गया था ।२६। प्राचेतस दक्ष ने उस सोम के लिए दाक्षायणी—महान् व्रत वाली सत्ताईस नक्षत्र संज्ञा से सम्पन्न पत्नियाँ प्रदान की थी ।२७। उस समय में भार्य्याओं से युक्त सोम ने उस महान् राज्यको प्राप्त करके सहस्र और शत दक्षिणा वाला राजसूय यज्ञ आरम्भ कर दिया था।२८।

होता च भवानत्रिरध्वर्यु र्भगवान्भृगु: ।
हिरण्यगर्भश्चोद्गाता ब्रह्माब्रह्मत्वमेयिवान् ॥२९
सदस्यो भगवान् विष्णुस्सनकादिमुखैर्वृ त: ।
ददौ स दक्षिणां सोमस्त्रींल्लोकान्सुसमाहिता ॥३०

सिनीबालीकुहूश्च द्युतिः पुष्टिः प्रभावसुः ।
कीर्तिर्धृ तिश्च लक्ष्मीस्तं देव्यो दिव्यास्विस्सिषेवरे ॥३१
प्राप्यावभृथमव्यग्रस्सर्वदेवर्षिपूजितः ।
अतीवराजतेचन्द्रो दश प्रोद्भासयन्दिशः ॥३२
तस्य तत्प्राप्य दुष्प्राप्यमैश्वर्यमृषिसंस्कृतम् ।
विवभ्राम मतिर्व्यास ! तदामृतमयस्य च ॥३३
बृहस्पतेस्तदा भार्या सारानाम्नीं यशस्विनीम ।
जहार तमसा साध्वीमवमान्याङ्गिरस्सुतम् ॥३४
वाच्यमानस्तदा सोमो देवैर्देवर्षिभिस्तथा ।
नैव व्यसर्जयत्तारां तस्मा आङ्गिरसाय च ॥३५

उस यज्ञ में भगवान् अत्रि होता हुए थे भगबान् भृगु अध्वर्यु थे—हिरण्यगर्भ उद्गाता थे और ब्रह्मत्व का पद स्वयं ब्रह्माजी ने प्राप्त किया था ।२९। सनकादि प्रमुखों से समावृत भगवान् विष्णु सदस्य थे, उन्होंने सुसमाहित होते हुए तीन सोम को दक्षिणा दी थी ।३०। सिनी-वाली-कुहू-द्युति पुष्टि प्रभावसु—कीर्ति—धृति और लक्ष्मी इन दिव्य देवियों ने उसकी सेवा की थी ।३१। अवभृथ को प्राप्त कर समस्त देवर्षियों के द्वारा वन्दित हुआ अव्यग्र वह चन्द्रमा दशों दिशाओं को प्रोद्भासित करता हुआ अत्यन्त शोभा सम्पन्न हो गया था ।३२। हे व्यास! ऋषियों के द्वारा संस्कार किया हुआ वह दुष्प्राप्य ऐश्वर्य प्राप्त करके उसकी बुद्धि जो कि अमृत मय थी विभ्रान्त हो गई थी ।३३।उस समय में अङ्गिरा के पुत्र का अपमान करके बृहस्पति की भार्या परम यशस्विनी तारा नाम वाली का जोकि अत्यन्त ही साध्वी थी अन्धकार में इसने हरण कर लिया था ।३४। उस समय में देवों और देवर्षियों के द्वारा कहा गया भी था किन्तु सोमने उस आङ्गिरस के लिए उस तारा को नहीं विसर्जित किया था ।३५।

बृहस्पतेस्ततः पक्षं शक्रोजग्राहकोपतः ।
सहिशिष्योमहातेजाः हितुः पूर्वं बृहस्पतेः ॥३६

ततोयुद्धमभूत्तत्र सुधीरशक्रसोमयोः ।
देवानां दानवानाञ्च व्यासत्रासंकरं महत् ॥३७
सर्वेभीतास्ततोदेवा ब्रह्माणं शरणं गताः ।
अग्रतोब्रयुमणोयुद्धं कथितसोमशक्रयोः ॥३८
देवानांवचनं श्रुत्वा सार्द्धदेवैः पितामहः ।
आगत्य युद्धसमयेऽवारयद्देवदानवाद् ॥३९
वारितास्ते स्थितास्तत्र युद्धन्त्यक्त्वा सुरासुराः ।
तारामादाय स तदा ददावाङ्गिरसे द्विजः ॥४०
ताञ्चसप्रसवां दृष्ट्वा आहभार्याबृहस्पतिः ।
अन्यदीयोनतेयोन्यां गर्भोधार्यः कथञ्चन ॥४१
उत्ससर्जततस्तारां कुमारदेवरूपिणम् ।
ऐषिकास्त्रं समादाय ज्वलन्तमिवपावकम् ॥४२

इसके उपरान्त कोप से इन्द्र ने बृहस्पति के पक्ष को ग्रहण किया वह पहिले बृहस्पतिके पिता का शिष्यथा ।३६। इसके पश्चात् इन्द्रऔर चन्द्र का अतीव भयानक युद्ध हुआ था । हे व्यास ! वह युद्ध देवों को और दानवोंको भी महान् भय समुत्पन्न करने वाला अत्यन्त भीषण था ।३७। उस उग्र युद्ध से सभी देवता डर गये थे और फिर वे ब्रह्माजी की शरण में प्राप्त हुए थे । ब्रह्माजी के सामने सोम और शक्र के युद्ध को कहा था ।३८। देवों के इस वचन का श्रवण कर पितामह देवों के साथ ही युद्ध के समय में आकर उन्होंने देवों और दानवों को रोक दिया था ।३९। रोके हुए सुर-असुर युद्ध का त्याग करके वहाँ पर स्थित हो गये थे । उन्होंने उस समयमें ताराको लाकर आङ्गिरस (बृहस्पति)को द्विज सोम ने दे दिया था ।४०। उस तारा को प्रसव से युक्त देख कर बृहस्पति भार्या से बोले—दूसरे का गर्भ तेरी योनि में कभी भी धारण नहीं होना चाहिए ।४१। इस कथन के पश्चात् ताराने ऐषिकास्त्र लेकर जलती हुई अग्नि के समान देव रूपी कुमार को उत्सर्जित कर दिया था ।४२।

स तेजो जातमात्रोऽपि देवानामाक्षिपद्यशः ।
ततस्संशयमापन्ना ऊचुस्तारां दिवोकसः ॥४३
कस्यायं ब्रूहिसुभगे ! सोमस्याथबृहस्पतेः ।
नाचचक्षेदेवतानां वेधाः पप्रच्छताम्पुनः ॥४४
यदत्रसत्यं तद्ब्रूहि तारे ! कस्यसुतोह्ययम् ।
साप्राञ्जलिरुवाचेदं ब्रह्माणं वरदं विभुम् ॥४५
सोमस्येति महासौम्यः कुमारी देवतन्निभिः ।
सोमस्य तं सुतं ज्ञात्वा परिष्वच्य पितामहः ॥४६
बुधइत्यकरोन्नाम तस्यपुत्रस्यवैतदा ।
परदारापहाराच्च तत्पापं तनुदुस्सहम् ॥४७
तेन सोमोऽभवत्कुष्ठीक्षयरोगयुतस्तदा ।
ततोराज्येस्वकं पुत्रंस्थापयित्वायथाविधि ॥४८
अवन्तीमाजगामाशु सोमोदेवदिदृक्षया ।
सोमाहे सोमवत्याञ्च अमायोगेजितेन्द्रियः ॥४९

जात मात्र ही उस तेज ने देवों के यज्ञको आक्षिप्त कर दिया था। तब तो संशय को प्राप्त हुए देवों ने तारा से कहा ।४३। हे सुभगे ! यह तो बताओ कि यह गर्भ किसका है सोम का है या बृहस्पति का है ? देवों से उसने कुछ नहीं कहा था तब फिर ब्रह्माजी ने उससे पूछा था ।४४। हे तारे ! इसमें जो भी सत्य है,वही बतला दो कि यह सुत किस का है। उस तारा ने हाथ जोड़ कर वरद विभु ब्राह्मणों से यह कहा— ।४५। यह महान सौम्य देवों के सदृश कुमार सोम का है। पितामह ने उस पुत्र को सोम का जानकर समालिगन किया था ।४६। उसी समय उस पुत्रका 'बुध' यह नामकरण कर दिया था। पराई स्त्रीका अपहरण करने से जो पाप है वह शरीर से दुस्सह हुआ करता है ।४७। उससमय में उस पाप से सोम कोढ़ वाला और क्षय से युक्त हो गया था। इसके अनन्तर राज्य पर अपने पुत्र को विधिपूर्वक स्थापित करके वह शीघ्र ही सोम देव को देखने की इच्छा से अवन्तीपुरी में आ गया था। सोम

वार और सोमवती अमावस्या के योग में जप इन्द्रियों को जीतने वाला ने स्नान किया था ।४८-४६।

स्नात्वा सम्पूजयामास सोमस्सोमेश्वरं ततः ।
तस्य भक्त्या च सन्तुष्टः प्राह सोमं महेश्वरः ॥५०
मत्प्रसादाद्वपुः कान्तं तव सोम ! भविष्यति ।
सोमेश्वरमितिख्यातं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥५१
एवं तु व्यास ! तत्तीर्थं लिङ्ग चैवातिदुर्लभम् ।
कथितं तथ्यभावेन भयातुष्टेनसाम्प्रतम् ॥५२
श्रावणं प्राप्य यो मासं सोमनाथं जितेन्द्रियः ।
नित्यं पश्येन्नरो ! तस्यपुण्यफलं शृण ॥५३
सौराष्ट्रे सोमनाथस्य पूजायाः प्रत्यहं फलम् ।
लभते स नरो व्यास ! नात्र कार्या विचारणा ॥५४

स्नान करके फिर सोमने सोमेश्वर प्रभु का भली भाँति पूजनकिया था । उसकी भक्ति से परम तुष्ट हुए महेश्वर ने सोम से कहा था ।५०। हे सोम ! मेरे प्रदान से तेरा शरीर कान्त हो जायगा । फिर वह सोमेश्वर इस नाम से विख्यात हो गया था जो भुक्ति और मुक्ति दोनों को देने वाला था ।५१। हे व्यास ! इस प्रकार से यह तीर्थ और लिंग अत्यन्त दुर्लभ है । मैंने सत्य भाव से परम तुष्ट होते हुए अब तुझको बतला दिया है ।५२ जो कोई जितेन्द्रिय होकर श्रावण के महीना में वहाँ पहुँचकर नित्य ही सोमनाथ का दर्शन करता हैं उस मनुष्य का पुण्य फल सुनो ।५३। सौराष्ट्र में सोमनाथ की पूजा का प्रतिदिन फल होता है वह नर हे व्यास ! प्राप्त किया करता है—इसमें कुछभी विचारणा नहीं करनी चाहिए ।५४।

——

६६—सौभाग्यतीर्थ माहात्म्य वर्णन

तीर्थे सौभाग्यके स्नात्वा दृष्ट्वा सौभाग्यकेश्वरम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः सौभाग्यं परमं लभेत् ॥१

घृततीर्थेनरः स्नात्वा घृतेनस्नापयेच्छिवम् ।
घृतमग्नावथोहुत्वा रुद्रलोकेमहीयते ॥२
देवीयोगेश्वरींप्राच्र्य सुरासुरनमस्कृताम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः परयोगमवाप्नुयात् ॥३
शङ्खावर्तेनरः स्नात्वा सर्वपापविवर्जितः ।
धनधान्यसमायुक्तो जायतेनिर्मलेकुले ॥४
शुद्धोदकेचतुर्दश्यां मुक्त्यर्थं स्नानवान्नरः ।
शिवं सुरेश्वरं दृष्ट्वा ततोमोक्षयतिर्भवेत् ॥५
तथान्यत्सं प्रवक्ष्यामि तीर्थ त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
किंपुनरीति विख्यातं ब्रह्महत्याविमोचनम् ॥६
पूर्वत्रेतायुगेव्यास ! सुनेत्रोनामवैद्विजा ।
तस्यपुत्रः समुत्पन्नोविश्वावसुरितिस्मृतः ॥७

महामहर्षि श्री सनत्कुमारजी ने कहा—सौभाग्य तीर्थ में स्नान करके और सौभाग्तेश्वर का दर्शन करके समस्त पापों से मुक्त होकर परम सौभाग्य को प्राप्त होता है।१। घृत में स्नान करके मनुष्य घृतमें ही शिव का स्नपन करावे। इसके अनेन्तर अग्नि में घृत का हवन करे तो वह रुद्रलोक में प्रतिष्ठित होता है।२। सुर और असुरों के द्वारा वन्दित योगेश्वरी देवी की अर्चना करके मनुष्य सभी पापों से छुटकारा पाकर परम योग को प्राप्त किया करता है।३। शंखावर्त्त में मनुष्य स्नान करके सब पापोंसे रहित हो जाता है और धन धान्य से समायुक्त होकर निर्मल कुल में समुत्पन्न होता है।४। चतुर्दशी तिथि में शुद्धोदक में मनुष्य मुक्तिके लिये ही स्नान वाला होता है, फिर सुरेश्वर शिवका दर्शन करके मोक्ष की गति वाला हो जाया करता हैं।५। एक अन्य त्रिलोकी में प्रसिद्ध तीर्थको बतलाऊँगा और किंपुन इस नामसे विख्यात हैं जो कि ब्रह्म हत्याका विमोचन कराने वाला हैं।६। हे व्यास ! पहिले त्रेता युग में एक सुनेत्र नामक द्विज था। उसका विश्वावसु नामक पुत्र समुत्पन्न हुआ था।७।

गवक्रीतस्य शापेन स पिता तेन घातितः।
ब्रह्महत्यान्वितो व्यास ! तीर्थात्तीर्थं परिभ्रमन् ॥८
तीर्थे किं पुनके स्नात्वाधारतीर्थे गयो द्विजः।
ततः कपिलधारायां चिन्तयित्वाऽऽत्मना स्वम् ॥९
कथं मे ब्रह्महत्याया यायात्पापं प्रशान्तिताम्।
एवं हि चिन्तयन् सोऽथ पुनरायादवन्तिकाम् ॥१०
अत्र तीर्थे पुनः स्नाति यावद्वाणीं ततोऽश्रृणोत्।
किंपुनर्ध्यायसे ब्रह्मन् येन स्नातो द्विजोत्तमः ॥११
ततेस्तिऽब्रह्महत्यायै तीर्थस्नानेननाशिता।
गच्छशीघ्रं गृहं विप्र ! पापहीनोयथासुखम् ॥१२
पुनरन्यै (प्रवक्ष्यामि पत्तनेश्वरमुत्तमम्।
तत्रस्थित्वा महेशेन पुनः पत्तनमीक्षित्तम् ॥१३
पत्तनेश्वर इत्याख्यां देवदेवोमहेश्वरः।
यस्तुगन्धैश्चपुष्पैश्च धूपदीपैमनोरमैः ॥१४

यवक्रीत के शाप से उसने उस पिताको मार डाला था। हे व्याज? वह फिर ब्रह्म हत्या से युक्त होकर तीर्थ से तीर्थ में परिभ्रमण करता था।८। उस द्विज ने किंपुनक तीर्थमें स्नान किया था फिर धरा तीर्थ में चला गया था, फिर कपिलधारा में उसने स्वयं ही अपने आप चिन्तन किया था।९। मेरी ब्रह्महत्या का पाप कैसे शान्ति को प्राप्त होवे। इस तरह से चिन्तन करता हुआ वह पुनः अवन्ती पुरी में आगया था।१०। इस तीर्थ में जब वह पुनः स्नान करता है तो उसने वाणी का श्रवण किया था। हे ब्रह्मन् ! किंपुनः का ध्यान करो। द्विजोत्तम जिसके द्वारा स्नान किये हुये हो।११। तुझे अब ब्रह्म हत्या नहीं रही है क्योंकि यह उस तीर्थके स्नानसे नष्ट होगई हैं। हे विप्र ! अब सुखपूर्वक घर जाओ क्योंकि तुम पाप से हीन हो गये हो।१२। आगे फिर उत्तम एक अन्य पतनेश्वर को बतलाता हूँ। वहाँ पर स्थित होकर महेश ने पुनः पत्तन को देखा था।१३। वह महेश्वर देवी के भी देव पत्तनेश्वर इस नाम

वाले थे जिसको गन्ध-पुष्प और सुन्दर धूप तथा दीपोंसे पूजना चाहिए ।६४।

भावयुक्तो नरो व्यास ! पूजयेद्विधिवत्सदा ।
यथावत्तिष्ठतेलिंग वंशच्छेदीनजायते ॥१५
हंसयुक्तेनयानेन शिवलोकंसगच्छति ।
तथान्यत्संप्रवक्ष्यामि तीर्थं त्रैलोक्याविश्रुतम् ॥१६
दुर्धर्षमिति विख्यात ब्रह्महत्याविमोचनम् ।
पुरा दिवाकरो व्यास! चक्र दुर्धर्षनामतः ॥१७
तीर्थमस्मिन्नदीतीरे विख्यातसूर्यसंस्कृतम् ।
तेजपुञ्जोऽभवल्लिगगणगन्धवपूजितम् ॥१८
सप्तम्यामथवाष्टम्यांसंक्रान्तौरविवासरे ।
तत्रस्नात्वाशुचिर्भूत्वासुत्रिरात्रमुमोषितः ॥१९
दृष्ट्वामहेश्वरतत्र शिप्राकूलव्यावस्थितम् ।
पूजयित्वातुभावेन यत्फलंतच्छ्रुणुष्वमे ॥२०
पितृमातुकुलसर्व समुद्धृत्याशिवंव्रजेत् ।
तत्रयाच्छतियोदानं गोहेमादिविशेषतः ॥२१

हे व्यास ! भक्तिभाव से युक्त सदा मनुष्य विधिपूर्वक यजन करे । लिंग यथावत् स्थित है और अर्चक का वंशच्छेद नहीं होता है।१५। फिर वह हंस से युक्त यान द्वारा शिवलोक चला जाया करता है। अव एक और तीर्थ को कहूंगा जो त्रैलोक्य में प्रसिद्ध है ।१६। यह-तीर्थ दुर्घर्ष नाम से विख्यात है और यह भी ब्रह्म हत्याके पापसे छुड़ाने वाला है । हे व्यास ! पहिले दिवाकर ने इसका दुर्धर्ण नाम किया था ।१७। इस नदी में यह तीर्थ सूर्य के द्वारा संस्कृत होता हुआ विख्यात हैं गन्धर्वों के गणों द्वारा पूजित यह लिंग तेज का पुंज हो गया था ।१८। सप्तमी या अष्टमी तिथि में संक्रान्ति में—रविवारमें वहाँ स्नान करके शुद्ध होकर तीन रात्रि तक उपोषित रहे ।१९। वहाँ पर शिप्रा के तट पर व्यवस्थित महेश्वरका दर्शन करे और भावपूर्वक पूजाकरे। इसका जो फल होता है वह मुझसे श्रवण करो ।२०। माता और पिता

के सम्पूर्ण कुलों का उद्धार करके वह अन्त में शिवलोक में गमन किया करता वहाँ पर जो गौ और सुवर्ण आदि का विशेष रूप से दान दिया करता है ।२१।

तावत्तदक्षयं लोके यावच्चन्द्रदिवाकरौ ।
तथान्यात्संप्रवक्ष्यामि गोपीन्द्रं तीर्थमुत्तमम् ॥२२
गौममेनपुरायात्र इन्द्राशापाद्भगीकृतः ।
भगव्रीडायुत शक्रः प्रविष्टा वनमुत्तमम् ॥२३
अतोषयत्तदोग्रेण तपसा शंकरम्पुरा ।
तुष्टेन शम्भुना विप्र ! ये भगास्तच्छरीरगाः ॥२४
गोसहस्रीकृतास्तेन गोपीन्द्रमिति कथ्यते ।
तत्र स्नात्वा दिवं याति शक्रतुल्यपराक्रमः ॥२५
येमृतास्तेपुनर्जन्मनाप्नुवन्तिमहीतले ।
गङ्गातीर्थेनरः स्नात्वापुण्याप्राप्नोतिपुष्कलम् ॥२६
ज्येष्ठशुक्लदशम्यान्तु गङ्गाया फलमादिशेत् ।
गङ्गातीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वां पुष्कररण्डकम् ॥२७
पुष्पकेनविमानेनप्रयातिदिविमोदते ।
नरकादुद्धरत्याशु नरः स्नात्वोत्तरेश्वरे ॥२८

उसका वह दान तब अक्षय रहता है जब तब ये चन्द्र और सूर्य स्थिर रहा करते हैं । अब एक अन्य उत्तम गोपीन्द्र तीर्थको बतलाऊंगा ।२२। जहाँ पर प्राचीन समय मैं गौतम के शाप से इन्द्र को भगों वाला कर दिया था । भगों के चिन्हों से लज्जा से युक्त होकर इन्द्र ने वन में प्रवेश कर लिया था ।२३। पहिले इन्द्र ने अत्यन्त उग्र तप से भगवान् शम्भु को सन्तुष्ट कर दिया था । हे विप्र परम प्रसन्न हुए शम्भु ने जो उसके शरीर से रहने वाले अङ्ग थे उनको एक सहस्र गौ कर दिया था जो गोपीन्द्र इस नाम से कहा जाता है । उसमें स्नान करने के इन्द्र के समान पराक्रम वाला होकर दिवलोक को चला जाया करता है ।२४। ।२५। जो इस मही के तलमें मृत होगये वे फिर दूसरा जन्म प्राप्त नहीं किया करते हैं । गङ्गा तीर्थ में मनुष्य स्नान करके बहुत पुण्यकी प्राप्ति

किया करता है ।२६। ज्येष्ठ मास की दशमी में गंगा का फल कहते हैं— गंगा तीर्थ में मनुष्य स्नान करके और पुष्कर रण्डक के दर्शन करे ।२७ पुष्पक विमान के द्वारा दिवलोक में चला जाता है और महान प्रसन्न होता है । उत्तरेश्वर में मनुष्य स्नान करके शीघ्र ही नरक से उद्धार प्राप्त करता हैं ।२८।

इष्टभोगसमापन्नो यातिस्वर्गंनसंशयः ।
भूतेश्वरेनरः स्नात्वा भूतेश्वरमथार्चयेत् ॥२९
गन्धपुष्पादिनैवेद्यै र्मृतः सुरपुरं व्रजेत् ।
शिप्रायां तु नरां स्नात्वा कैलास तु नमस्यति ॥३०
सूर्याहतंतमायद्वत्तद्वत्पापंप्रणश्यति ।
अम्बालिकांचयः पश्येत् समाधिनियमेनच ॥३१
समुक्तः सर्वपापेभ्यः कञ्चुकेनफणीयथा ।
घण्टेश्वरं प्रवक्ष्यामि यत्सुरैरपिपूजितम् ॥३२
यत्रकूपोदकम्पीत्वा सौभाग्यमतुलंलभेत् ।
अर्चयेद्यस्तुदेवेश गन्धपुष्पैरनुक्रमात् ॥३३
शिवलोकेवतेत्तावद्यावदिन्द्राश्चतुर्दश ।
पुण्येश्वरं तुयः पश्येच्छुचिः स्नातोजितेन्द्रियः ॥३४
सगाणपत्यमाप्नोति यत्सुरैरपिदुर्लभम् ।
लुम्पेश्वरेनरःस्नात्वासमभ्यर्च्यमहेश्वरम् ॥३५

अभीष्ट भोगोंसे सुसम्पन्न होता हुआ स्वर्ग को चला जाया करता है—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं हैं । मनुष्य भूतेश्वर में स्नान करके इसके उपरान्त भगवान् भूतेश्वर की अर्चना करे और वह पूजा गन्ध पुष्पादि नैवेद्य के द्वारा करनी चाहिए । ऐसा मनुष्य मृत्यु प्राप्त करके सुरपुर में गमन किया करता है । मनुष्य शिक्षा में स्नान करके कैलाश को नमस्कार करता है ।२९-३०। जिस तरहसे सूर्य से तम आहत होता है उसीभाँति उसका पाप नष्ट हो जाया करताहै । जो समाधिके नियम से अम्बालिका का दर्शन करता है वह सभी प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है जैसे सर्प अपनी कंचुली से मुक्त हो जाया करता है । अब घंटे

श्वर के विषय हैं वर्णन करूँगा जिसको सुरों ने भी पूजित किया है। ।३१-३२। जहाँ पर कूपका जल पीकर अतुल सौभाग्य को प्राप्त करता है जो गन्ध और पुष्पोंके द्वारा अनुक्रम से देवेश की अर्चना किया करता हैं।३३। वह उस समय तक शिवलोक में बास करता है जब तक चौदह इन्द्र हुआ करते हैं। जो शुचि होकर पुण्येश्वर का दर्शन किया करताहै और इन्द्रियों को जीतकर वहाँ स्नान करता है वह गणपति के पद को प्राप्त करता है जो कि सुरों को भी बहुत ही दुर्लभ होता है। लुम्पेश्वर तीर्थ में मनुष्य स्नान करके महेश्वर भगवान् का अभ्यर्चन किया करता है।३४-३५।

नयातिनरकंमृत्य: स्वर्गलोकेमहीयते।
तथान्यत्सप्रवक्ष्यामि यन्सुरै रपिदुर्लभम् ॥३६
पूजितं ब्रह्मणा पूर्वं स्थाविराख्य विनायकम्।
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा पूजयेद्यो विनायकम् ॥३७
गन्धधूपैश्च पुष्पैश्च भक्ष्यैर्भोज्यै: फलं शृणु।
समीहिता भवेत्सिद्धिर्मृत: शिवपुरं व्रजेत् ॥३८
भवनद्या: समीपे तु पार्वतीम्पूजयेद्बुध:।
गन्धपुष्पैश्चधूपैश्च सौभाग्यमतुललभेत् ॥३९
कामोदके नर: स्नात्वा दृष्ट्वा कामं रतिप्रियम्।
स्वर्गे च देवगन्धर्वस्पृहणीयवपुर्भवेत् ॥४०
प्रयागेतुनर स्नात्वा प्रयागेशतु पश्यति।
सर्वलोकानतिक्रम्या शिवलोकेमहीयते ॥४१

वह मनुष्य कभी भी नरकोंमें नहीं जाया करता है और स्वर्गलोक में महिमान्वित हुआ करता है तथा अन्यभी बतलाऊँगा जो कि देवोंको जो परम दुर्लभ है।३६। प्राचीन समय में ब्रह्माजी ने स्थावर नाम वाले विनायक की पूजा की थी। वहाँ पर स्नान करके पवित्र होकर जो विनायक की पूजा किया करता है।३७। वह पूजा गन्ध से पापों तथा भक्ष्य-भोज्यों के द्वारा किया करता है उसके पुण्य फल श्रवण करो। उसकी चाही हुई सिद्धि होती है और मृत होकर वह शिवपुर को गमन

किया करता है ।३८। बुध पुरुष को भव नदी के समीप में पार्वती देवी की पूजा करनी चाहिए और गन्ध पुष्पों तथा धूप से अर्चना करे तो वह अतुल सौभाग्य का लक्ष्य प्राप्त करता है ।३६। कामोदक तीर्थ में मनुष्य स्नान करके और रति प्रिय काम का दर्शन करे तो वह स्वर्ग में देवों और गन्धर्वों के द्वारा स्पृहा करने योग्य वपु वाला हो जाया करता है ।४०। प्रयाग में स्नान करके जो प्रयागेश के दर्शन करता है वह सभी लोकों का अतिक्रम करके शिव लोक मे प्रतिष्ठित हुआ करता है ।४१।

६७—प्रतिकल्पाभिधान वर्णन

श्रृणुष्वांवहितोव्याज कथामेकाग्रमानसः ।
मयाव्यासमुखत्प्राप्ताकल्पभेदेकथाशुभा ॥१
गुह्याद्गुह्यतराश्रेष्ठादेयायस्यनकस्यचित् ।
मास्तिकायकृतघ्नाशिष्यायकदाचन ॥२
एषापुण्यतमाव्यास ! कथापापहरापरा ।
यस्याः श्रवणमात्रेण कल्पदोषो न वाधते ॥३
प्रमाणं कल्पर्यन्त ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु कल्पकल्पान्तरेषु च ॥४
यावत्सङ्ख्या परिमिता तावती श्रृणु सत्तम ! ।
अहोरात्र विभजते सूर्यो भानुपदैः पदम् ॥५
तामुपादाय गणनां श्रृणु सङ्ख्याँ द्विजोत्तम् ।
निमिषैः पञ्चदशभिः काष्ठास्त्रिशत्तु ताः कला ॥६
त्रिशत्कलो मुहूर्तस्तु त्रिशद्भिस्तैमनीषिणः ।
अहोरात्रमिति प्राहुश्चन्द्रादित्यगतिस्तथा ॥७

महर्षि सनत्कुमार जी ने कहा—हे व्यास ! मन को एकाग्र करके परम सावधान होकर एक कथा का श्रवण करो । कल्प के भेद में यह शुभ कथा मैंने भी व्यास के मुख से प्राप्त की थी । यह कथा परम गोप-

नीय से भी अधिक गोपनीय है जिस किसी को इसे नहीं देना चाहिए। जो नास्तिक हो—कृतघ्न हो और शिष्य न हो उसे तो इसे कभी भी नहीं देना चाहिए।१-२। हे व्यास ! यह परम पुण्यतमा है और यह कथा परम पापों के हरण करने वाली है जिसके केवल श्रवण कर लेने ही से कल्प का दोष बाधा नहीं दिया करता है।३। परमेष्ठी ब्रह्माजी का सभी मन्वन्तरों और कल्पान्तरों में कल्प पर्यन्त प्रमाण होता है।४। हे श्रेष्ठत्तम ! जितनी संख्या परिमित हैं उतनी का तुम श्रवण करो। सूर्य भानुपदों के द्वारा पद की अहोरात्रों के द्वारा विभाजन किया करता है। पद मनुष्यों का और देवों का होता है।५। हे द्विजोत्तम ! उसी गणना का ग्रहण करके संख्या को सुनो। पन्द्रह निमिषों की काष्ठा है और तीस काष्ठाओं की एक कला होती है। तीस कला का मुहूर्त होता है और मनीषि की तीस मुहूर्तों का एक अहोरात्र होता है तथा चन्द्र की ओर और आदित्य की गति कही जाती है।६-७।

रवेर्गतिविशेषेण सर्वेण्वेतेषुनित्यशः।
तदहस्तु मनुष्याणां रात्रिश्चैवतुतादृशी ॥८
पक्षमासाश्चतूरब्दमयनंच प्रकीर्तितम्।
पितृणाञ्चैव देवानां ब्रह्मणश्च यथातथम् ॥९
यावत्सङ्ख्या समाख्याता आयुरन्तश्च तादृशः।
अहोरात्राः पञ्चदशः पक्ष इत्याभिशब्दितः ॥१०
प्रक्षौ द्वौ तौकृतोमासी मासोदावृतुरुच्यते।
अयनतंस्त्रिभिः प्रोक्तमब्देद्वे अयनेस्मृतः ॥११
दक्षिणचोतरञ्चैव सङ्ख्यातत्वाविशारदैः।
मानोनानेयोमासः पक्षद्वयसमन्वितः ॥१२
पितृणांतदहोरात्रमितिकालविदोविदुः।
शुक्लपक्षस्त्वहस्तेषां कृष्णपक्षस्तु शवरो ॥१३
कृष्णपक्षेत्विहाश्राद्धं पितृणांवतः तेः ततः।
मानषेणतुमानेन योवै संवत्सरस्मृतः ॥१४

इन सभी में नित्य ही विशेष रूप से रवि की गति होती है। मनुष्यों का वह दिन है और वैसी ही रात्रि है।८। पक्ष–मास—ऋतु शब्द और अयन कहे गये हैं। ये पितृगणों के देवों के और ब्रह्मा के यथोचित रूप से हुआ करते हैं।९। जितनी संख्या कही गई है और वैसा ही आयु का अन्त होता है। पन्द्रह अहोरात्र ही पक्ष इस शब्द से कहा गया है।१०। दो पक्षों का एक मास होता है और दो मासों की एक ऋतु हुआ करती है। ऋतुओं का एक अयन होता है और वर्ष में दो अयन (दक्षिणायन-उत्तरायण) होते हैं।११। संख्या के तत्व पण्डितों ने दक्षिण और उत्तर कहा है। इस मान से जो मास होता है वह दो पक्षों से युक्त हुआ करता है।१२। पितृगण का वह एक अहोरात्र है—ऐसा ही काल के वेत्ता कहते हैं जो शुक्ल पक्ष है वह दिन कहा गया है तथा कृष्णपक्ष पितृगणों की रात्रि हुआ करती है।१३। यहाँ पर कृष्ण पक्ष में पितृगणों के श्राद्ध होते हैं जो मनुष्यों के मान से एक मन्वन्तर ही कहा गया है।१४।

देवानां तदहोरात्र दिवाचैवोतरायणम्।
दाक्षिणायनं स्मृतां रात्रिः प्राज्ञैस्ततत्वार्थकोविदैः ॥१५
दिव्यमब्दंशतगुणमहोरात्रं मनोःस्णेतम्।
अहोरात्रं दशगुणं मानवः पक्षराच्यते ॥१६
पक्षाद्दशगुणोमासीमासैर्द्वादशभिर्गुणैः।
ऋतुर्मनूनांसम्प्रोक्तः प्राज्ञैस्तत्वांतदर्शिभिः ॥१७
षड्भिस्तैर्वणै आख्यातस्तेन सङ्ख्या निवध्यते।
चत्वार्यैव सहस्त्राणि वर्षाणान्तु कृतं युगम् ॥१८
तावतीतु भवेत्सन्ध्या सध्यांशश्वतथाविधः।
त्रीणि वर्षसहस्त्राणि त्रेताया परिमाषः ॥१९
तस्याश्चतावतीसन्ध्यासन्ध्यांशश्चतथाविधः।
तथा वर्ष सहस्त्रे द्वे द्वापरं परिकीर्तितम् ॥२०
तस्यापि तावती सन्ध्या सन्ध्यांशश्चतथाविध।
कलिवर्षसहस्त्रन्तु सङ्ख्यातोऽत्र मनीषिभिः ॥२१

तस्य तावतिका सन्ध्या सन्ध्यांशश्चतथाविधः।
एषाद्वादशसाहस्रो युगसंख्या प्रकीर्तिता ॥२२

देवों का वही अहोरात्र होता है। देवों का जो उत्तरायण है वही दिन होता है और दक्षिणायन को रात्रि तत्वार्थ के कोविदों प्राज्ञों ने कहा है।१५। शत गुण दिव्य शब्द (वर्ष) मनु के एक अहोरात्र होते हैं। दश गुना अहोरात्र मनु का पक्ष कहा जाया करता है। पक्ष से दश गुना मास होता है। द्वादश मासों के गुणों से मनुष्यों का ऋतु कहा गया है। ऐसा तत्वों के ज्ञाता प्राज्ञ लोगों के द्वारा ही बतलाया जाता है।१६।१७। उन छैः ऋतुओं से एक वर्ष कहलाता है। उससे ही संख्या को निबद्ध किया जाता है। चार हजार वर्षों का कृतयुग सतयुग होता है।१८। उतनी ही उसकी संख्या होती है और उसी प्रकार की सन्ध्यांश होता है। परिणाम से तीन सहस्र वर्ष त्रेता के होते हैं।१९। उनकी भी उतनी ही सन्ध्या और उसी तरह का सन्ध्यांश हुआ करता है। दो सहस्र वर्ष का उद्धार युग कहा गया है।२०। उसकी भी उतनी ही सन्ध्या और वैसा ही सन्ध्यांश भी होता है। कलियुग का परिणाम एक ही सहस्र वर्ष की संख्या वाला मनीषियों ने कहा है।२१। उसकी भी उतनी सन्ध्या और वैसा ही सन्ध्यांश हुआ करता है। यह बारह सहस्रों को युगों की संख्या कही गई है।२२।

दिव्येनानेनमानेन युगसंख्या निबोध मे।
ससर्जपुनस्तात जगत्सर्वमिदंततम् ॥२३
कृतत्रेताद्वापरञ्च कलिञ्चैव चतुर्युगम्।
युगंगदेकसप्तया गुणित द्विजसत्तम् ॥२४
मन्वन्तरमितिप्रोक्तं संख्यानाथविशारदैः।
अयनचापि तत्प्रोक्तं द्वयनेदक्षिणोत्तरे ॥२५
मनुः प्रलीयतेह्यत्र सम्प्राप्ते जगतः प्रभो।
ततरेपरोमतुः कालमेनाऽवन्तं भवत्सुतः ॥२६
समतीतेतुराजेन्द्र ! प्रोक्तस्संवत्सरस्सवै।
तदेवचायनं प्रोक्तं मुनिनातत्वदर्शिना ॥२७

ब्राह्मणस्तदहः प्रोक्तः कल्पचेयि समुच्यते ।
सहस्रयुगपर्य्यन्तं सानिशाप्रोच्यतेवुधैः ॥२८

इस तरह से मुझसे आप इस दिव्यमान से युगों की संख्या को समझलो । हे तात ! फिर उसने इस विस्तृत सम्पूर्ण जगत का सृजन किया था ।२३। कृतयुग, त्रेता, द्वापर, और कलियुग—ये चार युग हैं । इन चारों की एकहत्तर चौकड़ी गुणित होकर मन्वन्तर कहा गया है और वह संख्या के विशारदों ने गणना की है । दक्षिण और उत्तर दो अयन भी कहे गये हैं ।२४।२५। हे प्रभो ! इस जगत् के समाप्त होने पर मनु का लय हो जाया करता है । इसके अनन्तर फिर इतने ही काल तक दूसरा मनु हुआ करता है ।२६। हे राजेन्द्र ! समतीत होने पर वही सम्वत्सर कहा गया और वही अयन तत्वों के दर्शी मनु ने बताया है । ब्रह्मा का वह एक दिन कहा गया है और वह कल्प भी कहा जाया करता है । वुधों के द्वारा एक सहस्र युग पर्यन्त वह निशा (रात्रि) कही जाती है ।२७।२८।

निमज्जत्यथ तत्रोर्वी सशैलवमकानना ।
तस्मिन् युगसहस्रे तु पूर्णे भरतसत्तम् ॥२९
ब्राह्मे दिवसपर्यन्तं कल्पो निश्शेष उच्यते ।
युगानि समतोतानि साग्राणि कथितानि ते ॥३०
कृतत्रेतानियुक्तानि मनोरन्तरमुच्यते ।
चतुर्दशैतेमनव कथिताः कीर्तिवर्द्धनाः ॥३१
वेदेषु स पुराणेयु सर्वेषु प्रभविष्णव. ।
प्रजानाम्पतयोव्यास धन्यमेषांप्रकीर्तितम् ॥३२
मन्वन्तरेषु संह्माणाः संहारान्तेयु सम्भवाः ।
नशक्यमन्तस्तेषांवे वक्तु वर्षशतैरपि ॥३३
विसर्गश्च प्रजानांत्रै संहारस्यच भारत ! ।
मन्वन्तरेषु संहारः श्रूयते भरतर्षभः ॥३४
यत्र तिष्ठन्तिर्वदेवाः सर्वेसप्तर्षिभिस्सह ।
तपसा प्रह्मचर्येण श्रुतेवच समन्विताः ॥३५

हे भरत सत्तम ! उस एक हजार युगों के पूर्ण हो जाने पर पहाड़ और वन एवं काननों से युक्त यह पृथ्वी उस समय में निमज्जित हो जाया करता है।२६। बाह्य दिवस पर्यन्त में ही एक कल्प पूर्ण हो जाया करता है अग्र के सहित समतीत युगों को मैंने तुम्हें बतला दिया है।३०। कृत और त्रेता युग में नियुक्त मनु का अन्तर कहा जाता है। वे मनु चौदह कीर्ति की वृद्धि करने वाले बताये गये हैं।३१। हे व्यास ! वह देवों में और समस्त पुराणों ने प्रभा विरणु प्रजाओं के पति हैं जिनका होना बहुत ही धन्य कीर्त्तित किया गया है।३२। मन्वन्तरों गें संहार होते हैं और संहारों के अन्त में जन्म अर्थात् उत्पत्तियाँ हैं ! उनका अन्त सौ वर्षो में भी कहा नहीं जा गकता है।३३। हे भारत ! प्रज़ाओं का विसर्ग और संहार का वर्णन नहीं किया जा सकता है। हे भरत के वंश में परम श्रेष्ठ ! मन्वन्तरों में संहार सुना जाता है।३४। जिसमें सप्तर्षियों के सहित समस्त देववृन्द तप से, ब्रह्मचर्य से और श्रुत से समन्वित होते हुये स्थित रहा करते हैं।३५।

पूर्णे युगसहस्रे तु कल्पो निश्शेष उच्यते।
तत्र सर्वाणि भूतानि दग्धान्यादत्यरश्मिभिः ॥३६
ब्रह्माणमग्रतः कृप्वा सहादित्यगणैर्द्विजाः।
प्रविशन्तिसुरश्रेष्ठ हरिनारायणप्रभुम् ॥३७
स स्त्रष्टासर्वभूतानां कल्पान्तेषु पुनः पुनः।
अव्यक्तः शाश्वतीदेवस्तस्यसर्वमिदञ्जत् ॥३८
स एव विद्यतेव्यास महेशविधिसंयुतः।
महाकालवनेरम्ये वासंचक्रे स ईश्वरः ॥३९
प्रलयोनबाधते व्यास ! महाकालवनोत्तमे।
कदुपेकल्पेचबैरग्या पुरीह्येषाकुशस्थली ॥४०
निरामया निरातंका निर्विकारा युगे युगे।
मार्कण्डेयोपदिष्टानि कल्पानि सम्भवन्ति च ॥४१
अत्रैवचवनेरम्ये ब्रह्मा लोकपितामह।
प्रजानां पतयो ये ते दक्षः प्राचेतसस्तथा ॥४२

एक सहस्र युगों के पूर्ण हो जाने पर एक पूर्ण कल्प कहा जाता है। उधर सूर्य की तीव्रत्तम किरणों से सब भूत दग्ध हो जाया करते हैं। प्रभु हरि नारायण में प्रवेश किया करते हैं।३६। कल्पों के अन्त में श्रेष्ठ प्रभु हरि नारायण में प्रवेश किया करते हैं।३७। कल्पों के अन्त में समयों में समस्त भूतों का बारम्बार सृजन करने वाला वही है। वह देव अव्यक्त व शाश्वत हैं और उसी का यह सम्पूर्ण जगत् है।३८। हे व्यास! महेश और विधाता से समन्वित वह ही विद्यमान रहा करता है। वह ईश्वर परम रम्य महाकाल वन में निवास किया करता था।३९। हे व्यास! परमोत्तम महाकाल वन में प्रलय की कोई बाधा नहीं हुआ करती है। यह कुशस्थली सुरम्य पुरी कल्प में अतीत सुन्दर हो जाती है।४०। युग-युग में यह पुरी पीड़ा से रहित, आतक से हीन और विकारों से शून्य होती है। मार्कण्डेय ऋषि के द्वारा उपदिष्ट कल्प हुआ करते हैं।४१। इस परम सुरम्य वन में लोकों के पितामह ब्रह्माजी तथा दक्ष और प्राचेतस जो प्रजाओं के पति हुए थे।४२।

मरीच्चिः कश्यपोरुद्रोयेचान्ये भार्गवादयः
कल्पादौ सृजतेलोकाञ्चराचरान्यथातथा ॥४३
एवमादौ पुराव्यास कल्पं कल्पान्तकंसदा।
वाराहोवामनोविष्णुः पितृणार्वंतषैश्च ॥४४
कल्पभेदास्समाख्याता महाकालवनेशुभे।
चतुराशीतिकल्पानिसञ्जातानिद्विजोत्तम ॥४५
तावन्ति ज्योतिलिङ्गानि वने तिष्ठन्ति सत्तम!।
पुनर्जाता पुनर्नष्टा महीसागरपर्वता ॥४६
पुनः पुनभविष्यन्तिह्येषाऽचलास्मृताः।
तस्मात्सर्वेषुकालेषुसर्बकालेषु गीयते ॥४७
प्रतिकल्पेति संज्ञा सा भुवि व्यास! भविष्यति।
तस्याञ्च मानवा दान्ता स्नानदानादिक तथा ॥४८

जपहोमं तथा श्राद्धं पितृनुद्दिश्यदीयते ।
नतेषाम्पुनरावृत्तिः कोटिकल्पशतैरति ॥४९

मरीचि, कश्यप और अन्य भार्गव आदि कल्प के आदि में यथा-तथा चर एवं अचर लोकों का सृजन किया करते हैं ।४३। हे व्यास ! पहले इस प्रकार से आदि में सदा कल्प और कल्पान्तक बाराह-वामन और विष्णु हुये थे और इसी प्रकार से पितृगणों के भी हुये थे ।४४। शुभ महाकाल वन में कल्पों के भेद समाख्यात हुये हैं । हे द्विजोत्तम ! चौरासी कल्प हुये हैं ।४५। हे द्विजोत्तम ! उतने ही उस वन में ज्योतिर्लिंग स्थित हैं । यह भूमि सागर और पर्वतों के समुदाय सब पुनः समुत्पन्न हुआ करते हैं और पुनः विनष्ट भी हो जाया करते हैं ।४६। ये सभी बारम्बार होंगे किन्तु यह पुरी अचल कही गयी है । इसी कारण सभी कालों और समस्त लोकों में इसका गान किया जाता है ।४७। हे मानव स्नान—दान आदि जप—होम और पितृगण का उद्देश्य करके श्राद्ध किया करते हैं उनकी फिर सैकड़ों करोड़ में भी यहाँ पुनरावृत्ति नहीं हुआ करती है । ४८।४९।

प्रतिकल्पमनुप्राप्य दृष्टादेवं महेश्वरम् ।
वैशाखेपौर्णमासास्यावै स्नापयेदेकवासरम् ॥५०
प्रसङ्गतो रजः क्लान्तो क्षिप्राम्भसि च मानवः ।
न तस्य दुष्कृतं किञ्चिद्विष्णुलोकं स गच्छति ॥५१
मन्वन्तसहस्रेषु काशीवासेनयत्फलम् ।
तत्फलं प्राप्नुयाज्जन्तुः प्रतिकल्पक्षणादपि ॥५२
प्रतिकल्पे च कल्पान्ते सदैवाऽऽसोत्पुरी शुभा ।
तस्मात्सर्वजनैः ख्याता प्रतिकल्पा द्विजोत्तम ! ॥५३
य एतस्या महाभागाः प्रीतिं कुर्वन्ति मानवाः ।
न तेषां कल्पभेदोऽयं स्वप्नवज्जायते क्षणात् ॥५४
यः शृणोतिकथां पुण्यां प्रतिकल्पोद्भवां शुभाम् ।
श्रावयेद्वा प्रयत्नेन ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥५५

प्रतिकल्पां को प्राप्त कर के तथा महेश्वर देव का दर्शन करके बैशाख मास में पूर्णमासी तिथि में एक दिन स्नपन करावे। प्रसंग से रथ से क्लान्त मानव शिप्रा के जल में स्नान करे तो फिर उसको कुछ भी दुष्कृत नहीं रहता है और यह सीधा विष्णु भगवान के लोक में चला जाता है।५०।५१। सहस्रों मन्वन्तरों से काशी के वास से जो फल प्राप्त होता है वही पुण्य-फल प्रतिकल्प में क्षण भर में जन्तु प्राप्त कर लिया करता है।५२। प्रतिकल्पों और कल्पान्त में पुरी सदा ही परम शुभ थीं। हे द्विजोत्तम! इसी कारण से यह सब जनों के द्वारा प्रतिकल्पा ख्यात हुई हैं।५३। जो महान् भाग्य वाले मनुष्य इसमें प्रीति किया करते हैं उनको यह कल्प का भेद क्षण में स्वप्न की भाँति हो जाया करता है।।५४। जो इस परम पुण्यमयी कल्प का श्रवण किया करता है जो प्रतिकल्प से उत्पन्न हुई परम शुभ हैं। अथवा प्रसन्न पूर्वक श्रवण करता है वह ब्रह्महत्या का व्यपोह कर दिया करता है।५५।

६८—शिप्रा माहात्म्य एवं ज्वारनुग्रह वर्णन

एवंव्यासपुरीरम्य नामभूतासनातनी।
युगेयुगेयथाजाता तथाख्यातामयानघ ।।१
भूयस्तु श्रोतुमिच्छामि त्वतो वेदविदांवर!।
शिप्रायाश्च कथां पुण्यां पवित्रां पापहारिणीम् ।।२
सुन्दरकुण्डं समाख्यातं पिशाचमोचनं तथा ।
नीलगंगा इतिप्रोक्ता कर्कराजगतः परम् ।।३
पुष्कराणिचसर्वाणि गयातीर्थं मनुत्तमम्।
गोमतीकुण्डमाख्यातनाम्नाधर्मसरस्तथा ।।४
ख्यातंसंगमजतीर्थं शनेर्जन्मकथाशुभा।
च्यवनाश्चमेचयावार्ता तथानागालयेशुभे ।।५
पुरुषोत्तममहिमानकालेतेनकथंभवेत्।
एतद्वेतुमिच्छामि यत्तेमनसिवर्तते ।।६

महर्षि सनत्कुमार जी ने कहा—इस प्रकार से हे व्यास ! सनातनी नाम होने वाली रम्यपुरी जो है अनघ ! युग-युग में जैसी हुई थी उसी प्रकार मैंने बतलादी है ।१। व्यासजी ने कहा—हे देवों के वेत्ताओं में परमश्रेष्ठ ! मैं पुनरपि आप से श्रवण करने की इच्छा रखता हूँ जो कि शिप्रा नदी को परम पुण्यमयी अत्यन्त पवित्र और पापों के हरण करने वाली कथा हैं । २ । आपके एक सुन्दर काण्ड बतलाया था तथा पिशाच मोचन कहा था । आपने नील गङ्गा कही थी और इसके आगे परम कर्क राज वर्णित किया था । सब पुष्कर और अत्युत्तम गया तीर्थ तथा गोमती कुण्ड का वर्णन किया था । उसी प्रकार से धर्मसर नाम का वर्णन किया था ।३-४। संगम से समुत्पन्न तीर्थ ख्यात किया था तथा शनि के शुभ जन्म की कथा का वर्णन किया । च्यवन ऋषि की जो वर्त्ता है वह तथा शुभ नागालय में जो वार्ता थी वह वतलाई थी ।५। पुरुषोत्तम की महिमा का वर्णन किया । किन्तु किस समय में किसके द्वारा कैसे यह सब हुआ—यही मैं जानना चाहता हूँ आपके मन में जो भी हो, कृपया कहिए ।६।

श्रृणुव्यास ! महाभाग कथापापहरापराम् ।
यस्मिन्कालेयथा जाता महाकालवनेशुभे ॥७
नास्ति वत्स ! महीपृष्ठै शिप्रायाः सदृशी नदी ।
यस्यास्तीरे क्षणान्मुक्तिः किंचिदासेवनेनवै ॥८
बैकुण्ठेजायतेशिप्राज्वरघ्नोचसुरालये ।
यमद्वारेचपापघ्नी पातालेऽमृतसम्भवा ॥९
वाराहकल्पेवैप्रोक्ता विष्णुदेहेतिनामतः ।
शिप्राकल्पां समाख्याता कामधेनुसमुद्भवा ॥१०
विचित्रमिदमाख्यातं भगवनृषिसत्तम ! ।
वक्तुमर्हसि शिप्रायाः समासेन कथा शुभाम् ॥११
ब्रह्मकपालमादाय भिक्षार्थं व्यचरन्महीम् ।
महादेवोविशुद्धात्मा सर्वलोकेषुसर्वतः ॥१२

अप्राप्तभिक्षोभिद्यार्थी वैकुण्ठमगमद्विभूः ।
गतस्त्वातिथ्यवेलायांभ्रमन्देवो यतस्ततः ॥१३
लोकनिन्दा:सरः क्रुद्ध क्षुधितोबहुवासरैः ।
भिक्षांदेहीतिभोव्रह्मन् क्षुधितोऽहं सभागतः ॥१४

श्री सनत्कुमारजी ने कहा—हे महाभाग व्यास ! इस पापों के हरण करने वाली परमोत्तम कथा का तुम अब श्रवण करो । यह कथा अत्यन्त शुभ महाकाल वन में जिस समय में जिस रीति से हुई थी ।७। हे वत्स ! इस महा मण्डल के पृष्ठ पर शिप्रा के समान अन्य कोई भी नदी नहीं है जिसके तट पर कुछ ही समीप रहकर सेवन करने से क्षण भर में ही मुक्ति हो जाया करती है ।८। यह शिप्रा बैकुण्ठ में उत्पन्न होती है और सुरालय में ज्वरों का हनन करने वाली है । यमराज के द्वार पर पापों का विनाश किया करती है और पाताल में अमृत सम्भवा होती हैं ।९। यह बाराह कल्प में नाम से विष्णुदेहा कही गयी थी और अवन्ती में यह प्रिया कामधेनु से समुद्भव बाली कही गई है ।१०। महर्षि व्यासजी ने कहा—हे ऋषि श्रेष्ठ ! हे भगवन् यह तो आपने अति अद्भुत बात बतलाई है । अब आप इस शिप्रा नदी की कथा संक्षेप में कहने के योग्य होते हैं ।११। महर्षि सनत्कुमार जी ने कहा—विशुद्ध आत्मा वाले महादेव प्रभु सब लोकों में सभी और ब्रह्म कपाल को लेकर भिक्षा के लिये मही में विचरण करते थे ।१२। भिक्षार्थी विभु भिक्षा प्राप्त करने वाले बैकुण्ठ में गये थे । देव जहाँ-तहाँ भ्रमण करते हुये आतिथ्य के समय में गये थे ।१३। लोकों की निन्दा में तत्पर बहुत दिनों से भूखे और अत्यन्त क्रुद्ध थे और यही कहते थे—हे ब्रह्मन् ! भिक्षा दो, मैं भूखा यहाँ पर आ गया हूँ ।१४।

कपालचकरे कृत्वा कृत्युवाचपुनः पुनः ।
गृह्यतांहनभिक्षांते ददामीतिहरिस्तदा ॥१५
इत्युक्त्वाकरमुद्यम्य तर्जन्यंगुलिमदर्शयत् ।
तदारुद्रसमाक्ष्याताास्त्रिशूलेनापहद्रुषा ॥१६

तदांगुलिसमुद्भूतं बहुशुश्रावशोणितम् ।
पूर्णपात्रंचतेनाशुशङ्करस्यकरे स्थितम् ॥१७
तदोद्वेलितपात्राद्वै धाराजातासमन्ततः ८
तत्रस्थानात्समुद्भताशिप्राऽसृग्धारसम्भवा ॥१८
वैकुण्ठाच्चाभवत्सद्यो नदीत्रैलोक्यपावनो ।
एवंशिप्रासरिच्छेष्टा त्रिषुलोकेषुविश्रुता ॥१९
ज्वरध्नी च यथा प्रोक्ता तथा व्यास ! ब्रिवम्यहम् ।
यदा बाणासुरोदैत्यः कृष्णेन सह संयुगे ॥२०
योधयामास दैत्येन्द्रोऽनिरुद्धकृतहेलनः ।
सहस्रबाहुभिवीरो नानाप्रहरणोद्यतः ॥२१

कपाल को हाथ में लेकर वारम्वार यही बोल रहे थे । उस समय में भगवान हरि ने कहा था—हे हर ! भिक्षा ग्रहण करो । मैं आपको भिक्षा देता हूँ । इतना कहकर हाथ को उद्यत करके तर्जनी अंगुली प्रदर्शित की थी । उस समय रुद्र भगवान् ने क्रोध से त्रिशूल के द्वारा हनन किया था ।१५।१६। उस समय में अंगुलि से समुत्पन्न बहुत—सा रुधिर स्रावित हुआ था । उससे भगवान् शङ्कर के हाथ में स्थित पात्र शीघ्र पूर्ण हो गया उस समय में पात्र से उद्वेलित होकर चारों ओर धारा बन गई । वहाँ पर उसी स्थान से रुधिर की धार से समुत्पन्न शिप्रा प्रकट हुई थी ।१७।१८। तुरन्त ही यह नदी बैकुण्ठ से त्रैलोक्य पावनी हो गई इस प्रकार से यह शिप्रा नदी परमश्रेष्ठ तीनों लोकों के प्रसिद्ध हो गई थीं ।१९। हे व्यास ! जिस प्रकार से ज्वरघ्नी हुई उसे मैं बतलाता हूँ । जिस समय में बाणासुर दैत्य श्री कृष्ण के साथ रणक्षेत्र में युद्ध कर रहा था । अनिरुद्ध के द्वारा जिसका अवमान हो गया ऐसा यह दैत्येन्द्र बड़ा वीर था और सहस्रों बाहुओं से अनेक आयुधों से समन्वित था ।२०।२१।

तस्मात्क्रुद्धोवासुदेवः चक्रमादायसत्वरः ।
विच्छेददोः सहस्रन्तुक्षुरप्रेणाशुगामिना ॥२२

सतदाभग्नसंकलप्पच्छिन्नदोश्चरणार्दिता ।
युद्धात्पराङ्मुखोभूत्वा शकरं शरणंययौ ॥२३
तदांगतं महादैत्य समीपेभयविह् वलम् ।
विलोक्यकृपयाविष्टो गतः सग्राममूर्द्धनि ॥२४
छित्वाबाहुसहस्र वै दैत्यराजस्यसंयुगे ।
क्रुद्धः कृष्णोमहाबाहुः परसेनान्तकोबली ॥२५
स्थितोयत्राचलोव्यासगतस्तत्रमहेश्वरः ।
वारयामासकृष्णचशरोधाश्चसमाकिरन् ॥२६
अन्योन्यतौसमासाद्य युद्धं कृत्वाचदारुणम् ।
शस्त्रास्त्रैश्चमहाघोरैः सर्वप्राणिभयंकरैः ॥२७
वैष्णवास्त्रं तदाकृष्णः सन्दधेरचिघांसया ।
पाशुपतञ्चनामास्त्रंसर्वसहारकारकम् ॥२८

इस कारण परम क्रोध में भरे वासुदेव ने शीघ्रता से ही चक्र ग्रहण कर लिया और वायुमयी क्षुरप्र से उसके सहस्र बाहुओं का छेदन कर दिया था।२२। उस समय अपने सङ्कल्पों को भग्न कर देने वाला वह कटे हुए बाहुओं वाला और चरणों से भी पीड़ित होता हुआ युद्ध से पराङ्मुख होकर भगवान शङ्कर की शरणागति में गया था।२३। उस समय भय से अत्यन्त विह्वल समीप में समागत महादैत्य को देखकर कृपा से समाविष्ट होकर संग्राम स्थल में सब से आगे पहुँच गये थे।२४। युद्ध में दैत्यराज की सहस्र बाहुओं का छेदन करके महाबाहु श्रीकृष्ण शत्रु की सेना का हनन करने वाले बलबान् अधिक क्रोधित हुये थे।२५। हे व्यास ! श्रीकृष्ण जहाँ पर अब स्थित थे और अचल थे वहीं पर महेश्वर गये थे। बहुत से शरों के समूहों का समाकीर्ण करते हुए श्रीकृष्ण का वारित किया था।२६। उन दोनों में तत्पर परम दारुण युद्ध करके जो कि समस्त प्राणियों के लिए महान् भयङ्कर तथा अत्यन्त घोर शस्त्रास्त्रों से किया गया था।२७। उस समय में महादेव को मारने की इच्छा से श्रीकृष्ण ने वैष्णवास्त्र का सन्धान किया और शिव ने सब

का संहार कर देने वाला अपना पाशुपत नाम वाला अस्त्र सम्भाला था ।२८।

सन्दधेवैतदाशम्भुः कृष्णप्राणहरोत्सुकः ।
हाहाकारस्तदाजातः सर्वलोकेषुश्रूयते ॥२९
मोहनास्त्रंपुनः कृष्णोहरोनरिमुमोचह ।
तेनास्त्रेणतदाशम्भुर्मोहितोदेतमायया ॥३०
जृम्भाजः स्थितः सस्ये किंचित्कालं मुहुर्मुहुः ।
लब्धसंज्ञः पुनर्जातो यदा रूद्रो महाहवे ॥३१
तदाक्रोधाभिभूतेन कृतोमाहेश्वरोज्वरः ।
ललटफलकात्सद्यो वीरभद्रो महाबल : ॥३२
त्रिनेत्रस्त्रिशिरोह्रस्वस्त्रिपादोवक्रराकृतिः ।
क्षद्रोजटिलभस्माङ्गोमहाब्याधिदुरत्ययः॥३३
कृष्णासेनांसमासाद्य महादेवनप्रेरितः ।
प्राणिनांकदनचक्रे सर्वेषाकृष्णसंगिताम् ॥३४
पराङ्मुखा पराभग्नाज्वराभिघात पीडिता ।
बभूव सहसा ब्यास ! सेना कृष्णेनपालिता ॥३५

उस समय श्रीकृष्ण के प्राणों का हरण करने के लिये अत्युत्सुक शिव ने उस पाशुपत का सन्धान कर लिया था । उस समय में हा हा कार मच गया था जो कि सभी लोकों में सुना गया था ।२९। पुनः श्रीकृष्ण ने हर के ऊपर मोहनास्त्र का परिमोचन किया । उस अस्त्र से उस समय देव माया से शम्भु मोहित हो गये थे ।३०। कुछ समय तक युद्ध स्थल में बारम्वार में जँभाई लेते हुए स्थित हो गये थे । उस महायुद्ध में जिस समय में पुनः संज्ञा (होश हवास़) प्राप्त करने वाले हो गये थे ।३१। उस समय क्रोध से अविभूत शिव ने माहेश्वरी ज्वर समुत्पन्न किया । ललाट के तुरन्त महां बलवन् वीरभद्र उत्पन्न हुआ । वह वीरभद्र तीन नेत्रों वाले तीन मस्तकों वाला—छोटा कद वाला—तीन चरणों से युक्त—चक्र की अष्कृति वाला—क्षुद्र —जटाधारी—अंगों में भस्म लेपन करने वाला महान व्याधि से समन्वित और दुर-

त्यय था ।३२-३३। श्रीकृष्ण की सेना को प्राप्त कर महादेव के द्वारा उसे प्रेरित किया गया था। उसने श्रीकृष्ण के साथ सब प्राणियों का विनाश किया था ।३४। हे व्यास ! श्रीकृष्ण के द्वारा पालित सेना सहसा ही पराङ्मुख, पराभग्न, ज्वर के अभिघात से पीडित हो गई थी ।३५।

तथाभूतांसमालोक्यजृम्भमाणांरुजार्दितम् ।
स्वसेनांभग्नसकल्पांमाहेशज्वरपीडिताम् ॥३६
ससर्जवैष्णवंतापं कृष्णः परमकोपनः ।
तेनसहवैष्णवस्य माहेश्वरज्वरेणच ॥३७
अन्योन्यमभूद्युद्धं वीरं घोरतोरंमहत् ।
संग्रामवहुलंकृत्वा भग्नोमाहेश्वरोज्वरः ॥३८
सर्वलोकेषु गत्वा वै न शान्ति प्रतिजाग्मिवान् ।
महाकालवने रम्ये प्राप्तस्तेनाभिपीडितः ॥३९
निमग्नश्चैवशिप्रायां ततः शान्तिपरांययौ ।
दृष्ट्वामाहेश्वरं शान्त ज्वरंपरमकोपनम् ॥४०
वैष्णवोऽपिसमासाद्य तस्यां मज्जनमाचरत् ।
तस्याः प्रभावसन्नष्टौ ज्वरौ हरिहरोद्भवौ ॥४१
तस्मात्सर्वेषु कालेषु ज्वरघ्नी साऽभवत्क्षणात् ।
ज्वराभिभूता ह्यासाद्यजनाः परमदुःखिताः ॥४२
निमज्जन्ति चशिप्रायां वसन्ति च समाहिताः ।
नेतेषांबाधते पीडाज्वरोद्भूताकदाचन ॥४३
सत्यमुक्तं तदाब्यास ब्रह्मन्हरिहरेणच ।
येश्रृण्वान्ताकथा दिब्यां नराश्चैकाग्रमानसाः ।
न तेषां जायते किञ्चिज्ज्वरसन्तापज भवम् ॥४४

रोग से पीडित—जँभाई लेती हुई—भग्न संकल्प बाली —माहेश ज्वर से पीडित उस प्रकार की अपनी सेना को देखकर परम कोप वाले श्रीकृष्ण ने बैष्णब ताप का सृजन किया था। बैष्णव ताप का माहेश्वर ज्वर के साथ परस्पर परम घोर और उससे भी अत्यन्त घोर

महान् युद्ध हुआ था। बहुत संग्राम करके माहेश्वर ज्वर भग्न हो गया था।३६।३८। समस्त लोकों में जाकर भी कहीं पर शान्ति प्राप्ति नहीं की थी। उससे अभिपीड़ित होकर रम्य महाकाल वन में प्राप्त हुआ।३९। इसके पश्चात् वहाँ पर शिप्रा में निमग्न हो गया और शीघ्र ही परम शान्ति को प्राप्त हुआ। परम कोप युक्त महेश्वर ज्वर को शान्त देखकर वैष्णव भी वहाँ आकर उससे भी उस नदी में मज्जन किया था। उसके प्रभाव से दोनों हरि और हर से उत्पन्न ज्वर नष्ट हो गये।।४०।४१। इसीलिए सभी समय वह क्षणभर में ज्वरघ्नी हो गई। ज्वर से अभिभूत परम दुःखित मनुष्य वहाँ प्राप्त होकर शिप्रा में निमज्जन किया करते हैं और समाहित होकर बास किया करते हैं। फिर कभी भी उनको ज्वर से होने वाली पीड़ा बाधा नहीं दिया करती है।४२-४३। हे ब्रह्मन् व्यास ! उस समय में हरि और हर ने स्वयं कहा था। जो एकाग्र मन वाले मनुष्य इस दिव्य कथा का श्रवण किया करते हैं उनको ज्वर के सन्ताप से कुछ भी भय नहीं हुआ करता है।४४।



६९—विष्णु स्तोत्र और ध्यान

विष्णुभक्तिः परा नित्या सयार्तिदुःखनाशिनी।
सर्व पापहरा पुण्या सर्वसुखप्रदायिनी ॥१
एषा ब्राह्मी महाविद्या न देया यस्य कस्यचित्।
कृतघ्नाय ह्यशिष्याय नास्तिकायानृताय च ॥२
ईर्ष्यकाय च रुक्षाय कामुकाय कदाचन।
तद्गतं सर्वं विघ्नन्तिमतद्धर्म सनातनम् ॥३
तद्गुह्यतमं शास्त्रं सर्वपापप्रणाशनम्।
पवित्रं च पवित्राणां पावनानां च पावनम् ॥४
विष्णोर्नामसहस्रं च विष्णु भक्तिकर शुभम्।
सर्वसिद्धिकरं नृणां भुक्तिमुक्तिप्रदं शुभम् ॥५
ॐ अस्य श्रीविष्णु सहस्रनामस्तोत्रमन्त्रस्य मार्कण्डेयऋषिः।

विष्णुर्देवताअनुष्टुप्छन्दः सर्वकामावाप्त्यर्थेजपेविनियोगः॥
सजलजलदनीलं दर्शितोदारशीलः
करतलधृतशैलं वेणुवाद्ये रसालम्।
ब्रजजनकुलपालं कामिनीकेलिलोल,
तरणतुलसिमालं नौमि गोपालबालम् ॥६

महर्षि मार्कण्डेय ने कहा—भगवान विष्णु की भक्ति परम प्रधान है जो नित्या और सभी दुःखों की आर्ति का विनाश करने वाली है। यह समस्त पापों के हरण करने वाली—पुण्यमयी और सब सुखों के प्रदान करने वाली हैं।१। यह ब्राह्मी महाविद्या है। इसको चाहे जिस किसी को नहीं देना चाहिये। जो कृतघ्न हो—अशिष्य हो—नास्तिक हो तथा झूठा हो उसे कभी न देवे।२। जो ईर्ष्यालु हो—रूक्ष हो और कामुक हो उसे भी इस विद्या को नहीं देना चाहिये। उसमें रहने वाले सब का विघ्न कर देती है—यही सनातन धर्म है।३। यह परम गोपनीय शास्त्र है जो सर्व पापों का नाशक है वह पवित्रों में परम पवित्र है और पावनों में परम पावन है।४। भगवान विष्णु के सहस्र नाम परम शिव विष्णु की भक्ति के करने वाले हैं। मनुष्यों की समस्त सिद्धियों के करने वाले तथा भुक्ति और मुक्ति दोनों ही के प्रदान करने वाला है।५। इस विष्णु सहस्र नामक स्तोत्र मन्त्र का मार्कण्डेय ऋषि हैं—विष्णु देवता है—अनुष्टुप् छन्द हैं—समस्त कामनाओं की प्राप्ति के लिये ही जप में विनियोग है ध्यान—जल से परिपूर्ण मेघ के समान श्री विष्णु का नीला वर्ण है—उदारता और शील से दर्शित स्वरूप हैं—हाथ पर शैल को धारण करने वाले हैं—रसमयी वेणु का वादन करने वाले हैं—ब्रजवासियों के कुल के मनुष्यों का सदा परिपालन करने वाले हैं—कामिनियों की केलि में अतीव चंचल हैं—तरुण तुलसी की माला को धारण करने वाले गोपाल के बाल स्वरूप को मैं प्रणाम करता हूँ।६।

ॐ विश्वो विष्णुर्हृषीकेशः सर्वात्मा सर्वभावनः।
सर्वगः शर्वरीनाथो भूतग्रामाऽऽशयाशयः ॥८

अनादिनिधनो देवः सर्वज्ञः सर्वसम्भवः।
सर्वव्यापी जगद्धाता सर्वशक्तिधरोऽनघः ॥१०
जगद्बीजं जगत्स्रष्टा जगदीशो जगत्पतिः।
जगद्गुरुर्जगन्नाथो जगद्धाता जगन्मयः ॥११
सर्वाऽऽकृतिधरः सर्वविश्वरूपी जनार्दनः।
अजन्मा शाश्वतो नित्यो विश्वाधारो विभुः ॥१२
बहुरूपैकरूपश्च सर्व रूपधरोहरः।
कालग्निप्रभवो वायुः प्रलयान्तकरोऽक्षयः ॥१३
महार्णवो महामेगो जलबुद्धबुद्सम्भवः।
संस्कृतो विकृतो मत्स्यो महामत्स्यस्तिमिगिल ॥१४

अब विष्णु के सहस्रनामावली का आरम्भ होता है—विश्व स्वरूप वाले विषयेन्द्रियों के स्वामी—सबके आत्मा—सब पर कृपा करने वाले विष्णु हैं। सर्वत्र गमन करने वाले—शर्वरी के स्वामी—भूत ग्रामों के आशयों के भी आशय है।९। आदि और अन्त से रहित है। देव—सभी कुछ के ज्ञाता, सबकी समुत्पत्ति करने वाले हैं। सर्वत्र सब में व्यापक—इस जगत् के धाता सभी प्रकार की शक्तियों के धारण करने वाले तथा निष्पाप हैं।१०। इस जगत् की उत्पत्ति के बीज स्वरूप हैं—जगत् के सृजन करने वाले—जगत् के स्वामी और इस जगत् की रक्षा करने वाले हैं। जगत् को ज्ञान देने वाले गुरु—जगत् के नाथ—जगत् के पालन और सम्पूर्ण जगत् के स्वरूप वाले हैं। ११। सभी आकृतियों के करने वाले—सम्पूर्ण विश्व के स्वरूप वाले तथा जनों की पीड़ा को दूर करने वाले हैं। कभी जन्म न धारण करने वाले—निरन्तर स्थित रहने वाले—नित्य—विश्व के आधार—व्यापक और कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथाकर्त्तुं समर्थ प्रभु हैं। अर्थात् करने न करने और विपरीत करने की शक्ति से समन्वित समर्थ हैं।१२। बहुत से स्वरूपों से संयुत—एक ही रूप वाले—सबका स्वरूप धारण वाले—हर—कालाग्नि के समुत्पन्न करने वाले वायु प्रलय के अन्त करने वाले और क्षय से रहित हैं।१३। महान् सागर

—महान् मेघ—जल के बुलबुले से समुत्पन्न—संस्कार सम्पन्न, विकार युक्त—मत्स्य—महान् मत्स्य स्वरूप और तिमिङ्गल हैं ।१४।

अनन्तोबासुकिः शेषोवराहोधरणीधरः ।
पयः क्षीरविवेकाढचोहंसोहैंमगिरिस्थितः ॥१५
हयग्रीवो विशालाक्षो हयकर्णो हयाकृतिः ।
मन्थनो रत्नहारी च कुर्मो धरधराधरः ।१६
विनिद्रो निद्रितोनन्दी सुनन्दीनन्दनप्रियः ।
नाभिनालमृणाली च स्वयभूश्चतुराननः ॥१७
प्रजापतिपरो दक्षः सृष्ठिकर्ता प्रजाकरः ।
मरीचिः कश्यपोदक्षः सुरासुरगुरुः कवि ॥१८
वामनो वाममार्गी च वामकर्मा बृहद्वपुः ।
त्रैलोक्यक्रमणो दीपो वलियज्ञविनाशसः ॥१९
यज्ञहर्ता यः कर्ता यज्ञेशो यज्ञभुग्विभृः ।
सहस्रांशुर्भनो भानुर्विवस्वानरविरंशुमान् ॥२०

अनन्त (शेष)—वासुकि—शेष—धारणी को धारण करने वाले—वराह है। दूध और जल के विवेचन से सुसम्पन्न हंस हेमगिरि पर स्थित रहने वाले हैं।१५। हयग्रीव—विशाल लोचनों वाले—हय के समान कर्णों वाले—और अश्व के सदृश आकृति वाले हैं अथवा दया के आकार से युक्त हैं—मन्थन करने वाले—रत्नों का हरण करने वाले—कर्म—धरा को अधर धारण करने वाले हैं ।१६। निद्रा से रहित—परम निद्रा वाले—आनन्द स्वरूप—सुनन्द और नन्दन प्रिय है। नाभि के कमल नाम के मृणाल वाले हैं—स्वयं ही समुत्पन्न (ब्रह्मा) और चार मुखों वाले हैं। अर्थात् ब्रह्मा भी विष्णु भगवान् का ही एक स्वरूप है ।१७। परम प्रजा पति—दक्ष—सृष्टि के करने वाले—प्रजाओं का समुत्पन्न करने वाले—मरीचि—कश्यप—दक्ष—सुरों के गुरु तथा असुरों के गुरु हैं। अर्थात् सब प्रजापतियों और ऋषियों का स्वरूप भी विष्णु का ही रूप है ।१८। यामन—वाम मार्ग वाले—दान कर्म करने वाले तथा वृहत् शरीर से

समन्वित है। तीनों लोकों में संक्रमण करने वाले—दीप अर्थात् प्रकाश दाता और राजा बलि के यश का विनाश करने वाले हैं।१६। यज्ञों के हरण करने वाले—यज्ञों के करने वाले—यज्ञों के स्वामी—यज्ञों में भोग ग्रहण करने वाले—व्यापक—सहस्र किरणों से युक्त (सूर्य)—भानु विवस्वान्—अंशुमान्—रवि हैं।२०।

तिग्मतेजाश्चाल्पतेजः नर्मसाक्षी मनुर्यमः ।
देवराजः सुरपतिर्दानवारिः शचीपतिः ॥२१
अग्निर्वायुसखो वह्निर्वरुणा यादवांपतिः ।
नैऋ‍र्तोनादनोऽनादौरक्षयज्ञोधनाधिपः ॥२२
कुबेरोवित्तवान्वेगो वसुफालो विलासकृत् ।
अमृतस्त्रवणः सोमः सोमपानकरः सुधाः ॥२३
सर्वोषधिकरः श्रीमान्निशाकरः दिवाकरः ।
विषारिर्विसहर्ता च विषकण्ठधरोगिरिः ॥२४
नीलकण्ठो वृषीः रुद्रो भालचन्द्रो ह्यु मापतिः ।
शिवः शान्तो वशी बीरो ध्यानी मानी च मानदः ॥२५
कृमिकीटो मृगव्याधो मृगहा मृगलाञ्छनः ।
वटुको भैरवो गायः कपाली दण्डबिग्रहः ॥२६
स्मशानवासी मांसाशी दुष्टनाशी वरान्तकृत् ।
योगिनीत्रासको योगी ध्यानस्थो ध्यानवासनः ॥२७

तीक्ष्ण तेज युक्त स्वरूप तेज वाले—सबके किये हुये कर्मों को देखने वाले—मनु-यम—देवों के राजा—सुरों के रक्षक—दानवों के शत्रु—इन्द्राणी के पति—अग्नि—वायु के सखा—वह्नि—वरुण—यादवों के पति—नैऋ‍र्त—नादान—अनादि—रथयज्ञ और कुबेर हैं।२१-२२। कुबेर—चित्त वाले—वेग स्वरूप—वसुपाल—और विलासों के करने वाले। अमृत के श्रवण करने वाले—सोम—सोमरस को पीने वाले—सुधा है।२३। सम्पूर्ण औषधियों के करने वाले श्री सम्पन्न निशाकर (चन्द्रमा) और दिवाकर (सूर्य) है। विष के शत्रु विष के हरण करने

वाले विष (गरल) को कण्ठ में धारण करने वाले–गिरीश हैं।२४। नीलकण्ठ–वृष वाले–रुद्र–भाल में चन्द्र को धारण करने वाले, उमा के स्वामी–दिव्य–शान्त स्वरूप–वश में रहने वाले–वीर ध्यान में मग्न, मानयुक्त और दूसरों को मान के देने वाले हैं।२५। कृमि कीट–मृगों के व्याध–पशुओं के हनन करने वाले–मृग के चिह्न वाले (चन्द्रमा)–वटुक काल स्वरूप भैरव (शिव के प्रधान गण) वास कपाल धारी और दण्ड के विग्रह वाले हैं।२६। श्मशान में निवास करने वाले–मांस का अशन करने वाले–दुष्टों के नाशक, चरों के अन्त करने वाले हैं। योगिनियों को त्रासदाता–योगी–ध्यान में स्थित और ध्यान वासन हैं।२७।

सेनानी सेनदः स्कन्दो महाकालो गणाधिपः।
आदिदेवोगणपतिर्विघ्नहा विघ्ननाशनः॥२८
ऋद्धिसिद्धिप्रदोदन्ती भालचन्द्रोगजाननः।
नृसिंह उग्रदंष्ट्रश्च नखी दानवनाशकृत्॥२९
प्रहलादपोषकर्ता च सर्वदैत्यजनेश्वरः।
शलभः सागरः साक्षी कल्पद्रु मविकल्पकः॥३०
हेंमदो हेंमभागी च हिमकर्ता हिमाचलः।
भूधरो भूमिदोमेरुः कैलासशिखरोगिरिः॥३१
लोकालोकन्तरो लोकी विलोकी भूवनेश्वरः।
दिक्पालो दिक्पतिर्दिव्यो निष्यकायो जितेन्द्रियः॥३२
विरूप रूपवान्रागी नृत्यगीतविशारदः।
हा हा हूहूश्चित्ररथो देवर्षिनारदः सखा॥३३
विश्वदेवाः साध्यदेवा घृताशीश्च चलोऽचलः।
कपिलो जल्पदो वादी दत्तो हैंहय संघराट्॥३४

सेनानी (सेना के अधिपति कार्तिकेय)–सेना देने वाले, स्कन्द, महाकाल, गणों के स्वामी, आदि देव, गणपति (गणेश), विघ्नों के हनन करने वाले, विघ्नों के नाशक हैं।२८। ऋषियों और सम्पूर्ण सिद्धियों के प्रदान करने वाले, दन्ती (एक दाँतधारी), मस्तक में चन्द्रमा को धारण

करते वाले, गज के समान मुख से संयुत, नृसिंह, उग्र दाढ़ों वाले, नखों से (विशाल एवं तीक्ष्ण नखों वाले) युक्त दानवों के विनाशकारी हैं ।२९। प्रह्लाद के पोषण करने वाले, समस्य दैत्यजनों के स्वामी, शलभ सागर साक्षी कल्प वृक्ष के विकल्प वाले अर्थात् समस्त मनोरथों को पूर्ण करने वाले कल्पद्रुम के ही सदृश हैं ।३०। हेम के दाता, हेम के भागी, हिम के करने वाले, हिमवान् पर्वत भूधर, के दाता, सुमेरु, कैलाश का शिखर गिरि है ।३१। लोकालोक पर्वत के अन्तर, लोकी, विलोकन करने वाला भुवनों के स्वामी, दिशाओं के पालक, दिशाओं के परि परम उत्तम, आकृति तथा काया वाले और इन्द्रियों को जीतने वाले हैं ।३२। विगत रूप वाले, परम सुन्दर रूप से संयुत, राग युक्त, नृत्य और गीतों के महान् मनीषी है । हाहा-हूहू, चित्ररथ, देवर्षि नारद और सखा हैं । ।३३। विश्वेदेवा, साध्य देव, धृताशी, चल अचल, (वह जो) चलायमान न होगा कपिल अल्पक, नादी, दत्त, हैहय और संघराट् हैं ।३४।

बसिष्ठो वामदेवश्च सप्तर्षिप्रवरो भृगुः ।
जामदग्न्योमहावीरः क्षत्रियान्तकरोह्युषिः ॥३५
हिरण्यकशिपुश्चैवहिरण्याक्षोहरप्रियः ।
अगस्तिः पुलहोदक्षः पौलस्त्योरवणोघट ॥३६
देवारिस्तापसस्तापीविभीषणहरिप्रियः ।
तेजस्वीतेजदस्तेजी ईशो राजपतिः प्रभुः ॥३७
दाशरथी राघवोरामोरघुवंशविवर्धनः ।
सीतापतिः पतिः श्रीमान्ब्रह्मण्योभक्त वत्सलः ॥३८
सन्नद्धः कवची खड्गी गीरवासा दिगम्बरः ।
किरीटी कुण्डली चापी शंखचक्री गदाधरः ॥३९
कौशल्यानन्दनोदारो भूमिशायी गृहप्रियः ।
सौमित्रो भरतो बालः शत्रुघ्नो भरताग्रजः ॥४०
लक्ष्मणः परवीरघ्नः स्त्रीसहाय. कपीश्वरः ।
सनुमानृक्षराजश्च सुग्रीबोवालिनाशनः ॥४१

दूतप्रियो दूतकारी ह्यङ्गदो गदतावरः।
वनध्वंसी वनी वेगो वानरध्वजलांगुली ॥४२

वसिष्ठ, वामदेव और सप्तर्षियों में परम श्रेष्ठ भृगु है। जामदग्न्य, महावीर और क्षत्रियों को अन्त करने वाले ऋषि परशुराम हैं।३५। हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष, हर का प्रिय, अगस्ति, पुलह, दक्ष पौलस्त्य, रावण, धर हैं।३६। देवारि, तापस तापी, विभीषण और हरि के प्रय, तेजयुक्त, तेज को देने वाले, तेजो, ईश राजपति और प्रभु हैं।३७। दशरथ के पुत्र, रावण, राम, रघू के वंश को वृद्धि करने वाले, सीता के पति, स्वामी, श्रीमान् ब्रह्मण्य (ब्राह्मणों की रक्षा करने वाले), भक्तों पर प्रेम करने वाले हैं।३८। संनद्ध, कवच धारी, खड्गयुक्त, चोरों के वस्त्रों वाले, दिगम्बर (नग्न), किरीट पहनने वाले कुण्डलों के धारण करने वाले, चाप से युक्त, शङ्ख और सुदर्शन चक्र के धारी, गदा को धारण करने वाले हैं।३६। कौशल्या को आनन्द देने वाले पुत्र, उदार, भूमि पर शयन करने वाले, गृह के प्यारे, सुमित्रा पुत्र, भरत, बाल शत्रुघ्न और भरत के ज्य्येठ भाई है।४०। लक्ष्मण, दूसरों के वीरों का हनन करने वाले, स्त्री की सहायता से युक्त, कवियों में ईश्वर, हनुमान, रीछों का राजा जाम्बवान् सुग्रीव हैं और बालि का वध करने वाले हैं।४१। दूत, प्रिय, दूतों के करने वाले, अंगद, बोलने बालों में श्रेष्ठ वनों का विध्वंस करने वाले, धनी, वेग और बानरों के ध्वज का लांगुलीहैं।४२।

रविदंष्ट्री च लंकाह्म हाहाकारो वरप्रदः।
भवसेतुर्ममहासेतुवद्धसेतू रमेश्वरः ॥४३
जानकीवल्लभः कामी किरीटी कुण्डली खगी।
पुण्डरीकविशालाक्षो महावाहुर्धनाकृतिः ॥४४
चञ्चलश्चपलः कामी वामी बामांगवत्सलः।
स्त्रीप्रियः स्त्रीपरः स्त्रैणः स्त्रियो वामांगवासकः ॥४५
जितवैरी जितकामो जितक्रोधो जितेन्द्रियः।
शान्तो दान्तो दयारामो ह्येकस्त्री व्रतधारकः ॥४६

सात्विकः सत्वसंस्थानो मदहाक्रोधहा खरः ।
बहुराक्षससम्वीतः सर्वराक्षसनाशकृत् ॥४७
रावणारी रणक्षुद्रदशगस्तकच्छेदकः ।
राज्यकारी यज्ञकारी दाता भोक्ता तपोधनः ॥४८
अयोध्याधिपतिः कान्तो वैकुण्ठोऽकुण्ठविग्रहः ।
सत्यव्रतो व्रती शूरस्तपो सत्यफलप्रद ॥४९

रवि के दंष्ट्राओं वाला, लङ्का का हनन कर्त्ता, हा हा कार वरदान के देने वाले, इस संसार से पार होने का सेतु, महान् सेतु और रमा लक्ष्मी के ईश्वर हैं ।४३। जानकी के प्रिय, कामी, किरीट धारी, कुण्डल पहिनने वाले, खगी अर्थात् गरुड़ पर सवारी करने वाले, पुण्डरीक के सदृश विशाल नेत्रों से संयुत, बड़ी भुजाओं वाले, मेघ के समान आकार वाले हैं ।४४। परम चञ्चल, चपल काम युक्त, वामों वाले, वामाओं के अङ्गों पर प्रेम करने वाले, स्त्रियों के प्रिय, स्त्री परायण, स्त्रियों में ही रमे रहने वाले, स्त्री के वाम अङ्ग में वास देने वाले हैं ।४५। वैरियों को जीतने वाले, काम पर विजयी, क्रोध को पराजित करने वाले, इन्द्रियों को वश में रखने वाले, परम शान्त दमनशील दयाराम और एक ही स्त्री के व्रत को धारण करने वाले हैं ।४६। परम सात्विक, तत्व के संस्थान वाले, मद के हर्ता, क्रोध के हरण कर्त्ता, खर, बहुत से राक्षसों से सम्बीत और समस्त राक्षसों के नाश करने वाले हैं ।४७। रावण के शत्रु रण में क्षुद्र दश माथों के छेदन करने वाले, राज्य करने वाले, यज्ञों के कर्त्ता, दान देने वाले, भोग करने वाले और तप को ही धन मानने वाले हैं ।४८। अयोध्या के स्वामी कान्त, सुन्दर, बैकुण्ठ, अकुण्ठित विग्रह वाले, सत्य के व्रत से समन्वित, व्रतधारी, शूर, तप, करने वाले सत्य फल के दाता हैं ।४९।

सर्वसाक्षी सर्वगश्च सर्वप्राणहरोऽव्ययः ॥
प्राणश्चाथाप्यपानश्च व्यानोदानः समानकः ॥५०
नागः कृकलः कूर्मश्च देवदत्तो धनञ्जय ।
सर्वप्राण विदो व्यापी योगधारकधारकः ॥५१

तत्व वित्तत्वदस्तवी सर्वतत्वविशारदः ।
ध्यानस्थो ध्यानशाली च मनस्वी योगवित्तमः ॥५२
ब्रह्मज्ञो ब्रह्मदोब्रह्मज्ञामाचब्रह्मसम्भवः ।
अध्यात्मविद्विदोदीपो ज्योतिरूपोनिरञ्जनः ॥५३
ज्ञानदोऽज्ञानहा ज्ञानी गुरुः शिष्योपदेशकः: ।
सुशिष्यः शिक्षितः शाली शिष्यशिक्षाविशारदः ॥५४
मन्त्रदो मन्त्रहा मन्त्री तन्त्री तन्त्रजनप्रियः ।
सन्मंत्री मन्त्रविन्मत्री यन्त्रमन्त्रैकभञ्जनः ॥५५
मारणो मोहनो मोहो स्तम्भोच्चाटनकृत्खलः ।
बहुमायो विमायश्च महामायाविमोहकः ॥५६
सहस्राक्षः सहस्रपात्स हस्रवदनोज्ज्वलः ।
सहस्रानामानन्ताक्षः सहस्रबाहुर्नगोऽस्तुते ॥५७

सबके द्रष्टा--सर्वत्र गमनशील--सबके प्राणों का हरण करने वाले, अव्यय (नाश रहित)–प्राण–अपान–व्यान–उदान और समान है। ये शरीर में रहने वाली पाँच प्रकार की वायु है जो जीवन के आधार हैं ।५०। नाग–कृकल–कूर्म–देवदत्त–धनञ्जय–(थे पाँच अन्य वायु हैं)– सब के प्राणों के ज्ञाता–व्यापी–योग के धारण करने वालों के धारण हैं ।५१। तत्वों का ज्ञाता, तत्व प्रदान करने वाला तत्व से संगत सब तत्वों के विशारद, ध्यान में स्थित, ध्यानशाली मन को नियन्त्रित रखने वाले और परम श्रेष्ठ योग के वेत्ता हैं ।५२। ब्रह्म के ज्ञाता ब्रह्म ज्ञान के दाता, ब्रह्म को पहिचानने वाले, ब्रह्म से सम्पन्न, अध्यात्म वेत्ताओं के ज्ञाता, दीप स्वरूप, ज्योति रूप और निरञ्जन हैं ।५३। ज्ञान के दाता ज्ञान के हर्त्ता, ज्ञान से युक्त अज्ञान के नाशक, शिष्यों को उपदेश देने वाले, सुशिष्य, शिक्षित, शोभा संयुत और शिष्यों की शिक्षा के विशारद (महा पण्डित) हैं ।५४। मन्त्रों के दाता, मन्त्रों के हवन करने वाले, मन्त्रों से संयुत तन्त्री, तन्त्र जनों के प्रिय, सत् मन्त्रों वाले मन्त्रों के वेत्ता, यन्त्री और मन्त्र, तथा मन्त्रों के एक ही भञ्जन करके

वाले हैं ।५५। मारण करने वाले, मोहन करने वाले, मोह युक्त, स्तम्भन और उच्चाटन करने वाले, खल, बहुत माया से समन्वित, बिना माया वाले और महा माया को मोह करने वाले हैं ।५६। सहस्र नेत्रों वाले, सहस्र चरणों से युक्त, सहस्रों मुख वाले, अतीव उज्ज्वल, सहस्र नामों वाले, अनन्त नेत्रों से युक्त, और सहस्र बाहुओं से संयुत हैं ऐसे आपकी सेवा में नमस्कार समर्पित है ।५७।

विष्णोर्नामसहस्रं वै पुराणं वेद सम्मतम ।
पठितव्यं सदा भक्तैः सर्वमंगलम् ॥५८
इति स्तवावभियुक्तानां देवानांतत्र वैद्विज ।
प्रत्यक्षं प्राह भगवान्वरदा वरदार्चितः ॥५९
ब्रूयतां भोः सुराः ! सर्ववरोऽस्मत्तोऽभिवाञ्छित ।
तत्सर्व सम्प्रदास्यामि नाऽत्रकार्या विचारणा ॥६०
वरदोऽसि यदा विष्णो वरमेतद्ददस्व नः ।
अदितेर्गर्भसंभूतः शक्रस्याऽप्यनुजोभव ॥६१
इति संप्रार्थितो देवैर्ब्रह्मशक्रपुरोगमः ।
तथेत्युक्त्वा च भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ॥६२
ततः कतिपयु काले भगवानदितिनन्दनः ।
विष्णुरूपधरोऽनन्तोवमनत्वाच्चवामनः ॥६३

यह भगवान विष्णु के नामों का सहस्र पुराण है तथा वेदों के द्वारा सम्मत है । इसे सदा ही भक्तों को पढ़ना चाहिये । यह अमंगल के रहित सभी प्रकार के मंगल करने वाला है ।५८। हे द्विज ! स्तव से युक्त देवों को वहाँ पर वरदों के द्वारा समर्चित वरदान वाले भगवान ने प्रत्यक्ष रूप से कहा था ।५९। श्री भगवान ने कहा हे सुर गणों ! आप सब हमसे अभिवांछित वरदान माँग लो । वह सभी मैं आपको दे दूँगा । इसमें कुछ भी विचरण मत करो अर्थात् वर मिलेगा या नहीं—देने की ही कृपा करते हैं तो हमको यह वरदान प्रदान कीजिये कि आप स्वयं अदिति के गर्भ से समुत्पन्न होकर इन्द्र के छोटे भाई हो जाइये ।६१।

देवों के द्वारा इस प्रकार से सम्प्रार्थित होते हुये जिन देवों में ब्रह्मा और इन्द्र पुरोगामी थे। तथास्तु अर्थात् ऐसा ही होवे—यह कह कर भगवान विष्णु वहीं पर अन्तर्हित हो गये ।६२। इसके अनन्तर कुछ काल में भगवान विष्णु रूपधारी अदिति के पुत्र हुए थे। जो अनन्त थे तथा बौना होने से वामन नामधारी हुए थे ।६३।

बलिर्वैरोचनो व्यास वाचिमेघशतेन च।
ईजे द्विजवरश्रेष्ठ ! इन्द्रराज्यजिहीर्षया ॥६४
ऋत्विजं कष्यपं कृत्वा होतारं भृगुसत्तमम्।
ब्रह्मा तत्राभवस्चैवस्वयमेव पितामहः ॥६५
अध्वर्युर्भगवानत्रिर्बभूव मुनिसत्तमः।
उद्गाता नारदश्चैव वशिष्ठश्च सभासदः ॥६६
ये यत्र विहिताः सर्वेतत्रतत्रमुनीश्वराः।
बलिस्तत्राऽभवद्व्यास दीक्षितोराजसत्तमः ॥६७
एवं प्रवर्तमानेषु यज्ञेपु मुनिसत्तम !।
हूयतां भुज्यतां चैव दीयतां धीयतां तथा ॥६८
इति वाचः शुभास्तत्र श्रूयन्ते च द्विजोत्तम !।
तस्मिन्काले सुचित्रेगु वामनोऽगाच्छुचिस्मितः ॥६९

हे व्यास ! विरोचन का पुत्र बलि सौ बाजिमेध यज्ञों के द्वारा यजन कर रहा था। हे द्विजवरों में श्रेष्ठ ! इस बलि ने यह यजन इन्द्र के राज्य के हरण करने की इच्छा से किया था ।६४। उस बलि ने यज्ञ में कश्यप को ऋत्विज नियुक्त किया था और भृगु श्रेष्ठ को होता बनाया था तथा पितामह ब्रह्माजी ही स्वयं उस यज्ञ में ब्रह्मा थे ।६५। भगवान अत्रि उसमें अध्वर्यु थे जो कि परम श्रेष्ठ मुनि थे। नारद उद्गाता थे और वसिष्ठ सभासद थे ।६६। जो वहाँ पर विहित किये थे वही-वही पर सब मुनिश्वर अपना-अपना कर्म कर रहे थे। वहाँ यज्ञ में हे व्यास ! श्रेष्ठतम राजा बलि दीक्षित हुआ था ।६७। हे मुनिश्रेष्ठ इस प्रकार से यज्ञों के प्रवर्त्तमान होने पर 'हूयतां, भुज्यतां, दीयता

धीयतां' अर्थात् आहुतियाँ डालो या हवन करो, भोजन कराओ, दान दो, धारण करो इस प्रकार की वाणियाँ जो परम शुभ थीं वहाँ पर सुनाई दे रही थी। हे द्विजोत्तम ! उसी समय में उन सुचित्रित यज्ञों में शुचिस्मित वाले वामन आ गये थे ।६८-६९।

पठमानो मुखाग्रेण चातुर्वेदिकमन्त्रकान् ।
द्वारे तिष्ठति राजेन्द्र वामनो द्विजसत्तमः ॥७०
प्रतिहारेण वै व्यास ! सर्वज्ञोनिवेदितम् ।
उत्थाय च महाराजोंर्बलिवैरोचनिस्तदा ॥७१
अर्घ्यमादाय तत्सर्वं जगाम. स्वैः सभासदैः ।
पूजयित्वा यथान्यायं वामनं लोंकभावनम् ।७२
आनयित्वा सभामध्ये दत्वाऽऽसनपरिग्रहम ।
कुतस्त्वागमनं ब्रह्मन्किन्तेऽभीष्टं ददामि वै ॥७३
राजराजाखिला सृष्टिर्ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
ततोऽहमागतो भूपयज्ञं चैव दिदृक्षया ॥७४
वरूणस्यच यज्ञो वै दृष्टो मे वै सुराऽनघ ! ।
यक्षाधिपतेर्नूनं च यज्ञं वैदृष्टवानहम ॥७५
धर्मस्यापि च यज्ञो मे प्रजापतेश्च सत्तम ।
वायोर्यज्ञो महाराज दृष्टोमेविधिपूर्वकः ॥७६
राजर्षीणां च ये यज्ञा दृष्टास्तेऽपि महाव्रत ! ।
यादृशं वै महाराज यज्ञं ते दृष्ट वानहम् ॥७७
ईदृशो राजराजेन्द्र न भूतोनभविष्यति ।
तस्मादिहागतो राजन् ! याचनाथतवाऽनव ॥७८

कण्ठस्थ चारों के मन्त्रों को मुख से पढ़ते हुये एक परम श्रेष्ठ द्विज प्रहरी ने कहा—हे राजेन्द्र ! द्वार पर खड़ा हुआ है।७०। हे व्यास ! प्रतिहारी ने सभी कुछ वामन के विषय में राजा बलि से निवेदन कर दिया था। उसी समय विरोचन पुत्र महाराज बलि उठ कर अर्घ्य लेकर अपने सभासदों के साथ वहाँ पर गये थे। सविधि पूजा करके अर्थात् लोकों पर कृपा करने वाले वामन देव की अर्चना की थीं ।७१-७२।

फिर उन वामन देव को सभा के मध्य में लिवाकर ले आये और आसन आदि निवेदित किया था। बलि ने पूछा--हे ब्रह्मन् ! आपका आगमन कहाँ से हुआ है ? आपका क्या अभीष्ट है जिसे मैं आपकी सेवा में समर्पित करूँ ? ।७३। वामन देव ने कहा---हे राज राजेन्द्र ! हे भूमन् ! यह समस्त सृष्टि परमेष्टी ब्रह्म की है वहीं से मैं इस यज्ञ के देखने की इच्छा से समागत हुआ हूँ ।७४। हे अनघ ! मैंने पहले वरुण का यज्ञ देखा था और यक्षों के अधिपति का भी निश्चय ही मैंने यज्ञ का दर्शन किया था ।७५। हे सत्तम ! मैंने धर्म का और प्रजापति का भी यज्ञ देखा था किन्तु हे राजन् ! मैंने जैसा यह आपका यज्ञ देखा है। हे महाराज राज राजेन्द्र ! इस प्रकार का यज्ञ तो न कभी पहले हुआ और न होगा। हे राजन् ! हे अनघ ! इसी कारण आपसे कुछ याचना करने के ही लिए मैं यहाँ पर आया हूँ ।७६-७८।

याचस्व त्वं द्विजश्रेष्ठ ! किं तेऽभीष्टं ददाम्यहम् ॥७९
देहि मे राजराजेन्द्र ! पदानि त्रीणि मेदिनीम्।
वासार्थं रोचते तेऽद्य यदि पार्थिवसत्तम ! ॥८०
किमिदं याचितं विप्र ! स्वल्पं ते नहि ते परम्।
गजवाजिगवा: क्षोणी रत्नानि विविधानि च ॥८१
दासदासीर्वरारोहा: स्त्रियोनानावसूनिच।
द्रव्याणिवाससोशुभ्रे याचस्त्वंद्विजोत्तम।
पात्रोऽसि कृतकृत्योऽसि वेदवेदांगपारग ! ॥८२
न मे किञ्चित्स्पृहा राजन्विद्यते भुवि मानद !।
देहि त्वं त्रिपदां भूमि यदि श्रद्धाऽस्ति तेऽधुना ॥८३
इत्युक्ते वामनेनाथ बलिर्वचनमब्रवीत्।
गृहाण त्रिपदां भूमि वामख्यार्थं हि मानद ॥८४

राजा बलि ने कहा—श्रेष्ठ द्विज ! याचना कीजिये। मैं आपके अभीष्ट पदार्थ को दूँगा ।७९। वामन ने कहा—हे राज राजेन्द्र ! आप मुझे केवल तीन पद भूमि दीजिये जो मेरे निवास के लिये पर्याप्त

है। हे राजाओं में परम श्रेष्ठ ! यदि यह आपको रुचिकर हो तो आज ही दे दीजिये ।८०। बलि ने निवेदन किया—हे विप्र ! अपने बहुत थोड़ा-सा क्या यह माँगा है। यह आपके लिये लेना अधिक सुन्दर नहीं है। हे द्विजोत्तम ! मेरे समीप में दान देने के लिये आप जैसे श्रेष्ठ महानुभाव को दासी, परम सुन्दरी नारियाँ, नाना भाँति के धन, द्रव्य शुभ वस्त्र हैं। आप भी इसकी याचना कीजिये। आप तो समस्त वेदों और वेदों के अङ्ग शास्त्रों के पारगामी मनीषी हैं। आप सभी प्रकार के ज्ञान के समुचित पात्र हैं और कृतकृत्य हैं ।८१-८२। श्री वामनदेव ने कहा—हे मान देने वाले ! हे राजेन्द्र ! इस भूमण्डल में मुझे किसी भी पदार्थ के प्राप्त करने की स्पृहा नहीं है। यदि इस समय में आपकी श्रद्धा हो तो मुझे केवल तीन पद परिमितभूमि ही दीजिए ।८३। वामन देव के द्वारा ऐसा कथन करने पर बलि ने यह वचन कहा था—हे मानव ! अपने निवास के लिए तीन पद भूमि ग्रहण कीजिये ।८४।

इत्युक्त्वासचराजर्षिर्ददौभूमिंद्विजाय वै ।
वारितोऽपिवदाव्यासभृगुणादैवनोदित: ॥८५
दत्तमात्रे जलेसद्यो ब्राह्माण्ड चाक्रमुद्धरि: ।
सार्धं पादद्वयं जाता सशैलवनकानना ॥८६
वसुधेयं तदा ब्यास ! गलिना वार्पित वसु ।
जित्वाऽसुरगणान्सर्वान्राज्यं दत्वा शतक्रतो: ॥८७
पश्चात्कुमद्वती प्राप्तो विष्णुवामनरूपधृक् ॥८८
ऋद्धिसिद्धचाश्रमे पुण्ये तीर्थं कृष्वाऽऽत्मसंभवम् ।
निवासमकरोद्व्यास तथैव स सुरोत्ततम् ॥८९

यह कहकर उस राजर्षि ने द्विज को भूमि के दान का संकल्प कर दिया था। हे व्यास ! उस समय में देव के द्वारा प्रेरित हुआ राजा भृगु (शङ्कराचार्य) के द्वारा निवारित भी किया गया था कि भूमि के दान का वचन मत दो। सङ्कल्प के जल देते ही श्री हरि ने तुरन्त ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का आक्रमण कर दिया था। वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जिनमें

शैल, वन और कानन सभी थे ढाई पद में ही नाप लिया था ।८५-८६। उस समय हे व्यास ! राजा बलि के द्वारा समर्पित सम्पूर्ण वैभव जीत कर तथा सब असुरों को पराजित करके इन्द्र को सम्पूर्ण राज्य दे दिया था ।८७। इसके पश्चात् वामन के स्वरूप धारण करने वाले भगवान विष्णु कुमुद्वती गये थे ।८८। उस ऋद्धि और सिद्धियों के परम पुण्यमय आश्रम में आत्म सम्भव अर्थात् अपने द्वारा उत्पन्न तीर्थ बना कर हे व्यास ! सुरोत्तम वामन देव ने ही वहीं पर अपना निवास किया था ।८९।

वामनेन कृतं तीर्थं वामनं कुण्डमुच्यते ।
भद्रेमासिसितेपक्षेद्वादशी श्रवणान्विता ॥९०
वामनद्वादशी प्रोक्ता हत्याकोटिविनाशिनी ।
अस्मिस्तीर्थे नरः स्नात्त्वा ह्युरोष्यैकादशी यदा ॥९१
रात्रौ जागरण कुर्यादब्रह्मभूयाय कल्पते ।
द्वादश्यां वै विशेषेण माहादानानिकुर्वते ॥९२
नतेषांदुर्लभकिञ्चित्त्रिषुलोकेषु विद्यते ।
एवं वै वामन तीर्थं पुरा प्रोक्तं महर्षिणा ॥९३
सर्वपापहरं पुण्यं सर्वकामवरप्रदम्॥
प्राप्यते तेन सर्वंहि नाऽत्र कार्याविचारणा ॥९४

वामन देव के द्वारा किया हुआ तीर्थ वामन कुण्ड कहा जाता है। भाद्रपद मास में शुक्ल पक्ष में श्रवण नक्षत्र से युक्त द्वादशी तिथि वामन द्वादशी कही गई है। यह करोड़ों हत्या के पापों का विनाश करने वाली है। इस तीर्थ में मनुष्य स्नान करके जब एकादसी का उपवास करे और रात्रि में जागरण करे 'तो वह ब्रह्म' सदृश होता है अर्थात् ब्रह्म के ही समान हो जाया करता है। इस द्वादशी में विशेष रूप से महान् दान करे उस पुरुष के लिए तीनों लोकों में कुछ भी दुर्लभ नहीं रहा करता है। इस प्रकार से पहिले महर्षि ने वामन तीर्थ का वर्णन किया था। यह समस्त पापों का हरण करने वाला पुण्यमय सब कामनाओं के वरों

के प्रदान वाला है उस मनुष्य के द्वारा सभी कुछ प्राप्त कर लिया जाता है उसमें कुछ भी संशय नहीं है ।९०-९४।

७०—कुटुम्बेश्वरमाहात्म्यवर्णन

श्रृणुव्यासपरं तीर्थभूमिविख्यातमुत्तमम् ।
कुटम्बेश्वरेतिविख्यातो नाम्नाचैवमहेश्वरः ॥१
तस्यतीर्थवरं तीर्थं सर्वतीर्थफलप्रदम् ।
यस्मिन्तीर्थे नरः स्नात्वा कुटुम्वीजायते ध्रुवम् ॥२
कुटुम्बार्थं तपस्तेपे पुरा दश प्रजापितः ।
नारदेन पुरा व्यास पुत्रषष्टिर्विवासिता ॥३
प्रजाकामः स धर्मात्मा सुचिरं व्रतमाचरत् ।
सपत्नीको महातेजा निराहारो जितेन्द्रियः ॥४
अस्मिस्तीर्थे शुचिः स्नातो जपन्ब्रह्म सनातनम् ।
वर्णाणामयुतं व्यास ! तपस्तेपे सुदारुणम् ॥५
तेन तीर्थप्रसादेन लभेत्स बहुलांप्रजाम् ।
प्रजापतिरितिख्यातोजातोदक्षः प्रतापवान् ॥६
ब्रह्माऽपि तज वै पश्चातपः कृत्वा सदुष्करम् ।
निष्कलं कमलं रूपं प्राप्तवांस्तत्क्षणाद्विधिः ॥७

महर्षि सनत्कुमार जी ने कहा—हे व्यास ! भू मण्डल में अत्यन्त प्रसिद्ध उत्तरा और परम प्रधान तीर्थ के विषय में श्रवण करो । यह तीर्थ कुटुम्बेश्वर विख्यात है और नाम से महेश्वर है ।१। उसका यह तीर्थों में श्रेष्ठ तीर्थ है जो समस्त तीर्थों के फलों का प्रदान करने वाला है जिस तीर्थ में मनुष्य स्नान करके निश्चय ही कुटुम्बी हो जाया करता है ।२। पहले प्रजापति दक्ष ने कुटुम्ब के लिए तपस्या की थी । हे व्यास ! नारद ने पहले साठ पुत्र निवासित कर दिये थे ।३। प्रजा की कामना वाले उस धर्मात्मा ने बहुत काल-पर्यन्त व्रत का समाचरण किया था और अपनी पत्नी को साथ में लेकर, इन्द्रियों को जीत कर और आहार का

त्याग करके ही महान् तेज वाले ने यह व्रत लिया था ।४। हे व्यास ! इस तीर्थ में शुचि होकर स्नान किया था और सनातन ब्रह्म का जप करते हुए दस हजार वर्ष तक परम दारुण तपश्चर्या की थी ।५। उस तीर्थ के प्रभाव से हे व्यास ! उसने बहुत सी प्रजाओं की प्राप्ति की थी। तभी से यह प्रजापति विख्यात हो गया था और दक्ष परम प्रताप वाला हो गया था ।६। वह पर पीछे ब्रह्माजी ने भी सुदुष्कर तप किया था ।७।

महादेवोऽपि तत्रैव प्राप्तवान्ब्रह्मणः पदम् ।
चतुर्मुखधरं लिंगं दृश्यतेऽद्यापिसत्तम ॥८
भद्रपीठधरा देवी भद्रकालीति विश्रुता ।
तत्रैव च सदा व्यास क्रीडतिस्म धृतव्रता ॥९
द्वारे तिष्ठति तत्रैव भैरवः क्षेत्रपालकः ।
पादेन खञ्जतांयातः पुरा दैत्यवरार्दितः ॥१०
पुत्रवत्पालितो देव्या सदा तिष्ठति तत्स्थले ।
ये ते देवगणाः सर्वे तस्मन्तीर्थे प्रतिष्ठिताः ॥११
ऋषयोऽपि महाभागा सदा पर्वणिपर्वणि ।
आयान्ति चैव सन्ध्यार्थंबहुपुत्रप्रदेसरे ॥१२
अस्मिन्तीर्थेसदाचाराः स्नानंकुर्वन्तिः येनराः ।
नतेषांदुर्लभंकिंचिज्जायतेजन्मजन्मनि ॥१३
महाबाधासु घोरासु महामारीषु तत्परैः ।
हवनं क्रियते नित्य सर्षपै राजिकैर्यवैः ॥१४

महादेव ने भी वहीं पर ब्रह्म के पद को प्राप्त किया । हे सत्तम ! आज भी चार मुखों का धारण करने वाले लिंग दिखलाई दिया करता है ।८। भद्र पीठ धारा देवी जो भद्र काली इस नाम से विश्रुत है । हे व्यास ! वही पर सदा व्रत धारण करके क्रीड़ा करती थी ।९। वहीं पर द्वार पर क्षेत्र का पालन करने वाला भैरव स्थित रहा करता है। पहले यह दैत्यवर के द्वारा अर्दित होकर एक पैर लगड़ा हो गया ।१०। देवों ने इसका पुत्र के ही भाँति पालन किया और वह सदा ही उसके ही

स्थल में स्थित रहता है। जो देवगण हैं वे सभी उस तीर्थ में प्रतिष्ठित हैं।११। ऋषि वृन्द भी महान् भाग वाले सदा ही पर्व—पर्व पर उस बहु पुत्रों को प्रदान करने वाले सर पर सन्ध्या के लिए आया करते हैं।१२। जो सदाचरण वाले मनुष्य इस तीर्थ में स्नान किया करते हैं उसको प्रति जन्म में कुछ भी दुर्लभ नहीं होता है।१३। महान् घोर बाधाओं में और महाभारियों में तत्पर मनुष्य सरसों, यव (जौ) और राई से नित्य हवन किया करते है।१४।

पायसैर्विधैर्भोगैस्तेषां दोषो न जायते।
दुर्भिक्षे राज्यभ्रंशे च संग्रामे भृशदारुणे ॥१५
पूजयेत्क्षेत्रपालं च सर्वापदि समाहितः।
सर्वदुःखविनिर्मुक्तोजायतेनाऽत्रसंशयः ॥१६
स्नात्वा कुटुम्बके तीर्थं पूजयित्वामहेश्वरम्।
दानं कूष्मांडकं दद्याद् ब्राह्मणाय तपस्विने ॥१७
सौवर्णमणिमुक्ताभिर्वासोऽलंकारसंयुतम्।
धनधान्यसमायुक्तः कुटुम्बी जायतेनरः ॥१८
फाल्गुनेच सित पक्षे या वै चतुर्दशी भवेत्।
त्रयोदशीयुता व्यास शिवरात्रिस्तथोच्यते ॥१९
तद्दिने च नरः स्नात्वा रात्रौ जागरण चरेत्।
विल्वोदकेन गन्धेन बहुपुष्पफलैस्तथा ॥२०
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यै र्वासोऽलंकारकादिभिः।
पूजयेद्योनरो भक्त्या गिरीश सगणपरम् ॥२१

विविध भोगों द्वारा तथा पायस से जिसके द्वारा किया जाता है उसको कोई भी दोष नहीं होता है। दुर्भिक्ष (अकाल) में राज्य के भ्रंश हो जाने पर संग्राम में और जो अत्यन्त दारुण समय हो उसमें तथा सभी तरह की आपत्ति में समाहित होकर क्षेत्रपाल की पूजा करता है वह सभी दुःखों से छुटकारा पा जाता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है।१५-१६। कुटुम्ब तीर्थ में स्नान करके और महेश्वर का अर्चन करके

किसी तपस्वी ब्राह्मण को कूष्माण्ड (पेठा) का दान देना चाहिए।१७। वह मनुष्य सुवर्ण–मणि–मुक्ताओं से, वस्त्र और अलङ्कारों से संयुत होकर धन-धान्य से समन्वित होता कुटुम्बी हो जाया करता है।१८। फाल्गुन माम के जिम पक्ष में जो चतुर्दशी तिथि होवे। हे व्यास! त्रयोदशी तिथि से जो युक्त होती है वही शिवरात्रि कही जाया करती।१९। उस दिन मनुष्य को स्नान करके रात्रि में जागरण करना चाहिये। बिल्व के पत्र तथा फल––जल––गन्ध बहुत से पुष्प और फल––धूप, दीप, नैवेद्य तथा अलङ्कार आदि से जो मनुष्य भक्ति भाव से भगवान गिरीश का गणों के सहित पूजन करता है।२०-२१।

तस्य पापं क्षयंयाति शिवलोके महीयते।
द्वादशैकादशीपुण्यं लभते भुवि मानवः॥२२
अश्वमेधफलं तस्यजागरे च क्षणेक्षणे।
ततस्तुप्रातरुत्थायस्नानदानादिकाः क्रियाः॥२३
कृत्वा तु विधिवद् व्यास! शिवपूजाऽर्चनं तथा।
विप्रांश्च भोजयेत्सप्त तस्य पुण्यफल शृणु॥२४
कपिलावां सवत्सांनां सहस्राणि चतुर्दश।
वाजपेयसहस्रस्य फलं प्राप्नोति नान्यथा॥२५

उस मनुष्य के समस्त पाप क्षय हो जाया करते हैं और फिर यह पवित्र होकर इस अर्चन के प्रभाव से शिव लोक में जाकर प्रतिष्ठित होता है। भूमण्डल में मनुष्य बारह एकादशियों के उपवास का फल प्राप्त किया करता हैं। उसके एक एक क्षण के रात्रि जागरण में अश्वमेध-यज्ञ का पुण्य फल प्राप्त होता है। इसके उपरान्त प्रातः काल जागरण का कृत्य समाप्त करके स्नान––दान आदि की क्रिया करे। हे व्यास! फिर विधि–विधान के सहित भगवान शिव की अर्चना करनी चाहिये और सात विप्रों को सुन्दर सुस्वादु पदार्थों का भोजन करावे। इसका जो पुण्य–फल होता हैं उसका भी श्रवण करो।२२-२४। वत्सों के सहित कपिला गौओं का जो संख्या में चौदह सहस्र हों उनके दान करने का तथा एक सहस्र वाजपेय यज्ञों के करने का पुण्य

--फल यह मानव प्राप्त कर लेता है, इसके अन्यथा लेश मात्र भी नहीं है।२५।

७१—अखंडेश्वर महिमा वर्णन

श्रृणु व्यास महापुण्यंतीर्थं परम शोभनम् ।
देवप्रयागमाख्यात सर्व पापप्रणाशनम् ॥१
देवानां च परं स्थानं यत्र तीर्थ परंतप ।
सोमतीर्थोत्तरे भागे प्रयागस्य च दक्षिणे ॥२
शिप्रायाः पूर्वभागे च तीर्थमेतत् प्रतिष्ठितम् ।
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा पश्येच्चैव सुरोत्तमम् ॥३
देव माधवमित्याख्य भुवि सर्व फलप्रदम् ।
ददातितस्यदेवेन्द्रोवाच्छिंताथं जगत्पतिः ॥४
आनन्दभैरवस्तत्र सर्वदेवनमस्कृतः ।
यस्य दर्शन मात्रेण सर्वपापक्षयो भवेद् ॥५
न तस्य जायते व्यास ! यातनाभैरवीकदा ।
स्वर्गद्वारे सदा ब्यासजायते निर्भयः पुमान् ॥६
ज्येष्ठे मासे सिते पक्षे दशम्यां बुध हस्तयोः ।
गरानन्देव्यतीपातेकन्याचन्द्रे वृषेरवौ ।
दशाला जायते वत्स ! गङ्गाजन्म पर शुचि ॥७
दह्निने च नरः स्नात्वा सर्वतीर्थफल लभेत् ।
अखण्ड च परं तीर्थंश्रृणु ब्यास ! ह्यतः परम् ॥८

महर्षि सनत्कुमार ने कहा—हे व्यास ! सबसे अधिक पुण्य वाले तीर्थ के विषय में सुनो । यह तीर्थ देव प्रयाग नाम से प्रसिद्ध है और यह सभी तरह के पापों का विनाश कर देने वाला है।१। हे परन्तप ! जहां पर यह तीर्थ है वह देवी का परम स्थान है। यह सोम तीर्थ के उत्तर भाग में और प्रयाग के दक्षिण में तथा शिप्रा नदी के पूर्व भाग में वहाँ पर ही यह तीर्थ प्रतिष्ठित है। वहाँ उस तीर्थ में मनुष्य स्नान करके

सुरोत्तम प्रभु का दर्शन करे ।२-३। यह देव मानव नाम वाले हैं और भूमण्डल में समस्त फलों के प्रदाता हैं। जगत् के स्वामी देवेन्द्र उस मनुष्य को वांछितार्थ प्रदान किया करते हैं ।४। वहाँ पर आनन्द भैरव देव हैं जिनको सभी देवगण नमस्कार करते हैं और जिनके केवल दर्शन से ही सब पापों का क्षय हो जाया करता है ।५। हे व्यास ! उसको कभी भी भैरवी यातना नहीं हुआ करती है। वह मनुष्य निर्भय होकर स्वर्ग के द्वार पर हे व्यास ! सदा पहुँच जाता है ।६। ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष में दशमी तिथि में जब कि बुधवार हो और हस्त नक्षत्र हो, गरानन्द में, व्यंतीपात में, कन्या के चन्द्रमा में और वृष राशि पर स्थित सूर्य में हे वत्स ! परम पवित्र गङ्गा का जन्म दशाला होता है। उस दिन में मनुष्य वहाँ पर स्नान करके समस्त तीर्थों का पुण्य--फल प्राप्त कर लिया करता है। हे व्यास ! इससे भी पर अखण्ड तीर्थ हैं उसके विषय में श्रवण करो ।७-८।

यस्य श्रवणमात्रेण व्रतभङ्गो न जायते ।
एक एक पुराब्रह्मब्राह्मणो व्रह्मवित्तमः ॥९
धर्मशर्मेतिविख्यातः सदाचाररतः शुचिः ।
बहुव्रतधरो दान्तो वेदवेदाङ्गपारगः ॥१०
किञ्चिद्दोषप्रसङ्गेन व्रतपूतिनं चाभवत् ।
एवं बहुतिथे काले नारदो देवदर्शनः ॥११
तस्य गेहागतो ब्रह्मन्नातिथ्यार्थी महातपाः ।
तदोत्थाय द्विजा नित्य बहुमानपुरः सरम् ॥१२
सत्कृत्य नारद भूमान्विधिदृष्टेन कर्मणा ।
पूजयित्वा द्विजश्रेष्ठः पप्रच्छ मुनिसत्तम् ॥१३
भगवन्भवता सर्व विदितं ज्ञानचक्षुषा ।
अस्माकं च परोदोषः किञ्जिजातः पुराऽनघ ॥१४
येन पापप्रसंगेन व्रतभङ्गोऽभवद्ध्रुवम् ।
कारणं ब्रूहि मे नाथ किं दोषोऽत्र तु गण्यते ॥१५

यह ऐसा तीर्थ है जिसके विषय में श्रवण करने ही से व्रत का भङ्ग नहीं होता है। हे ब्रह्मन् ! पहले एक ब्रह्म वेत्ताओं में परम श्रेष्ठ ब्राह्मण था। उसका धर्म शर्मा नाम विख्यात था। यह सदाचार में रति रखने वाला और परम पवित्र था। बहुत से व्रतों का धारण करने वाला, दमन शील तथा वेदों और वेदों के सम्पूर्ण अङ्ग—शास्त्रों का पारगामी विद्वान् था।६-१०। कुछ दोष के प्रसङ्ग होने से उसके व्रत की पूर्ति नहीं हुई थी। इस प्रकार बहुत-सा समय व्यतीत हो जाने पर देव दर्शन भगवान नारद हे ब्रह्मन् ! उसके घर में आये थे उस समय महान् तपस्वी वह द्विज उनके आतिथ्य करने के लिये उठा था और नित्य ही बहुभान पूर्वक हे भूमन् ! विधि युक्त कर्म के द्वारा उसने नारदजी का सत्कार किया और हे मुनिसत्तम ! उस श्रेष्ठ द्विज ने पूजा करके उनसे पूछा था।११-१२। हें भगवान् ! आपने तो ज्ञान चक्षु के द्वारा वह सभी जान लिया है। पहले हे अनघ ! हमको कुछ दोष उत्पन्न हो गया। जिस पाप के प्रसंग से व्रत का भङ्ग निश्चित रूप से हो गया है। हे नाथ ! उसका कारण आप बतलाइये कि यहाँ पर क्या दोष गिना जाता है।१४-१५।

श्रूयतां भो द्विजश्रेष्ठ ! भवद्भिश्च पुराकृतम्।
महाराष्ट्रे सुविख्यातो ब्राह्मणो धनसञ्चकः ॥१६
ब्रह्मदत्तत्यसौ विप्रो वेदब्राह्मणनिन्दकः।
धनलोभी पराक्रान्तः सर्वधर्मबहिर्मुखः ॥१७
नास्तिको देवतीर्थेयु परद्रव्यापहारकः।
परस्त्रीषू रतो नित्यं द्यूतवादी च तस्करः ॥१८
एवमायुः परिक्षीणो धनहीनोऽभवत्तदा।
इतस्तोऽभ्रमद्भ्रष्टो नदीतीरे सुविह्वलः ॥१९
मतश्चौर्यप्रसङ्गेन यात्रिकः सह संगतः।
किञ्चित्कालेषु दुःशीलो मृतिम्प्राप्तो रुजार्दितः ॥२०
नीतः संयमिनीं विप्रस्यत्कालं यमकिंकरैः।
यमराजपुरं प्राप्तो बहुपापकरो द्विजः ॥२१

देवर्षि नारद ने कहा—हे द्विज श्रेष्ठ ! आपने जो पहले किया था उसको सुनो । महाराष्ट्र में धन संचय करने वाला एक सुविख्यात ब्राह्मण था ।१६। ब्रह्मदत्त यह विप्र वेदों और ब्राह्मणों की निन्दा करने वाला, इन का लोभी, पराक्रान्ता और सभी धर्मों से बहिर्मुख था ।१७। देवों और तीर्थों के विषय में यह परम नास्तिक था और पराये द्रव्य का अपहरण करने वाला था । वह नित्य ही पराई स्त्रियों में रत रहता था—द्यूतवादी और तस्कर था ।१८। इस तरह से वह आयु से क्षीण हो गया था और उस समय में धन से हीन हो गया था। इधर-उधर घूमता रहता था भ्रष्ट होकर नदी के तट पर सुविह्वल होकर पहुँच गयाथा ।१९। चोरी के प्रसङ्ग से यात्रियों के साथ सङ्गत होकर वह कुछ काल में रोग से पीड़ित होकर दुःशील मृत्यु को प्राप्त हो गया था ।२०। उसी समय में यमराज के दूतों के द्वारा वह विप्र संयमनी (दण्ड विधान का स्थल) पर ले जाया गया । बहुत अधिक पाप कर्म करने वाला वह द्विज यमराज की पुरी में पहुँच गया ।२१।

दृष्टोऽसौ धर्मराजेन तदा पापपरायणः ।
निरीक्ष्य सहसोवाच धर्मपूर्वमिदं वचः ॥२२
शृणुध्वं किंकराः सर्वे यूयमेकाग्रमानसाः ।
अनेनाचरितं सूर्व दुष्कर्मसर्वं किल्विसम ॥२३
गोदातीरे मृतः पापी तत्र नः कारणं नहि ।
तिस्रः कोटयोऽर्धम कोटिश्च यानि तीर्थान्यहर्निशम् ॥२४
आयान्ति गोतमीतीरे सिंहस्थेऽपि बृहस्पतौ ।
तेषां तु वायुसस्पर्शो जाताऽस्यान्ते कलेवरे ॥२५
तेनपुण्यप्रभावेणनोऽस्माकंकारण क्वचित् ।
ग्राह्ययोभद्भिर्नैवायं मुच्यतांभोः पुराः साः ॥२६
एवं तैर्मोचितो विप्रः पुनर्ब्रह्मगतिं गतः ।
तेन पानप्रसंगेन व्रतभङ्गी गतो भुवि ॥२७
ब्रह्मन्केन प्रकारेण सर्वपापक्षयो भवेत् ।
किं तपः किं च दानं च किं तीर्थं व्रतसेवनम् ॥२८

येन पुण्यप्रभावेण व्रत भङ्गी न जायते ॥२९

उस समय में धर्मराज ने इसको देखा कि यह तो बड़ा ही पाप परायण है। उसको देखकर यह धर्म पूर्वक यह वचन सहसा ही बोल उठे ।२२। हे सब किंकरो ! सुनिये और सभी एकाग्रमन वाले हो जाइये। इसने सभी पापों से पूर्ण दुष्कर्म किये हैं किन्तु यह महापापी गोदावरी नदी के तीर पर मरा है वहाँ पर हमारा कोई कारण रहीं है। तीन करोड़ और आधा करोड़ जो भी तीर्थ है वे सब रात दिन वहाँ पर गोमती के तट पर जाया करते हैं। बृहस्पति के सिंह राशि पर स्थिर होने पर भी वे आते हैं। उन सब तीर्थो की वायु का संस्पर्श इसके शरीर के अन्दर में हुआ है ।२३-२५। उस पुण्य के प्रभाव से हमारा कहीं पर कोई कारण नहीं है। आपको यह ग्रहण नहीं करना चाहिए। पूर्व में ही आप लोग इसको छोड़ दो ।२६। इस रीति से उन यम के दूतों के द्वारा छोड़ा गया यह विप्र पुनः ब्रह्मपति को प्राप्त हो गया। उस पाप के प्रसंग से यह व्रत भृङ्गी हो गया था ।२७। ब्राह्मण ने कहा—हे ब्रह्मन् ! किस प्रकार से समस्त पापों का क्षय होता है ? क्या तप है क्या दान है और क्या तीर्थों तथा व्रतों का सेवन है ? जिस पुण्य के प्रभाव में व्रत भङ्ग नहीं होता है ।२८-२९।

शृणु द्विजवर श्रेष्ठ ! महाकालवनं स्मृत ।
यत्ररुद्रसरः प्रोक्तमृषिणा तत्वदर्शिना ॥३०
कोटिकोटिसुतीर्थानि वर्तन्ते द्विजसत्तम ! ।
कोटितीर्थेतिविख्यातं यस्याद् द्विज ! सनातनम् ॥३१
तत्तीर्थस्योत्तरे भागे सुतीर्थसर्वकामदम् ।
नाम्नाऽखण्डसरः ख्यातमखण्डेश्वरसन्निधौ ॥३२
यस्यदर्शनमात्रेण सर्वयज्ञफलं लभेत् ।
तस्माद्धि सर्वदा वत्सगज्छत्वंतत्रमाचिरम् ॥३३
इति तस्य बचः श्रुत्वा सद्विजोऽगात्कुमुद्वतीम् ।
स्नात्वाऽखण्डसरे व्यास दृष्ट्वा देवं महेश्वरम् ॥३४

सद्यः पुण्यवता लोकान्प्राप्तो वै द्विजसत्तमः।
एव व्यास ! महातीर्थमखण्डेश्वरमुत्तमम् ॥३५

श्री नारद जी ने कहा—हे श्रेष्ठ द्विजगण ! सुनिये। महाकाल वन कहा गया है। जहाँ पर तत्व दर्शी ऋषि ने रुद्र सर कहा है।३०। हे द्विज सत्तम ! वहाँ पर करोड़ों-करोड़ों सुन्दर तीर्थ वर्त्तमान रहते हैं। हे द्विज इसी से वह सनातन कोटि तीर्थ नाम से विख्यात हैं।३१। उस तीर्थ के उत्तर भाग में समस्त मनोरथ प्रदान करने वाले सुतीर्थ हैं। वहाँ पर अखडेश्वर की सन्निधि में अखण्ड सर नाम के एक सर प्रसिद्ध हैं।३२। जिसके केवल दर्शन से ही सम्पूर्ण यज्ञों के फलों का लाभ होता है इस कारण से हे वत्स ! तुम वहाँ पर चले जाओ और अधिक विलम्ब मत करो।३३। इस उसके वचन को सुनकर वह द्विज कुमद्वती को चला गया था। हे व्यास ! उसने अखण्ड सर में स्नान किया था और महेश्वर देव का दर्शन किया था।३४। वह द्विजों में श्रेष्ठ तुरन्त ही पुण्य वालों के लोकों को प्राप्त हो गया था। इस प्रकार अखण्डेश्वर उत्तम महान् तीर्थ हैं।३५।

७२—हनुमत्केश्वर माहात्म्य वर्णन

अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि देवं त्रिशद्पूजितम्।
हनुमत्केश्वर नाम भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥१
शैवेसरसियः स्नात्वा पश्येद्धनुमत्केश्वरम्।
कल्पकोटिसहस्राणिवायुलोके समोदते ॥२
हनुमत्केश्वरोयस्तु व्यक्त पूर्व स्त्वयानघ।
कथांकथयह्य तस्य व्रतपूर्वासनातनीम् ॥३
त्रैलोक्यकण्टकः पूर्वो रावणोनामराक्षस।
विष्णुना रामरूपेण लंकायांविनिपातितः ॥४
घातयित्वातुतंदुष्टं सीतामादायजानकीम्।
वानरैस्सहऋक्षैश्च नगरींस्वामुपागतः ॥५

तत्रराज्यमनुप्राप्य ऋषिभिः परिवारितः ।
कथावसानेरामेण ह्यगस्त्योमुनिसत्तमः ।६
पृष्टोऽधिकोद्वियोर्वापिशम्भुर्वातजयोऽस्तुकः ।
तदादाशरथिंप्राहअगस्त्योमुनिसत्तमः ।।७

श्री सनत्कुमार जी ने कहा—इसके अनन्तर देवों के द्वारा समुचित एक अन्य देव के विषय में वर्णन करूँगा जिसका नाम श्री हनुमत्केश्वर हैं और यह भुक्ति और मुक्ति दोनों के प्रदान करने वाले हैं। शैर सर में जो स्नान करके श्री हनुमत्केश्वर प्रभु का दर्शन किया करता है और एक सहस्र करोड़ कल्पों तक वायु लोक में आनन्द का लाभ प्राप्त किया करता है। श्री व्यासदेवजी ने कहा—हे अनघ ! आपने जो पहले हनुमत्केश्वर कहा था अब इसकी बलपूर्वक सनातनी कथा कहने की कृपा कीजिये। श्री सनत्कुमारजी ने कहा—पहिले होने वाला एक त्रैलोक्य का कण्टक स्वरूप अर्थात् दुःखदायी रावण नाम वाला राक्षस था। उसका विनिपायत श्रीराम रूपधारी भगवान विष्णु ने किया था। उस दुष्ट रावण का बध करके और जनक महाराज की पुत्री सीता को लेकर समस्त वानर और रीछों के सहित वापिस अपनी नगरी अयोध्या में समागत हो गये थे। वहाँ अपना राज्यासन ग्रहण करके ऋषिगण से समावृत मुनियों में श्रेष्ठ अगस्त्य जी से कथा के अवसान में श्रीराम ने पूछा था कि भगवान शङ्कर और वायुदेव इन दोनों से समुत्पन्न होने वालों में अधिक कौन सा है। उस समय में मुनि श्रेष्ठ अगस्त्य जी ने महाराज दशरथ के पुत्र श्री राम से कहा था।१-७।

अनौपम्योयथादेवो युद्धे शौर्ये महेश्वरः ।
ज्ञेयोवायुसुतस्तद्वत्सत्यमेतनुब्रवीमिते ।८
एवंश्रुत्वाथहनुमान्यच्छिवेमोरमामम ।
कृतामुनिवरेणह प्रत्यक्ष राघवस्यहि ।९
गमिष्येनगरीलंकां लिंगमकं प्रयाचितुम् ।
राक्षसेन्द्रं महाभागं विभीषणमकल्मषम् ।१०

ततोगतस्सलंकाया विभीषणमुवाचह ।
देहिमेत्वं महाभाग लिंगमेकञ्चशोभनम् ॥११
उक्तञ्चराक्षसेन्द्रेण गृहाणैतद्यथारुचि ।
एतानिषड्वलिंगानि रावणस्थापितानिवै ॥१२
त्रैलोक्य विजयापूर्वं ममभ्रात्रामहात्मना ।
एतेषु यदभीष्टन्ते लिंगकथय सुव्रत ! ॥१३
तत्प्रयच्छाभित्तेऽद्यैव सत्यमतत्प्लवंगम ! ।
ततो जग्राहहनुमाल्लिंगंमौक्तिवसन्निभम् ॥१४

युद्ध और शूरवीरता में महेश्वर देवता के समान अनुपम वायुसुत को समझाना चाहिए और यह वायु के ही समान हैं—यह मैं बिलकुल सत्य आपको बतला रहा हूँ ।८। इसके अनन्तर हनुमान जी ने इस प्रकार श्रवण करके कि मेरी शिव प्रभु के साथ उपमा वहाँ पर मुनिवर ने की है जो कि श्री राघव के प्रत्यक्ष में की गई थी । मैं अब लंका नगरी में जाऊँगा और वहाँ पर एक लिंग की याचना करूँगा और वह भी कल्मषों से रहित राक्षसों के स्वामी महान् भाग वाले विभीषण से बोला हे महाभाग ! मुझे एक परम शोभन लिंग दीजिये । उसी समय में उस राक्षसों के इन्द्र ने कहा—इसको आप अपनी रुचि के अनुसार लीजिये । यह छह लिंग हैं जो कि रावण के द्वारा संस्थापित किये गये हैं । मेरे भाई महात्मा ने त्रैलोक्य विजय करने के पूर्व में ही इन लिंगों की संस्थापना की थी । हे सुव्रत ! इन लिंगों में आप बतलाइये कौन सा शिव लिंग आपको अभीष्ट है ? हे प्लवंगम ! उसी को मैं आज ही आपको दिये देता हूँ—यह सर्वदा सत्य हो । इसके पश्चात् हनुमान जी ने एक जो मौक्तित के सदृश लिंग था उसी को ग्रहण कर लिया था ।९-१४।

यदेतद्दृश्यतेवीर ! त्तत्प्रयच्छममानघ ।
श्रुत्वा हनुमतोवाक्यमथोवाचविभीषणः ॥१५

दत्तमेतन्महावीर लिंगंयत्कृतवानसि ।
श्रूयतेहिपुरावृत्तं लिङ्गमेतद्धनेश्वरः ॥१६
रुद्रभक्त्यासमायुक्तस्त्रिकालमप्यपूजयत् ।
रावणेनयदाबद्धस्तदानींहिधनेश्वरः ॥१७
लिंगस्यास्यप्रभावेण विमुक्तस्समपद्यत ।
प्रसादात्तस्यलिंगस्य धनेशोधनरक्षकः ॥१८
गृहीत्वा तन्महालिंग स्वस्थो जातोऽथ वानर ।
हीत्वा तु ततो लिंगं प्रस्थितो विमलेऽम्बरे ॥१९
सप्तमेदिव सेचैव सम्प्राप्तोऽवन्तिकांपुरीम् ।
संस्थाप्यरुद्रसरस्वतीस्नानयथाकरोत् ॥२०
महाकालस्यपूजार्थं गमनप्रत्यचिन्तयत् ।
महाकास्तलिङ्गमुद्धं तुं नशशाकसः ॥२१

हे वीर ! जो यह दिखाई दे रहा है हे अनघ ! उसे ही आप मुझे प्रदान कर दीजिये । इस श्री हनुमानजी के वाक्य का श्रवण करके इसके पश्चात् विभीषण बोला—हे महावीर ! जिस लिंग को आपने पसन्द किया है वही मैंने आपको दे दिया है। इसके विषय में ऐसा पुरावृत्त सुना जाता है कि रुद्र की भक्ति से समायुक्त होकर धनेश्वर ने इसकी तीनों कालों में पूजा की थी । रावण के द्वारा जब वह बद्ध हुआ तो उसी समय में धनेश्वर कुबेर इसी लिंग के प्रभाव से विमुक्त हो गया था । इसी लिंग के प्रभाव से धनेश्वर धन का रक्षक हुआ था। उस महालिंग को ग्रहण करके वह वानर हनुमान परम स्वरूप हो गये । श्री सनत्कुमार जी ने कहा—उस शिवलिंग को ग्रहण करके विमल अम्बर में उन्होंने प्रस्थान किया था । सातवें दिन में वे अवन्तिका पुरी में सम्प्राप्त हुए थे । रुद्रसर के तट पर उसको संस्थापित करके इसके पश्चात् उन्होंने गमन के प्रति सोचा था । उस लिंग के उद्धार करने की कामना वाले उन्होंने सभी सोचा था किन्तु वे उठा नहीं सके थे ।१५-२१।

ततो व्यवस्थितो देवः प्राह तं वायुनन्दनम् ।
अस्मिन् क्षत्रे हनुमंस्त्वं स्वानाम्ना स्थाप्य पूजय ॥२२
हनुमत्केश्वरञ्चाथ लोकेख्यात भविष्यति ।
शैलवच्चोन्नत लिंग स्थापित वायुसुनुना ॥२३
शनौपश्येन्नरोयस्तु हनुमत्केश्वर शिवम् ।
तस्यशत्रु भयंनास्ति संग्रामेजयमाप्नुयात् ॥२४
नचचौर भयंतस्य नदारिद्रचं न दूर्गतिः ।
तैलाभिषकं यः कुर्याद्धनुमत्केश्वर शिवम् ॥२५
तस्यरोगाः प्रलीयन्तेग्रहपीडानजायते ।
ये पश्यन्तिराभक्त्या तेषाँमोक्षोभविष्यति ॥२६

इसके अनन्तर व्यवस्थित देव ने वायु के पुत्र से कहा था—हे हनुमन् ! इसी क्षेत्र में आप अपने नाम से मेरी स्थापना करके मेरी पूजा करो।२२। इसके अनन्तर यह हनुमत्केश्वर—इस नाम से लोक में विख्यात होंगे। फिर वायुसुत ने शैल के समान उन्नत उस लिंग की वहाँ स्थापना की थी।२३। जो मनुष्य शनिवार के दिन में हनुमत्केश्वर भगवान शिव का दर्शन करता है उसको शत्रु का भय कभी नहीं हुआ करता है और वह संग्राम में जय की प्राप्ति किया करता है। उस पुरुष को कभी भी चोर का भय नहीं होता है—दरिद्रता नहीं हुआ करती है और कभी भी कोई दुर्गति नहीं होती है। जों कोई हनुमत्केश्वर शिव का तैल से अभिषेक किया करता है उसके समस्त रोग लीन हो जाया करते हैं और उसे ग्रहों की पीड़ा कभी नहीं हुआ करती। जों मनुष्य की भावना से उनका दर्शन किया करते हैं उनका निश्चय ही मोक्ष हों जाता है।२४-२६।

७३—शङ्करादित्य माहात्म्य वर्णनम्

अवन्त्यामंकपादाख्ये पश्येद्रामजनार्द्दनो ।
ययोर्दशनमात्रेण यमलोकंनपश्यति ॥१

कथंवावंकपादाख्ये यातावत्रमहामुने ! ।
नपश्येद्यमलोक स यद्यपिब्रह्महाभवेत् ॥२
भारावतारणार्थाय देवरामजनार्दनौ ।
अवतीर्णोयदोर्वंशेदिव्यरूपौमहद्यु ता ॥३
कंसंहत्वाथचाणूरमुग्रतेनंनराधिपम् ।
अभिषिच्यस्वराज्ये यदुसिंह उवाचतम् ॥४
किंकार्यं तेमयाब्रूहि कर्तव्यन्तेनुतेहते ।
एवमुक्तस्सारावौ उग्रसेनोऽब्रवादिदम् ॥५
सर्वसम्पत्स्यतेकृष्ण ! भवतौहिनदुर्लभम् ।
विज्ञाताखिलविज्ञानौभवितारावुभावपि ॥६
गच्छेतामुज्जविन्यावौ कृतविद्योभविष्यथः ।
ततस्सान्दीपनिविप्रं जग्मतूराम केशवौ ॥७

श्री सनत्कुमारजी ने कहा—अवन्ती में अंकपाद नाम वाले स्थान में राम जनार्दन दोनों का दर्शन करना चाहिये। जिसके दर्शन मात्र से ही मनुष्य फिर यमलोक को नहीं देखा करता है। श्री व्यास देवजी ने कहा—हे महामुने ! इस अंकपाद नाम वाले स्थल में वे दोनों कैसे प्राप्त हुए थे। यद्यपि ब्रह्म हत्यारा ही क्यों न हो तो भी इनके दर्शन का ऐसा प्रभाव होता है कि वह मनुष्य यमलोक का कभी दर्शन नहीं किया करता है।१-२। सनत्कुमार ने कहा—भूमि के बढ़े हुये भार को उतारने के लिये श्रीराम और जनार्दन दोनों देव अवतीर्ण हुए थे और यदु के वंश में महती द्यु ति से सम्पन्न दिव्य रूप वाले इन्होंने अवतार लिया था मथुरा के राजा कंस को मारकर और चाणूर का बध करके नराधिप उग्रसेन का अभिषेक किया था और फिर यदुओं में सिंह के समान उन्होंने उससे कहा था—अब आपके दुष्ट सुत के मार देने पर मुझसे आपका क्या कार्य शेष रह गया है और मुझे अब क्या करना चाहिए—यह बताओ। इस प्रकार से जब उससे कहा गया तो वह राजा उग्रसेन यह बोला—हे कृष्ण आपसे सभी कुछ हो जायेगा, कुछ भी दुर्लभ नहीं है। सम्पूर्ण विज्ञान के जानने वाले आप दोनों ही होगे। अब आप दोनों

ही उज्जयिनी पुरी में चले जाइये वहाँ पर आप कृतविद्य अर्थात् विद्या प्राप्त करने वाले होंगे। इसके अनन्तर वे दोनों बलराम और केशव सान्दीपन विप्र के समीप चले गये थे।३-७।

कण्ठस्थांश्चक्रतुर्वेदानाचारमखिलञ्चतौ ।
सरहस्यंधनुर्वेद ससंहारतथैवच ॥८
अहोरात्रैश्चतुः षष्ट्यातदद्भुतमभूद्विज ।
सान्दीरनिपसम्भाव्य तयोः कर्मातिमानुषम् ॥९
विचिन्त्यतौतदामैनेप्राप्तौचन्द्रदिवाकरौ ।
ततःकिञ्चत्सनोवाचस्नातुं तीर्थमथोययौ ॥१०
शिष्यैस्तु सहितो विप्रो महाकालमथाविशत् ।
शिष्यैस्सह प्रविष्टौ द्वौ तदा तौ रामकेशवौ ॥११
वन्धमानोमहाकालस्तदाकेशवमब्रवीत ।
त्वयानाथेनदेवानाँ मनुष्यत्वेहितिष्टित ॥१२
सुखमासीच्चसाधनामज्ञानाञ्चसर्वदा ।
जनपीडाकराये तु सदा बलदर्पिताः ॥१३
युवाभ्यांतेहतास्सर्वे कंसप्रमुखतोनृपाः ।
मुनिसिद्धसुरादीनांस्थितिः कार्यात्वयानघ ॥१४
करिष्यामि तमित्युक्त्वा स नमस्यस्ततो ययौ ।
दृष्ट्वा सान्दीपनि शिष्या ऊचुरेव दिनेदिने ॥१५

दोनों ने चारों वेदों को कण्ठस्थ कर लिया था और सम्पूर्ण आचार का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। रहस्य से समन्वित एवं संहार के सहित धनुर्वेद को जान लिया था यह समग्र ज्ञान चौसठ अहोरात्र में ही प्राप्त कर लिया था। हे द्विज ! एक परम अद्भुत ही घटना थी। उन दोनों बालकों का मनुष्य की शक्ति से बाहर असम्भाव्य कर्म के विषय में सान्दीपन ने स्वयं बहुत कुछ किया था और वे इन दोनों को चन्द्र और सूर्य ही मानते थे इसके पश्चात् उसने कुछ भी नहीं कहा था और वह तीर्थ में स्नान करने के लिये चला गया था। वह विप्र अपने शिष्यों के सहित महाकाल के मन्दिर में प्रविष्ट हुआ था। उस समय शिष्यों

सहित वे दोनों राम और केशव भी प्रविष्ट हुए थे। वन्दना किये गये महाकाल ने भगवान केशव से कहा था—देवों के स्वामी आपके इस मानवीय शरीर में स्थित रहकर विराजमान होने से साधु पुरुषों को परम सुख हुआ और जिसको ज्ञान नहीं था उनको भी सर्वदा सुख था। जो जनों की पीड़ा करने वाले थे अथवा सर्वदा अपने बल का घमण्ड रखते थे वे सभी कंस आदि प्रमुख राजा आप दोनों के द्वारा निहत कर दिये हैं। हे अनघ! आपको मुनि, सिद्ध और सुर आदि की स्थिति करनी चाहिए। उनको मैं इसे करूँगा, यह कहकर नमस्कृत हुए वहाँ से चले गये थे। शिष्यों ने सान्दीपनि को देखकर दिन-दिन में इसी प्रकार से कहा था।८-१५।

कोपिनाश्रद्दधत्तेषांवचस्त्वत्यद्भुतयतः।
स्वयंययौततोद्रष्टुं माश्चर्यंशिष्यभाषितम् ॥१६
ततस्तथोत्थित: शब्द: सश्लेषश्च तथा तया:।
तावागतौ गृह तत्र गुरुर्वचनमब्रवीत् ॥१७
नवौज्ञातोमयावीरौयदिवृष्णिकुलोद्भवा।
ततस्सान्दोपनिकृष्ण: कृतकृत्योऽब्रवीद्वच: ॥१८
गुर्थवं किन्द्दामोतिसहरामेणहर्षित:।
तच्छ्रुत्वावनंहृद्यं गुरुःप्रोवाचहर्षित: ॥१९
पुत्रमिच्छाम्यहंत्वत्तोयोमृतो लवणाम्मसि।
पुत्रएकोहिमजातस्सचापितिमिनाहृत: ॥२०
प्रभासतीर्थ यात्रायां त्वमेवतमिहानय।
तथेतिचाब्रवीत्कृष्णो रामस्यानुमतेगत: ॥२१

क्योंकि यह अत्यन्त अद्भुत वचन था। इस पर कोई भी श्रद्धा नहीं करता था। इसके अनन्तर शिष्यों के द्वारा कहे हुये वचन को जो आश्चर्य युत था देखने के लिए स्वयं ही आ गये थे। इसके अनन्तर उस प्रकार का शब्द उत्थित हुआ था और उन दोनों का सश्लेष्ट हुआ था। वहाँ पर वे दोनों गृह में समाप्त हो गये थे। श्री गुरुदेव ने यह वचन कहा

था—वृष्णि कुल में समुद्भूत आप दोनों वीरों को मैंने नहीं पहिचाना है। इसके उपरान्त भगवान कृष्ण कृतकृत्य होते हुए सान्दीपन से बोले—राम सहित मैं श्री गुरुदेव की सेवा में क्या भेट करूँ। यह वचन सुन कर परम हर्षित गुरु जी ने अतीव सुन्दर वचन कहा था।१६-१६। मैं तो केवल आपसे अपने पुत्र को चाहता हूँ जो लवण सागर में मृत हो गया है। मेरे एक ही तो पुत्र उत्पन्न हुआ था वह भी तिमि के द्वारा निहित हो गया है। प्रभास क्षेत्र की यात्रा में यह दुर्घटना हुई थी आप ही उसको यहाँ पर लाइये। हे गुरुदेव ! ऐसा ही किया जायगा, यह बलराम की अनुमति से श्रीकृष्ण ने गुरु को उत्तर दिया था।२०-२१।

तं समुद्रउवाचेदं दैत्यः पञ्चजनोमहान्।
तिमिरूपेणतंवालं ग्रस्तवान्मयिसस्थितः ॥२२
ततः पञ्चजनं हत्वा ग्राहरूपं महाबलम्।
तन्मध्यस्थचजग्राह शंखग्रस्तोहियःपुरा।२३
जलमध्यस्थिते नैवग्राहेणातोवलीलया।
तस्योदरेयदा बालैनददर्शजनार्दनः।२४
यमालयगतं मत्वा तदावरुणमब्रवीत्।
भगवान्यादसामीश रथोमेदीयताम्महान्।२५
येनाहवेहिताञ्जित्वापश्येयंप्रेंतपयमम्।
पुराजिरेहतादैत्यादानवावलदर्पिताः।२६
मयायेनरथेनाथ समह्यं दीयतांरथः।
न्यासभूतोरथोयस्ते विधृतोपरतेरणे।२७
ममाधर्मंपुरस्कृत्य दीयतां सह्यपास्पते !।
एतच्छुत्वाप्रहृष्टात्माज्ञात्वाकार्यीर्थिनंहरिम्।२८

समुद्र ने श्रीकृष्ण से कहा था—एक महान् पञ्चजन दैत्य है उसने ही तिमि के स्वरूप से उस बालक को मेरे अन्दर स्थित ग्रस लिया था। इसके अनन्तर समुद्र के मध्य में स्थित महान् बलशाली ग्राह के रूप वाले उस पञ्चजन को बध करके शङ्ख को प्राप्त किया था जो पहले इस

ने ग्रस लिया था। यह जल के मध्य स्थित अत्यन्त बल वाला ग्राह था। उसके उदर में जब जनार्दन प्रभु ने उस को नहीं देखा तो यह मानकर कि वह यमालय को चला गया है। उस समय में यादवों के स्वामी भगवान ने वरुण से कहा था कि मुझे एक महान् रथ दो। जिस रथ के द्वारा युद्ध में शत्रुओं को जीत कर मैं प्रेतों के स्वामी यमराज के समीप पहुँच सकूँ। पहिले बल से दर्पित दैत्य और दानव निहित किये गये हैं और मैंने जिसके द्वारा युद्ध किया है वही रथ मुझे इस समय दो। रथ के उपरत हो जाने पर वह रथ न्यास के रूप में आपके समीप रखा हुआ है। हे अपांपते ! यही रथ मुझे दो जो मैंने धर्म कार्य को पहिले करके रखा था। यह श्रवण करके वरुण परम प्रसन्न आत्मा वाला हुआ और उसने श्रीहरि को उस समय कार्यार्थी समझ लिया था ।२२-२८।

ददौतुरथमक्षोभ्यं रणेमस्मैसुरासुरः।
तमोहरिस्समालोक्य रथरत्नपरिष्कृतम् ।२९
द्वीपिचर्मपरीधान वैयाघ्रपरिवारितम्।
नानाचित्रविचित्राङ्ग गरूडध्वजराजितम् ।३०
सयुक्तंशैब्यसुग्रीवमेगपुष्पबलाहकः।
अजेयन्देवदेवेन्द्रदानवासुरराक्षसैः ।३१
अनेकायुधसम्पूर्णमणिविद्रुमभूषितम्।
सहस्रसूर्यप्रतिमचारूवक्रचतुर्यगम् ।३२
किंकिणोशतशोभाढ्यं घण्टाचामरचन्द्रिकम्।
संवर्त्ताकारविषमं खगेन्द्रवरकेतनम् ।३३
दृष्टवाकृष्णस्सरामस्तु मुमुदेऽतीवविस्मयः।
प्रदक्षिणमुपागत्य देवताभ्यः प्रणम्यच ।३४
आरूरोह रथं बिष्णुर्विमान साग्रजोऽजनः ।३५

वरुण देव ने तुरन्त ही रथ भगवान को समर्पित कर दिया था जो रण में सुरों और असुरों के द्वारा अक्षोभ्य था अर्थात् किसी के द्वारा भी उसे कोई क्षोभ नहीं दिया जाता था। इसके अनन्तर हरि ने रत्नों

से परिष्कृत उस दिव्य रथ का समावलोकन किया था ।२६। वह रथ हाथी के चर्म से मढ़ा हुआ था और व्याघ्रों के चर्म से परिचारित था। वह नाना प्रकार के चित्रों से विचित्र अंगों वाला था और गरुड़ की ध्वज से शोभायमान था। शैव्य, सुग्रीव, मेघ पुष्प और बलाहकों से समन्वित था तथा देव देवेन्द्र, असुर और राक्षसों के द्वारा अजेय था। वह रथ अनेक आयुधों से सम्पूर्ण था और मणियों तथा विद्रुमों से विभूषित था। वह रथ एक सहस्र सूर्यों के समान तेज युक्त था, चारु वक्र और चार युगों वाला था। वह भगवान विष्णु के विराजमान होने वाला रथ सैकड़ों किंकणियों की शोभा से समन्वित था तथा घण्टा और चामरों की चन्द्रिका से संयुक्त था। वह सम्वर्त आकार से विषम था तथा खगेन्द्र श्रेष्ठ के केवल (ध्वजा) वाला था। भगवान श्रीकृष्ण और श्रीबलराम कों विस्मय से रहित होकर बहुत ही प्रसन्नता हुई थी। प्रदक्षिण को समुपागत होकर और देवगणों कों प्रणाम करके अपने अग्रज के सहित भगवान विष्णु उस विमान रथ पर समारूढ़ हुए थे ।३०-३५।

ततो जगाम त्वरितो जनार्दनो।
जगन्निवासो यमलोकमाश्रिताम् ।
दिशं सहस्रौः किरणैर्वृताम्पुरी।
ददर्श शंखपरिगृह्य चाच्युतः ॥३६
तत्रप्रध्यापयामास शंखखड्गधनुर्धरः।
तेनशब्देनवित्रस्ताः कृतान्तालयवासिनः ॥३७
नरूकान्तर्गतामर्त्याः पाचारपरायणाः ।
सुखमापुः प्रशान्ताश्चवह्नयः कृष्णदर्शनात् ॥३८
शस्त्राणि कुण्ठतां प्रायुर्यन्त्राणि विविधानि च।
विदीर्णानि तदा चाशु देवदेवस्य दर्शनात् ॥३९
असिपत्रवनंनाम शीर्णपर्णमजायत ।
रौरवनामनरकमभैरवमभूत्तदा ॥४०
अभैरवंभैरवाख्यं कुम्भीपाकमपाचिकम् ।
शृङ्गाटं शृंगसहदृशं लोहसूच्यप्सुचिका ॥४१

दुस्तरासुतराजाता नदीवैतरणीनृणाम् ।
नरकाप्तेतदाजातेगतेविश्वेश्वरेविभौ ।।४२

इसके अनन्तर जगत् के निवास भगवान ने शङ्ख का परिग्रहण करके सहस्रों किरणों के परिवृत यम लोक के समाश्रिता दिशा वाली उस यमराज की पुरी को देखा था ।३६। खड्ग और धनुष के धारण करने वाले प्रभु ने वहाँ पर उस अपने शङ्ख को बजाया । उस शङ्ख की ध्वनि से यमराज के लोक के समस्त निवास करने वाले भयभीत हो गये थे । जो लोग नरकों में अन्दर रहने वाले मनुष्य थे और पापों के समाचरण मे तत्पर रहते थे । जिन्होंने परम सुख की प्राप्ति की थी । भगवान श्री कृष्ण के दर्शन से अग्नियाँ एक दम प्रशान्त हो गई थीं । जितने भी शस्त्र थे वे सब कुण्ठित हो गये थे और विविध यन्त्र भी देव के दर्शन से बहुत ही शीघ्र विदीर्ण हों गये थे ।३७-३८। असिपत्र वन नाम वाला जो नरक था वह शीघ्र पर्ण हो गया था और उस समय से रोरव नाम वाला महा भीषण नरक उस समय में अभैरव हो गया अर्थात् उसकी भीषणता दूर हो गई थी ।४०। भैरव नाम वाला नरक अभैरव हो गया और कुम्भीपाक वाला नरक अपाचित हो गया अर्थात् उसकी पाचन क्रिया समाप्त हों गई थी । शृंगार नाम वाला नरक था वह शृंग के समान था और लोह सूची भी विना सूचियों वाला हो गया । जो वैतरणी नदी परम दुस्तर थी वह भी मनुष्यों के लिए सुतरा हों गई । उस समय जब कि नरकों के समीप विश्वेश्वर पहुँचे तो उनकी सभी यातनाओं की क्रियायें समाप्त हो गयीं थी ।४१-४२।

पापक्षयात्ततस्सर्वे तेमुक्तांनरकान्नराः ।
पदमव्ययमासाद्य दृष्ट्वा विष्णु तमोपहम् ।।४३
विमानेषुसहस्रेषुह्यारूढास्तेसमन्ततः ।
समीक्ष्यपुण्डरीकाक्षं मुक्तस्तेसर्वपातकात् ।।४४
ततश्शून्यंमुनेर्जातं सर्वनिरयमण्डलम् ।
दर्शनात्तस्यदेवस्य विष्णोर्विश्वस्वरूपिणः ।।४५

ततोदूता: कृतान्तस्तकृष्णाञ्चयुद्धकारिणम् ।
वारयामासुरव्यग्रा निशान्तनरकान्प्रति: ॥४६
मा वीरानेनमार्गेण रथमानयमानवा: ।
प्रयान्त्यधोगति परात्परस्त्रीस्वापहारका: ॥४७
यमादिष्टानरा: पापाद्य मोच्या वषकोटिभि: ।
दृष्ट्वा तएवसद्यस्त्वां गमास्वर्गमघावृता: ॥४८
तच्छ त्वावचस्तेषां कपयापीडितो भृशम् ।
पुन: प्रोवाचमधुहा मोक्षायाहमुपागत: ॥४९

पापों के क्षय से वे सभी नरक वासी मनुष्य नरकों से विमुक्त हो गये थे अव्यय पद को प्राप्त करके और तम का अपहरण करने वाले भगवान विष्णु का दर्शन प्राप्त करके वे सभी सहस्रों विमानों में समारूढ़ हो गये थे। भगवान पुण्डरीकाक्ष का दर्शन प्राप्त करके वे नरकों में रहने वाले प्राणी सभी पापों से विमुक्त हो गये थे। हे मुने ! उसके पश्चात् तो वह सम्पूर्ण नरकों का मण्डल एक दम शून्य हों गया था अर्थात् वहाँ पर कोई भी रहा ही नहीं था। यह सारा प्रभाव विश्व स्वरूप भगवान के दर्शन का ही था। इसके अनन्तर यमराज के दूतों ने युद्धकारी श्री कृष्ण कों नरकों में प्रवेश कर अव्यग्र होते हुए निवारित कर दिया था ।४३-४६। यमराज के किंकरों ने कहा था—हे वीर ! इस मार्ग से रथ मार्ग से रथ मत लाओ। जो पराये धन तथा परायी स्त्री का अपहरण करने वाले मनुष्य होते हैं वे ही अपने किये हुये पाप के कारण से इस मार्ग से अधोगति को जाया करते हैं। जिस नरक की यातना कों भोगने के लिये मनुष्य को आदेश दिये गये थे और जो करोड़ों वर्षों तक मोचन करने के योग्य थे, वे भी आपका दर्शन प्राप्त करके अखों से आवृत भी तुरन्त ही स्वर्ग लोक को चले गये हैं। इस उनके वचन कों सुनकर कृपा से अत्यन्त पीड़ित होंकर वे पुनः यह कहा था—मैं तों उनके मोक्ष के लिये ही आया हूँ ।४७-४९।

सर्वेषांस्वर्गदाताऽह यमलोकनिवारक: ।
अञ्जसायमराड्दूता यमायाख्यातमेव च ॥५०
एतच्छ्रुत्वावचेद्तास्सत्वरायममागता: ।
सर्वमाचिरेबुत्त यथानारकिमोक्षणम् ॥५१
ततोयमारूषाविष्ट: प्राहतान्यमकिंकरान् ।
य: कश्चिदागतोमर्त्यो मर्यादाभेदकृन्नर: ॥५२
तगत्वावारयध्वं वै गृहीत्वानीयतमिह ।
अयन्नरान्तकोयातु किंकरस्सहकिंकरै: ॥५३
एवमुक्तो यमेनाथ किंकरस्सनरान्तक: ।
गत्वातंवारयामास वाग्भिरूग्राभिरच्युतम् ॥५४
यदानवारितस्तस्थौ तदाक्रुद्धोनरान्तक: ।
तदाशरैंस्तीवोग्रैस्ताडिस्तेनकेशव: ॥५५
बलदेवोऽपिसमरे ताडितोविवधैश्शरै: ।
तावुभौताडितौघोरै: समन्तात्तमकिंकरै: ॥५६

मैं सभी को स्वर्ग के प्रदान करने वाला हूँ और इस यमलोक का निवारण करने वाला हूँ तुरन्त ही उन ययराज के दूतों ने यमराज से जाकर यही कह दिया। यह वचन सुनकर ममदूत बहुत शीघ्रता से यमराज के समीप पहुँच गये थे और उन्होंने यह सभी वृत्त जैसे कि नारकियों का मोक्ष हुआ, यमराज से निवेदित कर दिया। यमराज ने कहा—यह नरान्तक किंकर अपने किंकरों के साथ वहाँ पर चला जावे और वहाँ जाकर उनको रोक दो। उसे पकड़ कर यहाँ मेरे पास लाओ इस प्रकार से उन भगवान् अच्युत को रोक दिया। जब वह वारित किये जाने पर भी नहीं रुके तो वह नरान्तक बहुत क्रुद्ध हुआ था और उस समय में बहुत ही उग्र शरों से उस नरान्तक ने भगवान केशव पर प्रहार किया। बलदेवजी को अनेक शरों के द्वारा ताड़ित किया। वे दोनों ही श्रीकृष्ण और बलराम परम घोर वाणों से चारों ओर से यमराज के किंकरों के द्वारा प्रताड़ित हुए थे।५०-५६।

आदायधनुषे दिव्ये जघ्नतुर्यमकिंकरान् ।
वाणैरने साहस्त्रं क्रुद्धोरामजनार्द्दनौ ।५७
नरान्तकोऽपिसमरे बलेनवलिनार्द्दितः।
पपातगदयाविन्नो मूर्ध्निनिर्गतलोचनः ।५८
ततोनरान्तकेवोरे पतितेयमकिंकरे ।
किंकराणामभूत्सैन्यमार्तरणपाऽङमुखम् ।५९
तेदूतारासकृष्णाभ्यां हन्यमानाभयातुराः।
यमायकथयामासुर्नरान्तकनिपात्तन ।६०
ततीयमोययौक्रुद्धः समन्ताकिंकरैर्कृतः ।
ततः प्राह यमः क्रुद्धोनोजिताऽहंपुरापरै ।६१
ततोवादित्रघोषस्तुमुरजानकगोमुखः ।
नानाडमरूकाद्यै श्चचित्रगुप्तेवगच्छति ।६२
देवाविद्याधराः सिद्धा द्रष्टुं प्राप्ता महाबलम् ।
कृतान्तस्य रणेऽक्षोभ्यंकामपालजगत्पतिम् ।६३

तब तो बलराम और जनार्दन दोनों बहुत ही क्रुद्ध हो गये थे और उन्होंने सहस्रों वाणों से अपने दिव्य धनुषों को ग्रहण करके उन यमराज के किंकरों का हनन कर दिया। वह नरान्तक भी उस स्मर स्थल में परम बलशाली बलरामजी के द्वारा खूब ही पीड़ित किया गया और गदा के प्रहार माथे में विदा हुआ निकले हुये नेत्रों वाला होकर गिर गया। इसके अन्तर जब वह नरान्तक वीर यमराज के किंकरों की वह सम्पूर्ण सेना रण से पराङ्मुख होकर यमराज के पास पहुँचे ओर उन्ही ने यमराज से उस नरान्तक के निपात होने का समाचार कह दिया। इसके उपरान्त यमराज अत्यन्त क्रुद्ध होकर सभी ओर से अपने विकारों द्वारा परिवृत्त होकर वहाँ पर गया और क्रोधाविष्ट होकर उसने कहा—पहिले आज तक मुझे कभी दूसरों ने नहीं जीता है इसके पश्चात् वादित्रो

की ध्वनियों से–मुरज–आनक और गौमुख के शब्द से तथा अनेक डमरू आदि के घोषों के साथ चित्रगुप्त के जाने पर वहाँ परस्त देव गण–विद्याधर और सिद्ध उस कृतान्त के युद्ध में महान् बलवान् जगत् के स्वामी कामपाल को देखने के लिये प्राप्त हो गये थे जो कि अक्षोम्य ।५७-६३।

ततस्तेकिंकरा: सर्वेचित्रगुप्तेननोदिता ।
रथमावृत्यवाणोघै: प्रबबाधुस्समन्तत: ।६४
वलञ्चकेशवं संख्ये जघ्नतुस्तावुमावपि ।
रणेचविविधैर्वाणैश्चित्रगुप्तस्यपश्यत: ।६५
विदीर्यवसहस्राणि क्रियाणांसमन्तत: ।
कृतान्तनोकिनीमध्ये कृतान्तइवकेशव: ।६६
चचार रणदुर्द्धष: कामपालेन पालित: ।६७
ततश्चित्रगुप्तोरण किंकरीधं ।
विदीर्णं निरीक्ष्याऽर्त्तनादंचकार ।
शरै: पञ्चभि: कृष्णमायान्तमाजौ ।
जघानाष्टभिर्वक्त्रदेशे सभिन्न: ।६८
शरातरिथास्थआसोत्तदानीं ।
तमालोक्यभिन्नं रणेनष्टसंज्ञम् ।
रथं स्वं समादाय तात: कृतान्त ।
ष्ततश्चित्रगुप्नेशराते प्रसुप्त: ।६९
रणें कीर्तिलुप्तेभयक्षोंभयुक्त: ।
स्वसैन्यैश्चयेक्ताभंयार्तानिषण्णा: ।
प्रधानाश्चगुप्तं निशम्याऽथ भग्नम् ।७०

इसके अन्तर चित्रगुप्त के द्वारा प्रेरित हुए वे सब किंकर कृष्ण बलराम के रथ चारों ओर से घेर कर वाणों के समूह से प्रहार कर रहे थे। उन्होंने उस युद्ध में श्री बलराम और श्रीकृष्ण दोनों के ही ऊपर खूब आघात किये थे। चित्रगुप्त के देखते हुये उस बुद्ध स्थल में

अनेक प्रकार के बालों के द्वारा हवन हो रहा था। उस समय में भगवान केशव ने साक्षात् के ही समान उस यमराज की सेना के मध्य में यमराज के किंकरों में सभी ओर से सहस्रों को विदीर्ण करके कामपात के द्वारा पालित वह रण में दुर्धर्ष होकर विचरण कर रहे थे। ६४-६७। इसके पश्चात् चित्रगुप्त ने उस युद्ध में अपने किंकरों के एक बहुत बड़े समुदाय को विदीर्ण होते हुए देखा और ऐसी बुरी दक्षा उन अपने किंकरों की देखकर चित्रगुप्त ने आर्त्तनाद किया था।६८।'उसने पाँच शरों के द्वारा आते हुए श्रीकृष्ण पर हनन किया और वह आठ बाणों से मुख प्रदेश में भिन्न हो गया। उस समय में वह सरों से अत्यन्त आर्त्त होकर रथ के समीप में था। उसको रण में भिन्न तथा वेहोश देखकर शरों से आर्त्त और चित्रगुप्त के प्राप्त हो जाने पर कृतान्त अपने रथ को लेकर स्वयं वहाँ पर समागत हो गया। रण में कीर्ति के लुप्त हो जाने पर भय और क्षोभ से युक्त तथा अपनी सेनाओं के सहित भय से आर्त्त एवं सब बैठे हुए थे। सभी प्रधान भग्न हो गये थे—विचित्र भी भग्न हो गये थे और फिर चित्रगुप्त को भी भग्न हुआ सुन लिया था।६९-७२।

सकालस्तमायान्तमालोक्यद्राद्
वरं सैन्यमादाय देवारिशत्रुम्।
बिनाशाय युव्यद्यु गान्ते प्रजानां
यथा बाडवो ज्वायवृद्धः प्रवृत्तः ॥७१
तमायान्तमालोक्य काल कराल
शरैरावृणोदन्तकं कालकल्तैः।
स कालः करालं समादायदण्डं
मुमोचाच्यते पश्यतान्देवतानम् ॥७२
ततः कालदण्डः प्रजानां विनाशो
सरेस्सन्निकाश समभ्याजगाम।
ततो देवगन्धर्वयक्षामुनीन्द्राः
परं विस्मय प्रापुरन्वीक्ष्य रामम् ॥७३

ज्वलन्तञ्च जग्राह कालस्य दण्डं
स रामो वरं लीलयानन्तमुर्तिः ।
कालदण्डे गृहीते बलेनाहवे
मोक्तुकामे पुनः कालनाशाय वै ॥७४
तूर्णमभ्येत्य तत्रान्तरे पद्मजस्तं ।
रणे वापयामास कृष्णतदा ॥७५
मां मुञ्चेत्यवीब्रद्ध धा कालं कालायुध बल ।
धार्यंतेशिरसादेव संसारेनास्ति तेसमः ॥७६
त्वयाविश्वपतिर्विष्णुरुत्सङ्गेनसदोह्यते ।
कोऽन्योऽतिस्तित्वत्समारामयोजगद्वहनेक्षमः ॥७७

उस काल ने देवों के अरियों के शत्रु उसको आते हुए दूर से ही देखकर बहुत अच्छी सेना लेकर उसके विनाश के लिये युद्ध करने लगा जैसे प्रजाओं के अन्त करने में ज्वालाओं के प्रबुद्ध वाडव प्रवृत्त होता है ।७१। उस आते हुए करालकाल को देखकर काल के तुल्य शरों से उस अन्तक को आवृत्त कर दिया । उस कालने कराल दण्डको लेकर देवताओं के देखते हुए अच्युत पर उसका प्रहार कर दिया । प्रजाओं का विनाश वह काल दण्ड था जो कि श्रीहरि के समीप में आकर प्राप्त हुआ । इसके अनन्त श्रीराम को देखकर देव-गन्धर्व यक्ष और मुनीन्द्र परम विस्मय को प्राप्त हो गये थे ।७२-७३। श्रीअनन्त मूर्ति उन श्रीबलराम ने लीला से ही परमश्रेष्ठ जाज्वल्यमान काल के दण्ड को ग्रहण कर लिया बलराम जी के द्वारा उस युद्ध में काल दण्ड ग्रहण करने पर पुनः काल के विनाश करने के लिये उसके छोड़ने की इच्छा करने पर भगवान ब्रह्माजी उसी बीच में उस युद्ध स्थल में शीघ्र उपस्थित हुए थे और उस समय में उन्होंने श्रीकृष्ण को निवारित कर दिया । ब्रह्माजी ने कहा—हे बल, इस कालायुध काल को मत छोड़ो । हे वीर, बलवान आपके द्वारा तो इस समस्त चराचरों को धारण करने वाली इस भूमि को शिर से ही धारण किया जाता है । इस संसार में आप के तुल्य कोई भी नहीं है ।

आपके द्वारा विश्व के पति भगवान विष्णु सदा उत्संग में धारण किये जाया करते हैं। हे राम, जो जगत् के वहन करने में समर्थ है वैसा अन्य आपके समान कौन है। अर्थात् कोई भी नहीं है।७४-७७।

जगत्सृष्टाजगद्गोप्ताजगद्धर्ताजगत्पतिः।
पालयतेयस्त्वमासोऽपिविष्णुर्विश्वैकनायकः ॥७८
कस्ते स्तुतिकरोऽस्तीह का गुणान्वेत्तु मर्हति।
ततो वय त्वदंकस्था विष्णुनाभिभवायनाः ॥७९
इत्युक्त्वालदेयञ्च वासुदेवपुनर्वच।
उवाच चतुरास्यतुस्तु स्तुतिपूर्वंवृत्तस्सुरैः ॥८०
कृष्ण, कृष्ण, करालास्य, कालस्यास्य कृपां कुरु।
यतो भवन्तमायान्तं विष्णुं विश्वैकनायकम् ॥८१
वेत्तिनायं जगन्नाथ नरकार्णवतारकम्।
त्वयावैभगवन्पूर्वंयमः संस्थापितः पदे ॥८२
नृणांदुष्कृतकर्तॄणां नरकाययमः प्रभो,।
तस्मादस्य जगन्नाथ क्षम्यतां पुरुषोत्तमः ॥८३
विभो, कृतापराधस्यब्रूहियत्तेविवक्षितम्।
एतच्छ्रुत्वाऽब्रवीत्कृष्णोधातः शृणगुरोमम ॥८४
सान्दीपनेस्समानीतस्तेनागताविह।
समर्प्यतागुरुश्रेष्ठायगुरुदक्षिणा ॥८५

इस समस्त जगत् के सृजन करने वाले—जगत् की रक्षा करने वाले जगत् के धारण करने वाले और इस जगत् के पति—विश्व के एक ही नायक जो विष्णु देव हैं वे भी आपके ही द्वारा पालित होते हैं। यहाँ पर कौन स्तुति करने वाला है और कौन गुणों को जानने के योग्य होता है। विष्णु के द्वारा अभिवायन हम आपके ही अङ्क में स्थित हैं—यह कहकर पुनः वलदेव और वासुदेव को सुरों से समावृत ब्रह्माजी ने स्तुति पूर्वक कहा—हे कृष्ण, हे कृष्ण, आप तो कराल मुख वाले हैं—इस काल के ऊपर कृपा करिए। कारण यह है कि विश्व के एक नायक

विष्णु भगवान आपको आते हुये यह नहीं जानता था कि आप समस्त जगत् के नाथ और नरकों के सागर से तारने वाले हैं। हे भगवन्! आपने ही पहले इस यमराज को इस पद पर संस्थापित किया। हे प्रभो! जो दुष्कृत करने वाले मनुष्य हैं उनको दण्ड देने के लिए ही इस यम को आपने यह पद प्रदान किया है। हे जगन्नाथ! हे पुरुषोत्तम! इसी कारण से अब इसको आप क्षमा कर दीजिये। हे विभो! इसमें कोई भी सन्देह नहीं है कि इसने आपका अपराध किया है किन्तु अब उनके क्षमापन के लिये आप ही बतलाइये कि आपका क्या विवक्षित है। यह सुनकर भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—हे धाता! आप मेरा कथन श्रवण कीजिये—मेरे गुरु सान्दीपनि का पुत्र यहाँ लाया गया है। इसीलिये हम दोनों यहाँ पर आये है। हम अपने परमश्रेष्ठ गुरु देव के लिए गुरु सान्दीपनि के पुत्र को लाकर उन्हें देंगे इसीलिए उनका पालन कीजिये।७८-८५।

आवाभ्यां य प्रतिज्ञाता तस्मात्सा वाल्यतां विभो ?।
एतत्पितामहः श्रुत्वा यमः समरनिर्जितम् ॥८६
समाहुयाऽब्रवोद्विष्णुर्य्यद्ब्रबीति कुरुष्व तत्।
तच्छ्रुत्वा धर्म्मराजस्तु विरञ्चिमिदमब्रवीत् ॥८७
भगवन्बिश्वकृल्लोकेनैषमागांस्ष्वयाकृतः।
यमलोकमनुप्राप्तः कायहीनः शरीरवान् ॥८८
शरीरसहितोवांति नैतदत्रप्रपद्यते।
तच्छ्रुत्वाहिपुनर्ब्रह्मा विश्वस्यास्यविभुः स्वयम् ॥८९
विश्वकृद्विश्वहृद्यस्माद्यदिच्छति करोनु तत्।
तस्मादपय पुत्रं त्व मुनेस्सांदीपनेश्चर्णै ॥९०

यम ने यह सुनकर समर भूमि में निर्जित किये हुए यमराज को बुलाकर कहा कि जो भगवान विष्णु बोल रहे हैं उसे तुम शीघ्र करो यह सुनकर धर्मराज ने विरञ्चि देव से यहाँ कहा—हे भगवान। इस

विश्व की रचना करने वाले आपने ही यह मार्ग निर्मित किया है कि जो इस यमलोक में प्राप्त हो जाया करता है यह काया से रहित शरीर वाला होता है। जो शरीर के सहित होता है वही जाया करता है सो ऐसा शरीर धारी यह प्राप्त ही नहीं होता है। श्रवण करके इस विश्व की रचना करने वाले और इस विश्व के हृदय जो भी चाहते हैं वही तुम करो। इसलिये मुनि सान्दीपनि के पुत्र को तुम इनको समर्पित करदो ।८६-६०।

नरकायं पुनः कृत्वा तञ्चानयमहामते।
तच्छुत्वावाधर्मराजस्तृ पुत्रंसान्दींपनेस्तथा ॥६१
ससर्जबालरूपञ्चतदात्मांनतदुद्भवम् ।
अर्पयामासकृष्णाय बलरूपसमन्वितम् ॥६२
समक्षदेवतानांच तदद्भुसमिवाभवत् ।
ततः प्राप्यगुरो. पुत्र प्रभुः प्रीतः प्रजापतिम् ॥६३
प्राह प्राप्तो मया व्रह्मन् स्वरूपो द्विजदारकः ।
अद्यप्रभृति लोकेश ! देशे मच्चरणांकिते ॥६४
अनन्त्यामकपादाख्ये मृतानेक्षन्तितेयमम् ।
महाकालोत्तरे देवमाद्यं वी पुषोत्तमम् ॥६५
बिश्वरूपञ्चगोविन्द शंखोद्धारंचकेशवम् ।
ये पश्यन्तिकुशस्थल्यामेतेषांमूतिपञ्चकम् ॥६६
तेनरानगमिष्यन्तिविरञ्चेनिरयक्वचित् ।
तथैवागमनादत्र मम रामस्य नारकः ॥६७
विमुक्तास्ते त्वया घोरात् प्राप्नुवन्त्यखिलादिवम् ।
इत्युक्ते वचने वेधाः प्रोवाच प्रीतिमान्हरिम् ॥६८

हे महामते ! पुनः मनुष्य के शरीर की रचना करके उसको यहाँ पर लाओ। यह श्रवण करके धर्मराज ने सान्दीपनि मुनि के पुत्र की रचना की थी जोकि बालक के रूप वाला उसी स्वरूप से युक्त और उससे उद्भव को प्राप्त करने वाला ही था। ऐसे बालरूपी उसका भगवान

श्री कृष्ण के लिये उस धर्मराज ने वह समर्पित कर दिया था ।६१-६२। समस्त देवताओं के समक्ष वह एक अद्भुत जैसी घटना घटित हुई थी इसके अनन्तर प्रभु ने अपने गुरु के पुत्र को प्राप्त करके प्रजापति पर परम प्रसन्नता उनको हुई थी और उन्होंने कहा था—हे ब्रह्मन् मैंने ठीक सुन्दर स्वरूप वाला द्विज का बालक प्राप्त कर लिया है। श्रीकृष्ण ने कहा—हे लोकेश, आज से लेकर मेरे चरणों से अंकित देश में अवन्ती में अंकपाद नाम वाले स्थल में जो मृत पुरुष हैं वे आकर यमराज का मुख नहीं देखेंगे। महाकालोत्तर में आद्यदेव पुरुषोत्तम विश्वरूप, गोविन्द और शङ्खोद्धार केशव भगवान का जो दर्शन किया करते हैं, हे ब्रह्मन्, वे मनुष्य कभी कहीं पर नरक का दर्शन नहीं करेंगे। उसी भाँति यहाँ पर मेरे तथा बलरामजी के आगमन से नरकों में निवास करने वाले मनुष्य विमुक्त हो गये हैं। ये सब इस घोर नरक से जो आपने इन्हें दिया था विमुक्त होकर सब के सब दिवलोक को प्राप्त होते हैं। इस वचन के करने पर ब्रह्माजी परम प्रीति वाले होंकर श्रीहरि से बोले—हे श्रीकृष्ण, आपने जो कुछ भी वचन कहा है वह सदा सफल होगा ।६३-६८।

यत्वयोक्तं वच: कृष्णतदस्तुसकलसदा ।
ये च त्वामादिपुरुष प्रथमपुरुषोत्तमम् ॥९९
प्रणम्य ये च द्रक्ष्यन्ति स्नात्वा शिवसरस्यपि ।
अधोज्वलं महाकाल सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥१००
एवमुक्तो हरिः पुत्रमादयबलेन सह ॥१०१
आपच्छ्यवेधदेवमारुरोहरथततः ।
शंखमापूरयामास कृतकार्योजनार्दनः ॥१०२
मोक्षायनिरयस्थान नृणांवैपापकर्मणाम् ।
ततस्तेशंखशब्देन स्मरणेनाच्युतस्य च ॥१०३
दिव्यान्विमानानारुह्य दिवमेवाखिलागतः ।
शून्यतन्मण्डलं जातं नारयणसमाते ॥१०४

कालोऽपि दण्ड मासाद्य बलदेवात्पुरः पुरम् ।
प्रविवेश ततो धाता तत्रैवान्तरधीयत ॥१०५

जो मनुष्य प्रथम पुरुषोत्तम आदि पुरुष आपका प्रणाम करके और शिवसर में भी स्नान करके अधोज्वल महाकाल का दर्शन करेंगे वे अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करते हैं। इस प्रकार से कहते हुए श्रीहरि बलरामजी के साथ द्विज पुत्र को लेकर और देव ब्रह्माजी से अनुमति ग्रहण करके रथ पर समारूढ़ हो गये थे। कृत कार्य जनार्दन प्रभु ने शङ्ख का नाद किया था। पाप कर्म करने वाले मनुष्यों के निरय स्थान के मोक्ष के लिए ही वह शङ्ख की ध्वनि की थी। इसके पश्चात् वे उस शङ्ख के शब्द से तथा भगवान अच्युत के स्मरण करने से परम दिव्य विमान पर चढ़कर सबके सब स्वर्ग लोक चले गये थे। भगवान नारायण के वहाँ पर समागम होने से वह पूरा मण्डल शून्य हो गया था।९९-१०४। काल भी दण्ड प्राप्त करके बलदेवजी के आगे-आगे प्रविष्ट हुआ था और इसके पश्चात् धाता (ब्रह्मा) वहीं पर अन्तर्धान हो गये थे।१०५।

कृष्णोऽपिलवावीरः प्राप्त उज्जयिनीपुरीम् ।
बलदेवसहायस्तुसरथेनाशुगामिना ॥१०६
ततस्सान्दीपनेः पुत्रमर्पयामासकेशिहा ।
गुरवेयत्प्रतिज्ञातं ततस्मादनृणोऽभवत् ॥१०७
एवं सान्दीपनेः पुत्रंदृष्ट्वाचपुनरागतम् ।
नागरास्तत्रराजाच विस्मयपरमययुः ॥१०८
तौवीरावर्चयामासुर्मत्वादेवोत्तमोत्तमौ ।
सान्दीपनिरुवाचेद तौचरामजनार्द्दनौ ॥१०९
इह स्थास्यति वः कीर्तिर्यावदाभूतसम्प्लवम् ।
स्थाने तु वयमेतस्मिन् स्थास्यामी यदुनन्दनौ ॥११०
नविज्ञातौमयावीरौ यदुवृष्णिकुलोद्भवौ ।
नरनारायणोदेवो देवकार्यार्थमागतौ ॥१११

नाल्पमृत्युर्भवेत्तस्यनव्याधिर्नचदुर्गतिः ।
प्राप्नोत्यत्रचस्नातश्चेतस्वर्गलोकेमहीयते ॥११२

भगवान श्री कृष्ण भी वीर उज्जयिनी आ गये थे। बल्देव जी भी उनके साथ में सहायक थे। वे शीघ्रगामी रथ के द्वारा वहाँ पहुँच गये थे और केशी दैत्य के हनन करने वाले प्रभु ने सान्दींपनि मुनि को उनका पुत्र लाकर अर्पित कर दिया था। अपने गुरुजी से जो पुत्र को लाकर दे देने की प्रतिज्ञा की थी गुरु ऋण से वे उऋण हो गये थे। इस प्रकार सान्दीपनि मुनि के पुत्र को जो मर गया था पुनः वापिस समागत हुआ देख कर वहाँ के सभी नगर निवासी लोग और राधा भी परम विस्मित हो गये थे। उन सबने दोनों श्री बलराम और श्री कृष्ण की अर्चा की और सभी ने उन दोनों को परमोत्तम देव मान लिया था। मुनि सान्दी-पनि ने उन दोनों ने श्री राम और जनार्दन से वचन कहा था—यहाँ पर लोक में आपको यह कीर्ति जब तक समस्त भूतों का सम्प्लव होगा स्थित रहेगी। हे यदुनन्दनो ! इस स्थान में हम लोग स्थित रहेंगे। यदु वृष्णि कुल में उद्भव प्राप्त करने वाले आप दोनों वीरों को मैंने नहीं पहिचाना था कि साक्षात् नर नारायण देव देवों के कार्यों को सुसम्पादित करने के लिये ही इस लोक में समागत हुए हैं। यहाँ पर प्राप्त जो भी कोई होता है और यदि यहाँ स्नान कर लेता है तो वह कभी भी अल्प आयु में मरने वाला नहीं होगा। उसे कभी भी कोई व्याधि भी पीड़ित नहीं करेगी और न किसी प्रकार की उसकी दुर्गति ही होगी। अन्त में इसका ऐसा प्रभाव होगा कि वह स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित होता है।१०६-११२।

शखिनंविश्वरूपञ्चामाधवञ्चकिणंतथा ।
चत्वाविष्णुक्षेत्राणि अंकपादस्तुपञ्चमः ॥११३
एषा यात्रां प्रवक्ष्यामि यथा कार्या मनीषिभिः ।
मन्दाकिन्यां कृतस्नानो दृष्टवा रामजनार्दनौ ॥११४
शंखोद्धारे ततस्स्नात्वा प्रपश्येद् बलकेशवौ ।
स्नातं कत्वाततः कुण्डे गोविन्दञ्च समर्चयेत् ॥११५

चक्रिणञ्चततोदृष्ट्वा विश्वरूपंततोव्रजेत् ।
तस्याग्रतः करोकुण्डेस्नानां कृत्वायथाविधि ।११६
पुनस्तेन प्रकारेण प्रपश्येद् बलकेशवौ ।
स्नानं कृत्वा ततः कुण्डे गोविन्दञ्च समर्चयेत् ।११७
तथैव चक्रहस्तौ तौ दृष्ट्वा केशवमाव्रजेत् ।
शिप्राम्भसि नरस्नात्वा भक्त्या सम्पूज्य केशवम् ।११८

शंखी, विश्वरूप, पञ्च माधव और चक्री ये चार विष्णु क्षेत्र हैं और अङ्कपाद पाँचवाँ क्षेत्र है। इनकी यात्रा विषयमें मैं कहूंगा कि किस प्रकार से मनीषियों को यह करनी चाहिए। मन्दाकिनी में स्नान करके जनार्दन का दर्शन करके फिर शंखोद्धार में स्नान करके बलराम और केशव भगवान का दनर्श करना चाहिए। इसके पश्चात् कुण्ड में स्नान भगवान् का दर्शन करे और इसके बादमें विश्व रूपकी सेवामें उपस्थित होना चाहिए। उनके आगे करो कुण्डमें विधिपूर्वक स्नान करे और फिर उसी प्रकार से श्री बल और केशव का दर्शन करना चाहिए। इसके पश्चात् कुण्ड में स्नान करके श्री गोविन्द प्रभु का समर्चन करे ।११६-।११७। उसी भाँति से चक्र हाथ में रखने वालों का दर्शन करके भगवान् केशव के समीप में गमन करना चाहिए। शिप्रा के जल में मनुष्य को स्नान करके भक्ति की भावना से भगवान् केशव का भली-भाँति पूजन करना चाहिये ।११८।

पराबृत्यांकपादेतु तां रात्रिगमच्छुचिः ।
प्रातर्वैभोजयेत्तत्र पञ्चविप्रांचसुव्रतान् ।११९
गोदक्षिणाश्खखिनेतु विश्वरूपायवैहयः ।
गोविन्दाय गजः प्रोक्तस्सर्वंदद्याच्चकेशवम् ।१२०
उपोष्य द्वादशींविप्रायांकपादंसमर्चयेत् ।
गन्धपुष्पैश्चधूपैश्चवैद्यै विविधैस्तथा ।१२१
श्राद्धं यः कुरुतेसर्वं तस्यपुण्यफलं श्रृणु ।
कुलानां शतमुद्धृत्य विमानैस्सात्रंकामिकैः ।१२२

गीतनृत्यादिभोगैश्च वैकुण्ठे सुचिरंवसेत् ।
पुनर्लोकमिमंप्राप्य पवित्रेजायते कुले ।१२३
प्राप्नोत्यनन्तानं विष्णुलोक पुनर्वजेत् ।१२४

अंकपाद में वापिस लौटकर परम पवित्र होकर उस रात्रि वहीं पर निवास करे । प्रातः काल होने पर सुव्रत पांच को वहाँ पर भोजन करावे शंखी प्रभु को गौ को दक्षिणा विश्व रूप के लिए हयकी दक्षिणा, गोविन्द के लिये गज की दक्षिणा बताई गई है । केशव भगवान् के लिए सर्वस्व दक्षिणा में देवे ।११९-१२०। द्वादशी का उपवास करके विप्र के लिए अङ्कपाद का समर्चन करना चाहिए । गन्ध, पुष्प, धूप, नैवेद्य और विविध प्रकार के अन्य उपचारों से समर्चन करना चाहिये । जो वहाँ पर श्राद्ध करता है उसका सब पुण्य फल श्रवण करो । वह मनुष्य जो श्राद्ध वहाँ पर किया करताहै अपने सौ कुलोंका उद्धार करके समस्त कामनाओं से परिपूर्ण विमानोंके द्वारा तथा गीत और नृत्य आदि महान् सुखोपभोगों के द्वारा वह वैकुण्ठ लोक में चिरकाल निवास किया करता है । फिर अवधि के अनन्तर इस लोक में आकर किसी महान् पवित्र कुल में समुत्पन्न हुआ करता है । यहाँ पर वह मनुष्य अनन्त सन्ततियों का सुख प्राप्त किया करता है और फिर भी वह विष्णु लोक में ही गमन किया करता है ।१२१-१२४।

७४—रामेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णन

अथान्यं सम्प्रवक्ष्यामि केदारेश्वरमुत्तमम् ।
प्रवरं सर्वतीर्थानां सर्वलोकेषु विश्रुतम् ।१
तत्रस्नात्वाशुचिर्भूत्वा यः पश्यतिमहेश्वरम् ।
केदारेत्फलं प्रोक्तं तदनापिलभेन्नरः ।२
सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वकीयकुलसंयुतः ।
विमानेनार्कवर्णेन शिवलोकेसमोदते ।३
जटाशृङ्गे नरः स्नात्वा शुचिर्भूत्वाजितेन्द्रियः ।
दृष्ट्वा जटेश्वरं देवं ततः पापाद्विमुच्यते ।४

महास्नपनमादौच कृत्वागच्छेच्छिवम्प्रति ।
मातृकपैकंचैव कुलानांतारयेच्छतम् ।५
इन्द्रतीर्थेनरः स्नात्वा दृष्ट्वाचेन्द्रेश्वरं शिवम् ।
विमुक्तः सर्वपापेभ्यः शक्रलोकेमहीयते ।६
कुण्डेश्वरं तु यः पश्येच्छिवध्यानपरायणः ।
लभतेसनरोभ्यास ! शिवदीक्षाफलशुभम् ।७

श्री सनत्कुमारजी ने कहा—इसके अनन्तर मैं उत्तम केदारेश्वर का दर्शन करूँगा जो संसार के समस्त तीर्थों में परम प्रमुख हैं और सभी लोकों में प्रसिद्ध है । वहाँ पर स्नान करके परम पवित्र होकरजो मनुष्य महेश्वर प्रभु का दर्शन किया करता है वह मनुष्य केदार तीर्थ में जो पुण्य-फल कहा गया है उसे यहाँ पर भी प्राप्त कर लिया करता है । अपने कुलों के सहित समस्त पापोंसे निर्मुक्त होकर सूर्यके समान आभा वाले विमान के द्वारा शिव लोक में आनन्द का लाभ लिया करताहै ।१-३। जटा शृंग नामक तीर्थ में स्नान करके जो मनुष्य शुचि होकर अपनी इन्द्रियों को जीत लेने वाला जटेश्वर देशके दर्शन करताहैं वह फिर पाप से एक दम छुटकारा पा जाया करता है । आदि में महा स्नान करके फिर भगवान् शिव के मन्दिरमें जाना चाहिए । ऐसा मनुष्य अपने मातृ कुल को और पितृ कुल को दोनों के सौ सौ की संख्या में तार दिया करता है । इन्द्र तीर्थ में नर स्नपन करके फिर जो इन्द्रवर शिव के दर्शन किया करता है वह भी सब तरह के अपने किए पापों से विमुक्त होकर इन्द्रलोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है । जो कुण्डेश्वर के दर्शन किया करता है । हे व्यासदेव ! वह मनुष्य शिवकी दीक्षा के परम शुभ का फल का लाभ पा जाता है ।४-७।

गोपतीर्थेनरः स्नात्वा दृष्ट्वागोपेश्वरंशिवम् ।
शिवलोक सवैयाति ह्यमृदामरोयथा ।८
स्नात्वातुचिपिटतीर्थे शिवदेवं प्रयम्यच ।
तिर्यग्यानिनरो नैव प्रयातिमुनिपुंगवः ।९

विजयेचनरः स्नात्वाआनन्देश्वरपूजनात् ।
विमुक्ततः सर्वपापेभ्यः स्वर्लोकेविजयोभवेत् ।१०
अथान्य सम्प्रवक्ष्यामि कुशस्थलयां विनिर्मितम् ।
देवं रामेश्वरं व्यास ! भुक्तिमुक्तिप्रदायकम ।११
चित्रकूटात्पुरारामो मेथिल्यालक्ष्मणेन च
अत्रराम समागत्य पप्रच्छमुनिसत्तम् ।१२
कानितीर्थापुण्यानि किंवाक्षत्रमहामुने ।
यत्रगत्वानचाप्नोतिवियोगः सहवान्धवै ।१३
अनेनवनवासेन मरणेनपितुः प्रभो ।
भरतस्थवियोगेन प्रतप्येऽहं त्रिभिर्मुनेः ।१४

एक गोपतीर्थ वहाँ है, उसमें स्नान करके मनुष्य गोपेश्वर भगवान् शिव के दर्शन करता है वह सीधा शिव लोक में गमन किया करता है जैसे अमृत के पान से असर हो जाता है। चिपिटा तीर्थ में स्नान करके और देवश्वर शिवको प्रणाम करकेहे मुनियोंमें परम श्रेष्ठ ! वह मनुष्य फिर कभी भी तिर्यग् योनि को प्राप्त नहीं किया करताहै । विजय नाम वाले तीर्थ में स्नान करके श्री आनन्देश्वर प्रभु के पूजन करने से मनुष्य सम्पूर्ण पापों से विमुक्त होता हुआ स्वर्ग लोकमें पहुँच कर विजय वाला हुआ करता है । इसके अनन्तर एक अन्य तीर्थ के विषयमें वर्णन करता हूँ जो कुशस्थली में विनिर्मित तीर्थ है । वहाँ पर हे व्यास देव ! भुक्ति और मुक्ति इन दोनों के प्रदान करने वाले रामेश्वर देव विराजमान् हैं पुरातन समय में श्रीराम अपनी प्रिया मैथिली और भाई लक्ष्मणके साथ चित्रकूटसे यहाँ पर समागत हुए थे और उन्होंने मुनियोंमें परम वरिष्ठ से पूछा था—श्रीराम ने कहा—हे महा मुनिवर ! यहाँ पर कौन—कौन से परम पुण्यमय तीर्थ हैं और क्षेत्र हैं जहाँ पर मनुष्य अपने बान्धवोंके साथ कभी वियोग प्राप्ति नहीं किया करता है । हे प्रभो ! हे मुनिवर! मेरा मन तो इस लम्बे वन के निवाससे और पूज्य पिताजी के मरणहो जाने से तथा भरत जैसे परम प्रिय एवं श्रेष्ठ भाई का वियोग हो जाने से इन तीनों बातों से बहुत ही सन्तप्त रहा करता है ।८-१४।

तद्वाक्यं राघवेणोक्त श्रुत्वाविप्रषभेस्तदा ।
ध्यात्वातुसुचिरं वालमिदंवचनमब्रवीत् ।१५
साधुपृष्टत्वयावोर रघूणां वंशवर्धन ।
समपित्राकृतं क्षेत्रं प्रयाच्यशिवमादरात् ।१६
अवन्ताविषये राम पुरा तस्मिन् कुशस्थली ।
उज्जयिनीति वे नाम्ना ख्याति लोके गता विमो ! ।१७
तस्यांत्वादशरथं पिण्डदानेनतर्पय ।
सुरासुरगुरुस्तत्र महाकालोव्यवस्थितः ।१८
देवः सदाशिवोराजन् वाञ्छितार्थफलप्रदः ।
दृष्टेतस्मिञ्जगन्नाथे वियोगोनैवजायते ।१९
तत्र गच्छन्तियेविप्रा राजानोवैंमहाबलाः ।
लभन्ततेपरं स्थान त्यत्र देवोमहेश्वरः ।२०
तीर्थानामपि तत्तार्थं भो विष्णोऽवन्तिमण्डले ।
आजगाम ततोऽवन्तीं सा शिप्रा यत्र पुण्यदा ।२१

उस समय राघवेन्द्र प्रभु के द्वारा कहे हुए वाक्य का श्रवण करके विप्रो में परम श्रेष्ठ ने चिरकार पर्यन्त ध्यान करके इस वचन को कहा हे वीर ! आपने बहुंत ही अच्छी बात मुझसे पूछी है। आप तो रघु के वंश की वृद्धि करने वाले हैं। मेरे पिताजी ने भगवान् शिव से कक्रुष्ट रूप से याचना करके बड़े ही आदर से इस क्षेत्र को दिया है।हे राम ! अवन्ती देश में पहिले एक कुस्थली है । हे विभो, यह उज्जयिनी—इस नाम से लोक में ख्याति को प्राप्त हुंआ है । वहाँ पर जाकर आप महाराज दशरथको पिण्ड दानके द्वारा सन्तृप्त करिए। वहाँ सुर और असुरों के गुरुदेव साक्षात् महाकाल समवस्थित रहा करते हैं। हे राजन, वहाँ पर सदा शिव देन सभी वाञ्छित मनोरथों के फलों के प्रदान करने वाले हैं। प्रभु श्री जगन्नाथ के दर्शन करने पर कभी भी वियोग नहीं हुंआ करता है। विप्रगण वहाँ पर जाया करते हैं तथा महान बलवान राजा लोग गमन किया करतेहैं, वे परम श्रेष्ठ स्थानको

प्राप्त किया करते हैं जहां पर महेश्वर देव विराजते हैं। हे विष्णो ! इस अवन्ती मण्डल में वह तीर्थ समस्त तीर्थों का भी एक तीर्थ होता है। इसके उपरान्त जहां पर परम पुण्यों के देने वाली शिक्षा समागत होगई थी ।१५-२१।

तस्यांस्नात्वाततोरामस्तर्पयामासपूर्वजान् ।
महाकाल यदाद्रष्टुं प्रतस्थेरघुनन्दरः ।२२
वाण्यावतोऽशरीरिण्या देवदेवेन भाषितम् ।
भो भो राघव, भप्रन्ते स्थापयस्व माम् ।२३
अत्रस्थान मायदत्तं माविचारय राघव ।
ततोहृष्टमनारामो लक्ष्मणंवाक्यब्रवीत् ।२४
अनुगृहीतः सौमित्र देवदेवेनशम्भुना ।
तस्मास्थापयतीर्थेऽल्लिंग रामेश्वरं शुभम् ।२५
वाक्यं तल्लक्ष्मणः श्रुत्वा स्थापयामास शंकरम् ।
दृष्ट्वा देवं पुरो रामो लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् ।२६
एहिलक्ष्मणशीघ्रन्त्वं शिप्रायाजलमानय ।
करिष्यामियतोभ्रातर्देवस्नपनं शुभम् ।२७
लक्ष्मणस्त्वब्रवीद्धाक्थं सीताया किंकरिष्यसि ।
रामनाऽहं सर्वकाल दासभावं करोमिते ।२८

उसमें इसके उपरान्त श्रीराम ने स्नान किया था और अपने पूर्वजों का तर्पण किया। जिस समय में श्री रघुनन्दन ने महाकाल भगवान के दर्शन करने के लिये प्रस्थान किया उस समय में बिना शरीर वाली आकाश वाणीके द्वारा देवोंके देवने कहा—हे राघवेन्द्र ! आपका कल्याण हो अब आप अपने ही शुभ नाम से मेरी यहां पर स्थापना कर दो । हे राघव ! यहाँ पर मेरे द्वारा दिया हुआ यह स्थान है। इसका कुछभी विचार मत करो। उसके उपरान्त प्रसन्न मन वाले श्रीरामने लक्ष्मणजी से यह वचन कहा हो सौमित्रे ! मैं देवों के देव शम्भु भगवान के द्वारा अनुगृहीत हुआ हूँ। इसलिये इस तीर्थ में परम शुभ श्री रामेश्वर शिव लिंग की स्थापना करो। श्रीराम के इस वाक्य का श्रवण करके लक्ष्मण

जी ने श्रीशंकर भगवान् की स्थापना की थी । श्रीराम ने अपने आगे देवेश्वर का दर्शन करके लक्ष्मण से यह वचन कहा हे लक्ष्मण आप यहाँ पर शीघ्र आइये और शिप्रा नदी का जल ले जाओ । हे भाई क्योंकि मैं देवेश्वर का शुभ स्नपन करूँगा । लक्ष्मण ने वाक्य कहा— 'सीताजी से क्या कहें' मैं राम नाम वाला हूँ । सभी कालोंमें मैं आपका दास भाव करूँगा ।२२-२८।

इयचयुष्टा सुदृढा पीवराचममाप्यतः ।
वद राघवसत्येन अनया किंकरिष्यसि ।२९
श्रूत्वापूर्वहितद्वाक्यं लक्ष्मणेनप्रभाषितम् ।
विमनाराघवस्तस्थौ सीताचापिवरानना ।३०
यदुक्तंलक्ष्मणेनाथ तच्चसाताचकारह ।
स्नात्वाभुक्त्वाचौवीरौ महाकालमुपागता ।३१
नीत्वाद्विभरीतत्र उमनायमनोदधे ।
उत्तिष्टवत्ससौमित्रे व्रजामोदक्षिणां दिशम् ।३२
सौमित्रिस्त्रवीद्वाक्यं नाह गन्याकथञ्चन ।
व्रजत्वमनया सार्द्धं भार्ययाकमलेक्षण ।३३
नाहमग्रावनं यामि नवैऽयोध्याकथञ्चन ।
एवं ब्रूवाणं सौमित्रिमुवाचरवुनन्दनः ।३४
कथंपूर्वमयोध्यायां निगतोसिमयासह ।
वने वस्राम्यहरामनववर्षाणिपञ्चच ।३५

हे राघव यह तो पुष्ट सुदृढ़ और मुझसे भी अधिक पीवर है । हे राघवेन्द्र, सत्यतापूर्वक यह बतलाइये कि इससे आप क्या करेंगे! ।२९ प्रथम हितवाक्य का श्रवण करके लक्ष्मण ने यह भाषित किया था । श्री राघवेन्द्र उदास होकर स्थित हो गये थे अब वह आनन [मुख] वाली सीता भी स्थित हो गई थीं । जो लक्ष्मण ने कहा था वही सीता जी ने किया था उन दोनों वीरों ने स्नान और भोजन करके दोनों महाकालमें समुपागत हुएथे । वहाँ पर उस रात्रिको व्यतीत करके फिर गमन

करने के लिये मन किया । हे सौमित्र ! उठो चलो दक्षिण दिशाको चलें सौमित्रि (लक्ष्मण) ने यह वाक्य कहा—मैं कैसे भी नहीं जाऊँगा । हे कमल के समान नेत्रों वाले ! आप हीं उस भार्याके साथ गमन कीजिये। मैं न तो आगे वन में जाऊँगा और न अयोध्या ही को किसी भी प्रकार से जाऊँगा । इस तरह से बोलते हुए लक्ष्मण से श्री राघवेन्द्र ने कहा—पहिले मेरे साथ में आप अयोध्या से कैसे निकल कर आये हैं ? आपने उस समय में तो मुझसे यही कहा कि हे राम ! मैं चोदह वर्ष तक वन में निवास करूँगा ।३१—३५।

प्रसादः क्रियतांमह्यं नयमामपिराघव ।
इदानींत्वमर्द्ध पथे कथंस्थ तासिशत्रुहन् ।३६
लक्ष्मणस्त्वब्रवीद्वाक्यं नाऽहं गन्ता वन पुनः ।
लक्ष्मणं विक्रतं ज्ञात्वा रामो वचनमब्रवीत् ।३७
मामनुव्रज सौमित्रे ! एको यास्यामि काननम् ।
द्वितीया च त्वियं सीतां उक्तो रामेण लक्ष्मणः ।३८
धनु सगृह्यविमना उत्तस्थौलक्ष्मणस्तदा ।
प्राप्तौप्राकारमर्यां क्षेत्रसींमां परन्तपौ ।३९
त्वंनिवर्तस्वसौमित्रे समर्पयच्चमेधनुः ।
रामवाक्यमुपश्रुत्थ सातांवैलक्ष्मणोऽब्रवीत् ।४०
किमर्थं हि परित्यक्तः कोऽपराधः कृतो मया ।
रामेंण जारिस्यक्तः प्राणाँस्त्वक्ष्याम्यसंशयम् ।४१
रामततोऽव्रवीत्सीता किमर्थंलक्ष्मणस्त्वया ।
देवसन्त्यज्यतेवीरः सुमित्रानन्दवर्धनः ।४२

हे राघव ! मेरे ऊपर आप प्रसाद कीजिए मुझको भी वन में ले चलिये । अव इस समय में आधे मार्गमें बीच में ही है शत्रुहन् ! क्यों स्थित हो रहे हो । लक्ष्मण ने यही वाक्य कहा—मैं फिर वन में नहीं जाऊँगा। इस प्रकार से लक्ष्मण को परम विक्रुत जानकर श्रीराम ने यह वचन कहा हे सौमित्रे मेरे पीछे गमन करो, मैं एक ही वन को जाऊँगा, दूसरी यह सीता है । इस तरह से श्रीराम के द्वारा लक्ष्मण से

कहा गया। उस समयमें धनुष ग्रहण करके लक्ष्मण उदास होकर स्थित हो गये थे। इस प्रकार से वे दोनों परन्तप पाकर मर्यादा वाली चहार दिवारी से (जिसकी हद वनी हुई थी) क्षेत्र की सीमा को प्राप्त हो गये थे। श्रीराम ने कहा—हे सौमित्रे ! मेरे धनुष को मुझे दे दो और आप वापिस लौट जाओ। श्रीराम के इस वाक्य का श्रवण कर लक्ष्मण जी ने सीताजी से कहा—मुझे किस लिए परित्यक्त किया गया है ? मैंने क्या अपराध किया है। श्रीराम के द्वारा परित्याग किया गया मैं निश्चय ही अब अपने प्राणों का त्याग कर दूँगा। इसके अनन्तर सीताजीने श्री राम से कहा—हे देव ! आपके द्वारा परम वीर सुमित्रा के आनन्द के वढ़ाने वाले लक्ष्मण का परित्याग क्यों किया जा रहा है ? ।३६-४२।

राघवस्त्वब्रवीत्सीतां नाऽहं त्यक्ष्यामि लक्ष्मणम् ।
न कदाचिदपि स्वप्ने लक्ष्मणस्येदृर्गाप्रियम ।४३
श्रुतपूर्वन्तु सुश्रोणि ! क्षेत्रस्यास्य विचेष्टितम् ।
अस्मिन् क्षेत्रे न सौमात्रं सवो हि स्वार्थतत्परः ।४४
परस्परं न मन्यते स्वार्थनिष्ठे कहेतवः ।
नश्रृण्वन्तिपितुः पुत्राः पुत्राणाञ्चतथापिता ।४५
नच शिष्योगुरोर्वाक्यं गुरुर्या शिष्यकर्म च ।
अर्थानुवन्धिनो प्रातिर्न कश्चित्कस्यचित्प्रियः ।४६
एवमुक्त्वाययोरामो लक्ष्मणोजानकीतथा ।
लिंग तत्रप्रतिष्ठा यास्वनाम्नारघुन्दर ।४७
रामतीर्थेतरः स्नात्वा दृष्ट्वा रामेवरं शिवम् ।
विमुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ।४८

श्रीराघवेन्द्र ने सीताजी से कहा—मैं लक्ष्मण को नहीं त्यागूँगा। हे सुश्रोणि ! पहिले कभी भी स्वप्नमें भी लक्ष्मणका ऐसा अप्रिय वचननहीं सुना था-यह इसी क्षेत्र का विचेष्ट हैं। इस क्षेत्र में सौभ्रात्र भाव नहीं होता है। यहाँ पर सभी स्वार्थ में उत्तर रहा करतेहैं। स्वार्थ की निष्ठा ही जिसका एक मात्र हेतु होता है वे लोग परस्पर में किसी को नहीं माना करते है। पुत्र गण पिताकी बात नहीं सुना करते है पिता पुत्रो

का कुछ भी ध्यान नहीं रखते हैं। शिष्य गुरु के वाक्य को नहीं मानते, हैं और गुरु भी शिष्यके कर्म को कुछ नहीं समझते हैं। यहाँ पर जो भी प्रीति होती है वह अर्थ [मतलब] के अनुवन्धन वाली ही हुआ करती है वास्तविक रूप से कोई भी किसी से प्रेम करने वाला नहीं होता है। कहकर श्रीराम, लक्ष्मण तथा जानकी वहाँ पर गये। श्री रघुनन्दन ने अपने ही नाम से वहाँ पर शिव लिंग की स्थापना की। इस श्री राम तीर्थ में मनुष्य स्नान करके तथा श्री रामेश्वर प्रभु का दर्शन करके समस्त अपने कृत पापों से विमुक्त हो जाया करता है और यह अन्त में विष्णु लोक में गमन किया करता है ।४३-४८।

७५—विष्णु माहात्म्यवर्णनम्

महाकालं किमर्थन्तु किंवाशिवपदस्मृतम्।
कोटीविरं किमर्थंतु पावकं तत्किमुच्यते ।१
नारदीयकिमर्थंतु द्वितीयावटमातरः।
अभयेश्वरं किमर्थंतु शंखोद्धारणमेवच ।२
शूलेश्वरः किमर्थं तुकिमोङ्कारस्य कथ्यते।
धूतपापं किमर्थं तु किमोकारेश्वरं तथा ।३
पुरीचोज्जयिनीदिव्या सप्तकल्पाकर्थंस्मृता।
कथयस्वमुनिश्रेष्ठतस्यानामनियानिच ।४
शृगुव्यास ! यथा ख्याता पुरी दिव्या सुपुण्यदा।
स्वर्णंशृंगा तु प्रथमे द्वितीये तु कुशस्थली ।५
तृतीयेऽवन्तिकाप्रोक्ता चतुर्थं त्वमरावती।
विख्यातापञ्चमेकल्पे परीचूड़ामणीति च ।६
षष्ठपद्मावतीज्ञे योज्जयिनीसप्तमेपुरी।
पुनरन्तेतुकल्पस्य स्वर्णंशृङ्गादिकास्मृता ।७

महर्षि श्रीव्यासदेवजी ने कहा—यह महाकाल किस लिए हुआ था ? अथवा यह शिव पद कैसे कहा गया है ? कोटीवर किस लिए है

और वह पावन क्यों कहा जाता है? नारदीय किस लिएहैं तथा द्वितीया वह मातर क्यों है—अभयेश्वर किस लिए है और शंखोद्धारण का क्या-क्या प्रयोजन है ? शूलेश्वर किस लिये है और ओंकार क्यों कहा जाता है ? धूतपाप का क्या अर्थ है तथा ओंकारेश्वर का क्या प्रयोजन है ? पहिले यह दिव्या उज्जयिनी सप्तकल्प कैसे कही गई है ? हे मुनिश्रेष्ठ! इसके जो भी नाम हैं उन सबको कहिए। श्री सनत्कुमारजी ने कहा-हे व्यास देव ! अब आप श्रवण करिए जिस तरह से यह सुपुण्य की देने वाली दिव्या पुरी विख्यात हुई थी। प्रथम कल्प में यह स्वर्ण शृङ्गा विख्यात थी—दूसरे कल्प में यही कुशस्थली नाम वाली कही गई थी। तीसरे कल्प में इसका अवन्तिका कहा गया है और चौथे कल्पमें अमरावती नाम से यह प्रसिद्ध हुई थीं। पाँचवें कल्प में यही पुरी चूड़ामणी—इस नाम से विख्यात हुईथी। छठवें कल्पमें इसको पद्मावती कहा गया और सातवे कल्प में इसीको उज्जयिनी पुरी बोला जाताहै, फिर कल्प-के अन्त में यह स्वश्रृङ्गा जाति नाम वाली कही गई हैं।१-७।

एतानि सप्तानामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः।८
उज्जयिन्यां पुराराजा बभूव किलचान्धकः।
तस्यपुत्रोमहावीर्यो नाम्नाकपकदानवः।९
युद्धार्थं समहावीर्यः शक्रयुद्धेसमाहृयत्।
क्रोधादिन्द्रेणसंग्रामेंयुचमानीनिनिपातितः।१०
निहत्यदानववशक्रो भयान्धासुरस्यतु।
जगामश करान्वेषी कैलासशंकरालयम्।११
दृष्ट्वाप्रणम्देवेश चन्द्रार्द्धं कृतशेखरम्।
भीतोविज्ञानपयास सहस्रकृतलोचनः।१२
अभयं देहि मेदेव ! दानवादन्धकाच्चवै।
शक्रस्येत्थंवचः श्रुत्वा शरणागतवत्सलः १३
ददावमृथमेवासौ माभैस्त्वतन्धकाद्धिवै।
कृत्वारूप महादेवो विश्वरूपं सुभैरवन्।१४

जो मनुष्य प्रातः काल उठकर इन सात नामों को पढ़ता है वह सात जन्मों में किए हुए पापों से मुक्त हो जाता है—इस में कुछ भी संशय नही है। इस उज्जयिनी नगरी में पहिले अन्धक नाम वाला राजा हुआ। उसका एक पुत्र था जो महान् वीर्य वाला था, उसका नाम कनक दानव था। उस महान् वीर्य वाले ने युद्ध के लिए युद्ध भूमि में इन्द्र देव का आहवान किया। इन्द्रको बहुत ही अधिक क्रोध आया और उसने संग्राम भूमि में युक्त करते हुए उसको निपातित कर दिया अर्थात् मार डाला। इन्द्र ने युद्ध में दानव को तो मार दिया किन्तु फिर वस अन्धासुर के भय से भगवान् शंकर के अन्वेषण करने वाला होकर शंकर के निवास स्थान कैलाश पर्वत पर चला गया। वहाँ पर अर्धचन्द्र को मस्तक पर धारण करने वाले देवेश्वर का दर्शन करके उनको इसने प्रणाम किया। सहस्र नेत्रों से समाकुल इन्द्र ने अत्यन्त भयभीत होकर प्रार्थना की थी- हे देव ! अन्धक दानव से मुझे अब आप अभय का दान दीजिए। शरण में समागत प्राणी पर दया करने वाले प्रभु शंकर ने इन्द्र देव के इस वचन को सुनकर उसे पूर्ण विश्वास दिया कि तुम अन्धक से भय मत करो। महादेव ने सुभैरव विश्वरूप धारण कर लियाथा।८-१४।

सर्वेलिहद्भिरत्युग्रै स्तीक्ष्णदंष्ट्रै विषोल्वणः।
पातालोदररूपैश्चभैरवरावनादिभिः।१५
भुजैरनेकसास्त्रै वहुशस्त्रधृतेस्तथा।
सिंहचर्मपरीधानं ब्याघ्रत्वगुत्तरोयकम्।१६
गजाजिनकृमाटोप चन्द्राज्निविलोचनम्।
महामहीध्रूल्याभिभूषितंसदा।१७
क्षोभयश्चालयन्सर्वान् पातालस्यतलावधिः।
ईदृग्र पविधायेशीदनुदैत्यभयावहम्।१८
अवातरन्महींभीमः पादनैकनशंकरः।
तत्रैदहिह्लदोजातः सर्वदेवतवन्दिता।१९
ख्यात शिवपदं वद्धिष्पदाक्रान्तवान्विभुः।
यस्माद्त्रपुराकोटिः पादांगुष्ठल्यधारिता।२०

कोटितीर्थंमत्त ख्यातंसर्वंपापप्रणाशनम् ।
अगस्येनतथाकोटिस्तीर्थानामत्रधारिता ।२१

बहुत तीक्ष्ण दाढ़ों वाले—विष में महान् उल्वण अत्यन्त उग्र-लप लपाती हुई जीवों वाले सर्पों से भूषित थे जो कि पातालोदरके सदृश के और महान् भैरव ध्वनयों से निनाद करने वाले थे। वहुत से प्रकार के शस्त्रास्त्रों को धारण करने वाले बहुत से सहस्र भुजाओं से युक्त उनका स्वरूप था। सिंह के चर्म का परीधान करने वाला तथा व्याध धर्म के उत्तरीय धारण करने वाला उनका स्वरूप था। गजचर्म से आटोप किये हुए तथा चन्द्र और अग्नि के समान नेत्रों वालेथे। महान् पर्वतोंके तुल्य जाँघोंसे सदा भूषित थे। पाताल के तल के मध्य में सबको लाभ करने वाले थे। ईश ने उस समयमें ऐसा दनुजों और दैत्योंको भय देने वाला अपना स्वरूप वना लिया। तब भगवान् शंकर ने भीम स्वरूप से युक्त होते हुए एक पाद से इस महीमें अवतरण किया। वहीं पर समस्त देवों के द्वारा वन्दित एक ह्लद उत्पन्न हो गया वही शिवपद—नामसे विख्यात हो गया क्योंकि प्रभु ने अपने पाद से उसे आक्रान्त कर दिया। क्योंकि यहाँ पर पहिले पादापुष्ट की धारिता कोटि थी अतएव सम्पूर्ण पापोंका प्रमाण करने वाला यह कोटितीर्थ—इस शुभ नाम से ही विख्यात हो गया। यहाँ पर महामुनि आगस्त्यजी ने एक कोटि तीर्थों की धारितकी थीं, इसलिये थी लोक में ऐसा परम शुभ नाम सदा ही कहा गया है।११-२१।

अतोपादृक् शुभं लोके कोटितीर्थं सदा स्मृतम् ।
दृष्ट्वा तु त्रिदशाः सर्वे स्नातास्व हितकाम्यय ।२२
महाकालकृतरूपं महाकालस्ततः स्मृतः ।
अन्धासुरोपिदनुजः पुत्रश्च वाहतयुधि ।२३
क्रोधेनमहताविष्टोरणतूर्याष्यवादयत् ।
ससैन्योकिगंतः प्राप्तीयत्रतेत्रिदशास्थिताः ।२४
महत्यासेनयासार्द्धं रथवारणयुक्तया ।
ततोवैदानवान्वीक्ष्य महाहवकृतोद्यमान् ।२५

वेपन्तस्तेसुसन्नद्धाः शम्भुं शरणमाययुः ।
माभैपयमहाकालो देवानूचेत्रिलोचनः ।२६
गृहीत्वाशूलमातिष्ठद्दष्ट्रादष्टाधरोरुषा ।
कोपयुक्ते विरूपाक्षे ज्वालाभिः पूरितन्नभः ।२७
अन्धधकेनाथ रुष्ट न शर कोटिस्तु दुःसहा ।
मुक्ता जगाम देवानां नाशाय शलभकृति ।२८

समस्त देव गणों ने इस तरह से देखा तो उन सभी ने अपने हितकी कामना से यहाँ पर स्नान किया था ।२२। महान् काल के तुल्य अपना स्वरूप किया इसी वास्ते इसे महाकाल इस नामसे कहा गयाहै । अन्धासुर ने भी अपने पुत्र को युद्धमें मृत हुआ सुनकर महा क्रोधसे समाविष्ट होते हुए उसने सग्राम के तूर्य वाद्य वजवा दिये थे । वह अपने समस्त सेना के ही साथमें निकल पड़ा और वहीं पर सम्प्राप्तहो गया जहाँ पर देवगण स्थिति थे उन देवों ने बड़ी भारी विशाल और रण के आवरणों से युक्त सेना के साथ उसी समय में महान् संग्रामको करनेके लिये उद्यम करने वाले सव दानवों को देखा । वे सुसन्नद्ध थे किन्तु काँप उठेथे और भगवान् शम्भु की शरण में गये थे । उस समय में त्रिलोचन महाकाल भगवान् ने उन देदों से कहा—डरो मत । तव उन्होंने सपने त्रिशूल को उठाया और क्रोधसे अपनी दाढ़ों से अधरों को काटते हुए स्थितहो गये थे । भगवान् विरूपाक्ष के कोप से युक्त होने पर आकाश ज्वालाओं से पूरितहो गया । परम रुष्ट हुए अन्धक असुरने अत्यन्त दुस्सह एक करोड़ शरों को छोड़ा था जो कि शलभों के समान आकृति वाले समस्त देवों के विनाश करने के लिये छोड़े गये थे ।२३-२८।

विस्फुलिंगार्चिषं वह्नि मुञ्चमानः पिनाकधृक् ।
शतशश्शकलीचक्रे तञ्चयाणैरताडयत् ।२९
अन्धोऽपि हि युद्धस्थो शिथिलः शिथिलायुधः ।
निरुद्धश्म्भुना बाणैरलिभिः पंकज यथा ।३०
तस्य सैन्यञ्ज वहुधा स्वणैर्युद्धयोदिभिः ।
योघुवरैर्हुं तो दिव्यैः स्थाणसान्निध्यमाश्रितै ।३१

ततोऽन्धकेन सैन्यं स्वं भिन्नं दृष्ट्वा तथा सुरैः।
आत्मानञ्च दृष्ट्वा विद्ध च वाणकोटिभिः ।३२
विकलोकृतदेहोऽसौ भयमाश्रित्यवेगतः।
चकारतार्सीमायां मायाशतविशारदः ।३३
तयान्तर्हितदेहोऽसौ जगामदिगुत्तराम्।
शम्भोर्भीतिर विभ्रामभुविर्भिन्नहृत् ।३४
येनाध्वनागतोदैत्यस्तेनवोजगामह।
वदन्नदृश्यतेक्वासौ गतोदुष्टः पुनः पुनः ।३५

पिनाक नामक धनुष धारण करने वाले भगवान् ने विस्फुलिन वाली अर्चियों (ज्वालाओं से युक्त अग्नि) को छोड़ दिया और उन्होंने उनके सैंकड़ों ही खण्ड २ कर दिये थे तथा अपने प्राणों से उसका ताड़न किया था ।२९। वह अन्धक असुर भीं युद्ध स्थल में स्थित होता हुआ बहुत ही शिथिल आयुधों वाला होकर स्वयं भी परम शिथिल हो गया। जिस प्रकार से भौंरे कमल को एक दम ढक लिया करते हैं उसी तरह से यह अन्धकासुर भी शम्भु के द्वारा वाणी ने एक दम निरुद्ध कर दिया गया था ।३०। उसकी प्रायः सभी सेना युद्ध भूमि में संग्राम करने वाले शिव के गणों के द्वारा जो कि परम दिव्य श्रेष्ठ योधा थे और स्थाणु के सन्निधि का समाश्रय ग्रहण करने वाले थे निरुद्ध कर दी गयी थी ।३१। इसके पश्चात् अन्धक से अपनी सेना को देवों के द्वारा भिन्न हुई देखकर और अपने आपको महेशके द्वारा करोड़ों वाणोंने विरुद्ध देखकर विकलोकृत देह वाला यह भय का आश्रय लेने वालाहो गया और फिर सैकड़ों मायाओं के विशारद इसने अपनी एक तामसी माया की। उस मायासे अन्तर्हित देह वाला यह उत्तर दिशा की ओर चला गयाजो कि भगवान् शम्भु की भीति (भय) का हरण करने वाली थी। भिन्न हृदय वाला यह भू मण्डल में भ्रमण कर रहा था। जिस मार्गसे यह दैत्य गया उसी से देव भी गये थे किन्तु यह कहीं पर भी गया हुआ दुष्ट दिखलाई नहीं देता और बोलता हुआ बारम्बार चला जा रहा था ।३२-३५।

उवाचचान्धकश्शब्दं तथोवाचमहेश्वरः ।
तत्रतीर्थं मथोत्पन्न बागन्धकमितिश्रुतम् ।३६
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा यो वै दद्यात्मशंकरम् ।
नवम्यां मार्गशीर्षस्य शुक्लायां श्रद्धयान्वितः ।३७
अक्षयंतद्भवेत्सर्वं दाता शिवपुर ब्रजेत् ।
पितृदनुद्दिश्ययत्विञ्चिद्दीयतेभक्तितः शिवे ।३८
तृप्तास्तिष्ठन्ति ते तावद्यावदाभूतसम्प्लवम् ।
तमसां छादितादेवाः सम्भूवुः समाकुलाः ।३९
सम्भ्रान्तमनसस्सर्वं नकिञ्चिदपिमेनिरे ।
एतस्मिन्नन्तरेव्यास नरादित्यः स्व तेजसाः ।४०
उत्तस्थौं नररूपेण कुर्वन्तिमिरा दिशाः ।
नष्टे तमसि दैत्येऽपि प्रकाश प्रकटे सति ।४१
देवामुदमवापुस्ते दृष्ट्वाऽनन्तं तुलोचनैः ।
स्तुवन्तोविविधैः स्तोत्रैर्नररूपदिवाकरम् ।४२

वहाँ पर अन्धक ने शब्द बोला तथा महेश्वर प्रभु ने भी बोला । वहाँ पर वागन्धक तीर्थ उत्पन्न हो गया-ऐसा सुना गया । वहाँ पर स्नान करके पर शुचि होकर जो कोई शर्करा के सहित दान किया करता है और मार्गशीर्ष मास को शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि में श्रद्धा युक्त होकर दान किया करता है तो वह अक्षय हो जाताहै । सबकादान करने वाला शिवपुर को गमन किया करता है । हे शिवे । पितृगण का उद्देश्य करके भक्ति भाव से जो कुछ भी दिया जाता है तो वे पितृगण परम सन्तृप्त होकर जब तक भूत संप्लव होता में तब तक स्थित रहा करते हैं । उस समय में दैत्य की माया से वहिततम से ऐसा अन्धकार हो गया कि सभी देवगण समाच्छादित होते हुए परम समाकुल हो गये थे ।६—९। सभी सम्भ्रान्त मन वाले होकर कुछ भी नहीं मान रहे थे । इसी बीच हे व्यास ! नरादित्य अपने तेज से नररूप से उत्थित हो गये और उन्होंने सभी दिशाओंको विना अन्धकार वाली कर दिया । अन्धकारके नष्ट हो जाने पर वहदैत्य भी प्रकाश में प्रकट होगया । उस

दैत्य से प्रकट हो जाने पर देवों ने अपने लोचनों से अनन्त को देखकर परम प्रसन्नता प्राप्त की देवों ने अनेक स्तोत्रों के द्वारा उन नर रूप धारी दिवाकर भगवान् का स्तवन किया था ।४०-४२।

उत्तस्थौनररूपेण दीप्तोयस्माद्दिवाकरः ।
तेनास्यनीमतेचक्रनरदीपइतीश्वराः ।४३
यः पश्यतिनरोभक्त्या नरदीप दिवाकरम् ।
मुच्यते सर्वपापेभ्योयद्यपि ब्रह्महाभवेत् ।४४
षष्ठ्यामर्कदिनेविप्र सप्तःम्यामुपवासकृत् ।
दिनक्षयेऽथसक्रान्तो ग्रहणेदियुवत्यथ ।४५
कुण्डेस्नात्वाशुचिर्भूत्वा जपन्नियतमानसः ।
नरदीपनरः पश्ये स्तोत्रवादित्रतश्रृलेः ।४६
गन्धैर्धूपैस्तथादीपेर्नैवेद्यैर्विविधैस्तथा ।
गीतं वाद्यंपुरा कृत्वा प्रणम्याष्टांगमेव च ।४७
प्रातर्मध्येपराहृणेवा कृत्वार्कस्यप्रदक्षिणाम् ।
संयुक्तस्सवपपैस्तु सन्तजन्मकृतैपपि ।४८
सूर्यकोटिप्रतीकाशैविमानः सार्वकामिकेः ।
सूर्यलोक प्रयात्याशु यत्युरैरपि दुर्लभम् ।४९

क्योंकि वह दिवाकर प्रभु नर रूप को धारण करके उत्थित हुए और परम प्रदीप्त हो गये इसी कारणसे उन लश्वरीने नरदीप यहनाम उनका रखा । जो कोई मनुष्य भक्ति से उन नर रूप दिवाकर का दर्शन किया करता है चाहे भले ही वह ब्रह्म हत्यारा ही क्यों न ही तो भी समस्त पापों से मुक्त हो जाया करता है । हे विप्र ! रविवार से युक्त षष्ठी में अथवा सप्तमी में उपवास करने वाला—दिनके क्षय में—संक्रान्ति में ग्रहण में—विषुवदिन में कुण्ड में स्नान करके शुचि होकर नियतमन वाला होता हुआ जाप करे और नरदीप का अवलोकन करे तथा स्तोत्र वादित्र मंगल धूप—दीप एवं विविध नैवेद्यों से गीत वाद्य पहिले करके आठों अगों से प्रणाम करे। प्रातःकाल, मध्याह्न अपराह्न काल से सूर्य की प्रदक्षिणा करे तो वह मनुष्य सब पापों से जो कि सात जन्मोंमें भी

किये गये हैं मुक्त हो जाया करता है। अन्तमें इस नरलीला का संवरण करने के पश्चात् वह करोड़ों सूर्यों के सदृश-सब कामनाओंकी पूर्ति वाले विमानों के द्वारा सूर्य लोक में प्रमाण किया करता है जो कि बड़े-२ देवों को भी परम दुर्लभ होता है।४३-४६।

शक्राप्राप्यपुरायस्माद्मानुरत्रप्रतिष्ठितः।
नरस्यैव प्रसादेन नरदीपस्ततो ह्ययम् ।५०
तदैवास्यषुरत्व्यास ! यात्रा शक्रेणनिर्मिता ।
आगमिष्माम्यह पाथ सार्द्धं देवैः समाहितः ।५१
ज्येष्ठेऽतीतेद्वितीयायां नरदीपेतुसर्वदा ।
तत्राहमागतीत्रेयी लोकैर्दवस्यदर्शननात् ।५२
ततोऽनन्तरमागम्य देवा ये त्रिदशालये ।
दृष्ट्वा देव तथारूढं नरदीपयुदींपनम् ।५३
कृत्वायात्रन्तेयन्तदेवं यात्रात्ययेततः ।
यः पश्येन्मानवाभक्त्यानरदीपरथस्थितम् ।५४
सर्वपापविनिर्मुक्तः सूर्यलोके महीयते ।
रथयात्रामथो वक्ष्ये नरदीपस्य या पुनः ।५५
तां कृत्वा चैव तत्पुण्यं मुनीभिः परिकीर्तितम् ।
ज्येष्ठेऽतीते द्वितीयायां रथस्थो हि दिवाकरः ।५६

क्योंकि पुरातन समयमें इन्द्र देव को प्राप्त करके भानु को यहाँपर प्रतिष्ठित किया और यह प्रतिष्ठापन करके द्वारा ही प्रसाद से हुआ अतएव तभी से यह नरदीप वाला हो गया है। हे व्यास ! उसी समय में पहिले इन्द्र ने यह यात्रा निर्मित की और कहा—हे पार्थ परम समाहित होकर देवों के साथ यहाँ पर आऊँगा। अतीत ज्येष्ठ में द्वितीया तिथि में सर्वदा इस नरदीप में वहाँ पर देव के दर्शन होने से लोगोंको मुझे आया हुआ ही समझना चाहिए। इसके पश्चात् आकर जो देव त्रिदशालय में वहाँ पर आरूढ़ सुदीपन नरदीप देव का यजन करके जो यात्रा किया करते हैं वे फिर यात्रात्यय में गमन किया करते हैं।

जो मनुष्य भक्तिभाव से रथ में स्थित नरदीपका दर्शन करता है वह समस्त पापों से विमुक्त होकर सूर्य लोक में प्रतिष्ठित एवं सम्मानित हुआ करता है। जो वहाँ की रथ यात्रा होती है उसे मैं फिर कहूँगा। उसको सम्पन्न करके जो कुछ उसका पुण्य-फल होताहै उसको मुनियोंने कीर्तित किया है।५०-५६।

कुशस्थल्यां द्विजश्रेष्ठर्बाहुक्षेपैः प्रणीयते।
उत्तरां दिशमायान्त यः पश्यति दिवस्पतिम् ।५७
अग्निष्टोमस्ययज्ञस्य लभतेसोऽखिल फलम्।
निवृत्तं केशवार्काद्योरथं पश्यति मानवः ।५८
मुण्डोरस्वामिनोयात्राकतातेननसंशयः।
रथामाकर्षतेयस्तु रज्ज्वाकर्षणवेमुने ! ।५९
कुलमुद्धरते सोऽपि पूर्वांषिपतृपितामहान्।
दक्षिणाभिमुख यान्तं नरदीप द्विजत्तम ! ।६०
ये संयताः प्रपश्यन्ति ते यान्ति च त्रिविष्टपम्।
सूत्रेण वेष्टते क्षेत्रं रथै देवनथापिता ।६१
सर्वंकामानवाप्नोतिकृतापृण्यस्सजायते।
प्रदक्षिणांतुसूर्यस्य भक्त्याकुर्वन्ति ये नराः ।६२
प्रदक्षिणीकृतातस्तुसप्त दीपावसुन्धरा।
प्रातरुत्थाययोभक्त्या मौनोयातिदिवाकरम् ।६३

कुशस्थली श्रेष्ठ द्विजों के द्वारा बाहुक्षेपों में प्रणयन किया जाता है। जो कोई उत्तर दिशा में आये हुए दिवस्पतिका दर्शन करता है वह अग्निष्टोम यज्ञ पूरा फल प्राप्त करता है। जो मानव केशवार्क से निवृत्त रथ को देखता है उसने मुण्डीर स्वामी की यात्रा पूर्ण करली— इसमें कुछ भी संशय नहीं है। हे मुने ! जो मनुष्य रज्जु के आकर्षण के द्वारा रथ का आकर्षण किया करता है वह अपने कुल का उद्धार कर दिया करता है जो कि पूर्वज-पिता-पितामह आदिक होते हैं उस सबका उद्धार कर देताहै। हे द्विजोत्तम ! जो लोग परम संयत होते हुए दक्षिण

दिशाकी ओर अभिमुक्त होकर गमन करते हुए नर दीप का दमन किया करतें हैं वे सीधे ही स्वर्ग चले जाया करते हैं जो सूत्र के द्वारा क्षेत्र को—रथ को अथवा देव को वेष्टित किया करतेहैं वे भी परमपुण्य के करने वाले हैं और अपनी सभी कामनाओंकी प्राप्ति कर लिया करते हैं। जो मनुष्य भगवान् दिवाकर की भक्तिसे प्रदक्षिणा करते हैं उनने तो मानों सातों द्वीपों वाली सम्पूर्ण वसुन्धरा की प्रदक्षिणा करली हैं अर्थात् सम्पूर्ण बसुन्धरा की परिक्रमा करने का फल उन्हें प्राप्तहो जाया करता है। प्रातः काल में उठकर भक्ति भाव से जो कोई मौन व्रत धारण करने वाला भगगान् दिवाकर के समीप में जाया करता है उसकी चर्चा और पुण्य फल बतलाते हैं।५५-६३।

दृष्ट्वातुग्रवंद्वारेण नमस्कृत्यद्विजोत्तम ।
प्रविष्य दक्षिणेनैव रथचक्रं प्रपूजजेत् ।६४
तेनद्वारेण निष्क्रम्य प्रणिपत्यब्रजेत्ततः ।
पश्चिमद्वारमाश्रित्य रथस्थंसूर्यमर्चयेत् ।६५
चामरे त्र वितानञ्च घण्टां वापि तिवेदयेत् ।
पर्वद्वारे तू गौर्देया तथाऽश्वश्चै दक्षिणे ।६६
पश्चिमेंचगजः प्रोक्तं उत्तरेरथएवच ।
कुर्यादिवं तु योयात्रां रथदीपस्य मानवः ।६७
गो सूर्यं शिवशक्राणां स्वलोक्यं भभते सुभम् ।
प्रदक्षिणा महामेरोः कृता तेन भवेन्मुने ! ६८
दद्याद्गवाँ सहस्रं यो व्यतीपातशतेनच ।
अश्वानाञ्च सहस्रेणयात्रायांतत्फलंलभेत् ।६९
नरदोपेरथारूढे वपनकारयेत्त् यः ।
श्रिया न विच्युतिस्तस्य सूर्यलोके महीयते ।७०

हे द्विजोत्तम ! पूर्व दिशा के द्वार को देखकर नमस्कार करे दक्षिण द्वार से प्रवेश करके रथ चक्र का पूजन करना चाहिए।६४। उस द्वार से निकलकर प्रणिपात करके वहाँ से गमन करे। पश्चिम दिशाके द्वार

हे द्विजोत्तम ! पूर्व दिशा के द्वार को देखकर नमस्कार करे दक्षिण द्वार से प्रवेश करके रथ चक्र का पूजन करना चाहिए ।६४। उस द्वार से निकलकर प्रणिपात करके वहाँ से गमन करे । पश्चिम दिशा के द्वार का आश्रय ग्रहण करके रथ में स्थित सूर्यका पूजन करना चाहिए । वहाँ पर दो चमर,वितान और घण्टा निवेदित करे । पूर्व द्वार में गौ देनी चाहिए । दक्षिण द्वार पर अश्व समनपत करे । पश्चिम द्वार पर हाथी देवे और उत्तर दिशा के द्वार पर रथ समर्पित करे । इस तरह-से जो मानव रथ पर दीपकी यात्रा करे वह मनुष्य गो-सूर्य—शिव और इन्द्रके स्वलोक्य के सुख का लाभ प्राप्त किया करता है । हे मुने ! यह समझ लो कि उस मनुष्य ने महामेरुकी प्रदक्षिणा करली हैं अर्थात् उसे मेरुकी परिक्रमा करनेका पुण्य प्राप्त होता है । जो सौ व्यतीपातों में एक सहस्र गौओं का दान करता और सहस्र अश्वों को दान करता है यात्रा में उसका फल उसे प्राप्त हो जाया करता है । नर दीपके रथ पर समारूढ होने पर जो वपन कराया करता है उस पुरुष की श्री कभी भी विच्युत नहीं हुआ करती है और अन्त में वह सूर्यलोक में महत्यकी प्राप्ति किया करता है ।६५-७०।

सूर्यस्य पुरतो वाप्यां मासं नित्यं विगाह्य च ।
यस्तमालोकते मर्त्या दुस्स्वप्नं तस्य नश्यति ।७१
भक्त्यायोनुदिनव्यास ! नरदीपं प्रपश्यति ।
उत्तमं स्थानमासाद्य पुत्रपौत्रसमन्वितः ।७२
प्रक्रीडच बन्धुभिः सार्द्धं मृत सूर्यपुरम्व्रजेत् ।
प्रणष्टेतिमिरेविप्र जातेसर्वत्र सुप्रभे ।७३
हतेऽन्धके महेशेन शूलेनत्रिशिखेनवै ।
प्रहृष्टाश्च सुरासर्वे ब्रह्मेन्द्रप्रमुखास्तदा ।७४
शंखंदध्मौ तदा विष्णुः सुराणां हितकाम्यया ।
तत्र तीर्थमथोत्पन्नं शंखोद्धारणसञ्ज्ञकम् ।७५
तत्र सन्निहितोर्विष्णुर्लिङ्गञ्चैवचतुर्मुखम् ।
अनाद्यञ्चैवविप्रेन्द्रलिङ्गस्यच समीपतः ।७६
देवस्य दक्षिणे भागे शलेनालक्षितः स्थितः ।
चतुर्द्दश्या तथाऽष्टम्यां ये पश्यन्ति जितेन्द्रियाः ।७७

सूर्यदेव सामने स्थित बावड़ी में जो अवगाहन करके मनुष्य उसका दर्शन करता है उनके दुःस्वप्न का कुफल नष्ट हो जाता है ।७। हे व्यास देव ! भक्ति से जो अनुदिन नर दीप के दर्शन करता है वह अत्युत्तम स्थान पाकर पुत्र - पौत्रादि समन्वित होता है और अपने बन्धुओं के साथ आनन्द सहित क्रीड़ा करके मृत्यु प्राप्त करने पर वह सूर्य पुर में गमन करता है । हे विप्र ! उस तिमिर केनष्ट हो जाने पर सर्वत्र सुन्दर प्रभा के उत्पन्न होने पर तीस शिखा वाले त्रिशूलसे भगवान् महेश्वर के द्वारा अन्धक दैत्य के निहत हो जाने पर ब्रह्मा इन्द्र आदि प्रधान सभी सुरगण बहुत ही प्रसन्न हो गये थे । उसी समय सुरगणों की दिल की कामना से भगवान् विष्णु ने अपना शंख बजाया था वहाँ पर शंखोद्धारण नाम वाला तीर्थ समुत्पन्न हो गया था ।७२-७५। हे विप्रेन्द्र! वहां पर विष्णु सन्निहित रहते हैं । लिंग के समीप में अनाद्य चतु-र्मुख लिंग सन्निहित हैं । देव के दक्षिण मार्ग में शूल से आलक्षित स्थित रहते हैं । जो इन्द्रियों को जीत लेने वाले लोग चतुर्दशी तथा अष्टमी तिथि में उनका दर्शन किया करते हैं उनका महान् पुण्य होता है ।७६-७७।

ते क्षीगाशेषपापौघाः द्राप्स्यन्तिपरमां गतिम् ।
योगिनीनां वाले यस्तु यथावत्सम्प्रदास्यति ।७८
भूतप्रेतपिशाचाद्यैर्नासौकेनापिबाध्यते ।
द्वादशी समुपोष्यैव स्नात्वादेवं जनार्द्दनम् ।७९
यः पश्येच्छखिन देवं सोऽच्यतं स्थानमाप्नुयात् ।८०
यः स्थूलसूक्ष्मः प्रकटप्रकाशो यस्सर्वजुतो न च सर्वभूतः ।
विश्वं यश्चैव हि विश्वहतुर्नमोऽस्तु तस्मपुषोत्तमाय ।८१

उन मनुष्यों के अशेष पापोंके समूह क्षीण हो जाते हैं और वे परम श्रेष्ठ गतिको प्राप्त हुआ करता है । जो जहाँ पर योगिनियोंकी बलियथा वत् सम्पादन करता है वह भूत प्रेत और पिशाच आदिके द्वारा कभीभी वाधित नहीं किया जाता है । द्वादशों के दिन भली भाँति उपवास करके स्नान करने के पश्चात् जो देव जनार्दन शंखधारी देव का दर्शन किया

करता है वह अच्युत स्थान को प्राप्त करना है ।७८-८०। जो स्थूल और सूक्ष्म स्वरूप वाला है प्रकट प्रकाश से युक्त है, जो सर्वभूत है और सर्वभूत नहीं है जिससे यह सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न होता है और जो इस विश्व का हेतु है उस परम पुरुषोत्तम के लिये नमस्कार है ।८१।

— — —

७६—गयातीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रृणु व्यास ! प्रवक्ष्यामि तीर्थमेकमत परम् ।१
तीर्थामामुत्तमतीर्थं गयानामेतिनामतः ।
यत्रस्नात्वानरो नित्यं मुच्यतेचऋणत्रयात् ।२
देवान् पितृन्समध्यर्च्य विष्णुलोकं स गच्छति ।
कीकटेषुगयापुण्या पुण्या पुनः पुनः ।३
तीर्थानामुक्तमंत्तीर्थंपुण्योराजगिरिस्तथा ।
च्यवनस्याश्रमष्पुण्यः पुण्योराजगिरिस्तथा ।४
सकथ विदितोदेशे महाकालवने शुभे ।
एतद्वेदितुमिच्छामि विस्तरेण तपोधन !
श्रृणु व्यास ! कथाम्पुण्यां पवित्रां पापहारिणीम् ।५
यस्याः श्रवणमात्रेण पित्तरोयान्तिसद्गतिम् ।
पुराकृतयुगे पुण्ये युगादिदेव नामतः ।६
राजासीत्सतुधर्मात्मापुण्यश्रप्रणकीर्तनः ।
तस्यपालयत सम्यक्प्रजाःपुत्रनिवौरसान् ।७

भगवान् सनत्कुमारजी ने कहा—हे व्यास ! अब मैं एक इससे भी परमोत्तम आगे तीर्थ के विषय में बतलाता हूँ । आप उसका श्रवण कीजिएगा ।८२। समस्त तीर्थों में परम उत्तम नाम से गया कहे जाने वाला एक श्रेष्ठ तीर्थहै, जिस तीर्थमें स्नान करके मनुष्य नित्यही तीनों ऋणोंसे छुटकारा पा जाया करताहै । देवों को और अपने पितृगणों को वहाँ पर भली भाँति अभ्यर्चन करके वह मनुष्य सीधा विष्णु लोक को चला जाता है ।८३। श्री व्यासदेव ने कहा था—व्यासजी बोले-कीकटों

में गया परम श्रेष्ठ पुण्यमयी पुनः पुनः नदी है। तीर्थों में उत्तम तथा पुण्यमयी राजगिरि हैं। च्यवन का आश्रम पुण्यमय है तथा राजगिरि पुण्यमय है। परम शुभ महाकाल वन में और देश में वह कैसे विदित हुआ है–हे तपोधन ! मैं यह जानना चाहता हूँ। आप विस्तारसे कहिए श्री सनत्कुमारजी ने कहा–हे व्यास ! अब आप पापों का हरण करने वाली इस परम पवित्र कथा का श्रवण कीजिये जिससे ही पितृगण सद्‌-गति को प्राप्त को जाया करते हैं। पुरातन समय में परम पुण्यमयकृत-युग में एक युगादि देव का नाम राजा हुआ था। वह बहुतही धर्मात्मा और पुण्य श्रवण तथा कीर्तन वाला था। उसकी प्रजा ऐसी थी जिसका वह अपने सौरस पुत्र पौत्रों के समान ही पालन किया करता था।२-७।

बमूढु सर्व सम्पन्ना बर्द्धमानाः समन्ततः।
धर्मःश्चतुष्पदोनित्य यस्मिन्राज्ञिप्रशासति।८
कालवर्षी च पर्जन्यो ऋतवः स्वांगचारिण।
वहु सस्यफला पृथ्वो गावश्च बहुतुग्धदाः।९
वेदवादरताविप्राः क्षत्रियीबाहुशालिनः।
वैश्याधनपरा नित्यं शूक्षषणेरनाः।१०
वर्णाश्रमरताः सर्व सवधर्मोपदेशकाः।
श्रुतिस्मृतिपरोधर्मोहृष्टजनाकरः :११
नाधिब्ताध्यभिसम्भुता लक्ष्यन्ते केऽपि मानवाः।
दुशीला दुर्भगा नार्या विधवा नो तथैवच।१२
वहपुत्राल्पपु त्रश्च मृतपु त्रानवन्धियका।
रूपशीलगुणोपेताः पतिव्रतपरायणाः।१३
सुमार्गकरसंकीर्णां दस्युदोषविवर्णिता।
हूयताम्भुज्यतांशश्वद्दीयताञ्च गृहे गृहे।१४

प्रजाजन सर्व सम्पन्न और सभी प्रकार से बर्द्धमान हुए थे। राजा के प्रशासन काल में जिस समय में नित्य ही धर्म चार पदों वाला अर्थात् सर्वांग पूर्ण था। मेघ समय पर वर्षा करने वालाथा और

सभी ऋतुएँ अपने २ अंगों के समाचरण करने वाली थी। भूमि बहुत शस्यों के फलने वाली थी और गौएँ बहुत अधिक दुग्ध देने वाली थीं। विप्रगण सब वेदों के बाद करने में रति रखने वाले थे और क्षत्रिय लोग बाहु बल से सम्पन्न थे। वैश्य धन परायण अर्थात् बहुतही सम्पत्तिशाली थे तथा शूद्रगण सबकी श्रश्रूषा करने में रत रहा करते थे। सभी लोग अपने-२ वर्णों और आश्रमों में निरत रहने वाले थे सभी धर्मों के उपदेशक थे। उस समय में श्रुति तथा स्मृति में परायण ही धर्म था और हृष्ट पुष्टजनों की खान था। वह ऐसा शासन एवं धर्मका प्रभाव था कि उस समय में कोई भी मनुष्य आंधि (मानसिक व्यथा) और व्याधि [शारीरिक रोग] से अभिसम्भूत दिखलाई नहीं देते थे। नारियांभी बुरे स्वभाव वाली—बुरे भाग्य वाली तथा विधवाएँ नहीं होती थीं। उस समय में धार्मिक राजा के शासन का ऐसा प्रभाव था कि स्त्रियां बहुत पुत्रों वाली—अल्प पुत्रों वाली—मृत वत्सा और वन्ध्याएँ नहीं थी। सभी नारियाँ रूप लावण्य और गुणों से समन्वित थी तथा पतिव्रत धर्म में परायण रहने वाली थीं। समस्त पृथ्वी सुमार्ग कर संकीर्ण थी तथा दस्यु [चोर डाकूओं] के दोष से रहित थी। सभी जगह घर-घरमें हवन भोजन, दान निरन्तर हुआ करते थे।८-१४।

जपमानतपोहोमस्तुतियज्ञक्रियापरः।
जनाः सर्वत्र दृश्यन्ते सर्वधर्म परायणा।१५
चतुष्पदचराधर्मोह्यधर्मः पादविग्रहः।
एव राजा सधर्मात्मा युगादिदेवञ्जितः:१६
येनेयं पालिता पृथ्वीधर्मेण वर्द्धिताः प्रजाः।
अवन्त्याँच पराब्यास, यज्ञकोटिं समाचरत्।१७
तस्मिन्कालेऽति विक्रान्तस्तुहुण्डानामदानबः।
तेन सर्व वशं नीतं चरचारमिदं जगत्।१८
घोर तप्त्वा तपः पुण्यं ब्रह्मलब्धवः खलः।
नैवदेवानयज्ञाश्च वेदमार्गविर्वजिता।१९

देवतापूजनं नाम्नि स्वधास्वाहानदृष्यते ।
उत्सन्नोधर्ममार्गोऽयेशाश्वतोवैदुरासदः ।२०
नष्टप्रायाः सुरास्तेन कृतः सर्वोत्तमाः ।
ब्रह्माणं शरणं जग्मुः पितृणांसहाधुभिः ।२१

सर्वत्र सब मनुष्य जप दान—तप—होम—स्तवन—यज्ञ और क्रियाओं में परायण रहा करते थे । सब जगह मनुष्य धर्म में तत्पर ही दिखलाई दिया करते थे । धर्म चारों पदों से युक्त सर्वांग सम्पूर्ण था और अधर्म केवल एक ही चरण से युक्त था । इस तरह से वह राजा युगादि देव नाम वाला धर्मात्मा था जिसके द्वारा यह पृथ्वी धर्मसे पालित थी और प्रजा सब ओरसे वर्धमानहो रही थी । हे व्यास ! अवन्ती पुरीमें पहिले एक करोड़ यज्ञों का समाचरण किया था उस समय में अत्यन्त विक्रम वाला एक तुहुण्ड नाम वाला दानव था। उसने इस समस्त चराचर जगत् को अपने ही वश में ले लिया था । इसके अत्यन्त परम पुण्यमय घोर तपस्या की थी और इस खल ने ब्रह्माजी से वरदान प्राप्त कर लिया था । कोई भी देवगण पूजा के योग्य नही है—न कोई यज्ञादि ही है—सब वेद के निर्दिष्ट मार्ग से रहित हो जाइये—देवों का पूजन भी कुछ नहीं है । स्वधा और स्वहा कहीं पर भी दिखलाई ही नहीं दे रहे थे । धर्म का मार्ग उत्पन्न हो गया था जो शाश्वत तथा दुरामद था । उसने सभी सुर नष्ट प्रायः कर दिये थे जो कि सबसे उत्तमों में भी उत्तम थे । वे सब सुर गण पितरों और साधुओं के सहित मिलकर ब्रह्माजी की शरण में गये थे ।१५—२१।

किं कुर्मः क्व च गच्छामस्तुहुण्डेन पराजितः ।
इति श्रुत्वा वचस्तेषां ब्रह्मा लोकपितामहः ।२२
समुत्थायततः सर्वैर्विष्णुलोकं जगामह ।
तत्रगत्वासमाराध्यं विष्णु देवगणैः सह ।२३
स्तुतिंपुरुषसूक्तेनविष्णोरतुलतेजसः ।
प्रचक्र स्तुसर्वंएतेह्यात्मनोऽभ्युदयाय च ।२४

तदा तेषाशमिच्छन्ती बागुवाच शरीरिणी ।
श्रूयताम्भोः सुरश्रेष्ठा भवतां श्रेय उत्तमम् ।२५
यूययातर्क्षितौक्षिप्रं महाकालवनं प्रति ।
गुह्याद्गुह्यतरं पुण्यं पवित्र पापनाशनम् ।२६
नोयत्रमायिनांमाया प्रकाशंयतिभूतले ।
सर्वंतीर्थमयंतीर्थं कोटितीर्थवरप्रदम् ।२७
यत्रशिप्रासरिच्छ्रेष्ठा सर्वकामफलप्रदा ।
दैत्यान्तकारिणीदिव्या महाकाली कुलेश्वरी ।२८

समस्त सुरगण ने ब्रह्माजी से प्रार्थना की थी कि हम लोग दया करें और कहाँ पर चले जावें । इन सबको तुहुण्ड ने पाराजित कर दिया है । ब्रह्माजी ने जो समस्त लोकों के पितामह हैं उनके इस वचन को सुनकर वे खड़े हुए थे, और उन सबको साथ में लेकर विष्णु लोक को चले गये थे । वहाँ पहुंच कर देवगणों सहित भगवान् श्रीं विष्णु की समाराधना की थी । उन सबने अतुल तेज वाले विष्णु की स्तुति पुरुष सूक्त द्वारा की थी । इन सभी ने अपने अभ्युदय के ही लिये यह सस्तवन किया था उसी समय उन सबके कल्याण की इच्छा करने वाली विना शरीर वाली वैष्णवी वाणी ने कहा था-हे सुरश्रेष्ठो ! आप सब लोग श्रवण कीजिए जो कि आपका परम उत्तम श्रेय है । आप सभी लोग बहुंत हीं शीघ्र भूमण्डल में महाकाल वनमें चले जाइये । यह परम गुप्त से भी गुप्त पुण्यमय और पवित्र तथा समस्त पापों का नाश करने वाला क्षेत्र है । जहाँ पर ऐसा अद्‌भुत प्रभाव है कि भूतल में बड़े से बड़े मायाधारियों की भी माया प्रकाश नहीं किया करती है । यह स्थल ऐसा तीर्थ है जो कि सम्पूर्ण तीर्थोंसे परिपूर्णहै और करोड़ों तीर्थों के वर का प्रदान करने वाला है । जहाँ पर समस्त सरिताओं में श्रेष्ठ शिप्रा नदी प्रवाहित होती हुई विराजमान है जो सभी मनोरथों को पूर्ण कर देने वालीहै । वहां पर परम दिव्य कुलेश्वरी महाकाली विराजमान रहा करती हैं जो कि दैत्यों को अन्त कर देने वाली है ।२२—२८।

कोटिकोटिगणाकीर्णा मातृणांशक्तिवर्द्धिनी ।
गयायत्रमहापुण्य फल्गुश्चैवमहानदी ।२९
पुरुषोत्तमगिरिः श्रेष्ठो यत्रदुद्धागयास्मृता ।
तथैवचगयाख्याता त्रिषुलोकेषुविश्रुता ।३०
विष्णोः षोडशपदीतीर्थं गदाधरविनिर्मितम् ।
सर्वपापहरापुण्या यत्र प्राचीसरस्वती ।३१
महासुरनदीप्रोक्ता पञ्चतिष्ठन्ति पुण्यदाः ।
न्याग्राधश्चाक्षयोनित्यः पुराप्रोक्तीमहर्षिणा ।३२
तत्रैव साशिलाप्रोक्ता प्रेतमोक्षकरीशुभा ।
तत्रैववसतेवो देवताः पितृकल्पजाः ।३३
सर्वाक्षरमयोङ्कारः सर्वदेवमयोहरिः ।
सर्वतीर्थमायादेवा गयातीर्थमनुत्तमम् ।३४
शीघ्रं गच्छतत्रैव सरांसिद्धिमवाप्यथ ।
यत्रप्रविमात्रेण पितरोनिरयस्थिताः ३५
ते सर्वे स्वगमायान्ति ब्रह्मभूयाय कल्पते ।३६

यह महाकाली देवी करोड़ों ही गणों से समाकीर्ण रहा करती हैं। पर महापुण्यमयी गया विद्यमान है और महानदी फल्गु वहती है । वहाँ सब पर्वतोंमें परम श्रेष्ठ पुरषोत्तम गिरिहै जहाँ पर बुद्ध गया कही गयी है । उस भाँति यह गया भी तीनों लोकों में प्रसिद्ध होकर ख्यात हुईहै। भगवान गदाधर के द्वारा निर्मित्त वहाँ विष्णु का पोडशपदी तीर्थ विद्यमान है । जहाँ पर समस्त पापों के हरण करने वाली परम पुण्यमय प्राची सरस्वतीहै । महासुर नदी कही गयीहै । ऐसा वहाँ पर पाँच पुण्य फलों के प्रदान करने वाली नदियो स्थित रहा करतीहैं । पुरातन समय में महर्षिके द्वारा कथित नित्य और अक्षय न्यग्रोधभी वहाँ पर विद्यमान हैं । वहाँ पर ही वह शिला बताई गयी है जो परम शुभ और प्रेतों के मोक्ष करने वाली है—वहाँ पर पितृ कल्पज समस्त देवगण निवास किया करते हैं । सर्वाक्षरमय ॐआकरहै अर्थात् ॐकारमें सभी अक्षरोंकासमा-

वेश होता है और श्रीहरि भगवान व सभी देवता विराजमान रहा करते हैं। देवगण सम्पूर्ण तीर्थों से परिपूर्ण होते हैं तथा गया तीर्थ सर्वोत्तम तीर्थ है। वहीं पर बहुत ही शीघ्रही आप लोग चले जाइये। वहाँ आप सब परासिद्धि को प्राप्त करेंगे। जिस क्षेत्र में प्रविष्ट होने मात्र से ही नरकों में स्थित पितृगण सबकेसब स्वर्ग में आ जाया करतेहैं और ब्रह्मा सूर्य कल्पित किये जाते हैं अर्थात् ब्रह्म स्वरूप हो जाते हैं।२९-३६।

———

७७—नागतीर्थ महिमा वर्णन

नागतीर्थं त्वया ब्रह्मन्पुराप्रोक्तं यशस्विना।
तस्यतीर्थवरस्याऽपिमतिमानञ्चसत्तम।१
भयस्तु श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्माविदां वर।
कियत्काले समाख्यातमेतद्विस्तरतो वद।२
शृणु ब्रह्मन्प्रवक्ष्यामितवाग्रे नागतीर्थजाम्।
कथांपुण्यतमांतुभ्यभुविपापहरांपराम्।३
यस्याः श्रवणमात्रेण शापमुक्तो भवेन्नरः।
पुरा नागा परिभ्रष्टा मातु शापात्परन्तप।४
जनमेंजये न दग्धास्ते मोक्षिता ह्यातिकेन च।
पप्रच्छुन्ते द्विजश्रेष्ठ ! जरत्कार्वात्मज तदा।५
ब्रह्मं स्वप्रसातेनमोक्षिताहव्यवाहनात्।
जनमेजयस्ययज्ञेऽमिन्द्रदेवराजस्यसन्निधौ।६
अस्माकं भूतिर्मान्विचछन्वासस्यार्थंरतप।
यस्मिथाने सदा ब्रह्मन्निवासो जायतेऽभयः।७

महर्षि प्रवर श्री व्यासजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आपने पहले नागतीर्थ का वर्णन किया था। आप तो बहुत ही यशस्वीहैं। हे श्रेष्ठत्तम! उस श्रेष्ठतम तीर्थ की महिमा को हे ब्रह्मवेत्ताओंमें वरिष्ठ देव! मैं पुनः आपके मुख से श्रवण करना चाहता हूँ। कितना समय होगया तभी आपने इसको कहा था। अब आप इसको विस्तारके साथ कहिए। श्री

सनत्कुमारजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! अब आप सुनिये, मैं आपके समक्ष इस नागतीर्थ में समुत्पन्न कथा को आपसे कहता हूँ। यह परम पुण्यतम कथा है जो कि इस महीमण्डल में पापों के हरण करने के लिये परम प्रशस्त हैं। यह कथा है जिसके श्रवण मात्र से ही मनुष्य शाप से विमुक्त हो जाया करता है। हे परन्तप ! पुरातन समय में नाग गण माता के शाप से परिभ्रष्ट हो गये थे। जन्मेजय ने उनको दग्ध कर दिया था और आस्तिक ने उनको मोक्षित किया था। हे द्विजश्रेष्ठ ! उस समय में उन्होंने जरत्कारु के पुत्र से पूछा था ।१–५। नागों ने कहा—हे ब्रह्मन् ! हम लोग आपके ही प्रसाद से इस अग्नि से मुक्ति को प्राप्त हुए हैं जबकि देवराज की सन्निधि में राजा जनमेजय द्वारा इस यज्ञ में हम सबको दग्ध किया जा रहा था। हे परन्तप ! हमारी भूति की इच्छा करते हुए आप हम लोगों के निवास करने के लिए भी स्थान निर्दिष्ट कर दीजिए जिसमें हे ब्रह्मन्! सदा भयसे रहित हमारा निवास हो जावे ।६—७।

श्रूयतांमातुलश्रेष्ठा युष्माकहितमुत्तमम् ।
महाकालवने रम्ये या वै कुशस्थलीस्मृता ।८
तस्या हि दक्षिणे भागे पूर्वंतीर्थं सनातनम् ।
नागालय पुरा प्रोक्तं यत्र सन्निसितो हरिः ।९
योगनिद्राँसमासाद्य शेते ब्रह्म सनातनम् ।
शेषशायीतिविख्यातः सर्वलोकेषुगीयते ।१०
कल्पदोषो न तत्रैव वाधते सर्वदेहिनाम् ।
बकदाल्भ्य ऋषिस्तत्र तपस्तेपे धृतव्रतः ।११
लोमशश्च महातेजास्तत्रैव प्रतितिष्ठति ।
दीर्घायुष्यं समापन्नोमार्कण्डेयो महामुनिः ।१२
न वर्तते कालचक्रं महाकालप्रतापतः ।
कपिलः सिद्धिमापन्नो यत्र तीर्थवरोत्तमे ।१३
हरिश्चन्द्रो विमुक्तोऽभूगर्ह्यंचाण्डालयोनितः ।
सप्तर्षिप्रवरायेते निर्वाणपदवीं गताः ।१४

आस्तीक ने कहा—हे मतुल श्रेष्ठो, आपके हित की बात का आप अब श्रवण करो। परम रम्य महाकाल बनमें जो एक कुशस्थली बतायी गई है। उसके दक्षिण दिग्भाग में एक सनातन [सदा से चला जाने वाला] पूर्व तीर्थ है। पहिले यह नागालय कहा गया है जहां पर श्री हरि सन्निहित रहा करतेहैं। वह सनातन ब्रह्म योगनिद्राको प्राप्तहोकर वहाँ पर शयन किया करते हैं और शेषशायी—इस नाम से वह विख्यात हैं उनका इसी नाम से सब लोकों में गायन किया जाता है। वहाँ पर समस्त देहधारियों को कल्प का कोई दोष भी बाधा नहीं दिया करता है वहां पर व्रत धारण करने वाले वकदाल्म्य ऋषि तपश्चर्या कियाकरते थे। महान् तेज वाले लोमश ऋषिभी वहाँ पर प्रतिष्ठित रहा करतेहैं। महामुनि मार्कण्डेय दीर्घायुष्य को प्राप्त हो गये हैं। भगवान महाकालके प्रताप से यहाँ पर काल चक्र नहीं है जिस उत्तम तीर्थं में कपिल मुनि भी सिद्धि को प्राप्त हो गये थे। हरिश्चन्द्र अतीव गर्ह्य [निन्दा के योग्य अर्थात् नीच] चाण्डाल योनि से विमुक्त हो गया। जो सप्तर्षि प्रवर हैं वे सब निर्वाण पदवी को प्राप्त हो गये थे।८-१४।

एतस्मात्कारणात्सर्वेस्तत्र विश्रम्यतां सदा।
मातुः शापोद्भवो दोषो युष्माकं नैव बाधते ।१५
एतत्ते वचत श्रुत्वामहर्षेरस्तिकस्यच।
अगच्छंस्तत ते शीघ्रं वासार्थं पन्नगोत्तमाः ।१६
एलापत्रः कम्वलश्च कर्कोटकधनञ्जयौ।
वासुकिः पन्नगश्रेष्ठस्तक्षको मील एव ।१७
पद्मकश्चाबुंदश्चैव नागास्ते सर्व एव हि।
अत्रागत्य स्वस्थानानि चक्रुस्ते सुचिरव्रताः ।१८
तत्ररम्याणितीर्थानिजातानिपरमाणि च।
नवानि चक्रुकुण्डानि तीर्थं भूतानिसत्तम ।१९
महापुण्यप्रदान्याहुर्महापापहराणि च
यत्र सिद्धाश्च गन्धर्वा ऋषयः संशितव्रताः ।२०

अप्सरीगणङ्घश्च सेव्यन्ते च सदा करैः ।
यत्र शेशो महानागः पुरा प्रोक्ता महषिणा २१

इस कारणसे आप सभी लोग वहीं पर सदा विश्राम करें । माताके शापसे होने वाला दोष वहाँ पर आप सबको बाधा नहीं देगा । उस सब नाग महर्षि आस्तिकके वचनका श्रवण करके वहीं पर अपने निवास के लिए शीघ्रता से चले गये । उन विशेष नागों के नामों का संक्षिप्त परिग्रणन बताते हैं—एलापत्र—कम्बल–कर्कोटक—धनञ्जय–पन्नग—श्रेष्ठ वासुकि—-तक्षक—नील—पद्मक—अर्बुद आदि वे सभी नाम थे । यहाँ पर आकर सुचिर व्रतों वाले उन्होंने अपने-२ स्थान वास के लिए कर लिये थे । वहाँ परमोत्तम एवं सुरम्य तीर्थ हो गये थे । हे श्रेष्ठतम ! नवीन कुण्डों की रचना की गयी थी जो कि सभी तीर्थों के स्वरूप वाले हो गये थे । ये सभी महान् पुण्यों के प्रदान करने वाले और महान् से महान् पापों के हरण करने वाले हैं ऐसा कहा जाता है । जहाँ पर सिद्ध-गन्धर्व और सक्षित सेतों वाले ऋषिगण सदा श्रेष्ठ अप्सराओं के संघों से सेवित किये जाया करते हैं । जहाँ पर महर्षि के द्वारा शेष महानाग पहले कहा गया है ।१५-२१।

शेषशायी ह्यलं विष्णुभँग वान्कमलेक्षणः ।
तत्र सर्वाणितीर्थानिष्ठन्तिभुविसर्वदा ।२२
श्वेतद्वीपेति विख्याता मणिविक्रान्तभूमिका ।
यत्र पुण्याश्च वै वृक्षाः पुष्पिताश्चैवंशः ।२३
हसकारण्डकाकादिपिककोकिलसारसाः ।
पद्मखण्डगणास्तत्र नत्यन्ति च शिखण्णिनः ।२४
निधिरेषहापद्मो नीलोत्पलसुगन्धिना ।
वासिनो वायुना शुभ्रः किन्नरोद्गारनादितः ।२५
यत्र सुसंस्कृता नार्यो विहरन्ति सुराङ्गनाः ।
नागकन्याभी रम्याभिर्मण्डितं परमाभूतम् ।२६
यत्रस्नावारोयाति वैकुण्ठधामशोभनम् ।
शेषशायी हरियंत्र शेते हि च रमापतिः ।२७

तत्र रमासरोनाम तीर्थं परमशोभनम् ।
यत्रस्नात्वानरो नित्यं श्रीमान्भवति नाऽन्यथा ।२८

कमल के समान नेत्रों वाले शेष की शय्या पर शयन करने वाले भगवान् विष्णु ही पर्याप्त है । इस भूमण्डल पर वहाँ पर सर्वदा समस्त तीर्थ स्थित रहा करते हैं । मणियों से विक्रान्त भूमि श्वेतद्वीप-इस नाम से विख्यात है । जहाँ पर पुण्य वृक्ष हैं जो सब प्रकार से सदा फूलों वाले रहा करते हैं । वह ऐसा स्थल हैं जिसमें हंस-कारण्ड—काक आदि तथा पिक[कोयल]—सारस और पद्म खण्ड गण एवं शिखण्डी नृत्य किया करते हैं । यह महापद्म निधि है । यह स्थल नील कमलों की सुगन्ध वाली वायुसे सुवासित रहताहै—परम शुभ्र और किन्नर गणोंके उद्गारों से ध्वनित रहा करता है । जहाँ पर सुन्दर संस्कारोंसे समन्वित नारियाँ और सुरों की अंगनाएँ विहार करती हैं । यह स्थल परम रम्य गान कन्याओं से मण्डित रहता है और परम अद्भुतहै । वहां पर मनुष्य एक बार स्नान करके ही सीधा अति शोभा सम्पन्न वैकुण्ठ धाम को चला जाया करता है । जहाँ पर रमा के पति श्रीहरि शेष की शैया पर शयन करते हुंए विराजमान रहा करतेहैं । वहाँ पर एक 'रमासर' नाम वाला अत्यन्त शोभन तीर्थं है जिनमें नित्त स्नान करके मनुष्य श्रीमान् हो जाया करता है अन्य किसी भी तरह से नहीं होता है । अथवा यह बात मिथ्या है ही नहीं—सर्वदा सत्य है ।२३-२८।

एव व्यास ! परस्थानं सर्वपापहरं परम् ।
अत्रैव च परं तीर्थं बलेराश्रमद्भुतम् ।२९
अत्रस्नानादिकं कार्यं यत्रसंनिहितोहरिः ।
सर्वपापविशुद्धात्मा नरोभवति तत्क्षणात ।३०
कियत्प्रमाणमात्रां च ददाति बसुन्धराम् ।
तनूरुहाणि यावन्ति तावत्कालसङ्ख्यया ।३१
अक्षय्या लभ्यते वृत्तिस्तेषां लोकाः सनातनाः ।
श्रावणे मासि दर्शे च पञ्चम्यां सोमवासरे ।३२

नागानां पूजनं कार्यं श्राद्धं दर्शे विधीयते ।
अक्षयं जायते श्राद्धवाञ्छितार्थं भवेत्ततः ।३३

हे व्यासदेव! इस प्रकार से यह परमोत्तम स्थान है जो समस्तपापों का हरण करने वाला है। यहीं पर पुरुषोत्तम तीर्थ बलि का अद्भुत आश्रम है। यहाँ पर भी स्नान आदि अवश्य ही करना चाहिये जहाँ कि श्री हरि भगवान सन्निहित रहा करते हैं यहाँ स्नानादिकी क्रिया करनेसे मनुष्य उसी क्षण में तुरन्त ही सब पापों से छुटकारा पाकर विशुद्ध आत्मा वाला हो जाया करता है। कितने प्रमाण वाली वसुन्धराके धन का पुण्य फल यहाँ पर होता है—इस पर बताया जाता है कि शरीरमें जितने रोम हैं उतनी ही संख्या वाली पूर्ण वसुन्धरा के दान का पुण्य हुआ करता है। उन पुरुषोंको कभी भी क्षीण न होने वाली वृद्धि प्राप्त हो जातीहै और उसको सनातन लोकों को लाभ हुआ करताहै। श्रावण मास की अमावस्या तिथि में अथवा पञ्चमी तिथिमें चन्द्रवार के दिनमें नागों का पूजन अवश्य ही करना चाहिए। दर्श में श्राद्ध का भी विधान है। वह श्राद्ध भी अक्षय हुआ करता है तथा जो कोई वाँछित अर्थ होता है उनकी भी प्राप्ति हो जाया करती है।२६-३३।

—×—

७८—अवन्तीमाहात्म्यवर्णन

भूयस्तु श्रोतुमिच्छामि त्वत्तोब्रह्मविदांवर ।
अवन्त्याश्चपरं पुण्य महिमानश्रुतमया ।१
त्वया ब्रह्मविदा प्रोक्तं वत्सरव्रतपारणम् ।
तीर्थस्यास्य सुविस्तारात्स्नातकानां द्विजोत्तम ! ।२
अचिरेणतुकालेन तीर्थस्यफलमश्नुते ।
सिद्धोभूत्वा नरोयाति तद्वत्वद्विजोत्तम ।३
गुह्याद्गुह्यतरंवत्स पृच्छसित्वमममानघ ।
तत्तेहसम्प्रवक्ष्यामि शृणुष्वत्वं समाहितः ।४
महाकालंततोगच्छेन्नियतोमियतात्मना ।
कोटितीर्थेनसुष्नात्वा पुनर्जन्मनविद्यते ।५

नास्तिवत्समहीपृष्ठे शिप्रायाः सदृशीनदी ।
यस्वानिरीक्षणन्मुक्तिः किञ्चिरात्सेवनेनवै ।६
माधवेमासियोदेवं पूजयेपुरुषोत्तमम् ।
मोचनेमुच्वतेनित्यं तर्पणादेकवासरात् ।७

महर्षि प्रवर श्री व्यास ने कहा—हे ब्रह्म में ज्ञान रखने वालों में परम वरिष्ठ, मैंने अवन्ती की परम महिमाका श्रवण कर लियाहै किन्तु पुनः मैं कुछ आपसे श्रवण करने की अभिलाषा रखता हूँ । हे द्विजोत्तम, आपने जो कि परम ब्रह्मा वेत्ता हैं पूरे एक वर्ष के व्रतका पारण वर्णित किया था सो स्नातकों को उस व्रत का जो कि इस तीर्थ पर किया जाता है पूर्ण विस्तार के साथ वर्णन कीजिये । हे द्विजों में परम श्रेष्ठ, अब यह बताइये कि कैसे मनुष्य बहुत स्वल्प समय में ही इस तीर्थ का फल प्राप्त कर लिया करता है और परम सिद्ध होकर प्रयाण करता है? श्री सनत्कुमारजी ने कहा—हे वत्स ! हे निष्पाप ! आप तो इस समय में परम गोपनीय के भी गोपनीय बात मुझसे पूछ रहे हैं । अच्छा मैं आपको तो यह भी बतलाऊँगा । अब आप बहुतही सावधान चित्तवाले होकर श्रवण कीजिये । इसके उपरान्त पूर्णतम नियत आत्म से नियत होकर महाकाल तीर्थ में मनुष्य को गमन करना चाहिए । कोटि तीर्थ में मनुष्य स्नान करके फिर दूसरा जन्म ग्रहण नहीं किया करता हैं । हे वत्स ! इस मही मण्डल में शिप्रा के तुल्य अन्य कोई भी नहीं है। जिसके केवल निरीक्षण कर लेने से ही मनुष्य की मुक्ति हो जाया करती हैं, चिरकाल पर्यन्त सेवन करने की बात ही क्या कही जावे । माधव मास में जो कोई पुरुषोत्तम देव का पूजन किया करता है वह नित्य ही मुक्त हो जाया करता हैं और केवल एक ही दिन में तर्पण करने से भी मुक्त हो जाता है ।७।

अवन्त्यामङ्गपाताख्य ये पश्यन्ति जनार्दनम् ।
न तेषाँ पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ।८
इतिव्यासवचस्वंवदन्तिनियतात्मनः ।
बाराहमत्स्यकन्दाद्या लोमशश्चमहामुनिः ।९

विधितश्चापितीर्थस्यश्रृणुपुण्यसमम्पुनः।
योवैस्वल्पेनपुण्येनतीर्थस्यफलमिच्छति ।१०
तस्यसर्वस्यवयाक्ष्यामिश्रृणुष्वेदं तपोधन।
सर्वतीर्थफलाकाङ्क्षी शुचिः प्रयतमानसः।११
अवगाहव्रतीयाति तीर्थानिचाष्टविंशतिः।
ऊर्जेमाघेतथाषाढे वैशाखेचविशेषतः।१२
यदाकदापुरीं प्राप्य कर्तव्यतीर्थं मज्जनम्।
सर्वतीर्थफलं प्राप्य शिवलोकेमहीयते।१३

अवन्ती में जो अंगपात नाम वाले जनार्दन प्रभु का दर्शन किया करते हैं उनकी फिर करोड़ों कल्पों में भी इस संसारमें पुनरावृत्ति नहीं हुआ करनी है अर्थात् वे फिर जन्म ग्रहण नहीं किया करते हैं। व्याप्त! सभी नियत आत्मा वाले लोग इस वचन को कहा करते हैं। वाराह—मत्स्य और कन्द आदि तथा महामुनि लोमश यही कहतेहैं। तो भी पुनः पुण्य सम तीर्थ की विधि का श्रवण करलो। जो कोई स्वल्प पुण्य ही से तीर्थं के फल की इच्छा किया करता है उसका सभी कुछ में बताऊँगा। हे तपोधन! इसे अत्र आप सुनिए। समस्त तीर्थों के फलोंकी आकाँक्षा रखने वाला-शुचि |पवित्र| प्रयत मन वाला अवगाहन के व्रत से युक्त अट्ठाईस तीर्थों को जाया करता है। आश्विन-माघ-आषाढ़ और विशेष रूप से वैशाख मासमें जब कभी पुरी पहुँच कर तीर्थं का मज्जन करना चाहिए। वह सभी तीर्थों का पुण्य फल प्राप्त करके शिव लोक में महिमान्वित होकर प्रतिष्ठित हुआ करता है।८-१३।

शिप्रातीरेहिवर्तन्तेपुराख्यातानसूरिभिः।
पुण्यानितीर्थ मुख्यानितानितानिमेगदतः श्रृणुः।१४
पापार्दितः शुचिर्भूत्वा विष्णुविष्णुरितिस्मरन्।
आदाय नियमं सर्वं स्नातकानाञ्च सत्तम!।१५
स्नात्वा रुद्रसरे नित्यं कृत्वा श्राद्धादिकं तथा।
यथाशक्ति परां वत्स! गां दत्वा चैव काञ्चनीम्।१६

तीर्थराजनमस्तुभ्यं निजतीर्थावगाहने ।
अनुज्ञांदेहिमेनित्य करिष्यामितबार्चनम् ।१७
ततः प्रयातितत्तीर्थं कर्कराजाभिध सरः ।
तत्र स्नानादिकं कृत्वा घृतपात्रप्रदापयेत् ।१८
नृसिंहाख्यपथं तत्रस्नायाद्द्विजोत्तम ! ।
कृष्णाजिनंततोदद्यात्मकार्यविशु ।१९
संगमो नीलगंगायाः शिप्रायाश्चैवसत्तम ।
तत्र स्नात्वाशुचिर्भूत्वादृष्ट्वाचसंगमेश्वरम् ।२०
वाहनञ्च ततो देयं द्विजातिभ्य स्वलङ्कृतम् ।
भूषणानि च देवानियानानि विविधानि च ।२१

श्री सनत्कुमार जी ने कहा—शिप्रा नदी के तट पर परम पुण्यमय तीर्थ मुख्य हैं जिनको कि पहले विद्वानों ने बतलाया है और परमप्रसिद्ध हैं उनको मैं बतलाता हूँ आप उन्हें सुनिए। पापों से जो अदिति है वह परम शुद्ध होकर 'विष्णु इस तरह से भगवान का स्मरण करते हुए हे श्रेष्ठतम, स्नातकों के समग्र नियमों को ग्रहण करके नित्य ही रुद्रसर में स्नान करके तथा श्राद्ध आदिकी क्रियाओंको सम्पादन करके इन्हें वत्स! अपनी शक्ति के अनुसार काञ्चनी गौओं का दान करके यह तीर्थ से प्रार्थना करे—हे तीर्थराज आपकी सेवा में मेरा नमस्कार समर्पित है। अपने इस तीर्थ में अवगाहन करने के लिये मुझे अनुज्ञा प्रदान कीजिए। मैं नित्य ही आपका समर्चन करूँगा। यही प्रार्थना करने का यहाँ पर मन्त्र है। इस प्रार्थना करने के पश्चात् ही कर्कराज नाम वाले सर पर आये जो कि महान् तीर्थ है वहाँ पर स्नान आदि करके घृतपात्र प्रदान करावे। हे द्विजोत्तम ! नृसिंह तीर्थ है वहां पर स्नान करना चाहिए। इसके अन्तर अपने कार्य की विशुद्धि के लिये कृष्णाजिन का दान करना चाहिए। हे सत्तम ! वहाँ पर नील गंगा और शिप्रा का संगम है। उसमें स्नान करके और शुचि होकर तथा संगमेश्वर प्रभु का दर्शन करके इसके पश्चात् द्विजों के लिए अलंकारों से विभूषित

किया हुआ वाहन का दान करे और भूषण देवे तथा विविध प्रकार के दानों का दान करना चाहिए ।१४-२१।

ततः प्रायाद् व्रती सम्यक् तीर्थं पैशाच्चमोचनम् ।
तत्र स्नात्वा च विधिवादार्ह्निकादि च कारयेत् ।२२
गासवत्सां ततो दद्याद्वेदवेदांगपारिणे ।
सीदत्कुटुम्बिने नित्यं द्विजाय मुनिसत्तम ।२३
महादानानिसर्वाणि तत्रदेयानिसत्तम् ।
पिशाचेशं ततो दृष्ट्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।२४
गन्धर्वतीर्थं गच्छेच्च नियमो व्रतकारकः ।
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा श्राद्धं कुर्यात्समाहितः ।२५
षष्टिजल्पेश्वर देवं पूजयेद्विधिवन्द्विज ।
ब्राह्मणेभ्यस्ततोद्गेहदानादिक परम् ।२६
दासीदासन्तोदेयं सर्वकायार्थसिद्धये ।
धनवान् पुत्रवाँल्लोके मृतोमोक्षमवाप्नुयात् ।२७
ततो गच्छेद्व्रतींविप्र केदारं तीर्थमुत्तम ।
तत्रस्नात्वामहादान ब्राह्मणेभ्यस्समर्तयेत् ।२८

इसके अनन्तर व्रत धारण करने वाले को पैशाच्य मोचन तीर्थ में अच्छी तरह से जाना चाहिए । वहाँ पर विधि-विधान के सहित स्नान करके आह्निक आदि करे । इसके पश्चात् किसी वेदों और वेदांगों के पारगामी द्विज के लिए वत्स से युक्त गौ का दान करना चाहिए । हे मुनिश्रेष्ठ ! दान सर्वदा ऐसे ही ब्राह्मणको देना चाहिए जो धनाभावमें अवसन्न कुटुम्बी हो । हे सत्तम ! सभी महादान ऐसे ही द्विज को वहाँ पर देने चाहिए इसके अनन्तर भगवान् पिशाचेश्वर के दर्शन करे जिससे मनुष्य सभी पापों से प्रमुक्त हो जाया करता है । व्रत के करने वाले और नियमों में स्थित मानव को इसके उपरान्त गन्धर्व तीर्थ को जाना चाहिए । वहाँ पर स्नान करके शुचि हो जावे और फिर समाहित होकर उसको श्राद्ध करना चाहिए । हे द्विज! फिर षष्टि देवेश्वर देव की विधि के सहित अर्चा करे और फिर द्विजों को परम श्रेष्ठ गृह और

दान आदि देना चाहिए । सब कार्यों का अर्थ सिद्धि के लिए दासी और दास भी देवे । इससे लोक में धन सम्पन्न और पुत्रों वाला होता और अन्त में मृत्युगत होकर मोक्ष की प्राप्ति किया करता है। इसके अनन्तर व्रती पुरुष को अत्युत्तम तीर्थ केदार को हे विप्र ! गमन करना चाहिए। वहाँ पर भी स्नान करे और ब्राह्मणों के लिये महादान देवे ।२२-२८।

शुभगोमिथुनं दत्वा विधिवत्रकारयेत् ।
कम्बलाजिनवासांसि तत्रदेयानिसत्तम् ।२९
सर्वपापविशुद्धात्मा शिवलोके महीयते ।
चक्रतीर्थेनरःस्नात्वा चक्रपाणिसमर्चयेत् ।३०
शंखशस्त्रविमानानि तत्रदेयानि सत्तम् ।
मुच्यते सर्वपातेभ्यो विष्णुलोके महीयते ।३१
सोमतीर्थे नरःस्नात्वा दृष्ट्वा सोमेश्वरं शिवम् ।
ननिर्मलाङ्गो नरो भाति कण्ठरोगो न बाधते ।३२
इक्षुवेन्वादिकदानं तत्रदेय द्विजायते ।
देवप्रयागणच्छेच्च स्नानार्थं द्विजसत्तम ।३३
तत्रू स्नात्वाशुचिर्भूत्वा देवमाधवर्चयेत् ।
गुडधेनुः प्रदातव्या विधिदृष्टेन कर्मणा ।३४
सर्वपापविशुद्धात्मादेवलोके महीयते ।
प्रयागे परम व्यास वेणीतीर्थंमनुत्तमम ।३५

हे सत्तम ! अति सुभग गायों का जोड़ा दान करे जो कि पूर्ण शास्त्रोक्त बिधान के साथ करना चाहिए वहाँ पर कम्बल—अजिन—और वस्त्रों का दान देवे । ऐसा करने वाला पुरुष सभी पापों से विशद्ध आत्मा वाला होकर शिव लोक में समवस्थिति प्राप्त किया करता है । चक्र तीर्थ में मनुष्य स्नान करके उसे फिर भगवान् चक्रपाणि का अर्चन करना चाहिए । हे श्रेष्ठतम ! वहाँ पर शंख शस्त्र और विमानोंका दर देना चाहिए। वह मनुष्य समस्त प्रकारकेघोरतम पापों से भी छुटकारा पाकर विशुद्ध हो जाया करता है और अन्त में विष्णुलोक में प्रतिष्ठित होता है । सोम तीर्थमें मनुष्य स्नान करके तथा सोमेश्वर भगवान् शिव

का दर्शन प्राप्त करके परम निर्मल अङ्गों वाला मनुष्य हो जाया करता है और अत्यन्त दीप्तिसे शोभित हो जाताहै कि कुछ रोग उसको फिर बाधा नहीं देता है। ईख, धेनु, आदि का दान वहाँ पर द्विजातिको देना चाहिए हे द्विजों में परम वसिष्ठ ! और देव प्रयाग को गमन करे जहाँ पर पहुँच कर स्नान करना चाहिए। वहाँ स्नान करके परम शुचि हो जावे और फिर माधव देव का यजन करे। विधि में देखे हुए कर्म के अनुसार वहाँ पर गुड और धेनु का दान अवश्य ही करे। वह आदमी सभी पापों से विशुद्ध आत्मा वाला होकर देवलोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है। हे व्यास ! प्रगोग में परमोत्तम वे तीर्थ हैं ।२६—३५।

तत्र स्नानञ्चचकर्त्तव्यं तिलामलकसंयुतम् ।
प्रयागेशतथाभ्यर्च्य सकलंफलमुश्नुते ।३६
तिलधेनुः प्रदातव्या विधिवद्द्विजपुङ्गवे ।
सर्वकामवरम्प्राप्य विष्णुलोके समोदते ।३७
ततो गच्छेद् व्रती भूयो योगतीर्थ मनुत्तमम् ।
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा योगिनीश्वरमर्चयेद् ।३८
जलधेनु ततो दद्याद्दीर्घायुश्च सुखीभवेत् ।
कपिला श्रमपरतीर्थनरोगच्छेत्तत परम् ।३९
स्नानदानादिक कृत्वा कपिलेश्वरमर्चयेत् ।
मुच्यते सते सर्वपापेभ्यस्तपोलोके स गच्छति ।४०
घृतकुल्यापर तीर्थं शिप्रकूलेच पश्चिमे ।
तत्र स्नात्वानरोनित्यं घृतधारेश्वरं शिवम् ।४१
पूजयेद्विधिवद्विप्र घृतधेनुं समर्पयेत् ।
प्राप्यपुण्यकृतांतल्लोकान् सर्वपापैः प्रमुच्यते ।४२

वे वेणी तीर्थ में तिल और आवलों के साथ स्नान करे इसके अनन्तर प्रयागेश्वर प्रभु का अभ्यर्चन करे। इसका ऐसा महान् प्रभाव होता है कि मनुष्य सभी प्रकार के फलों का लाभ लिया करता है। यहाँ पर किसी श्रेष्ठ द्विज की तिलों और धेनु का विधिपूर्वक दान देना चाहिए। वह मनुष्य समस्त कामनाओंकी सिद्धि का वरदान प्राप्त करके

अन्त में विष्णु लोक में सानन्द प्रतिष्ठित हुआ करता है इसके पश्चात् उस तीर्थाटन में व्रत धारी पुरुष को अतीव उत्तम योगतीर्थ में जाना चाहिए वहाँ पर अवगाहन करके पहिले परम विशुद्धि प्राप्त कर लेवे और फिर श्री योगिनीश्वर प्रभु का समर्चन करना चाहिए ।३५-३६। वहां जल धेनु का दान करे । इससे दीर्घ आयु वाला और परम सुख से सम्पन्न हो जाता है । इसके पश्चात् परमश्रेष्ठ कपिलाश्रम नामक तीर्थ के लिए गमन करे वहाँ पहुंच करभी स्नान आदि समस्त प्रथम कर्त्तव्य सम्पादित करके फिर कपिलेश्वर भगवान् की अर्चना करे वह मनुष्य सब पापों से छुटकारा पा जाया करताहै । और फिर तपोलोकको गमन किया करता है । शिप्रा नदी के पश्चिम दिग्भाग में तट पर एक घृत-कुल्या नाम वाला परम श्रेष्ठ तीर्थ है । वहाँ मनुष्य को नित्य स्नान करके घृतधारेश्वर शिव का विधान सहित पूजन करना चाहिए । हे विप्र ! वहाँ घृत धेनु का दान ब्राह्मण के समर्पित करना चाहिए इस का यह पुण्य फल होता है कि पुण्य कृत लोकों को पद प्राप्ति कर लेता है और इसके पूर्व ही सब पापों से विमुक्त हो जाया करताहै । ३६-४२

मधुकुल्यांचरःस्नात्वा पूजयित्वा महेश्वरम् ।
मधुदान प्रकुर्वीत इक्षधेनुं ततः परम् ।४३
ऊषरं परम तीर्थं सर्वतीर्थ फलप्रदम् ।
तत्र स्नात्वा नरः पश्येन्महेशमूषरेश्वरम् ।४४
फलमूलादिक देय प्राप्यते मोक्ष उत्तमः ।
नरादित्यः स्थितो यत्र तत्र तीर्थ पर स्मृतम् ।४५
तत्र स्नात्वा नरः पश्येत क्षेत्रादित्येश्वरम् ।
रथदानततोदत्वा नरलोकेसगच्छति ।४६
केशवार्कोपरादेवस्तत्तीर्थपरस्सृतम् ।
तत्र स्कान विधेयञ्च केशवार्कं समर्चतम् ।४७
अन्नं बहुविधदेय तत्र तोर्थद्विजोत्तम ।
कालभैरव आख्यातस्तत्रतीर्थं महाव्रती ।४८

तत्रस्नात्वानरोनित्यद्दष्ट्वाभैरवमन्तकम् ।
दद्यात्पूर्णं महादान नगच्छेद्यमशासनम् ।४६

एक वहाँ पर मधुकुल्या नाम वाला भी तीर्थ है। वहाँ पर स्नान करके महेश्वरकी पूजा करे— मधु का दान करे और इसके पश्चात् ईख और धेनु का दान दे। एक समस्त तीर्थों के फलों का देने वाला ऊषर नामक परमोत्तम तीर्थहै वहां पर मनुष्यको स्नान करके ऊषरेश्वर महेश का दर्शन करना चाहिए। वहाँ फल और मूल प्रभृति का दान देवे इसके उत्तम मोक्ष की प्राप्ति की जाया करती है। जहाँ पर नरादित्य स्थितहै वहाँ पर परमोत्तम तीर्थ कहा गया है। वहां पर मनुष्यको स्नान करके परम प्रभु क्षेत्रादित्येश्वर का वर्णन करना चाहिए। फिर रथ का दान करे। वह नरलोक में गमन किया करता है। केशव के सर्व शिरोमणि परमदेव है अतएव उनका तीर्थ सवश्रेष्ठ है ऐसा कहा गया है। वहाँ स्नान और केशवार्क का अभ्यर्चन करना ही चाहिए। द्विजोत्तम ! अनेक प्रकार का अन्न वहाँ पर तीर्थ में दान देना चाहिए। उस तीर्थ में महाव्रती काल भैरव कहे गये हैं। वहाँ पर भी मनुष्य का परम कर्त्तव्य है कि नित्य स्नान करे अन्त तक भैरव का दर्शन करे वहाँ पूर्ण महादान भी देना चाहिये। इसका यह प्रभाव होता है कि मनुष्य फिर यमराज के शासन में कभी प्राप्त नहीं हुआ करता है।४२-४६।

द्वादशार्केति विख्यातं शिप्राकुले च दक्षिणे ।
तीर्थञ्च सर्वपापघ्नं सर्वकामवरप्रदम ।५०
तब स्नात्वाशुचिर्भूत्वा द्वादशार्कसमर्चयेत् ।
अजादानञ्चदेयंवैवासोऽलंकारसंयुतम् ।५१
आरोग्यं सर्वदादेहे तस्यसम्पत्पदेपदे ।
तत्रापि ऋषयोदेवाः सन्ध्योपासनतत्पराः ।५२
उपासाञ्चक्रिरेतस्य प्रातः कालेसदैवहि ।
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वाशुचिभिर्भूत्वासमाहितः ।५३
एकानशेति विख्याता पापनाशिनी ।
नामर्चयेद्द्विज [illegible] ।५४

तत्र देव महादानश्त्रेताश्व समलङ्कृतम् ।
विप्रावववेदपिदुषे विधिवहसषित्तम ! ।५५
सर्वपापविशुद्धात्मा स्वर्गलोके महीयते ।
योऽयावङ्गारको देवो विख्यातो वै धरात्मजः ।५६

शिप्रा नदी के दक्षिण दिग्भाग में तट पर एक द्वदार्शाक तीर्थ परम विख्यात तीर्थ है । यह तीर्थ सभी पापों का हनन करने वाला और सभी कामनाओं के वरों का प्रदान करने वाला कहा गया है ।५०। वहाँ अवगाहन कर परम पवित्र होकर द्वावशार्क प्रभु का समर्चन करना चाहिये । वहाँ वस्त्र और अलङ्कारों से समन्वित अजा [बकरी]का दान देना चाहिए । उस दानी तीर्थ व्रती पुरुष के देह में सर्वदा आरोग्य रहता है और उनके कदम-कदम पर सम्पत्ति विलास किया करती है। वहाँ पर देवगण और ऋषि वृन्द सन्ध्योपासना में तत्पर रहा करते वहा पर उस तीर्थ में मनुष्य स्नान करके शुचि होकर समाहित होजाया करता है । वहाँ पर एकानशा—इस नाम से विख्यात पापों के नाश करने वाली भवानी विराजमान है । हे द्विजश्रेष्ठ ! वहाँ उस देवी का अभ्यर्चन करे और दशाश्वमेध शिव का यजन भी करना चाहिए । वहाँ पर महादान देना चाहिए । एक श्वेत वर्ण का अश्व जो भूषणों से भली भाँति अलंकृत हो इसका दान से ऋषि श्रेष्ठ ! वेदों के विद्वान विप्र को देना चाहिए और विधान के साथ ही दान करे । वह मनुष्य सभी प्रकार के ऐहिक तथा पूर्व जन्मों के किये हुए पापों से मुक्त होकर परम विशुद्ध आत्मा वाला हो जाया करता है और अन्त में स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित होता है । यहाँ पर एक धरात्मज अङ्गारक देव परम विख्यात है ।५१-५६।

तस्य तीर्थं परं व्यास सर्वतीर्थ फलप्रदम् ।
तत्र तीर्थेनरः स्नात्वा मङ्गलेश्वरमर्कयेत् ।५७
गुडान्न वृषभ रक्त सवास समसंकृतम् ।
स्वकृतेभ्यो विप्रेभ्यो यो ददाति समाहितः ।५८

तस्यहस्तगतालक्ष्मीः पुत्र दारादिसम्पदः ।
खगंगासंगमतीर्थं गंगद्भेदसमन्वितम् ।५९
तत्र तीर्थेनरः स्नात्वा दृष्ट् वागेश्वर शिवम् ।
मुच्यते सर्वपातेभ्यो विष्णुलोकेमहीयते ।६०
तिलपात्र प्रदातव्य विधिवत्काञ्चनान्वितम् ।
सर्वं सौख्यकं दान सर्वपापहरं परम् ।६१
ऋणमोचनकं तीर्थं सर्वपापहरं स्मृतम् ।
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वाऋणर्तेश्वरमर्चयेत् ।६२
घृतश्राद्धं प्रकुर्वीत दत्वास्वर्णञ्च शक्तितः ।
ऋणत्रयविनिर्मुक्तः स्वर्गलोके महीयते ।६३

हे व्यासदेव ! उनका तीर्थ सबसे श्रेष्ठ तीर्थहै और अन्य सभीतीर्थो का जो कुछ भी पुण्य फल होता है उन सबका यह एक ही तीर्थ प्रदान कर देने वाला है। उस तीर्थ में मनुष्य स्नान करके उस मंगलेश्वर का अभ्यर्चन करना चाहिए। जो मनुष्य यहाँ पर गुड़ के सहित अन्न वस्त्रों से परावृत रक्त वृषभ जो कि भूषणों से भली भाँति विभूषित हो उसका परम समाहित होकर स्वलंकृत विप्रोंको दान देना चाहिये। इसका यह प्रभाव होता है कि लक्ष्मी तो बिल्कुल उसके हाथ में ही रहा करती है। और पुत्र, दारा आदि की सम्पत्तियाँ भी सब प्राप्त हो जाया करती हैं वहीं पर गंगा के उद्भेद से संयुत एक ख आकार गंगा का संगम तीर्थ है। उस तीर्थ में मनुष्य स्नान करके गंगेश्वर भगवान् शिव का दर्शन प्राप्त करके समस्त पापोंसे मनुष्य मुक्त हो जाता है और अन्त में विष्णु लोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है। वहाँ पर एक तिलोंका भराहुआ पात्र जो कि सुवर्ण से भी युक्त हो दान में देना चाहिये। यह दान सभी प्रकार के सौख्यों का करने वाला है और सम्पूर्ण पापोंकाभी हरण करने में परम श्रेष्ठ है। एक ऋण मोचनक नाम वाला उत्तम तीर्थ है जोकि समस्त पापों के नाश करने वाला कहा गया है। उस तीर्थ में अवगाहन करके मनुष्य को ऋणर्तेश्वरदेव का यजन अवश्य ही करना चाहिए।

वहां पर घृत श्राद्ध करे और अपनी शक्ति के अनुसार सुवर्ण का दान करे। ऐसा करने वाला मनुष्य तीनों ऋणों से विमुक्त हो जाता हैं तथा स्वर्ग में प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है।५७-६३।

ततो गच्छे नरो नित्यं शक्ति भेदमलमषम्।
तीर्थानाञ्चैव सर्वषामुत्तम पापनाशनम्।६४
तत्र स्नात्वानरोव्यास शुचिः शुचिः प्रयतमानसः।
मातृकाणाञ्चसर्वेषांदर्शनं कारयेद्बुधः।६५
कौमारीकार्तिकीमाता चर्पटावटमातरः।
तथा भगवती देवीं स्कन्दञ्चैवसमर्चयेत्।६६
तत्र श्रद्धानि देवानि विधिवद् द्विजसत्तम।
दत्वा शय्यादिक कांस्यधेनुं तथेतरद्।६७
मातृऋणसमुत्तीर्य सायुज्यं लभतेनरः।
यत्तत्तीर्थवरश्रेष्ठं पापमोचनसञ्ज्ञकम्।६८
तत्र स्नात्वानरैर्देयँ छायादानञ्च सत्तम।
सर्वपापविशुद्धात्मा जायते भुवि मानवः।६९
ततः पर परं व्यास तीर्थं त्रैलोक्य विश्रुतन्।
प्रेतसिले तिविख्यात प्रेतमोक्षकरम्परम्।७०

इन सब तीर्थों की यात्रा समाप्त करके फिर मनुष्य का कर्तव्य है कि वह नित्य ही कल्मषों से रहित शक्तिभेद नामक तीर्थ को गमन करे। यह भी अन्य समस्त तीर्थों से उत्तम और पापों का विनाश करने वाला तीर्थ है। हे व्यास ! उसमें मनुष्य स्नान करके परम शुचि एवं पृथक्मन वाला होकर बुध को एवं मातृकों का दर्शन करना चाहिए। वहाँ पर कौमारी कार्त्तिकी माता है चर्पटावट माताऐं हैं। उसी भाँति भगवती देवी और भगवान् स्कन्ध का अभ्यर्चन करे। हे सत्तम ! वहाँ पर विधिपूर्वक श्राद्ध भी देने चाहिए। शय्या आदि कांस्यधेनु तथा इतर दान देकर मनुष्य माता के उऋण होकर सायुज्य को प्राप्ति किया करता है। एक परम श्रेष्ठ तीर्थों में वरिष्ठ पापमोचन तीर्थ है। हे सत्तम ! वहाँ पर मनुष्यों को स्नान करके छाया दान देना

चाहिए । । वह मनुष्य फिर भूमि में सब पापों से विशुद्ध आत्मा वाला होकर स्थित रहा करता है हे व्यास ! इसके पश्चात् सबसे परमोत्तम एवं श्रेष्ठ एक तीर्थ है जो त्रिलोकी में परम प्रसिद्ध है और यह 'प्रेतशिला'—नाम से ही विख्यात है । यह तीर्थ प्रेतों के मुक्ति करने के लिये तो परमोत्तम है ।६४-७०।

तत्र स्नात्वानरोदद्याच्छ्राद्धं द्विजसमाहितः ।
तिलोदकप्रदानेन पितरोयान्तिसद्गतिम् ।७१
घटदानंततोदेय क्षत्रोपानत्समन्वितम् ।
महिषीञ्चततोदद्याद्वासांसि विविधानिच ।७२
अन्नदानंततोदेय रसेनलवणान्वितम् ।
यमेश्वरं समभ्यर्च्य निरायेनाधिगच्छति ।७३
पितरस्तस्य सन्तुष्टा यान्ति ब्रह्म सनातनम् ।
पितृदोषा न बान्धते तेषाञ्च द्विजसत्तम ! ।७४
तीर्थानामुत्तमं तीर्थं भुवित्रैलोक्यवन्दितम् ।
नवनदीसङ्गमोयत्र तत्र तिष्ठति पार्वती ।७५
तत्र स्नात्वा नरी नित्य शुचिर्भूत्वा समाहितः ।
पूजयेद्भगवतीं भद्रां पार्वतीं विधिवत्ततः ।७६
महादानानिकुर्याच्च हस्तिपाश्वधरान्तिलान् ।
सुरभीदुग्धसहितां दद्याद्द्विजवरायच ।७७

इस प्रेत शिला नामक तीर्थ में स्नान करके हे द्विज ! मनुष्य को परम समाहित होकर श्राद्ध देना चाहिए । यहाँ पर तिलोदक के प्रदान करने से पितृगण सद्गति को प्राप्त हो जाया करतेहैं, घाट का दान-छत्र जुते—महर्षि और विविध भाँति के वस्त्रों का दान करना चाहिए । इसके अनन्तर अन्न का दान रस और लवण से समन्वित करके देना चाहिए । फिर यमेश्वर देवका अभ्यर्चन करके मनुष्य नरकसे अधिगमन किया करता है । उस अर्चन करने वाले के पितरभी परम सन्तुष्ट होकर सनातन ब्रह्म की प्राप्ति कर लिया करते हैं । हे द्विज श्रेष्ठ उनको पितृ दोष कुछ भी बाधाएँ नहीं किया करते हैं । सम्पूर्ण तीर्थों में उत्तम एक

तीर्थ है जो इस भूमण्डल में विद्यमान है और त्रिलोकी के द्वारा वन्दित है। यहाँ पर सब नदियों का संगम होता है यहाँ पर जगदम्बा पार्वती स्वयं विराजमान रहा करती हैं। उस तीर्थमें मनुष्य नित्य स्नान करके परम शुचि होकर समाहित होते हुई भगवती भद्रा पार्वतीका विधिपूर्वक पूजन करना चाहिए। वहाँ पर महादान करे-हाथी—अन्न—धरा-तिल सुरभी जो दुग्ध सहित हो इनका दान किसी परम श्रेष्ठको देना चाहिए ।७१-७७।

सर्वपापविशुद्धात्मा साक्षाच्छम्भुर्भवेन्नरः ।
मन्दाकिनीततीगच्छेदात्मकार्यविशुद्धये ।७८
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा पूजयेद्यः सदाशिवम् ।
दत्वा शकटमानाद्य तिलद्रोणं प्रदापयेत् ।७९
सर्वपापविशुद्धात्मा धनाधिपसमोभवेत् ।
ततोनच्छेद्व्रती विप्रतीर्थं पितामहपरम् ।८०
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा विधिवत्स्नानमाचरेत् ।
दत्वा दानानि सर्वाणि त्रीणि तत्र विशेषतः ।८१
यथाशक्तिप्रदेयानि पृथ्वीगावः सुवर्णकम् ।
विप्रांश्चभोजयेन्नित्य विधिवद्भूरिदक्षिणः ।८२
ततस्तुपुनरागम्य रुद्रसरमनुत्तमम् ।
तस्मिन्स्नात्वाचनत्वांच दृष्ट्वा देव महेश्वरम् ।८३
पूजयित्वायथान्याय यात्रेश्वरमनुत्तमम् ।
तुलसीविल्वपत्रैश्च पुष्पैर्विविधवत्सकैः ।८४

इस तीर्थ में जाने वाला मनुष्य सब पापों से विशुद्ध होकर साक्षात् शम्भु ही हो जाया करता है इसके उपरान्त मनुष्य को अपने कार्यों की विशुद्धि के लिये मन्दाकिनी पर जाना चाहिए। वहाँ जाकर स्नान करे, पवित्र हो जावे और फिर जो-सदा शिव का पूजन किया करता है तथा शङ्कर—अन्न आदि का एवं तिलों का द्रोण दान करता है वह सभी पापों से रहित एवं विशुद्धात्मा होकर धनाधिप [कुबेर]

के तुल्य ही हो जाया करता है। इसके उपरान्त तीर्थ व्रती पुरुष को हे विप्र ! परमोत्तम पैतामह तीर्थ पर गमन करना चाहिए। वहांस्नान कर शुचि होकर अर्थात् विधान के साथ ही स्नान का समाचरण करना चाहिए। वहाँ पर भी सभी प्रकार के दान देवे किन्तु इसमें विशेषरूपसे तीन ही दान होते हैं और वे यह है—आपकी शक्ति जितनी हो उसीके अनुसार—भूमि गौ और सुवर्ण का दान करे। नित्यही विप्रों कोभोजन करावे और उन विप्रों को विपुल दक्षिणा देनी चाहिए। इसके अनन्तर वहां से आकर पुनः सर्वोत्तम रुद्रसर में स्नान करे उसको नमस्कार करे तथा महेश्वर देवका दर्शन करे। यथा विधि परमोत्तम यात्रा के ईश्वर देव का पूजन करे। देवेश्वर का पूजन विविध प्रकार के परम सुगन्धित पुष्पों से—तुमली दलों से और विल्व पत्रों से अभ्यर्चन करे।७८-८४।

धूपदीपान्निनैवेद्यैर्मुखवासोत्तरच्छदैः।
पूजयित्वा महादेव यात्रेश्वर मुमापतिम्।८५
प्रार्थयेद् देवदेवेशं व्रतसम्पूर्ण हेतवे।
यात्रेश्वर ! मनस्तुभ्यमुमानाथजगत्पते।८६
त्वत्प्रसादाकृतां यात्रां सद्यतां कुरु मे प्रभो !।८७
एवं यः कुरुतेयात्रामवन्त्याश्चद्विजोत्तम।
अवन्तीवासज पुण्य प्राप्यतेनात्रसंशयः।८८
भुक्त्वा च विपुलान्भोगात् धनदारादिसम्पदम्।
सर्वपापविशुद्धात्मा मृतः शिवपुर व्रजेत्।८९
ये श्रृण्वन्ति नराः पवित्रां पापहारिणीम्।
न तेषां दुर्लभ किञ्चदिह लोके परत्र च।९०
माहात्म्यमेतच्छिवभक्तिवर्द्धन यशस्कर पुण्यविवर्धनञ्च।
यः श्रावयेद्वा श्रृणुच्चभक्त्या कुलसमुद्धृत्यहरेः पदप्रजेत्।९१

यात्रा के ईश्वर उमा देवी के स्वामी महादेव का यजन धूप—दीप-नैवेद्य-मुखवास और उत्तर रुद्र के द्वारा भली भांति करना चाहिए। पजन के पश्चात् अपने व्रत की साङ्ग समाप्ति के लिए देव देवेश की प्रार्थना करनी चाहिए। उमा के नाथ ! हे इस सम्पूर्ण जगत के

स्वामिन् ! आप तो यात्रा के अधिपति हैं आपकी पवित्र सेवा में मेरा नमस्कार समर्पित होवे। हे प्रभो मेरे द्वारा यह आपकीही कृपाके प्रसाद से तीर्थो की यात्रा की गयी है अब मेरी इस यात्रा को आप सफल कर दीजिए।८५-८७। श्रीसनत्कुमार जी ने कहा—हे द्विजोत्तम ! इस रीति से जो भी को कोई इस अवन्ती की यात्रा करता है वह अवन्ती पुरी में निवास से समुत्पन्न पुण्य को पूर्ण रूप से प्राप्त कर लिया करताहै इसमें तनिक भी संशय नहीं है। वहुत—से भोगों को भोग कर तथा धन द्वारा आदि की प्रप्ति करके समस्त पापों का नाशकर विशुद्ध आत्म होकर मृत्यु होने पर सीधा शिवपुर को ही गमन किया करता हैं। जो इस परम पवित्र-पुण्यमयी—पापों के हरण करने वाली कथा का श्रवण किया करते हैं इनको इस लोक में और परलोक में कुछ भी दुर्लभ नहीं है। यह महा माहात्म्य शिव की भक्ति को बढ़ाने वाला है—यश की वृद्धि करने वाला है तथा पुण्य का भी वर्धन करने वाला है। जो इसका स्वयं भक्ति की भावना से श्रवण किया करताहै अथवा दूसरों को श्रवण कराया करता है वह अपने कुल का भली भाँक्ति उद्धार करके स्वयं श्रीहरि के पद की प्राप्ति किया करता है।८८-९०।

—×—

७८—गंगेश्वरमाहात्म्यवर्णन

द्वाचत्वारित देवं गंगेश्वरमथो शृणु।
यस्य दर्शनमात्रेणसर्वतीर्थं फलं लभेत्।
ध्रुवाधार जगद्योनेः पद नारायणस्य तु।१
पदात्प्रवृत्ता या देवो गङ्गा त्रिपथवा नदी।
सा प्रविश्य सुधायोनि सोममाधरमंभसाम्।२
ततः सम्बद्धं मानार्करश्मिसंगतिपावनी।
पपात मेरुपृष्टेचा सा चतुर्धा ततो ययौ।३
मेरुकूटतान्तेभ्यो निपतन्ती यशस्विनी।
विकार्यमाणसलिला निरालम्बा पपात सा।४

मन्दरादिशु शैलेषु प्रविभक्तोदकासमम् ।
तत्र सीतेतिविख्याता ययौ चैत्ररथम्वनम् ।५
तत्प्लावयित्वा च ययावरुणोदं सरिद्वरा ।६
तथैवालकनन्माख्या दक्षिणे गन्धमादने ।
मेरुपादवन गत्वा नन्दने देवनन्दने ।७

श्री हरि ने कहा—इसके अनन्तर अब आप गणेश्वर देत्र के विषय में श्रवण करिए जिसके दर्शन मात्र से ही सब तीर्थों का फल मनुष्य प्राप्त कर लिया करता है। इस सम्पूर्ण जगत् का योनि अर्थात् समुत्पांत स्थल भगवान् नारायण का पद [चरण] ही इसका ध्रुव [निश्चित आधार है। जो देवी भगवान् के पद से प्रवृत्त हुई गङ्गा त्रिपथगा तीन मार्गों में गमन करके वाली] नदी है। उस गङ्गा ने छलों के आधार और सुधा का उत्पत्ति स्थान सोम में प्रवेश किया। इसके पश्चात् सूर्य की किरणों की सद्गति से पावन हो जाने वाली वह सम्वर्द्धमान होती हुई मेरु पर्वत के पृष्ठ भाग में गिरी थी। वहाँ से वह चार भागों में होकर गयी। वह यशस्विनी मेरु पर्वत के तटान्तों से गिरती हुई फैले हुए जल वाली विना अवल व वाली मदर आदिपर्वतों से प्रविभक्त होती हुई अर्थात् विभक्त जलों वाली होकर वहाँ पर 'सीता इस नाम से विख्यात हुई और वह चैत्ररथ वन में गयी। उस वन को प्लावित करके यह सरिताओं में परम श्रेष्ठ नदी अरुणोद को गमनकर गयी। दक्षिण गन्ध मादन पर्वत में यह अलकनन्दा नाम वाली हो गई। मेरुपाद के वन में जाकर फिर यह देवों को आनन्द देने वाले नन्दन वन में चली गयी थी।१-७।

मानसञ्च महावेगात्प्लावयिस्वासरोवरम् ।
तस्माच्चशैलराजानं रम्यत्रिशिखरगता ।८
तस्माच्च पर्वताः सर्वेप्लावितास्तत्क्षणांत्प्रिये ! ।
तान्लावयित्वा सम्प्राप्ता हिमवन्तं महागिरिम् ।९
मया ध्रता च तत्रैव जटाजूटेन पार्वति ।
न मुक्ता च यदा गङ्गा तदा क्रुद्धा ममोपरि ।१०

गात्राणि प्लावयामास मदीयानि वरानने ।
ममा च रुद्धाक्रोधेन जटामध्येयशस्विनि ।११
यत्रैव सा नृपचक्रै गहुकल्पशतानि च ।
भगीरथेनोपवासः स्तुत्याचाराधितोह्यहम् ।१२
तदामुक्ता मया देविगंगात्रिपथागामिनी ।
महाकालमनुप्राप्ता प्लावयित्वोत्तरान्कुरुन् ।१३
समुदमहिषी जाता प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ।
नदीनामुतमाग्रगा समुद्रेण कृतातदा ।
स तया सहितो रेमे समुद्रः सरिताम्पतिः ।१४

इसके अनन्तर यह आपने महान् वेग से मान सरोवर का एक दम प्लावित करके उस स्थान में परम रम्य तीन शिखरों वाले शैलराज पर पहुंच गयी । हे विप्रे ! वहाँ इसने क्षण मात्र में ही समस्त पर्वतों को प्लावित कर दिया । उन पर्वतों को सम्प्लावित करके महान् पर्वत हिमवान् में यह प्राप्तहो गई । हे पार्वति ! वही पर मैंने अपनी जटाजूट के द्वारा इसको धारण किया था । जब मैंने इसको अपनी जटाओं से नहीं छोड़ा था तो यह मेरे ऊपर बहुत ही क्रुद्ध हो गई । हे वरानने ! इसने मेरे समस्त अंगों को प्लावित कर दिया । हे यशस्विनि ! मैंने भी क्रोध से अपनी जटाओं के मध्य में इसको अवरुध्द कर लिया । वहीं पर इसने सैकड़ों कल्पों तक तपस्या की थी । इधर राजा भागीरथ ने उपवासों के द्वारा और स्तवनसे मेरी परम उत्कृष्ट आराधना की थी । उस समय में हे देवि ! इस त्रिपथ गामिनी गंगा को अपनी जटाओं से मुक्त किया था । वहाँ से मुक्त होकर यह महाकाल में प्राप्ति हुई और इसने उत्तर कुरुओं की प्लावित कर दिया । प्राणों से भी अधिक प्रिया यह समुद्र की महिषी हो गई । उसी समय में समुद्र ने नदियों में गंगा को सर्वोत्तम बना दिया । सरिताओं का स्वामी समुद्र इस गंगा के साथ रमण करता था ।८-४।

ततः कदाचिद्ब्रह्माणभुपासाञ्चकिरे सुराः ।
तथार्णवोजगामाथ ब्रह्मलोकं सनातनम् ।

गंगया सहित देवि ! दर्शनार्थं महोत्सवे ।१५
अथ गंगा सरिच्छ्रेष्ठा समुपायात्पितामहम् ।
तस्यावासः समुद्धतः मारुतेन शशिप्रभम् ।१६
ततोऽवत्सुरगणाः सहसाऽवाङ्मुखास्तदा ।
महाभिषस्तु राजर्षिनिः शंको दृष्टवान्नदीम् ।१७
तस्य भाव विदित्वाऽथ ब्रह्मणा स निरस्कृतः ।
उक्तस्तु जातो मर्त्येषु पुनर्लोकानवाप्स्यसि ।१८
गंगाशप्ताथक्रुद्धेन समुद्रेणयशस्विनि ।
मां विहायान्यसक्तासितस्माद्यास्यसिमानुषम् ।१९
लोककल्पायुषादाना तत्रदुःखमवाप्स्यसि ।
तं शाप दारुणं श्रुत्वा गंगावचनमब्रवीत् ।२०
विनापराधाच्छप्ताह कस्मातै र्देवसंसदि ।
पतिव्रता प्रतिप्राणा पतिना परमार्थतः ।२१

इसके अन्तर किसी समय सुरगणों ने ब्रह्माजी की उपासना की थी। उसी अवसर पर समुद्र उस सनातन ब्रह्मलोक में गया। हे देवि! इस समुद्र के साथ में यह गंगा भी थी और उस महोत्सव में दर्शन के लियेगंगा को साथ में लेकर वहाँ पहुँच गया। इसके अनन्तर वह सरि-ताओं में श्रेष्ठ गंगा पितामहके समीप में पहुँच गयी। मारुतने उसका वास [वस्त्र] शशि प्रभुकी ओर समुद्धंत उड़ाकर फैंककर दिया। तबतो सभी सुरगण सहसा नीचे की ओर मुख करने वाले हो गये। राजर्षि महार्षि ने निःशङ्क होकर नदी को देखा। उसके भाव को जान कर ब्रह्माजी ने उसका तिरस्कार कर दिया और उसको कहा गयाकि मनुष्य में समुत्पन्न होकर फिर लोकों को प्राप्त करेगा। हे यशस्विनी! इधर परम क्रुद्ध होकर समुद्र ने गंगा को शाप दे दिया था कि तू मुझ को छोड़कर अन्य में समासक्त हो गई है इसलिये मनुष्य लोक को प्राप्त हो जायगी जो कि अल्प आयु वाला है। वहाँ पर दीन होकर अत्यन्त दुःख को प्राप्त करेगी। उस परम दारुण शाप को सुनकर गंगा यह वचन बोली। बिना ही अपराध के इस देवों की सभा में क्यों मुझे शाप दिया

गया हैं। मैं तो पतिव्रता और पति को ही प्राण समझने वाली हूँ और परमार्थ से पति के ही साथ रहने वाली हूँ ।१५-२१।

प्रमादाद्वस्त्रमुद्धूतवायुना व्यापकेन तु ।
प्रत्युवाच ततो ब्रह्मा तां नदीलोकपावनीम् ।२२
वसूनां कारणाद्देवि ! शप्ता यस्मान्महानदि ।
भाव्यर्थे तोयानधिना तस्माच्छीघ्र ब्रजाधुना ।२३
महाकाल वने रम्भे सिद्धगन्धर्वसेविते ।
शिप्राया दक्षिणे भागे विद्यते लिंगमुत्तमम् ।२४
सर्वसिद्धिकारं पुण्यं सर्वपातकनाशनम् ।
तमाराधय यत्नेन स ते दास्यति वाँच्छितम् ।२५
पितामहवचः श्रुत्वा तुष्टा त्रिपयगामिनी ।
गमन तत्र मेऽभीष्ट विद्यते यत्सखी मम ।
शिप्राऽपि मे प्रिया पुण्या महापातकनाशिनी ।२६
इति सञ्चिन्त्य मनसा दिव्यादेवनदींस्तदा ।
आजगाममहाकाले ह्ययपश्यल्लिगमुत्तमम् ।२७
पूजयायास पयसा दिव्येन विधिनातदा ।
दृष्ट्वा शिप्रांसखी तत्र सश्लेयचाभवत्तयोः ।२८

इस व्यापक वायु ने प्रसाद से मेरे वस्त्र को अद्धूत कर दिया अर्थात् उड़ाकर उस और में कर दिया । इसके पश्चात् उस लोक पावनी नदी से कहा—हे देवि ! हे महा नदि ! कारण यह है कि असुरगण के कारण तुझे यह शाप दिया गया है और आगे होने वाला अर्थ में ही तोयनिधि ने ऐसा किया हैं अतएव अब तुम वहुत ही शीघ्र सिद्ध और गन्धर्वो के द्वारा सेवित परम रम्य महाकाल बन में जाकर पहुँच जाओ । वहाँ पर शिप्रा नदी के दक्षिण भागमें एक उत्तम शिवजी का लिग विद्यमान है । वह समस्त सिद्धियों के करने वाला और सभी पातकों के विनाश करने वाला है तुम वहाँ जाकर उसी लिंग को समाराधनायत्न पूर्वक करो। वह आपको तुम्हारा वांछित मनोरथ पूरा कर देंगे । पितामह के इस वचन का श्रवण करके विषय गामिनी गंगा परम

सन्तुष्ट हो गई। वहाँ गमन करना तो मुझे परम अभीष्ट है क्योंकि यहाँ पर मेरी सखी विद्यमान है। शिप्रा भी मेरी बहुत प्यारी है और परम पुण्यमयी तथा महान् पातकों का नाश करने वाली है। उस समय में उस दिव्य देव नदी में अपने मन से इस प्रकार से चिन्तन करके यह महाकाल में आ गई थी और वहाँ पर उत्तम लिंग का दर्शन किया। उस समय उसने विधि पूर्वक परम दिव्य पय से उनका पूजन किया। वहाँ पर अपनी सखी शिप्रा को देखा और उस दोनों का वहाँ पर संश्लेष हुआ अर्थात् सम्मिलित हो गया था।२२-२८

ततः प्रभृतिसञ्जाता साशिप्रापूर्वबाहिनी।
त्रिषुलोकेपुविख्यातादेवो गङ्गेश्वरः स्वयम्।
गङ्गयाऽऽपराधितो यस्मात्समीहितकलप्रदः।२९
सस्तुता देवगन्धर्वैर्गंगा देवनन्दी तदा।
ऋषिभिर्वालिखिल्याद्यैस्थान्यमुं निभिमुंदा।३०
समुद्र तत्र सम्प्राप्तो मानितासामहानन्दी।
लिङ्ग नोक्ता तदा गंगा कलया स्वीयतामिति।३१
तत्समींपे महापुण्यें यावतिष्ठति मेदिनी।
अंगीकृतंसमुद्रेण यथोक्तञ्चतथास्त्विति।३२
एबमुक्त्या गता गंगा कलया तब संस्थिता।
गंगेश्वर तु यः पश्येत्स्नात्वा शिप्राम्भसि प्रिये ! ।३३
गो सहस्रफल तस्य जायते नात्र संशयः।
सर्वतीर्थं फलं तस्य सर्वं धर्मफल तथा।३४
सर्वयज्ञफलं सम्यक्सर्वं दानफलं तथा।
सर्व योगफल देवि ! प्राप्नोत्येव निरन्तरम्।३५

तभी से वह शिप्रा नदी पूर्व की ओर वहन करने वाली हो गई। तीनों लोकों से दस्यं देव भी तभी से गणेश्वर नाम से विख्यात हो गये क्योंकि वह देव गंगा के द्वारा समाराधित हुए अतएव सभी हित फलों के देने वाले हो गये। उस समय में देवों और गन्धर्वों के द्वारा वह देव नदी गंगा से सस्तुत हुई और बालखिल्य आदि ऋषियों ने एवा

अन्य मुनियों ने भी परम हर्ष के साथ गंगा का स्तवन किया। वहाँ पर समुद्र भी सम्प्राप्त हो गया और उसके द्वारा भी उस महानदी का सम्मान किया गया उस अवसर पर शिव लिंगने कहा कि एक कला से संस्थित रहो। महा पुण्यमय उसके समीप में जब तकमें दिन स्थित रही —समुद्र ने जैसा भी कहा गया उसे 'तथास्तु' अर्थात् ऐसाही होगा—यह कहकर स्वीकार कर लिया। इस प्रकारसे कहकर गंगा चली गयी और एक कला से वहाँ पर संस्थितहो गई। हे विप्रे ! शिप्रा नदी के जल में स्नान करके जो भी कोई भगवान् गणेश्वर का दर्शन करता है उसकी एवं सहस्र गौओं के दान करने का फल प्राप्त होता है—इसमें कुछ भी संशय नही है। उस पुरुष को समस्त तीर्थों का पुण्य फल होता है तथा सब तरह के धर्मों का फल मिला करता है। सम्पूर्ण यज्ञों के करने का फल और भली-भांति किये गये सब प्रकारके दानों का फल प्राप्त होता है। हे देवि ! वह मनुष्य सब योगों का फल निरन्तर ही अवश्य प्राप्त कर लेता है।२६-३५।

तत्र तीर्थानि सुभगे ! पृथिव्यां यानि कानिचित् ।
धर्मारिण्यं फल्गुतीर्थं पुष्कर नैमिष गया ।३६
प्रयागञ्च कुरुक्षेत्रं केदारममरेश्वरम् ।
चन्द्रभागा विपाशा च सरयूर्दैविका कुहूः ।३७
गोदावरी शतद्रुश्च बारुदा देत्रवत्यपि ।
सर्वा एवात्र सरिताः संगताः सन्ति गगंया ।३८
गुप्तनिपुण्यवतीर्थानि सिद्धक्षेत्राणिचैवहि ।
तत्र सर्वाणितिष्ठन्ति कलामत्रणिपावंति ।३९
एतेषांफलमाप्नोति यः पश्यतिसमासितः ।
स्नात्वागंगेश्वरं देवं सत्यमेतन्मयोदितम् ।
अतः पुण्यतमं स्थान गीयते गणवन्दितेः ।४०
एष ते कथितो देवि प्रभावः पापनाशनः ।
गंगेश्वरस्य देवस्य शृणुष्वागारेश्वरम्परम् ।४१

हे सुभगे ! इस पृथिवी में जो कोई भी तीर्थ हैं जैसे धर्म्मारण्य—फल्गुतीर्थ—केदार—अमरेश्वर—चन्द्रभागा—विपाशा—सरयू—देविक कुहू—गोदावरी—शत्रद्रु—बाहुंदा—वेत्रवती ये सभी सरिताएँ यहाँ पर गंगा के साथ संगत हुई हैं। जो गुप्त एवं पुण्य तीर्थ हैं तथा सिद्धक्षेत्र हैं वहाँ पर वे सभी स्थित रहा करते हैं। हे पार्वति ! कला मात्रसे वहाँपर सभी की संस्थिति है जो समाहित होकर दर्शन किया करता है वह इन्द्र सबका फल प्राप्त किया करता है। पहिले उसे गंगेश्वर देव का स्नान करके दर्शन करना चाहिए—सर्वथा सत्य ही मैंने कहा है। हे गण बन्दिते ! इसी लिये यह परम पुण्यतम स्थान गाया जाता है। हे देव ! यह पापोंके नाश करने वाला श्री गंगेश्वर देव का प्रभाव मैंने वर्णन कर दिया है। अब परम अंगारेश्वर का श्रवण करो।३६-४१।

—×—

८०—प्रयागेश्वरमाहात्म्यवर्णन

प्रयागेश्वरसञ्ज्ञ तु सर्वकामकरं परम्।
अष्टाधिक विज्ञानीहि पञ्चाशत्तममीश्वरम्।१
आसीत्प्रथमकल्पे तु मनु स्वायम्भुवः पुरा।
तस्यप्रियव्रतः पुत्रोयज्वा रपरधार्मिकः।२
स चेष्ट्वाबहुभिर्यज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः।
सप्तद्वीपेषु सम्प्राप्यभरतादीन्सुतान्प्रियु।३
स्वयं विशालां बदरीं मत्वा तेपे महत्तप।
कालेन वहुना तत्रनारदः समुपस्थितः।४
पजित विष्टरार्घेण राज्ञा प्रियव्रतेन च।
सः पुष्टः पूजयित्वा तु किमाश्चर्यवदस्वमे।५
इत्युक्त कथयामास नारदो मुनिसत्तमः।
श्वेतद्वीपे मया राजकस्यादृष्टा सरोवरे।६
सा च पृष्टा विशालाक्षी कस्माद्वसति निर्जने।
कोऽसि भद्रे कथं वासि किं वा कार्य मिह त्वया।७

श्री ईश्वर ने कहा यह प्रयागेश्वर नाम वाले प्रभु समस्त भावनाओं के पूर्ण करने वाले सर्वोपरि देव हैं। इन ईश्वर को अट्ठावन जानना चाहिए। पहिले प्रथम कल्प में स्वायम्भुव मनु थे। उनके प्रियव्रत नाम वाला पुत्र था जो यजन करने वाला तथा परम धार्मिक हुआथा। उसने बहुत से यज्ञों का यजन किया था और परमश्रेष्ठ दक्षिणाऐं देकर उन्हें सांग समाप्त किया था। हे प्रिये ! सात द्वीपों में भरत आदि सुतों की प्राप्ति उसनेकी थी। फिर वहाँ स्वयं परम विशाल वदरीमें जाकर तपश्चर्या करने लग गया था। अधिक समय जब व्यतीत होगया तो वहाँ पर देवर्षि नारदकी समागत हो गये थे। राजा प्रियव्रत के द्वारा विष्टर एवं अर्घ्य से उनका पूजन किया गया था। पूजा करके राजा ने उनसे पूछा था कि आश्चर्य क्या है—यह मुझे आप वतलाइये। जब इस तरह से कहा गया था तो मुनियों में परम श्रेष्ठ नारदजी ने कहा था हे राजन् ! मैंने श्वेतद्वीप में सरोवर में एक कन्या को देखा था और मैंने उससे पूछा था कि इस निर्जन वन में आप किस कारण से निवास कर रही है। मैंने उस विशाल नेत्रों वाली से यह भी पूछा था—हे भद्रे ! आप कौन हैं और यहाँ पर कैसे हैं। मुझे आपके लिये क्या सहायता करनी चाहिए।६-७।

कर्तव्य चारुसर्वांगि तन्ममाचक्ष्व शोभने ।।
एवनुक्तामयासाहिमानेष्ट्वामीलितेक्षणम् ।८
स्मृत्वा तूष्णींस्थिता यावत्तावन्मे ज्ञानमुत्तमम् ।
विस्मताः सर्ववेदाश्च सर्वशास्त्राणि चैव हि ।९
ततोऽहं विस्मयाविष्टश्चिन्तामोहसमन्विता।
तामेवश रणं गत्वायावत्पश्यामिपार्थिव ।१०
तावदिद्व्यः पुमांस्तस्याः शरीरेसमदृश्यत ।
तस्यापिपुं सोहृदयेद्वितीयस्तस्यचोरसि ।
तस्यापि हृदये चान्यस्तृतीयस्तु व्यवस्थितः ।११
ततः पृष्टा मया देवी सा कुमारी कथञ्चन ।
वेदा नष्टाममाशेषां भद्रे किब्रूहिकारणम् ।१२

भाताहंसर्ववेदानां सावित्रीनाम नामतः।
मां न जानासियेन त्वमतोवेदा महीपते !।
एवमुक्ते मया पृष्टा विस्मयेन महीपते !।
वेदानां त्वं तु माता वैकथयस्वममानघ।१४
त्वदीहृदये देवि ! क एते पुरुषास्त्रयः।१५

मैंने उससे कहा था—शोभने ! आपके तो सभी अंग प्रत्यंग परम रम्य हैं। आप बताइये। इस तरह से मेरे द्वारा कही गयी उसने मीलित नेत्रों वाले मुझको देखकर यह स्मरण करके तब तक चुप चाप स्थित रह गई थी जब तक मेरा उत्तम ज्ञान—समस्त वेद और सब शास्त्र विस्मित हुए थे। इसके अनन्तर मैं परम विस्मय से समाविष्ट होकर चिन्ता और मोह से समन्वित हो गया। हे पार्थिव ! जब तक मैं उसी की शरणागति में जाकर देखता हूँ कि तब उसके शरीर में एक परम दिव्य पुमान मुझे दिखलाई दिया था। उस पुरुष के भी हृदय में दूसरा और उस दूसरे के भी उरःस्थत में एक अन्य ही पुमान् था ऐसे वह तीसरा वहाँ पर व्यवस्थित था। इसके पश्चात् मैंने फिर उस कुमारी देवी से किसी तरह से पूछा था—हे भद्रे ! मेरे समस्त वेद नष्ट हो गये हैं, इसका क्या कारण है ? आप मुझे कृपा करके बतलाइये। उस कन्या ने कहा मैं समस्त वेदों की माता हूँ। मेरा नाम सावित्री है। तुम मुझको नहीं जानते हो, इसीलिए आपके समस्त वेद हृत कर लिये गये हैं। हे महीपते ! इस प्रकार से कहने पर मैंने अत्यन्त विस्मय से उससे पूछा था—हे अनघे ! जब आप समस्त वेदों की माता है तो मुझे यही वतलाओं कि हे देवि ! आपके हृदय में ये तीन पुरुष कौन हैं।८-५

य एष एष मच्छरीस्थः शुभागश्चारुशोभनः।
एष ऋग्वेदनामा यजुर्वेदो द्वितीयकः।१६
सामवेदस्तृतीयस्तु त्रयो वेदा मयि स्थिताः।
त्रयोऽग्नयस्त्रयो देवा मच्छरीरे स्थिता द्विज!।१७
उक्तत्वा सा तदा कन्या पश्यतो मम भूपते !।
अन्तर्द्धानंगता सद्यस्तोऽहं विस्मितोऽभवम्।१८

किं करोमि क्व गच्छामि शरणं यामि काप्रभुम् ।
कथमाविर्भविष्यन्ति वेदा शास्त्राणि साम्प्रतन् ।१९
कामिकस्तीर्थ राजस्तुयागः श्रूयते श्रुतौ ।
अहं तत्रगमिष्यामिज्ञानं सम्यग्भविष्यति ।२०
नष्टवेदेन रैभ्येण प्राप्ता सिद्धिरनुत्तमा ।
सावित्री श्रूयते तत्र अक्षयवटसन्निधौ ।२१

इस कन्या ने कहा—जो यह मेरे शरीरमें स्थितहै जिसके परमशुभ अंग हैं और परम चारु एवं शोभा वाला है यही ऋग्वेद है दूसरा यजुर्वेद है और तीसरा सामवेद है । ऐसे ये तीनों वेद मुझमें स्थित हैं । हे द्विज ! तीनों अग्नियाँ, तीनों देव मेरे शरीर में स्थित रहा करते हैं । उसी समय में यह कहकर वह कन्या हे भूते ! मेरे देखते-देखते तुरन्त ही अन्तर्धान हो गई थी । तब से मैं परम विस्मित हो गया हूँ । क्या करूँ कहाँ पर जाऊँ और किस प्रभु की शरण ग्रहण करूँ । मेरे ये सब वेद तथा शास्त्र अब कैसे आविर्भूत होंगे । श्रुतिमें ऐसा सुना गयाहै कि तीर्थों का राजा प्रयाग कामनाओं की पूर्ति करने वाला है । मैं तो वहीं पर जाऊँगा जिसमें भली भाँति मुझे पुनः ज्ञान हो जायगा । वेदों के नष्ट होने पर रैभ्य के द्वारा प्राप्त हुए सिद्धि की उत्तमा नहीं होती है । वहाँ पर अक्षय वट की सन्निधि में सावित्री को सुना जाता है अर्थात् वह वहाँ पर विद्यमान रहती है ऐसा सुनते हैं ।१६-२१।

एवं मनसि सन्ध्यायगतोऽहं नृपसत्तम ! ।
प्रयागं कामिक तीर्थं सूर्यदेवनमस्कृतम् ।२२
तपस्तीव्रं मया तत्र तप्त परमदुष्करम् ।
अथाजगाम राजेन्द्र प्रतागोमूर्त्तिमान्स्वयम् ।२३
उक्तोऽहं प्रणयात्तन् मांतपय नारद ।
ब्रह्मपुत्रं ! प्रयागोऽहं भीषितस्तपसा तव ।२४
भवतः पार्श्वमायातः प्रणयेन तपोधन् ! ।
धन्योऽसिसर्वथा ब्रह्मास्तपसांचविशेषतः ।२५

मया साध त्वयाब्रह्मन् ! गतिः कार्याऽविकल्पतः ।
महाकालवनेरम्येतत्रतेज्ञानमुत्तमम् ।
भविष्यति न सन्देहो मम कीर्तिश्च सुस्थिता ।२६
एवं सि ब्रु वतस्तस्य प्रयागस्य नृपोत्तम ! ।
प्रादूर्वभूव सहसा पीतवासा जनार्द्दनः ।२७
शंखचक्रगदापाणिर्गरुडस्थो वियद्गतः ।
उचाच्र मेघगम्भीर वाक्य स पुरुषोत्तममः ।२८

हे नृपसत्तम ! इस प्रकार से मैंने मन में अच्छी तरहसे ध्यानकरके मैं सब देव गणों के द्वारा नमस्कार किये हुए कामिक तीर्थ प्रयाग को गया था । वहाँ मैंने अत्यन्त दुष्कर तीव्र तप किया था । हे राजेन्द्र वहाँ पर स्वयं मूर्तिमान् प्रयाग मेरे समक्ष आ गये थे । उस तीर्थराजने वहुत ही प्रेम के साथ मुझसे कहा था—हे नारद ! मुझको अधिक संतप्त मत करो । हे ब्रह्मपुत्र ! मैं प्रयाग हूँ और आपके इस आयुध तपस्या से मैं भाषित हो गयाहूँ । हे तपोधन ! मैं प्रयाग हूँ और आपके पास आ गया हूं । हे ब्रह्मन् ! आप सर्वथा धन्य है और इस तपश्चर्या से आप विशेष रूप से धन्य हो गये हैं । हे ब्रह्मन् । मेरे ही साथ आपके बिना किसी विकल्प को गमन करना चाहिए । महाकाल वन परम रम्य है वहां पर आपको उत्तम ज्ञान हो जायेगा—इसमें कुछ भी सन्देह नहींहै और मेरी कीर्ति सुस्थिर है । हे नृपोत्तम । इस प्रकार से प्रयाग जब बोल ही रहा था । कि सहसा पीताम्बर धारी भगवान् जनार्दन वहाँ पर प्रादुर्भूत हो गये थे । उन प्रभु के चारों हाथोंमें शंख—चक्र और गदा आदि आयुध थे—वे गरुड़ पर समासीन थे और आकाश में ही स्थित दिखलाई दिये थे ।२२-२८।

एहि नारद ! गच्छामः प्रयागो यत्र वास्ययि ।
कृष्णस्य वचन श्रुत्वा मया प्रोक्तो जनार्दनः ।२६
ज्ञानं मे देहि देवेश ! कथं यास्यामि तवनम् ।
महालालं जगन्नाथ श्रुतज्ञानविवर्जितः ३०

इत्युक्तः श्रीधरेणाह महाकालवनं नृप ।
आनीतस्तत्क्षणाच्छीघ्रं प्रयागसंहितस्तदा ।३१
गण्टेश्वरस्य तूर्ते तु नवनद्यास्तु दक्षिण ।
तत्र लिंगमनादि तु ज्योतीरूपं सनातनम् ।३२
प्रयागः पूजयामास पश्यतो मम भूपते ।
लिंगेनोक्त प्रसन्नेन किमर्थं त्वमिहागतः ।३३
प्रयाग ! प्रयतो भूत्वा प्रसह्लोऽहं सदा तव ।
दर्शनं च मदीयं तुविफलं न भविष्यति ।३४
इत्युक्तस्तेन लिंगेन मदर्थं प्राथितस्तदा ।
ज्ञान देहि द्विजायास्मे नारदाय महात्मने ।३५

वह पुरुषोत्तम प्रभु मेघके समान गम्भीर वचन बोले थे—हे नारद आइए, चलते हैं जहां पर यह प्रयाग जायेगा । भगवान् श्रीकृष्ण केइस वचन को सुनकर मैंने भगवान् जनार्दन से कहा था —हे देवेश ! मुझे आप ज्ञान प्रदान करें मैं उस वन में महाकाल में कैसे जाऊँगा । हे जगन्नाथ ! मैं तो श्रुत के ज्ञान से विवर्जित हो रहा हूँ । हे नृप ! मैंने जब यह कहा तो मैं भगवान श्रीधर के द्वारा उसी समय में तुरन्त ही प्रयाग के सहित शीघ्र ही महाकाल वन में ले गया था । यहाँ पर घन्टेश्वर के पर्व में और नव नदी के दक्षिण भाग में अनादि ज्योति रूप सनातन लिंग है। हे भूपते ! मेरे देखते हुए ही प्रयाग ने उसकी पूजा की थी । लिंग ने उस समय में परम प्रसन्न होकर प्रयाग से कहा —हे प्रयाग ! तुम यहाँ किस लिग समागत हुए हो ? प्रयत हो जाओ । मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हो गया हूँ। और मेरा यह दर्शन कभी भी विफल नहीं होगा । इस तरह से जब लिंग ने कहा तो प्रयाग ने मेरे लिए उसी समय प्रार्थना की थी कि इस द्विज के लिए जिसका नाम नारद हैं और जो महान् आत्मा वाला है आप ज्ञान प्रदान कीजिए ।२९-३५।

नष्टा बेदाश्च शास्त्राणि साविञ्यादर्शनात्प्रभो ! ।३६
ततो लिंगात्समुत्तस्थौब्रह्मा वेदैर्वृ तस्तदा ।
साङगैः सरहस्यैश्च पुराणैः सहितस्तदा ।३७

इत्युक्तोहं तदा देव्या सावित्र्या नृपसत्तम् ! ।
लिंगस्यास्य प्रभावेण प्रयागाभ्यर्थितस्य व ।३८
प्रतिभास्यन्ति ते वेदा धर्मशास्त्राणिनारद ! ।
इत्युक्तेन वचने भूयः प्राप्ता वेदा मया नृप ।३९
ज्ञान षड्गसतितं शास्त्राणिविधिनिच ।
लब्धज्ञानेन राजेन्द्र मयाप्रोक्तं वचस्तदा ।४०
प्रयागेनार्चितो देवो मम ज्ञानस्य कारणात् ।
प्रयागेश्वरसञ्ज्ञस्तु ख्याति लोकेषु यास्यति ।४१
तदाप्रभृति तल्लिगं तीर्थकोटिशतैर्वृतम् ।
स्वर्गापवर्गफलदं तत्र त्वं गन्तुमर्हसि ।४२

हे प्रभो ! साविभी के दर्शन से इसके वेद और शस्त्र सब नष्ट हो गये हैं तब तो उस लिंग से उसी समय में वेदोंसे युक्त ब्रह्माजी समुस्थित हुए थे । वे अंगों अथवा रहस्य के सहित वेदों से युक्त थे और पुराणों से भी समन्वित थे । हे नृप सत्तम ! उस समय सावित्री देवी ने मुझ से कहा था कि—हे नारद ! इस लिंग के प्रभाव से जिसकी प्रार्थना प्रयाग के द्वारा की गई है आपको अब समस्त वेद और धर्मशास्त्र प्रविभासित हो जायेंगे । हे नृप ! इस वचन के कहने पर मुझे सब वेद पुनः प्राप्त हो गये । षडंगों के सहित ज्ञान तथा विविध शास्त्र मैंने प्राप्त कर लिये थे । हे राजेन्द्र ! ज्ञान प्राप्त कर मैंने उस समय वचन कहा था—मुझे ज्ञान प्राप्त कराने के कारण से प्रयाग के द्वारा देव की आर्चना की गई थी इसलिए लोकों से यह प्रयागेश्वर नाम वाले होकर ख्याति को प्राप्त होंगे तभी से लेकर वह लिंग सैकड़ों करोड़ तीर्थों से समावृत्त हो गये हैं । और यह स्वर्ग तथा अप वर्ग के फल को प्रदान करने वाले हैं । वहाँ पर आप गमन करने के योग्य होते हैं ।३६।४२।

किमनेनाश्वमेधे इष्टेन नृपसत्तम ।
अश्वमेधशतभलं जायते तस्य दर्शनात् ।४३
तपसा किं सुतप्तेन कायक्लेशकरेण तु ।
वाञ्छितं लभते सद्यः प्रयागेश्व दर्शनात् ।४४

नारदस्य वचः श्रुत्वा स्यायंभुवसुतोनृपः ।
प्रियव्रतोमहादेवि ! महाकालवनं गतः ।४५
ददर्शं तत्र तल्लिग नबनद्यास्तु दक्षिणे ।
दर्शआत्तस्य लिगस्य मत्समीप समागतः ।४६
मया सम्मानिता देवि ! गणानामधिपः कृतः ।
ये पश्यन्ति नरा भक्त्या प्रयागेश्वरमीश्वरम् ।
ते धन्या मानुषे लोक क्लिश्यन्त्न्ये निरर्थकाः ।४७
या गतिर्योगयुक्तस्य सत्वस्थस्य मनीषिणः ।
सा गतिर्जायते सम्यक्प्रयागेश्वरदर्शनात् ।४८
माघमासे समेष्यन्ति प्रयागेश्वरदर्शनात् ।
कत्तु ये मानुषास्तषाश्वमेधः पदे पदे ।४९
एष ते कथितो देविः प्रभावः पापनाशनः ।
प्रयागेश्वरदेवस्य शृणु सिद्धेश्वरं परम् ।५०

हे नृप श्रेष्ठ ! इस यजन किये हुए अश्वमेध से क्या प्रयोजन है। उसके दर्शन मात्र से ही सौ अश्वमेध यज्ञों का फल प्राप्त हो जाता है। अपनी काया को क्लेश देने वाले इस सुतप्त तप से क्या लाभ होगा प्रयागेश्वर प्रभु के केवल दर्शन ही सभी प्रकार के अभीष्टों की सिद्धि तुरन्त ही हो जाया करती है। श्री ईश्वर ने कहा—हे महादेव ! स्वा-यम्भुव मनु के पुत्र प्रिय व्रत ने देवर्षि श्री नारदजी के इस वचन को सुनकर वह महाकाल वन में चला गया। वहाँ पर नव नदी के दक्षिण भाग में उस लिंग का दर्शन किया था। उस लिंग के दर्शन से वह मेरे समीप में आ गया था। हे देवी ! मैंने उसका सम्मान किया था और उसे गणों से अधिक बना दिया था। जो मनुष्य भक्ति भावसे प्रयागेश्वर ईश्वर का दर्शन किया करते हैं वे मनुष्य इस लोकमें परम धन्य हैं अन्य लोग तो निरर्थक ही क्लेश उठाया करते हैं। जो सत्व में स्थित योग से युक्त मनीषीकी गति हुआ करतीहै। वही गति भली भाँति प्रयागेश्वरके दर्शन कर लेने से मनुष्यों की हो जाया करती है। माघ मास में जो

प्रयागेश्वर के दर्शन करने के लिये आयेंगे वे मनुष्य पद पद में अश्वमेध यज्ञ का पुण्य फल प्राप्त किया करेंगे। हे देवि! यह पापों का नाश करने वाला प्रयागेश्वर प्रभु का प्रभाव आपको बतला दिया है अब परम सिद्धेश्वर का श्रवण करो।४३-५०।

॥ अवन्ती खण्ड समाप्त ॥

स्कन्द पुराण

रेवा खण्ड

---

८१ पुराण संहिता वर्णन

योन वेद पुराणहिनस वेदान्नकिञ्चन ।
कतमः सहिधर्मोऽस्ति किवोज्ञानतथा विधम् ।१
अन्यद्वा तत्किमत्राह पूर्वं पुराणे यन्नदृश्यते ।
वेदाः प्रतिष्ठिताः पूर्वं पुराणें नात्र संशयः ।२
विभेत्यल्पश्रुताद्वे दो मामयं प्रहरिष्यति ।
इतिहासपुराणैश्च कृतोऽयनिश्चयः पुरा ।३
आत्मापुराणवेदनां पृथगंगानितानिषट् ।
यच्चदृष्ट हि वेदेषु तद्दृष्टं स्मृतिधिः किलः ।४
उभाभ्यां तत्तु दृष्टहि तत्पुराणेषुगीयते ।
पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमब्रह्मणः स्मृतम् ।५

सूतजी सर्व प्रथम पुराण—सहिता की उत्पत्ति और महत्व बतलाते हुए कहने लगे—जो पुराणों को नहीं जानता है वह वहाँ पर कुछ भी नहीं जानता है। वह कौन—सा धर्म है और उस प्रकार का कौन सा ज्ञान है और अन्य भी वह क्या यहाँ पर हो गया है जो पुराण में दिखलाई नहीं देता है। अर्थात् ऐसा कोई भी विषय या ज्ञान एवंधर्म नहीं है जिनको पुराण में नहीं कहा गया हो। पुराण में सबसे पूर्व वेदों की प्रतिष्ठा की गई है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।१-२। वेद जो

अल्पश्रुत पुरुष होता है उससे भयभीत होता है कि मुझको प्रसारित करेगा। पहले ही इतिहास पुराणों के द्वारा यह निश्चय किया गया है ।३। वेदों को आत्म पुराण है और वंह छह अंग शास्त्र पृथक् है। और जो वेदों में देखा गया है वह स्मृतियों के द्वारा भी देखा गया है । इन दोनों वेदों और स्मृतियों के द्वारा जो देखा गया है। वह सब पुराणों में गाया जाता है। पुराण समस्त शास्त्रों का ब्रह्मा का प्रथम कहा गया है ।४-५।

अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः।
पुराणमकमेवासीदस्मिन्कवाल्पान्तरे मुने ! ।६
त्रिवर्गसाधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम्।
स्मृत्वाजगादच मुनीः प्रतीदेवश्चतुर्मुखः ।७
प्रवृत्तिः सर्वशास्त्राणां पुराणस्या भवत्ततः।
कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्यततोमुनिः ।८
व्यासरूपं विभुः कृत्वा संहरेत्स युगे युगे।
अष्टलक्षप्रमाण तु द्वापरेद्वापरे सदा ।९
तदष्टादशधाकृत्वाभूर्लोकेऽस्मिन्प्रभाष्यते।
अद्यापिदेवलोकेतच्छयकोटिप्रविस्तरम् ।१०

इसके उपरान्त उनके मुख से वेद विनिर्गत हुये। इस कल्पान्तर में एक ही पुराण था ।६। चतुर्मुख ब्रह्माजी ने त्रिवर्ण का साधन स्वरूप परम पुण्यमय और सौ करोड़ के प्रकृष्ट विस्तार वाला स्मरण करके देव ने मुनियों के प्रति कहा था ।७। इसके अनन्तर समस्त शास्त्रों की प्रवृत्ति पुराण की हो गई। इसके उपरान्त कुछ काल में मुनि ने पुराण को ग्रहण न करना देखकर विभु ने व्यासका स्वरूप धारण किया और वह युग-युग में संहार करते थे। सदा द्वापर-द्वापर में आठ लाख प्रमाण होने पर इस भू लोक में अठारह प्रकार से करके प्रभाषित किया जाता है। आज भी देवों के लोक में वह सौ करोड़ के विस्तार वाला है। ।८-१०।

तदथात्र चतुर्लक्षं संक्षेपेण निवेशितम् ।
पुराणानि दशाष्टौ चसाम्प्रतं तदिहोच्यते ।
नामस्तानि वक्ष्यामि श्रणु त्वमुषिसत्तम ।११
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरित चैवापुराणं पञ्चलक्षणम् ।१२
ब्राह्मं पुराण तत्राद्यं संहिताय विभूषितम् ।
श्लोकानां दशसहस्रं नानापुण्यकथायुतम् ।१३
पाद्‌म च पञ्चपञ्चाशत्स स्राणि निगद्यते ।
तृतीयं वैष्णवनामत्रयाविंशतिसंख्यया ।१४
चतुर्थं वायुना प्रोक्त वायवीयासति स्मृतम् ।
शिवभक्तिसमायोगाच्छैव तच्चापराख्यया ।१५
चतुर्विंशतिसंख्यात सहस्राणितुशौनक ! ।
चतुर्भिः पर्वभिः प्रोक्तं भविष्य पञ्चमतथा ।१६
चतुर्दशसहस्राणि तथा पञ्चशतानितत ।
मार्कण्डेयनव सहस्रं पष्ट तत्परिकीर्तितम् ।१७

वह वहाँ पर चार लाख संक्षेप मे निवेशित कियाहै । पुराण अठारह है । इस समय वह यहाँ पर कहा जाता है । हे श्रेष्ठ ऋषिवर ! मैं नामोल्लेख करके उनको वतलाता हूँ । आप उनका श्रवण करिए ।११। पुराण के पांच लक्षण हुआ करते हैं, सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर, और वंशों का अनुचिरित पुराण में वर्णित हुआ करते हैं ।२१। उस पुराणों में सबसे पृथक् आदि में होने वाला ब्राह्म पुराण है जो कि सहिता में विभूषित है । इसमें दस सहस्र श्लोक हैं और यह अनेक परम पुण्यमयी कथाओं से युक्त है ।१३। फिर पाद्म अर्थात् पद्मपुराण है जिसके श्लोकों की [यह सर्वत्र अनुष्टुप छन्द से तात्पर्य है पचपनसहस्र कही जाती है । तीसरा विष्णु पुराण है जिसके श्लोकों की सख्या तेईस सहस्र है ।१। चौथा वायुदेवके द्वारा वर्णित वायवीय अर्थात् वायु पुराण कहागया है । शिवकी भक्तिके सहयोगसे इनका दूसरा नाम शिव पुराण भी होता है ।१५। हे शौनक ! यह चोबीस सहस्र की संख्या वाला है ।

पाँचवाँ पुराण भविष्य है जो चार पर्वों के द्वारा कहा गया है ।१६। इसके श्लोकों की संख्या साढ़े चार सहस्र है। छठवाँ मार्कण्डेय पुराण है जिसके श्लोकों की संख्या नौ सहस्र है ।१७।

आग्नेयं सप्तम प्रोक्त सहस्राणि तुषोडश ।
अष्टमं नारदोयं प्रोक्त वैं पञ्चविंशतिः ।१८
नवम भागवस्नाम भागद्वयविभूषितम् ।
तदष्टादशसाहस्र प्रोच्यते ग्रन्थ संख्यया ।१९
दशम ब्रह्मवैवर्तं तावत्सख्यमिहोच्यते ।
लैंगमेकादशं ज्ञेय तथेकादशसंख्या ।२०
भागद्वयं विरचितं तल्लिगमृषिपुगंव ।
चतुविंशातिसाहस्त्रं वाराह चादशं विदुः ।२१
विभक्तसप्तभिः खण्डैः स्कन्द भाग्यवताम्वर ! ।
तदेकाशीतिसाहस्र संख्यया: वै निरूपितम् ।२२
ततस्तु वामननाम चतुर्दशतम स्मृतम् ।
संख्यया: दशंसाहस्र प्रोक्तं कुलपते ! पुरा ।२३
कौर्मं पञ्चदशं प्राहुर्भागद्वयविभूषितम् ।
दशसप्तसहस्रासिपुरा सांख्यपते कलौ ।२४

आग्नेय अर्थात् अग्नि पुराण सातवाँ पुराण वताया गया है जिसके श्लोकोंकी संख्या सोलह हजार है। आठवाँ नारदीय अर्थात् नारदपुराण है जिसके श्लोकों की संख्या पच्चीस सहस्र होती है ।१८। नवम भागवत महापुराण है जो भगवान् के नाम से प्रसिद्ध है और दो भागों से विभूषित है इस ग्रन्थ के श्लोकों की संख्या अठारह सहस्र है ऐसा कहा जाता है ।१९। दशवाँ ब्रह्मवैवर्त्त पुराण है। इसके श्लोकों की संख्या भी उतनी ही अर्थात् अठारह हजार कही गई है। ग्यारहवाँ लिंग पुराण है। इनकी ग्यारह सहस्र संख्या है ।२०। हे ऋषि श्रेष्ठ ! वह लिंग दो भागों में विरचित है। वारहवाँ पुराण वाराह हैं जिसकेश्लोकों की संख्या चौबीस सहस्र होती है ।२१। हे भाग्यवानों में परम श्रेष्ठ ! स्कन्द पुराण सात खण्डों में विभक्त है और इसके श्लोकों की संख्या

इक्यासी हजार है। यह संख्या में सबसे बड़ा है ।२२। इसके पश्चात् चौदहवाँ पुराण वामन पुराण है इसके श्लोकोंकी संख्याहे कुलपते!पहिले दस सहस्र कही गयी है ।२३। पन्द्रहवाँ कूर्म पुराण है । यह भी दो भागों में भूषितहैं। पहिले कालिमें वह सहस्र संखया वाला होता है।२०

मात्स्यं मत्स्येनयत्प्रोक्तं मनवेषोडश क्रमात् ।
तच्चतुर्दशसाहस्रं सख्यवावदताम्वर ।२५
गारुडं सप्तदश स्मृत चैकोनर्विशतिः ।
अष्टादशं तु ब्रह्माण्ड भागद्वयविभूषितम् ।२६
तच्च द्वादसाहस्र शतमष्टसमन्वितम् ।
तथैवोपपुराणानि यानि चोक्तानिवेधसा ।२७
इदं ब्रह्मपुराणस्य सुलभ सौरमुत्तमम् ।
संहिताद्वयसंयुक्त पुण्यं शिवकथाश्रयम् ।२८
आद्या सनत्कुमारोक्ताद्वितीया सूर्यभाषिता ।
सनत्कुमारनाम्ना हि तद्विख्यातं महामुने ! ।२९
द्वितीय नारसिंह च पुराणे पाद्मसंज्ञिते ।
शौकेय हि तृतीयं तु पुराणो वैष्णवेमतम् ।३०
बार्हस्पत्यं चतुर्थं च वायव्य समत्तं सदा ।
दौर्वासिसं पञ्चमं स्मृतंभागवतेसदा ।३१

सोलहवाँ पुराण मत्स्य है जिसको भगवान् मत्स्य ने मनु से कहा है। हे बोलने वालों में परम श्रेष्ठ ! इसके श्लोकों की संख्या चौदह सहस्र है ।२५। सप्त दशम गरुण पुराण है जिसकी संख्या उन्नीस हजार है । अठारहवाँ ब्रह्माण्ड पुराण है जो दो भागों से विभूषित है ।२६। इसके श्लोकों की संख्या बारह हजार आठ सौ है । उसी प्रकार से उपपुराण जो हैं वे वेधा के द्वारा उक्त हैं ।२७। यह ब्रह्म पुराण की सुलभ उत्तर और दो संहिताओं से संयुक्त है । यह परम पुण्यमय तथा शिव की कथा का आश्रय वाला है ।२८। इनमें पहली सनत्कुमार के द्वारा कथित है और दूसरी सूर्य देव के द्वारा वर्णित है । हे महामुने ! वह सनत्कुमार के नाम से ही विख्यात है ।२९। द्वितीय पाद्म संज्ञा

वाले पुराण में नारसिंह हैं और तीसरा नोकेय हैं जो वैष्णव पुराणमें माना गया है ।३०। चौथा त्रार्हस्पत्य है जो सदा वायव्य समस्त है। पञ्चम दोर्वोत्तम है जो सदा भागवत में कहा गया है ।३१।

भविष्ये नारदोक्तं च सूरभिः कथितं पुरा ।
कापिलं मानव चवतथैवोशनलेरितम् ।३२
ब्रह्माण्डं वारुण चाथकालिकाद्वियमेव च ।
महेश्वरंतथासाम्वसौरं सदार्थसञ्चयम् ।३३
पाराशर भागवतंकौर्मचाष्टादश क्रमात् ।
एतान्युपपुराणनिमयोक्तानियथाक्रमम् ।३४
पुराणसंहितामेताय: पठेद्वाश्रृणोति च ।
सोऽनन्तपुण्यभागोस्यान्मृताव्रह्मपुर व्रजेत् ।३५

भविष्य में नारद के द्वारा उक्त और पहिले सूरियोंके द्वारा कथित है। ये कपिल के द्वारा—मनु के द्वारा और उशना के द्वारा कथित है ।३२। ब्रह्माण्ड वारुण है। इसके अनन्तर कालिकाद्वय है । माहेश्वर, साम्ब, और सत्र अर्थों का सञ्चय है ।३३। पाराशर भागवत है। और क्रम से कौर्म हैं ऐसे ये अष्ठादश हैं मैंने ये यथाक्रम उपकरणों को बता दिया है ।३४। इस पुराण संहिता को जो कोई पढ़ता है अथवा श्रवण करता है वह अनन्त पुण्य का भागी होता है और मृत होकर वह ब्रह्मपुर को गमन किया करता है ।३५।

———

८२—रेवामाहात्म्य वर्णन

नर्मदायास्तु माहात्म्य कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत् ।
तत्तऽहं सम्प्रवक्ष्यामि यत्वया परिपृच्छितम् ।१
विस्तरं नर्मदायास्तु तीर्थानां मुनिसत्तम ! ।
कोऽन्यः शक्तोऽति वावक्तुमृते ब्रह्माणमीश्वरम् ।२
एतमेवपुरा प्रश्नपृष्टवान्जनमेजयः ।
वैशम्पायनसंजज्ञन्तु शिष्यं द्वैपायनस्य ह ।३

रेवातीर्थाशितं पुण्यं तत्ते वक्ष्यामि शौनक ! ।
पुरा परीक्षितो राजा यज्ञदीक्षासु दीक्षितः ।४
सम्भूते तु हविद्रव्यैः वर्तमानेषु कर्मसु ।
आसीनेषु द्विजाग्र्येषु हूयमाने हुताशने ।५
वर्तमानासु सर्वत्र तथा धर्मकथासु च ।
श्रूयमाणे तथा शब्दे जनैरुक्तात्वहर्निशम् ।६
यज्ञभूमौ कुलपतेदीयतांभुज्यतामिति ।
विविधांश्च कुर्वाणि विलोपु ।७
एवम्विधे वर्तमाने यज्ञे स्वर्गसदः समे ।
वैंशम्पायनमासीनं सप्रच्छ जनमेजयः ।८

महामुनि श्रीकृष्ण द्वैपायन ने नर्मदा के माहात्म्य को कहा। जो तुमने पूछा है उसको मैं तुमको बतलाता हूँ।१। मुनिश्रेष्ठ ! ब्रह्माजी के अतिरिक्त अन्य किसी में ऐसी शक्ति है जो मर्मदा के तीर्थों के माहात्म्य का विस्तार वर्णन कर सके।२। इसी प्रश्न को पहिले जन–मेजय ने पूछा और यह प्रश्न द्वैपायन के शिष्य वैशम्पायनजी से पूछा गया था।३। हे शौनक ! रेवा तीर्थ का आश्रित जो पुण्य होता है उसे तुमको बतलाता हूँ। पुराने समय में परीक्षित राजा यज्ञ की दीक्षाओं में दीक्षित हुआ था।४। वर्तमान कर्मों के हविद्रव्य के सम्भूत होने पर श्रेष्ठ द्विजों के समासीन होने पर हुताशन के यूयमान होने पर वर्तमान धर्म कथाओं के सर्वत्र श्रूयमाण होने पर तथा अहर्निश जनों के द्वारा शब्द के कहने पर, यज्ञ भूमि में हे कुलपते ! दो भाग करो, इन अनेक विनोदों को विनोदी लोगों के द्वारा किये जाने पर इस प्रकार के यज्ञ के वर्तमान होने पर स्वर्गवासियों के समान होने पर जनमेजय ने समासीन वैशम्पायनजी से पूछा था।५-८।

द्वैपायनप्रसादेनज्ञाटवानसिमेमत्तः ।
वैशपायनतस्मात्वां पृच्छामिऋषिसन्निधौ ।९
ब्रूहि मेंतव्यं पुर वृत्तं पितृणां तीर्थसेवनम् ।
चिर नानाविधाक्लेशाग्प्राप्ता तइतिम श्रुतम् ।१०

कथं द्यूतजिताः पार्थाममपूर्वपितामहाः ।
आसमुद्रां महीविप्रभ्रमन्तस्तीर्थं लौभतः ।११
केन ते सहिता स्नाताः भूमिभायानचकशः ।
चेरुः कथयतत्सर्वंसवंज्ञोऽसि मतोमम ।१२
कथयिष्यामिभूनाथ ! यत्पृष्टन्तुत्वयाऽनघ ।
नमस्कृत्यविरूपाक्षवेदव्यासमहाकविम् ।१३
पितामाहास्तु तेपञ्चपाण्डवाः सहकृष्णया ।
उषित्वाब्राह्मणैः सार्द्धं काम्यकेवनउत्तमे ।१४

जनमेजय ने कहा—मेरा ऐसा मत है कि आप भगवान् द्वैपायनजी की कृपा से ही ज्ञानवान् हैं । हे वैशम्पायनजी ! ऋषियों की सन्निधि में मैं आपसे पूछता हूं ।६। आप-कृपया मुझे पहिले पितृगण के तीर्थों का सेवन का वृत्त बतलाइये मैंने ऐसा श्रवण किया है कि बहुत समय तक उन्होंने अनेक प्रकार के क्लेशों को भोगा था ।१०। मेरे पूर्व पितामह किस प्रकार से द्यूत में जीत लिये गये और वे तीर्थों के लोभ से समुद्र पर्यन्त भूमि में भ्रमण कर रहे थे ।११। हे तात ! वे किसके सहित थे जिस समय में अनेक भूमि के भागों में उनने विचरण किया । यह सभी आप मुझको वतलाइये क्योंकि मेरे मत से आप सभी कुछ के पूर्ण ज्ञाता है ।१२। वैशम्पायनजी ने कहा—हे भूनाथ ! आप तो निष्पाप हैं । जो भी कुछ आपने पूछा है वह मैं सभी कुछ आपको बतलाऊँगा । उन्होंने फिर महाकवि विरूपाक्ष वेदव्यास को नमस्कार किया था ।१३। वैशम्पायन जी ने कहा—तुम्हारे पितामह पाँच पांडव थे जो कृष्ण के साथ में थे । उन्होंने पुरषोत्तम काम्यक वनमें ब्राह्मणोंके साथ निवास किया था ।१४।

प्रधानोद्दालके तत्र कश्यपोऽथमहामतिः ।
विभाण्डकश्चराजेन्द्र गुरुश्चैवमहामुनि ।१५
पुलस्त्यो लोमशश्चैव तथाऽन्ये पुत्रपोत्रिण ।
स्नात्वा निःशेषतीर्थेषु गतास्ते विन्ध्यपर्वतम् ।१६

ये च तत्राश्रम पुण्यं सर्ववृक्षेः समाकुलम् ।
चम्पकैः कर्णकारैश्च पुन्नागैर्नागकेसरैः ।१७
बकुलः कोविदारैश्च दाडिमैरुपशोभितम् ।
पुष्पितैरर्जुनैश्च विल्वपाटलकेतकैः ।१८
कदम्बाम्रमधूकैश्च निम्बजम्बीरतिन्दुकः ।
नालिकेरैः कपित्थैश्च खर्जूरपनसस्तथा ।१९
नानाद्रुमलताकर्णं नानावल्लीभिरावृतम् ।
सपुष्प फलित कान्त वन चैत्ररथंयथा ।२०
जलाश्रयैस्तु विपुलैः पद्मिनीखण्डमण्डितम् ।
सितोत्पलैश्च सञ्छन्न नीलपीतैः सितारुणैः ।२१

वहाँ पर प्रधानोद्दालक में महामतिमान् कश्यप थे। हे राजेन्द्र ! महामुनि गुरु विभाण्डक थे ।१५। पुलस्त्य और लोमश तथा अन्य पुत्र एवं पौत्रों वाले थे सब समस्त तीर्थोंमें स्नान करके विन्ध्य पर्वत में गये थे ।१६। उन्होंने वहां पर चम्पक—कर्णकार—पुन्नाग—नाग के शर—वकुल—कोविदार—दाडिम के वृक्षोंसे उस आश्रम की अत्यन्त शोभा हो रही थी । वहाँ फलों से युक्त अर्जुन के वृक्ष—विल्व-केतकी, कदम्ब, आम्र, मधुक, निम्ब, जम्बीर, तिदुक, नालिकेर, कपिला, खर्जूर, पतस आदि अनेक प्रकार द्रुमों का समुदाय और लतायें थी । वह आश्रम नागवल्लियों में समावृत था । पुष्पों से समन्वित फलों वाला सुन्दर चैत्ररथ वनके समान वहाँ का वन था ।१७-२०। बहुत से वहाँ समाश्रय ग्रहण करके वालों से वह संयुत था तथा पद्मिनी के खण्ड से भी आश्रम विभूषित था । वहाँ हर श्वेत कमल, नीलोत्पल प्रीतसित अरुण सभी वर्णों वाले कमक खिले हुए थे ।२१।

हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ।
आडीक कवलाकभि सेवितं कोकिलादिभिः ।२२
सिंहव्याघ्रवराहैश्च गजैश्चैव महोत्कटैः ।
महिषैश्चमहाकार्यैः कुरगैश्चित्रकैः शशैः ।२३

गण्डकेश्चैव खड्गैश्च गोमायुसुरभीयुतम् ।
सारंगैर्मल्लकैश्चैव द्विपदैश्च चतुष्पदैः ।२४
तथा च कोकिलाकीर्णं मनः कान्त सुशोभितम् ।
जीवजीवकसङ्घैश्च न पापक्षिसमायुतम् ।२५
दुःखशोकविनिर्मुक्तं सत्वोत्कटमनोरमम् ।
क्षुत्तृषारहित कान्तं सर्वव्याधिविवर्जितम् ।२६
सिंहोस्तन पिवन्त्यत्र कुरगाः स्नेहसंयुतम् ।
मार्जारमूषकौचोभाववलेहतउन्मुखौ ।२७
पञ्चास्याः पोतकेभाश्चभोगिनस्तुकलापिनः ।
दृष्ट्वातद्विपिनंरम्य प्रविष्टाः पाण्डुनन्दनाः ।२८

वह परम रम्य आश्रम अनेक तरह के पक्षियों से सुशोभित था । हंस और कारण्डवों से वह आश्रम एवं वन समाकीर्ण था तथा चक्रवाकों की शोभा वाला था । आड़ी, काक, बलकाओं तथा कोयल आदि के द्वारा वह आश्रम सेवित था ।२२। वहाँ बहुत प्रकार के पशु भी सञ्चरण किया करते थे, सिंह, व्याघ्र, वराह, गज महोत्कट महिष, महान् काया वाले कुंरग, चित्रक, शश, गण्डक, खग, गोमायु और सुरभी से वह वन युक्त था । सांग, मल्लक, द्विपद और चतुष्पदों से भी वह समाकीर्ण हो रहा था ।२३-२४। चारों ओर कोयलोंसे समन्वित मन को सुन्दर लगने वाला और शोभा से सम्पन्न था । जीवकों के सघों से तथा नाना पक्षियों से समायुत था वहाँ पर किसी भी प्रकार का दुःख तथा शोक नहीं था । इस तरह की बाधाओं से वह छुटकारा पाया हुआ और अतीत उत्पट सत्व गुण के कारण परम सुन्दर प्रतीत होता था । भूख, प्यास जैसी बाधाएं वहां नहीं सताया करती थीं । वह परम सुन्दर एवं सभी तरह की व्याधियों से रहित था ।२५-२६। उस आश्रम के वन में स्वाभाविक वैर भी नाम मात्र को नहीं था और कुरंग के बच्चे बड़े ही स्नेह से सिंहनी के स्तन को पीया करते थे मार्जार और मूषक दोनों परस्परमें उन्मुख होकर अवलेहन किया करते थे ।२७। सिंहनी के पुत्रों से गज स्नेह करते और मयूर एवं सर्प भी

एक दूसरे के साथ बड़े ही स्नेह मे रहते। उस परमोत्तम एवं अतीव सुन्दर विपिन को देखकर पाण्डु के पुत्रों ने उसमें प्रवेश किया था।२८।

मार्कण्डदृष्ट्वांस्तत्रतरुणादित्यसन्निभम्।
ऋषिभिः सेव्यमानन्तु नानाशास्त्रविशारदैः।२९
कुलीनै सत्वसम्पन्नैः शौचाचारसमन्वितैः।
धीसंगतैः क्षमायुक्तैस्त्रिसध्यंजपत्पर:।३०
ऋग्यजुः सामाविहितै मंन्त्रै र्होमपरारायणः।
केचित्पणुचाग्निमध्यस्थाः केचिदेकान्तसस्थिताः।३१
ऊर्ध्ववाहुनिरालम्बा आदित्यभ्रमणाः परे।
सायंप्रातर्भंजश्चान्येएकहोरास्तथापरे।३२
द्वादशाहात्तथाचान्ये अन्येमासार्द्ध भोजनाः।
दर्शेदर्शेतथाचान्येअन्येर्शैवालभोजनाः।३३
पिण्याकमपरेऽभुञ्जन्केचित्पालाशभोजनाः।
अपरेनियताहारवायुभक्ष्याम्वुभोजनाः।३४
एवम्भूतैस्तथा वृद्धैः सेव्यते मुनिपुंगवैः।
ततो धर्मसुतः श्रीमानाश्रमं तं प्रविश्य सः।३५

वहाँ पर पांडवों ने अनेक शास्त्रों के महान् पण्डित ऋषियोंके द्वारा सेव्यमान तथा तरुण सूर्यके समान तेज से समन्वित मार्कण्डेय मुनि का दर्शन किया था।२९। वे ऋषिगण परम कुलीन, सत्वगुण से युक्त एवं शौच और आचार से संयुत थे। वेधी से संगत, क्षमागुण से युक्त और तीनों कालों में सन्ध्योपासना एवं मन्त्रों के जाप करने में परायण रहा करते। उनमें कुछ तो पाँच अग्नियों के मध्य में स्थित होकर तप करने वाले और कुछ ऐसेथे जो बिल्कुल एकान्तमें स्थित रहकर साधना किया करते थे।३०-३१। कुछ लोग ऊर्ध्व होकर निरालम्ब तपश्चर्या करने वाले थे। दूसरे आदित्य की परिक्रमा किया करते। कुछ सायं प्रातः भोजन किया करते और अन्य एक ही आहार करने वाले थे। कुछ बारह दिन में भोजन करते और अन्य मास में आधा भोजन करने

वाले थे। दर्श-दर्श में कुछ भोजन किया करते थे और कुछ केवल शैवाल का ही आहार करते। कुछ पिण्याक का आहार करते तो अन्य पालाश भांजी थे। दूसरे लोग नियत आहार वाले थे। कुछ केवल वायु तथा जल का ही आहार किया करते। इस प्रकार के परम युद्ध श्रेष्ठ मुनियों के द्वारा उस आश्रम एवं वन का सेवन किया जाता था। इसके पश्चात् धर्म के पुत्र श्रीमान् युधिष्ठर ने उस आश्रम में प्रवेश किया था ।३३-३५।

दृष्ट्वा मुनिवरं शान्तं ध्यायमान परं पदम् ।
प्रादक्षिष्येनसहसादण्डवत्पतितोऽग्रतः ।३६
भक्त्यानु पतितं दृष्ट्वा चिरादापतलोचनम् ।
कोभवानित्युवाकेदधर्मंधीमानपृच्छत् ।३७
तस्य तद्वचन श्रुत्वा दारकस्तत्समीपगः ।
आहाऽयधर्मराजस्तेदर्शनार्थं समागतः ।३८
तच्छ्रुत्वा दारकेशोक्तं वचन प्राह सादरः ।
एह्येहि वत्सवत्सेति किञ्चित्स्थानाच्चलन्मुनिः ।
तं तु स्नेहादुपाघ्राय आसने उपवेशयत् ।३९
उपविष्टे सभायांतु पूजांकृत्वायथा विधि ।
वन्यैर्धान्यैः फलैर्मूले रसैश्चवपृथग्विधैं ।४०
पाण्डवाब्राह्मणैः सार्द्धं यधायोग्यम्पूजिताः ।
मुहूर्त्तादथविश्रम्यधर्मपुत्रोयुधिष्ठिरः ।४१
प्रच्छति स्म मुनिश्रेष्ठं कौतुहलसमन्वितम् ।
भगवन्सर्वलोकानां दीर्घायुस्त्वं मतो मम ।४२

वहाँ पर परम पद का ध्यान करने वाले परम शान्तमय मुनि का दर्शन करके युधिष्ठिर सहसा प्रादक्षिण्य से उनके आगे चरणों मेंदण्ड के समान गिर गये थे ।३५। भक्ति भाव से अपने चरणों में पड़े हुए राजा को देखकर चिरकाल में उनपर अपनी दृष्टि डालकर परम धीमान् मुनि ने धर्म पत्र से पूछा—आप कौन हैं ।७३। उस मुनिवर के इस वचन का श्रवण करके उनके समीप में स्थित दारक ने कहा—यह धर्मराज हैं

इस समय यहाँ आपके दर्शन के लिए समागत हुए हैं ।३८। दारक के द्वारा कथित वचन को सुनकर मुनि ने बहुत ही आदर के साथ कहा—हे वत्स ! हे वत्स यहाँ पर आओ-आगे चले आओ मुनि अपने स्थान से कुछ चकित होगये । उसको बड़े मोह से सूँघकर उनको आसन पर बिठा दिया था ।३६। उस सभा में भली भाँति बैठ जाने पर यथा विधि पूजा करके धन धान्य—फल—मूल और विभिन्न प्रकार के रसों के द्वारा सत्कार किया था ।४०।ब्राह्मणों के साथ पाण्डव यथा योग्य पूजित हुए । मुहुर्त्त मात्र विश्राम करके धर्म पुत्र युधिष्ठिर ने कौतूहल से समन्वित उन श्रेष्ठ मुनि से पूछा—हे भगवान् ! आप मेरे मनसे समस्त लोकों में दीर्घायु वाले है । हे अनघ आप मेरे सामने अब सात कल्पों का पूर्ण रूप से वर्णन कीजिए और कल्प के क्षय में भी स्थावर तथा जगंम लोक का वर्णन कीजिए ।४१।४२।

सप्तकल्पानशेषेण कथयस्वममाऽनघ ।
कल्पक्षयेऽपि लोकस्यस्थावरस्येतरस्य च ।४३
न विनष्टोऽपि विपेन्द्र ! कथंवाकेनहेतुना ।
गंगाद्या सरिसःसर्वा समुद्रांताश्चयामुने ।४४
तासां मध्ये स्थिताः काः स्वित्काश्चैव प्रलयंगता ।
का नु पुण्यजला नित्यं का मुन क्षयमागता ।४५
एतत्कथयमेंतातप्रसन्नेनात्तरान्मना ।
क्षोतुमिच्छाम्यशेषेणऋषिभिः सहबान्धवैः ।४६
साधु साधु महाप्राज्ञ ! धर्मपुत्रयुधिष्ठिर ! ।
कथयामियथान्यायंयत्पृच्छसिममाबष ।४७
सर्वपापहरं पुण्य पुराणं रुद्रभाषितम् ।
यः श्रृणोतिनरोभक्त्या तस्यपुण्यफलंश्रणु ।४८
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतेन च ।
तत्फलसमवाप्नोति राजन्नासयत्र संशयः ।४६

हे विप्रेन्द्र ! किस प्रकारसे और किस हेतुसे विनिष्ट नहीं हुए हो । हे मुने ! गंगा आदि समस्त सरिताऐ जो समुद्र के अन्त तक हैं उनके

मध्य में कौन स्थित है और कौन प्रलय को प्राप्त हो गये हैं? कौनसी पुण्य जल वाली है और कौनकी क्षय को नही प्राप्त हुई है ।४३-४५। हे तात ! यह सब आप अपने परम प्रसन्न अन्तःकरण से मेरे आगे कहिए । मैं पूर्णतया सुननेका इच्छुकहूं मेरे साथ मेरे बान्धव और ऋषि गण भी इच्छुक हैं ।४६। श्रीमाकण्डेयजी ने कहा, हे धर्म के पुत्र युधिष्ठिर ! आप तो महाप्राज्ञ हैं । बहुत अच्छी बातहै आपका प्रश्न अच्छा है । मैं न्यायपूर्वक सब कहता हूं, अनघ ! आप जो भी कुछ पूछ रहे हैं वह सभी बताता हूँ ।४७। समस्त प्रकार के पापों का हरण करने वाला परम पुण्यमय पुराण वही है जिसको भगवान् रुद्र ने कहा है । इस पुराण को जो मनुष्य भक्तिभावसे युक्त होकर श्रवण किया करता है । उसका जो पुण्यफल होता है उसका श्रवण करो ।४८। हे राजन् ! एक सहस्र अश्वमेघ यज्ञ और सौ वाजपेय यज्ञ में समान ही उसका पुण्य फल होता है, इसमें तनिक भी संशय नहीं है ।४९।

ब्रह्मघ्नश्च सुरापी च स्तेयो गोघ्नश्च यो नरः ।
मुच्यतेसर्वपापेभ्यो रुद्रस्यवचन ।५०
गंगा तु सरिताश्रेष्टा तथा चैव सरस्वती ।
कावेरी देविका चैव सिन्धुः सालकुटी तथा ।५१
सरयूः शतरुद्रा च महो चर्मिलया सह ।
गोदावरी ता पुण्या तथैव यमुना नदी ।५२
पयोष्णीच शतद्रुश्च तथाधर्मनदोशुभा ।
एताश्चान्याश्चसरितः सर्वपापहरा स्मृताः ।५३
किं तु ते कारणं तात । वक्ष्यामि नृपसत्तम् ।
समुद्राः सरितः सर्वाः कल्पे कल्पे क्षयं गताः ।५४
सप्तकल्पक्षये क्षीणे न मृता तेन नर्मदा ।
नर्मदैकैव राजेन्द्र । परिष्ठित्सरिद्वरा ।५५
तोयपूर्णा महाभाग । मुनिसङ्घरमिष्टुता ।
गंगाद्याः तरितश्चान्याः कल्पेल्पे क्षय गताः ।५६
एषा देवी पुरादृष्टा तेन वक्ष्यामि तेऽनघ ।५७

आश्चर्यभूता राजेन्द्र ! त्रिषु लोकेषु विश्रुता ।५८

ब्राह्मण की हत्या करने वाला—सुत का पालन करने वाला-चोरी का कर्म करने वाला, गाय का वध करने वाला जो मनुष्य है । हे भगवान् रुद्र के ऐसे ही वचन हैं कि वह इस पुराण के श्रवण से सब पापों से मुक्त हो जाया करता है ।५०। गंगा सब सरिताओं में श्रेष्ठ है उसी प्रकार से सरस्वती, कावेरी, देविका, सिन्धु, सालकुठी, सरयू शतरुद्रा, चर्चिला के साथ मही, गोदावरी ये भी सब नदियाँ परम पुण्यमयी है, यमुना नदी, पयोष्णी, शतद्रु, शुभा धर्म नदी, ये तथा इनके अतिरिक्त अन्य भी सरिताएं हैं जो सब पापों के हरण करने वाली कही गई हैं ।५१-५२। हे नृप श्रेष्ठ ! क्या कारण हैं कि ये सब समुद्र और सरिताऐं कल्प, कल्प में क्षय को प्राप्त हो जाया करते हैं, इसे भी बताऊँगा, ।५४। सात कल्पों के क्षय के क्षीण होने पर यह नर्मदा कभी मृत अर्थात् विनष्ट नहीं होती है । यही एक नर्मदा ऐसी श्रेष्ठ सरिताहै । जो स्थित रहा करतीहै ।५५। हे महाभाग ! यह जलसे भारी हुई और मुनियों के संगके द्वारा अभिष्टुत होती हुई स्थित रहती है तथा अन्य गंगा आदि सब कल्प के क्षय होने पर क्षय को प्राप्त हो जाया करती है ।५६। हे निष्पाप ! यह देवी पहिले उसके द्वारा दृष्ट है उसको बतलाऊँगा । हे राजेन्द्र ! यह आश्चर्य स्वरूप वाली है और तीनों लोकों में प्रसिद्ध हैं ।५७-५८।

८३—नर्मदापंचदशनामवर्णन

ततोऽर्णवात्समुत्तीर्य्य त्रिकूटशिखरे स्थितम् ।
महाकनकवर्णाभे नानावर्णशिलाचिते ।१
महाश्रृंगे समासीनं रुद्रकोटिसमन्वितम् ।
महादेवं महात्मानमीशानमजमव्ययम् ।२
सर्वभूतमय तात ! मनुना सह सुव्रत ।
मूर्ध्ना ववन्दे चरणौ सर्वदेवनमस्कृतौ ।३

तत्काले युगसहस्त्रं सह रुद्रेणमानद ! ।
तस्मिन्नेकाणवे घोरेस्थितोऽहं कुरुनन्दन ।४
एतच्छ्रुत्वा तु मे तात परं कोतूहलहृदि ।
जातं तत्कथयस्वेतिश्रृण्वतः सहवान्धवैः ।५
कासापद्यपलाशाक्षी तमो भूतेमहार्णवे ।
योगिवद्भ्रमतेनित्यं रुद्रजांत्वांचयः ब्रवीत् ।६
एतमेव मया प्रश्नं पुरापृष्टो मनुः स्वयम् ।
तदेव तेऽद्यवक्ष्यामि अबलायाः समुद्दभवम् ।७

महा महर्षि श्री मार्कण्डेयजी ने कहा-इसके उपरान्त समुद्र से समुत्तीर्ण होकर चित्रकूट पर्वत के शिखर पर स्थित हुए थे । वह महाश्रृंग सुवर्ण के समान आभा वाला, अनेक वर्णों वाली शिलाओं से युक्त था हे सुव्रत, हे तात, रुद्रों की कोटि से संयुत उस श्रृंग पर विराजमान मज, ईशान, अव्यप, महात्मा सर्व भूतमय महादेवजीके मन के साथ समस्त देवगण के द्वारा नमस्कृत चरणों की वन्दना की थी। हे मानद उस समय में रुद्र के साथ युग पर्यन्त, हे कुरुनन्दन, उस ओर एकार्णव में मैं स्थित रहता था ।१।४, युधिष्ठर ने कहा हे तात इस वात को सुनकर तो मेरे हृदय में बड़ा भारी कुतूहल उत्पन्न हो गया है सो अपने बांधवी सहित श्रवण करने वाले मुझे बतलाइए ।५। यह पद्मपलाश के सदृश नेत्रों वाली कौन है जो अन्धकार से परिपूर्ण अर्णव में जो नित्य हीं योगी के समान भ्रमण किया करती है और जो स्वयं रुद्रजा की बोली थी ।६। मार्कण्डेय जी ने कहा-यही प्रश्न मैंने पहिले मनु से पूछा था । वह ही आज अवला की स्वयं उत्पत्ति तुमको बतलाता हूँ ।७।

व्यतीतायां निशायांतु ब्रह्मः परमेष्ठिनः ।
ततः प्रभाते विमलेसृज्यमानेषु जन्तुषु ।८
मनुं प्रणम्य शिरसा पृच्छाम्येतद्यु धिष्ठर ! ।
केयं पद्मपलाशाक्षी श्यामा चन्द्रनिभानना ।९।

एकार्णवे भ्रमत्येका रुद्रजाऽस्मीतिवादिनी ।
सावित्री वेदमाता च ह्यथवा सा सरस्वती ॥१०
मन्दाकिनी सरिच्छ्रेष्ठा लक्ष्मीर्वा किमथो उमा ।
कालरात्रिर्भवेत्साक्षात्प्रकृतिर्वा सुखोचिता ॥११
एतदाचक्ष्व भगवन्का सा ह्यमृतसम्भवा ।
चरत्येकार्णवे घोरे प्रनष्टोरगराक्षसे ॥१२
शृणुवत्सयथान्यायमस्यावक्ष्यामिसम्भवम् ।
यया रुद्रसमुद्भूतायाचेयवरवर्णिनी ॥१३
पुरा शिवः शान्ततनुश्चचारविपुल तपः ।
हितार्थं सर्वलोकानामुमया सह शङ्करः ॥१४

परमेष्ठी ब्रह्माजी की रात्रि के व्यतीत होने पर विमल प्रभातकाल में वस्तुओं के सृजन होने पर हे युधिष्ठिर ! मनुजी को प्रणाम करने के पश्चात् मैंने उनसे पूछा था ।८। चन्द्रमा के मुख वाली श्याम पद्म-पलाशाक्षी यह कौन है जो अपने आपको रुद्रजा कहती हुई अकेली इस एकार्णव में भ्रमण कर रही है । यह बेद माता सावित्री है अथवा सर-स्वती या सरिताओं में श्रेष्ठ मन्दाकिनी है अथवा महालक्ष्मी हैं या उमादेवी हैं । यह साक्षात् काल रात्रि हो सकती है या सुखोचित प्रकृति है ।६।११। हे भगवन् आप यह बतलाइए कि अमृत से सम्भूत होने वाली यह कौन है जो उरग और राक्षस भी जिसमें नष्ट हो गये हैं ऐसे इस परम घोर एकार्णव में चरण की करती है ।१२। सूतजीने कहा हे वत्स तुम सुनो मैं ठीक-२ इसकी उत्पत्ति बतलाता हूँ । जिस प्रकार से यह रुद्र से समुत्पन्न हुई और जो यह वरयणिनी है ।१३। प्राचीन काल में परम शान्त शरीर वाले शिवजी ने परम दुश्चर तत्पश्चर्या की थी । यह तप भगवान शंकर ने उमादेवी के साथ लोगों के हित के लिये ही किया था ।१४।

ऋक्षशैलं समारुह्य तपस्तेपे सुदारुणम् ।
अदृश्यः सर्वभूतानां सर्वभूतात्मको वशी ॥१५

तपतस्तस्य देवस्य स्वेदः समभवत्किल ।
तंगिरिंप्लावयामास सस्वेदोरुद्रसंभवः ॥१६
तस्मादासीत्समुद्भूता महापुण्या सरिद्वरा ।
या सा त्वयाऽर्णवे दृष्ट्वा पद्मपत्रायतेक्षणा ॥१७
स्त्रीरूप समवस्थाय रुद्रमाराधयत्पुरा ।
आद्ये कृतयुगे तस्मिन्समानामयुतनृप ॥१८
तपस्तुष्टो महादेव उमया सह शङ्करः ।
ब्रूहि त्वं तु महाभागे यत्ते मनसि वर्त्तते ॥१९
प्रलये समनुप्राप्ते नष्टे स्थावरजंगमे ।
प्रसादात्तव देवेश अक्षयाहं भवे प्रभो ॥२०
सरित्सु सागरेष्वव पर्वतेषु क्षयिष्वपि ।
तव प्रसादाद्देवेश ! पुण्याक्षय्याभवे प्रभो ॥२१

ऋक्ष शैल पर समारोहण करके सर्वभूतात्म बली शिवजीमें समस्त भूतोंसे अदृश होकर परम दारुण तप किया । तपस्या करते हुए उन देव के स्वेद हो गया । उस रुद्र से उत्पन्न होने वाले स्वेद ने उस गिरि को प्लावित कर दिया था ।१५-१६। उससे यह महान् पुण्य वाली श्रेष्ठ सरिता समुत्पन्न हुई थी वह वही है जिसको तुमने परमदल के समान सुन्दर नेत्रों वाली श्रणव में देखा था ।१७। पहले समय में स्त्री के स्वरूप में समास्थित होकर इसने भगवान् रुद्र की आराधना की थी । आद्य सत्युग में हे नृप ! उसने दस हजार वर्ष तक यह आराधना की । इसके पश्चात् भगवान् शंकर उमादेवी के सहित परम प्रसन्न एवं संतुष्ट होगये । भगवान् शंकर ने उससे कहा—हे महाभागे ! तू बतलादे जो कुछ भी कामना तेरे मन में हो ।१८-१९। सरिता ने कहा—हे प्रभो ! हे देवेश प्रलय के प्राप्त होने पर जब कि स्थावर और जंगम सभी नष्ट होजाया करते हैं आपके प्रसाद से उस समय मैं भी इस जगत् में अक्षय होकर कहूँ । जब सब नदियाँ-सागर और पर्वतों के भी क्षयी हो जाने पर हे देवेश्वर मैं आपके ही प्रसाद से भव में पुण्या और अक्षय रहूँ । ।२०-२१।

पारोपपातकैर्युक्ता महापातकिनोऽपि ये ।
मुच्यन्ते सर्वपापेभ्यो भक्त्या स्नात्वा तु शङ्कर ॥२२
उत्तरे जाह्नवो देवे महापातकनाशिना ।
भवामि दक्षिणेमार्गेयद्वे वसुरपूजिता ॥२३
स्वर्गादागम्यगंगेतियथाख्याक्षितौ विभो ।
तथादक्षिणगंगेतिभवेयं त्रिदशेश्वर ॥२४
पृथिव्यां सर्वतीर्थेषु स्नात्वा वल्लभते फलम् ।
तत्फल लभते मर्त्यो भक्त्या स्नात्वा महेश्वर ॥२५
ब्रह्म त्यादिकपापंयदास्तेसञ्चितक्वचित् ।
मास मात्रेण तद्देवक्षयंयात्ववगाहनात् ॥२६
यत्फल सर्वदेवेषु सर्वयज्ञेषु शङ्कर ।
अवगाहेन तत्सर्वं भवत्विति मतिर्मम ॥२७
सर्वदानोपवासेषु सर्वतीर्थावगाहने ।
तत्फलं मम तोयेन जायतामिति शङ्करः ॥२८

हे शङ्कर ! पापों, उपपानको से युद्ध तथा जो महापातकों में होवे सब भक्ति से मुझमें स्नान करके अपने पापों से मुक्त हो जावें । उत्तर देश में जांह्नवी महान् पातकों के विनाश करने वाली हैं उसी प्रकार से सुरों के द्वारा पूजित मैं दक्षिण मार्ग में हो जाऊँ । हे विभो स्वर्ग से आकर गंगा जिस तरह से भूमि में विख्यात होगयी है । हे त्रिदशेश्वर उसी भाँति मैं भी दक्षिण गंगा की प्रसिद्ध वाली हो जाऊँ । पृथिवी में समस्त तीर्थों में स्नान करनेसे जो फल प्राप्त किया जाता है उसी पुण्य फल को हे महेश्वर भक्ति भाव से मुझमें स्नान करके प्राप्त कर लेवे ।२२-२४। ब्रह्म हत्या आदि पाप जो भी कुछ कहीं पर सञ्चित होवे । हे देव एक मास पर्यन्त मुझमें अवागाहन करने से वह सब क्षय को प्राप्त होवे ।२५। हे शङ्कर जो फल सब वेदों में और सब यज्ञों में होता है । वह सभी फल मुझसे अवगाहन करने से हो जावे यही मेरी मति है ।२६। सब प्रकार के दान तथा उपवासों में तथा सब तीर्थों के अव-

गाहन में जो फल होता है वही पूर्ण फल से हो जावे—यह कामना है ।२७-२८।

मम तीरे नरा ये तु अर्च्चयन्तिमहेश्वरम् ।
ते गास्तवत लोक स्युरेतदेवभवेच्छिव ॥२९
मम कूले महेशान उमया सह दैवतैः ।
बस नित्यं जगन्नाथ एष एव वरो मम ॥३०
सुकर्मा वा विकर्मा वा शान्तो दान्तो जितेन्द्रियः ।
भूतो जन्तुमम जले गच्छतादमरावतीम् ॥३१
त्रिषुलोकेषु विख्याता महापातकनाशिनी ।
भवामि देवदेवेश प्रसन्नो यदिमन्यसे ॥३२
एतांश्चान्यावरान्दिव्यान्प्रार्थितो नृप सत्तमः ।
नर्मदया ततः प्राह प्रसन्नोवृषवाहनः ॥३३
एव भवतुकल्याणि यत्वयोक्तमनिन्दते ।
नान्यावराहर्लोकेषुमुक्त्वात्वां कमलेक्षणे ॥३४
यदैव मम देहात्वं समुद्भूता वरानने ! ।
यदैव सर्वपापानां मोचिनी त्वं न संशयः ॥३५

मेरे तट पर जो भगवान महेश्वर का अर्चन किया करते हैं। हे शिव मैं यही चाहती हूँ कि वे सब आपके लोक में चले जाया करे ।२९। हे महेशान, उमादेवी और देववृन्द के साथ आप मेरे ही तट पर नित्य निवास करे। यही मेरे लिए अभीष्ट वरदान है।३०। चाहे कोई सुन्दर कर्मों के करने वाला हो अथवा कोई कर्म रहित हो। शान्त दान्त, जितेन्द्रिय कैसा ही हो जो जन्तु मृत होकर जल में आवे वह सीधा अमरावती को चला जाया करे ।३१। हे देव देवेश यदि आप अपने को मुझ पर प्रसन्न हुए मानते हैं तो यह वरदान प्रदान करिये कि मैं तीनों लोकों में महापातकों के विनाश करने वाली विख्यात हो जाऊँ ।३२। हे नृप श्रेष्ठ, नर्मदा के द्वारा भगवान् शंकर से ये तथा अन्य दिव्य वरदानों की प्राप्ति की प्रार्थना की थी इसके पश्चात् भगवान् वृषभ के वाहन वाले शिव प्रसन्न होगए थे ।३३। श्री महेश ने

कहा—हे अनिन्दित कल्याणि जो भी तूने याचित किया है वह ऐसा ही सब हो जावेगा। हे कमल के समान लोचनों वाली तुझको छोड़कर लोकों में अन्य कोई वरों के योग्य भी नहीं है।३४। हे वरानने जिस समय तू मेरे शरीर में समुत्पन्न हुई उसी समय तू समस्त पापों के मोचन कर देने वाली हो गयी थी। इससे तो कुछ भी संशय है ही नहीं।३५।

कल्पक्षयकरे काले काले घोरे विशेषतः।
उत्तरं कूलमाश्रित्य निवसन्ति चयेनराः ॥३६
अधिकीटपतंगाश्च वृक्षगुल्मलतादयः।
आदेहपतनाद्देवि ! ते ऽस्यिस्यन्तिसद्गतिम् ॥३७
दक्षिणं कलमाश्रित्य ये द्विजा धर्मवत्सलाः।
आमृत्यीनिवसिष्यन्ति ते गताः पितृमन्दिरे ॥३८
अहं हि तववाक्येन कस्मिाश्चित्कारणान्तरे।
त्वत्तीरे निवसिष्यामि सदैव ह्युमया समम् ॥३९
एव देवि ! महादेवि ! एवमेव न संशयः।
ब्रह्मेन्द्रचन्द्रवरुणैः साध्यैश्च सह विष्णुना ॥४०
उत्तरेदेवि ! ते कूलेवसिष्यन्तिममाज्ञया।
दक्षिणे पितृभिः सार्द्धं तथाऽन्येसुन्दरि ॥४१
वसिष्यन्ति मया सार्द्धमेष ते वर उत्तमः।
गच्छ गच्च महाभागे ! मर्त्यान्पापाद्विमोचय ॥४२
संहिता ऋषिसर्घश्च तथासिषुसुरासुरैः।
एवमुक्त्वा महादेवउमयासहितोविभुः ॥४३
वन्द्यमानोऽथ मनुना मया चादर्शनंगतः।
तेन चैषा महापुण्यामहापातकनाशिनी ॥४४

कल्पों के क्षय करने वाले काल में और विशेष रूप से महान घोर काल में तेरे उत्तर तट का आश्रय ग्रहण करके जो नर निवास करते हैं तथा मनुष्य ही नही कीट, पतंग, वृक्ष, गुल्म और लता आदि भी अपने देह के पतन होने पर हे देवि, वे सब भी सद्गति को प्राप्त हो जावेगे

।३६-३७। जो धर्म प्रिय मनुष्य (द्विज) दक्षिण तट का आश्रय ग्रहणकर मृत्यु पर्यन्त निवास करते हैं ते पितृ मन्दिर में गये हैं।३८। मैं तो तेरे वचन से किसी अन्य कारण तेरे तीर पर सदा ही उमादेवी के सहित निवास करूँगा।३९। हे देवि हे महादेवि ऐसा ही है। इसमें संशय नहीं है। ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्र, वरुण और साध्वगण देव वृन्द भगवान् विष्णु के साथ हे देवि ! उत्तर तट पर तेरे समीप में ही मेरी आज्ञा से निवास करेंगे। हे सुर सुन्दरि तेरे दक्षिण तट पर उसी प्रकार से पितृ-गण के साथ अन्य देवगण वास करेगें तथा सिद्ध सुर और असुरों के सहित एवं ऋषिगण के समुदायों के साथ वहाँ पर भी निवास करेंगे इस प्रकार से कहकर विप्र श्री महादेव उमा के सहित मेरे द्वारा और मनुके द्वारा वन्द्यमान होते हुए अन्तर्धान हो गये थे। इसीमें यह महान् पातकों के विनाश करने वाली है।४०-४७।

कथिता पृच्छ्यते या ते मा ते भवतु विस्तय।
एषा गङ्गा महापुण्या त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ॥४५
दशभिः पञ्चभिः स्रोतैः प्लावयन्तो दिशो दश।
शोणोमहानदश्चैवनर्मदा सुरसाकृता ॥४६
मन्दाकिनो दशार्णा च चित्रकूटा तथैव च।
तमसाविदिशा चैवकरभायमुनातथा ॥४७
चित्रात्पलाविपाशाच रञ्जनावालुवाहिनी।
ऋक्षपादप्रसूतास्ताः सर्वारुद्रसंभवाः ॥४८
सर्वपापहराः पुण्याः सर्वमंगलदाः शिवा।
इत्येतैर्नाधभिर्दिव्यैः स्तूयतेवेदपारगैः ॥४९
पुराणज्ञै र्महाभागैराज्यपः सोमपैस्तथा।
इत्येतत्सर्वमाख्यात महाभाग्यं नरोत्तम ॥५०
मनुसोक्तं पुरामह्यममृतायाः समुद्भवम्।
पुण्यं पवित्रमतुलं रुद्रोद्गीतमिद शुभम् ॥५१
ये नराः कीर्त्तयष्यन्ति भक्त्या श्रृण्वन्ति येऽपि च।
प्रातरुत्थाय मामानि दश पञ्च च भारत ॥५२

ते नराः सकलपुण्यलभिष्यन्त्वबागाहजम् ।
विमानेनार्कवर्णनघण्टाशतनिनादिना ॥५३
त्यक्त्वा मानुष्यक भाव यास्यन्ति परमां गतिम् ॥५४

जो आपके द्वारा पूछा जाता है वह सब ही कह दी गई है। इसमें आपको विस्मय नहीं करना चाहिए। यह महान् पुण्यशालिनी गंगा है जो तीनों लोकों में प्रसिद्ध है।४५। पन्द्रह स्रोतों के द्वारा दशों दिशाओं का प्लावन करती हुई यह नर्मदा है। महानन्द शोण, नर्मदा विदिशा, करमा, यमुना, चित्रोत्पला, विपाशा, रञ्जता, वालु वाहिनी और रिक्षवाद प्रसूता वे सभी श्री रुद्रदेव से सम्भूत होने वाली है।४७-४८। वे समस्त पापों के हरण करने वाली सरितायें हैं—परम पुण्यमयी सभी मंगलों के प्रदान करने वाली—शिवा है। इस दिव्य नामों के द्वारा वेदों के पारगामी विद्वानों के द्वारा सदा स्तुति की जाया करती है। इसका स्तवन पुराणों के ज्ञाता—महाभाग राज्यों के स्वामी तथा सोमपान करने वालों के द्वारा किया जाता है। हे नरोत्तम ! यह सब महाभाग कह दिया गया है। इस अमृता का उद्भव पहिले मनुदेव ने मुझसे कहा था। यह परम पुण्यमय अतुल पवित्र शुभ और रुद्र के द्वारा समुदगीत है। जो मनुष्य इसका कीर्तन करेंगे और जो भक्तिभाव में श्रवण करेगे और हे भारत ! प्रातः उठकर इन दश और पाँच नामों का स्मरण करेंगे वे मनुष्य अवगाहन से उत्पन्न सम्पूर्ण पुण्य को प्राप्त करेंगे। सौ घण्टाओं के ध्वनि वाले सूर्य के समान विमान के द्वारा मनुष्यत्व के भाव का परित्याग करके वे परम गति को प्राप्त करेंगे।४९-५४।

८४—नर्मदा स्तोत्र वर्णन

एतच्छ्रुत्वा वचो राजन्संहृष्टा ऋषयोऽभवन् ।
नर्मदा स्तोतुमारब्धाः कृताँजलिपुटादिजाः ॥१
नमोऽस्तु ते पुण्यजले नमोमकरगामिनी ।
नमस्ते पापमोचिन्त्यं नमो देवि ! वरानने ! ॥२

नमोऽस्तु ते पुण्यजलाश्रये ! शुभे !
विशुद्धसत्वे ! सुरसिद्धसेविते ।
नमोऽस्तु ते तीर्थगणैर्निषेविते
नमोऽस्तु रुद्रांगसमुद्भवे ! वरे ॥३
नमोऽस्तु ते देवि ! समुद्रगामिनि !
नमोऽस्तु ते देवि वरप्रदेस्तशिवे ।
नमोऽस्तु लोकद्वयसांख्यदायिनो !
ह्यनेकभूतौघसमाश्रितेऽनघे ॥४
सारद्वरे ! पापहरे ! विचित्रिते !
गन्धर्वयक्षोरगसेवितांगे ।
सनातनि ! प्राणिगणानुकम्पिनि !
मोक्षप्रदे ! देवि ! विधेहि श नः ॥५
महागजौघैर्महिषैर्वराहैः ससेविते देवि महोर्मिमाल ।
नताः स्म सर्वे वरदे ! सुखप्रदे !
विमोचयास्मा पशुपाशबन्धात् ॥६
पापैरनेकरशुभैर्विबद्धा भ्रमन्ति तावन्नरकेषु मर्त्याः ।
महानिलोद्भूततरंगभूतं
यावत्तवाम्भो हि न संस्पृशन्ति ॥७

महामुनि मार्कण्डेयजी ने कहा-- हे राजन् इस वचन का श्रवण कर ऋषिगण परम हर्षित हुए थे द्विजगण हाथ जोड़कर सर्वदा की स्तुति करने लगे थे ।१। हे परम पुण्य जल वाली आपकी सेवा में हमारा नमस्कार हैं । मकर गामिनि आपके लिए हमारा नमस्कार है हे देवि पापों के मोचन करने वाली आपको नमस्कार है । हे वरानने आपको हमारा नमस्कार हैं ।२। पुण्य जल के आश्रय वाली परम शुभे आपको नमस्कार हैं । आप विशुद्ध सत्व वाली और सुरों के द्वारा सेवित हैं । समस्त तीर्थो के समुदाय के द्वारा सेवित और विशुद्धसत्व सम्पन्न आपको नमस्कार है । आप सुरों और सिद्धोंके द्वारा सदासेवित हैं । आप भगवान रुद्रके अङ्गसे परम वरिष्ठहैं आपको हमारा नमस्कार

है ।३। हे वरों के प्रदान करने वाली देवि ! हे शिवे ! आपको प्रणाम है दोनों लोकों में सौख्य के प्रदान करने वाली देवि ! आप तो अनेक भूतों के समुदायों को समाश्रय देने वाली और अनघ हैं आपको हमारा नमस्कार है ।४। आप समस्त सरिताओं में श्रेष्ठ हैं । हे पापहरे ! हे विचित्रिते ! आप गन्धर्व—राक्षस—उरङ्गों के द्वारा सेवित अङ्ग वाली हैं । हे सनातनि ! समस्त प्राणियों के गणों पर कृपा करने वाली हैं और मोक्ष के प्रदान करने वाली हैं हे देवि ! आप हमारा कल्याण करे ।५। हे महान् उर्मियों की माला वाली ! हे देवि ! आप महान् गजों के समुदाय, महिष और वराहों के द्वारा भली भाँति सेवित है । हे वरदे ! हे सुखप्रदे ! हम सब नत हैं हमको पशुपाश के वन्ध से विमुक्त कराइए ।६। अनेक अशुभ पापों से विशेष रूप से बद्ध मनुष्य अभी तक नरकों में भ्रमण किया करते हैं जब तक महा निलोद्भूत आपके जल का वे स्पर्श नही करते हैं ।७।

अनेकदुःखौघभयार्दितानां पापैरनेकैरभिवेष्टितानाम् ।
गतिस्त्वमम्भोजसमानवक्त्रो द्वन्द्वै रनेकैरपि सम्वृतानाम् ॥८
नद्यश्च पूता विमला भवन्ति
त्वां देवि सम्प्राप्य न संशयोऽत्र ।
दुःखातुराणामभय ददासि
शिष्टैरनेकैरभिपूजिताऽसि ॥९
स्पृष्टाकरैश्चन्द्रमसो रवेश्च
तदैव ददाति परमां पदं तु ।
यत्रोपला पुण्यजलाप्लुतास्ते ।
शिवत्वमायान्ति किमत्र चित्रम् ॥१०
भ्रमन्ति तावन्नरकेषु मर्त्या दुःखातुराः पापपरीतदेहाः ।
महानिलोद्भूततरगभंगं यावत्तवाम्भो न हि संश्रयन्ति ॥११

अनेक दुःखों और भयों से पीड़ित और अनेक पापों से अवेष्टित मानवों की आपही गति हैं । हे अम्भोज के समान मुख वाली ! मनुष्य

संसार में अनेक द्वन्दों से सम्वृत है उन सबका उद्धार आपही करने वाली है।८। हे देवि ! आपको सम्प्रात करके नदियाँ विमल और पूत हो जाती हैं, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। जो दुःखसे आतुर हैं उनको आप अभय दिया करती हैं और आप अनेक शिष्टोंके द्वारा अभिपूजित है।९। चन्द्रमा के वरों से तथा सूर्य के करों से स्पष्ट आपका जल उसी समय में परम पद प्रदान किया करता है जहाँ पर पुण्य जल से प्लुत हुए शिवत्व को प्रदान किया करते हैं, इसमें क्या विचित्र बात है।१०। तभी तक मनुष्य पापों से विरीत देहों वाले नरकों में दुःखों से आतुर होते हुए भ्रमण किया करते हैं जब तक महा निलोद्‌भूत तरङ्गोंके भंग वाले आपके जल का समाश्रय ग्रहण नहीं किया करते हैं।११।

म्लेच्छाः पुलिन्दास्त्वथ यातुधानाः ।
पिवन्ति येऽम्भस्तव देवि पुण्यम् ।
मुक्ता भवन्तीह भयात्तु घोरान्
निः संशयंतेऽपि किमत् चित्रम् ॥१२
सरांसि नद्यः क्षयमभ्युपेता ।
घोरे युगेऽस्मिन्हि कलौ प्रदूषिते ।
त्वं भ्राजसे देवि जलौघपूर्णा
दिवीव नक्षत्रपथे च गंगा ॥१३
तव प्रसादाद्वरदे वरिष्ठे
कालं यथेमं परिपालयित्वा ।
यामोऽथ रुद्रं तव सुप्रसादा
द्वयं तथा त्वं कुरु वै प्रसादम् ॥१४

आपके परम पुण्यमय जल को म्लेच्छपुलिन्द यातुधान सब पान करते हैं वे भी घोरभय से मुक्त हो जाया करते हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है और इसमें विचित्रता ही क्या है।१२। इस प्रदूषित कलियुग में जो परम घोर है सभी सर और नदियाँ क्षय को प्राप्त हो जाया करते है। हे देवि ! आप तो जल के ओघ से परिपूर्ण हुई भ्राज्यमान रहती हैं जैसे दिवलोक में और नक्षत्र पथ में गंगा रहा करती है।१३। हे

वरिष्ठ ! हे वरदे ! इस काल का परिपालन करके आपके सुप्रसाद से हम रुद्र के समीप में व्याप्त हो जायें उसी प्रकार का आप हमारे ऊपर प्रसाद करिए ।१४।

गतिस्त्वमम्वेव पितेव पुत्रां
स्त्वं पाहि नो यावदिमंयुगान्तम् ।
काले त्वनावृष्टिहृतं सुधीरं
यावत्तरामस्तव सुप्रसादात् ॥१५
ठन्ति ये स्तोत्रमिदं द्विजेन्द्राः
श्रृण्वन्ति ये चापि नराः प्रशान्ताः ।
ये यान्ति रुद्रं वृषसंयुतेन
यानेन दिव्याम्बरभूषिताश्च ॥१६
ये स्तोत्रमतत्सततं पठन्ति
स्नात्वा तु ये खलु नर्मदायाः ।
अन्ते हि तेषां सरिदुत्तमेयं
गति विशुद्धामचिराद्ददाति ॥१७
प्रातः समुत्थाय तथा शयानो
यः कीर्तयेताऽनुदिनं स्तवं च ।
स मुक्तपापः सुविशुद्धदेहः
समाश्रयं याति महेश्वरस्य ॥१८

अम्बा की भाँति आप ही गति हैं और आप पिता के समान जब तक इस युग का अन्त हो हमारी रक्षा करिए । काल में अनावृष्टि से हत सुधीर को हम तारण करें यह आपका ही सुप्रसाद है ।१५। जो द्विजेन्द्र इस स्तोत्र को पढ़ते हैं और जो परम प्रशान्त होकर मनुष्य इसका श्रवण किया करते हैं वे वृष से समन्वित यान के द्वारा दिव्य वस्त्रादि से विभूषित होते हुए यान के द्वारा रुद्र के समीप गमन किया करते हैं ।१६। जो मनुष्य नर्मदा के जल में स्नान करके इस स्तोत्र को निरन्तर पढ़ा करते हैं अन्त में शीघ्र ही वह उत्तमा सरिता उनको विशुद्ध गति प्रदान किया करती है ।१७। प्रातः शय्या से उठकर या शयन करता हुआ ही प्रति दिन इन सबका कीर्तन किया करता है ।

वह पापो से छुटकारा पाकर विशुद्ध देह वाला होते हुए भगवान् महेश्वर का समाश्रय ग्रहण किया करता है।१८।

८४—कावेरीसंगम माहात्म्यवर्णन

काबेरीति च विख्याता त्रिषु लोकेषु सत्तम ।
माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि तस्या मार्कण्ड तत्वतः ॥१
कीदृश दर्मन तस्याः फल स्पर्शऽथवाविभो ।
स्नानेजाप्येऽथवादानउपवासेतथामुने ॥२
कथयस्व महाभागकावेरोसंगमेफलम् ।
धर्मः श्रुताऽथादृष्टोवाकथितोवाकृतोऽरिवा ॥३
अनुमोदितो वा विप्रेन्द्र पुनातीति श्रुत मया ।
यथा धर्मप्रसंगे तु मुनि धर्मोऽपिजायते ॥४
स्वर्गश्व नरकश्चैव इत्येव वैदिकी श्रुतिः ॥५
साधुसाधुमहाभागपृष्टोऽहं त्वयाऽधुना ।
श्रृणुर्ष्वकमनाभूत्वाकावेरीफलमुत्तमम् ॥६
अस्ति यक्षो महासत्वः कुवेरोनाम विश्रुतः ।
सोऽपि तीर्थं प्रभावेण राजन्यक्षाधिपोऽभवत् ॥७

राजा युधिष्ठिर ने कहा—हे श्रेष्ठतम ! तीनों लोकों में कावेरी विख्यात हैं। मार्कण्डेय ! तात्विक रूप से उसके माहात्म्य का श्रवण करना चाहता हूँ। हे विप्रो ! उसका दर्शन कैसा है अथवा स्पर्श करने में क्या फल होता है।१-२। हे मुनिवर ! आप तो महान भाग्य वाले हैं। इस कावेरी के संगम में जो भी फल होता है उसे कहिए। धर्म चाहे श्रुत हो—दृष्ट हो—कथित हो—कृत हो—अनुमोदित हो हे विप्रेन्द्र ! वप पवित्र कर दिया करता है—ऐसा मैंने सुना है। हे मुने ! धर्म के प्रसंग में जैसे धर्म भी होता है वैसे ही स्वर्ग और नरक भी है—इस

प्रकार की वैदिकी श्रुति है।१५। श्री मार्कण्डेयजी ने कहा—हे महाभाग ! बहुत ही अच्छा है जो कि आपने इस समय में मुझसे पूछा है। अब आप एक मन होकर कावेरी के उत्तम फलका श्रवण करिए। एक महान सत्य वाला यक्ष जो कि कुवेर इस नामसे प्रसिद्ध था, हुआ था। यह भी तीर्थ के प्रभाव से हे राजन् ! यक्ष का राजा हो गया था।६-७

तच्छ्रृणुत्वं विधानेन भक्त्यापरमयानृप ।
सिद्धि प्राप्तोमहाभागकावेरीसंगमेन तु ॥८
कावेर्या नर्मदायास्तुसंगमेलोकविश्रुते ।
तत्र स्नात्वाशुचिर्भूत्वाकुबेरः सत्वविक्रमः ॥९
विधिवन्नियमं कृत्वा शास्त्रयुक्त्या नरोत्तम ।
आराधयन्महादेवमेकचित्तः सनातनम् ॥१०
एकाहारोवसन्मास तथाषष्ठाह्नकालिकः ।
पक्षोपवासीन्यवसत्कश्चित्कालंनृपोसत्तम ॥११
मूलशाकफलैश्चान्त कालं नयति बद्धिमान् ।
किञ्चित्कालमवसस्तत्र तीर्थं शैवालभोजनः ॥१२
पराकेणानयत्कालं कृच्छ्रेणापिचमानद ।
चान्द्रायणेनचाप्यन्यमन्यस्बुभोतनः ॥१३
एवं तत्र नपः श्रेष्ठः कामरागविवर्जितः ।
स्थितोवर्षशतं साग्रं कर्षयन्स्व तथा वपुः ॥१४

हे नृप परम भक्ति के भाव से विधान से उसका आप श्रवण करिए। हे महाभाग ! काबेरी के संगम से तो सिद्धि को प्राप्त होगया था।८। लोक में परम प्रसिद्ध कावेरी और नर्मदा का संगम है। उसमें स्नान करके और पवित्र होकर कुबेर सत्य विक्रम वाला हो गया था।९। कुबेर ने विधिपूर्वक नियम धारण करके हे नरोत्तम ! शास्त्रोक्त रीति से एक चित्त होकर सनातन महादेव की आराधना की थी। वह कुछ समय तक एकही बार आहार करने वाला रहाथा। फिर एकमास

भोजन करने वाला होकर कुछ समय तक वहाँ उसने वास किया था ।१०-११। उस बुद्धिमान ने अन्य काल को मूल-फल और शाक के आहार से व्यतीत किया था। कुछ समय तक केवल शैवाल का ही आहार करके वह वहाँ पर निवास करने वाला हुआ था ।१२। हे मानव ! उन कुवेर ने कुछ समय पराक, कृच्छ्र और चान्द्रायण व्रतों के द्वारा व्यतीत किया था और कुछ समय तक केवल जलपान को ही भोजन रखकर तपस्या की थी ।१३। हे नर श्रेष्ठ ! उस रीति से वहाँ पर काम और राग से विवर्जित सोकर अपने शरीर को कर्षित करता हुआ वहाँ डेढ़ सौ वर्ष तक स्थित रहा था ।१४।

ततो वर्षशतस्यान्ते देवदेवो महेश्वरः ।
तुष्टस्तु परया भक्त्या तमुवाच हसन्निव ॥१५
भो भो यक्ष महासत्व वरं वरय सुव्रत ।
परितुष्टोऽस्मि ते भक्त्या तव दास्ये तथेप्सितम् ॥१६
यदि तुष्टोऽसि देवेश उमयासह शङ्कर ।
अद्यप्रभृति सर्वेषां यक्षाणामाधिपो भवे ॥१७
अक्षयश्चाव्ययश्चैव तव भक्तिपुरस्सरः ।
धर्मे मति च नित्यं ददस्व परमेश्वर ॥१८
यत्वया प्रार्थित सर्वं फल धर्मस्य तत्तथा ।
इत्येमुक्त्वा तं तत्र जगामादर्शनं हरः ॥१९
सोऽपि स्नात्वा विधानेन सन्तर्प्य पितृदेवताः ।
आमन्त्रयित्वा तत्तीर्थं कृतार्थश्च गृहं ययौ ॥२०
पूजितस्तत्र यक्षस्तु सोऽभिषिक्तो विधानतः ।
चकार विपुल तत्र राज्यमीप्सितमुत्तमम् ॥२१

इसके उपरान्त जब कि सौ वर्ष समाप्त होगये थे तो उनके अन्तमें देवों के भी देव भगवान् महेश्वर प्रसन्न हुए थे और उसको पराभक्ति तुष्ट होकर हँसते हुए उससे बोले थे ।१५। हे यक्ष ! हे महान् सत्व वाले ! हे सुव्रत ! वरदान की याचना करो मैं तेरी भक्ति से परितुष्ट होगया हूँ और तुझको जो भी तेरा अभीष्ट वर होगा उसे दे दूँगा।१६

यक्षने कहा—हे देवेश ! यदि आप मुझ पर परम तुष्ट हैं तो हे उमादेवी के सहित भगवान् शंकर ! मैं आजही से लेकर समस्त यक्षोंका स्वामी हो जाऊँ और अक्षय तथा अव्यय हो जाऊँ जिसमें आपकी भक्ति भरी हुई हो। परमेश्वर ! धर्म में नित्य ही मेरी मति आप प्रदान कीजिए।१७-१८। ईश्वर ने कहा—तूने जो भी प्रार्थना की है वह उसी भाँति धर्म का फल होगा, बस इतना ही कहकर भगवान् हर वहीं पर अन्तर्धान हो गये थे।१९। यह भी स्नान करके विधि पूर्वक पितृगण और देवों का भली भाँति तर्पण करके उस तीर्थ को आमन्त्रित करके कृतज्ञ होता हुआ अपने घर को चला गया था।२०। वहाँ पर वह समस्त यक्ष के द्वारा पूजित हुआ और उसका विधान के साथ अभिषेक किया गया था। वहाँ पर उसने उत्तम और बहुत अपना इच्छित राज्य किया था।२१।

तत्र चान्ये सुराः सिद्धायक्षगन्धर्वकिन्नराः।
गणाश्चाप्सरसांतत्रऋषयश्चतथाऽनघ ॥२२
कावेरी संगम तेन सर्वपापहरं विदुः।
स्वर्गाणामपि सर्वेषां द्वारमेतद्युधिष्ठर ॥२३
ते धन्यास्ते महात्मानस्तेषां जन्म सुजीवितम्।
कावेरीसंगमे ध्यात्वा यैर्दत्त हि तिलोदकम् ॥२४
दश पूर्वे परे तात मातृतः पितृतस्तथा।
पितरः पितामहास्तेन उद्धृतानरकार्णवात् ॥२५
तस्मात्सर्व प्रयत्नेन तत्र स्नायीतमानवः।
अर्चयेदीश्वर देवयदीच्छेच्छाश्वतींगतिम् ॥२६
कावेरीसंगमे राजस्नानदानार्चनं नरैः।
कृत भक्त्या नरश्रेष्ठ अश्वमेधाधिकफलम् ॥२७
होमेन चाक्षयः स्वर्गो जपादायुर्विवर्धते।
ध्यानतो नित्यमायाति पद शिवकलात्मकम् ॥२८

हे अनघ ! वहाँ पर अन्य सुर, सिद्धि यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, अप्सराओं के गण तथा ऋषिवृन्द भी थे। इससे वह कावेरी का संगम

समस्त पापों का हरण करने वाला जाना गया है। हे युधिष्ठिर ! वह स्वर्गों का और अन्य समस्त लोकों का द्वार है।२२-२३। वे महान् आत्मा वाले पुरुष परम धन्य हैं और उनका जीवन अति सुन्दर जीवन है जिन्होंने कावेरी के संगम में स्नान करके तिलोदक समर्पित किया है।२४। हे तात ! उसने माता पिता दोनों के दश पूर्व के और दश पर के पितरों पितामह को नरक के घोर अर्णव से उद्धार कर दिया है ।२५। इसलिए सब प्रयत्नों से मनुष्य को वहाँ पर अवश्य ही स्नान करना चाहिए। यदि शाश्वत गतिकी इच्छा रखता है तो वहाँ पर देव ईश्वर की अर्चना करनी चाहिए।२६। हे राजन् ! कावेरी के संगम में जिन मनुष्यों ने भक्ति की भावना से स्नान दान और अर्चन किया है हे नर उनको अश्वमेघ यज्ञ से भी अधिक फल प्राप्त होता है।२७। होम से अक्षय स्वर्ग की प्राप्ति होती है और जाप करने से आयु की वृद्धि हुआ करती है।२८।

अग्निप्रवेशं यः कुर्यात्तस्मिस्तीर्थे नरेश्वर।
अग्निलोकेवसेत्तावद्यावदाभूतसंप्लवम् ॥२९
अनाशक तु यः कुर्यात्तस्मिस्तीर्थे नराधिप।
तस्य पुण्यफलं यद्वै तच्छृणुष्व नरोत्तम ॥३०
गन्धर्वाप्सरसांकीर्णे विमाने सूर्यसन्निभे।
बीज्यमानो वरस्त्रीभिर्देवतैः सह मोदते ॥३१
षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च।
क्रीडते रुद्रलोकस्थस्तनदन्ते भुवि चागतः ॥३२
भोगवान्दानशीलश्च जायते पृथिवीपतिः।
आधिशोकविनिर्मुक्तो जीवेच्च शरदां शतम् ॥३३
एवंगुणगणाकीर्णा काबेरी सा सरिन्नृप।
त्रिषु लोकेषुविख्यातानर्मदा संगमेसदा ॥३४
जितवाक्कायचित्ताश्च ध्येयध्यानरतास्तथा।
काबेरीसंगमे तात तेऽपि मोक्षमवाप्नुयुः ॥३५

हे नरेश्वर ! उस तीर्थ में जो कोई अग्नि में प्रवेश किया करता है यह जब तक भूत सप्लव अर्थात् महा प्रलय होता है अग्नि लोक में निवास प्राप्त किया करता है ।२९। हे नराधिप ! उस तीर्थ में जो कोई अनाशक करे उसको जो भी पुण्यफल होता है उसको सुनिये ।३०। वह व्यक्ति गन्धर्व और अप्सराओं के द्वारा संकीर्ण विमान में जो कि तूर्य के समान होता है परम श्रेष्ठ स्त्रियों के द्वारा वीज्यमान होता हुआ देवों के साथ आनन्द प्राप्त किया करता है ।३१। वह साठ हजार आठसौ वर्ष पर्यन्त रुद्रलोक में स्थित होकर क्रीड़ा किया करता है। इतने समय के पश्चात् ही वह इस भूलोक में आता है ।३२। यहाँ पर भी अत्यन्त अधिक भोगों से समन्वित होकर तथा परम दान देने वाला होता हुआ राजा हो जाता है। वह मानसिक व्यथा और शोक आदि से रहित होकर सौ वर्ष तक जीवित रहता है ।३३। हे नृप ! इसप्रकार से अनेक गुणगण से वह कावेरी सरित युक्त है और तीनों लोकों में सदा नर्मदा के संगम में विख्यात है ।३४। हे तात ! उस कावेरी के सङ्गम में अपने वचन काया और चित्त के ऊपर विजय प्राप्त करके ध्येय के ध्यान में रत होते हुए निवास किया करते हैं वे सभी मोक्ष को प्राप्त कर लिया करते हैं ।३५।

शृणु तेऽन्यत्प्रवक्ष्यामिआश्चार्यंनृपसत्तम् ।
त्रिषु लोकेषुकात्वन्याहृश्यतेसरितासमा ॥३६
लब्धं यैर्नर्मदातोयं ये चाकुर्युः प्रदक्षिणम् ।
ये पिबन्ति जलं तत्र ते पुण्यानात्रसंशयः ॥३७
न तेषां सन्ततिच्छेदो दश जन्मानि पञ्च च ।
तेषां पाप विलीयेत हिम सूर्योदये यथा ॥३८
गंगायमुनयोसंगे यत्फलं लभते नरः ।
तत्फलं लभते मर्त्यः कावेरीस्नानमाचरन् ॥३९
भौमे तु भूमजायोगे व्यतीपाते वसंक्रमे ।
राहुसोमसमायोगेतदेवाष्टगुणं स्मृतम् ॥४०

अशीश्च्रि यवाः प्रौक्ता गंगायामुनसंगमे ।
कावेरीनर्मदायोगेतदेवाष्टगुणं स्मृतम् ।।४१
गंगा षष्टिसहस्रैस्तु क्षेत्रपालैः प्रपूज्यते ।
तद्वद्वै रन्यतीर्थानि रक्षन्ते नाऽत्र संशयः ।।४२

हे नृप सत्तम ? आप श्रवण करिये मैं आपको अन्य आश्चर्य बतलाता हूँ तीनों लोकों में इस सरिता के समान अन्य कौन-सीं है अर्थात् कोई भी नहीं है । जिन्होंने नर्मदा का जल प्राप्त कर लिया है और जो इसकी परिक्रमा करते हैं । जो वहाँ पर इसके जलका पान किया करते हैं, ये परम पुण्यशाली हैं, इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।३६-३७। पन्द्रह जन्मों तक उनकी सन्तति का छेद नहीं होता है सूर्योदय के होने पर हिम के समान ही उनके सब पाप विलीन हो जाया करते हैं ।३८। गङ्गा और यमुना के सङ्गम जो फलमनुष्य प्राप्त करता है उसी पुण्यफल को मनुष्य कावेरी के स्नान से प्राप्त करता है ।३९। भौम में भूमजा योग के होने पर व्यतीपात में, सूर्य के संक्रमण में तथा राहु और सोमके योग होने पर वही पुण्य फल अठगुना बताया गया है।४०। गङ्गा और यमुना के सङ्गम में अशीत्ति तब कहे गये हैं वही कावेरी और नर्मदा के सङ्गम के आठ गुना बताया गया है ।४१। गङ्गा साठ हजार क्षेत्रपालों के द्वारा प्रकर्ष रूपसे पूजी जाया करतीहै उनके आधो के द्वारा अन्य तीर्थ रहित किये जाया करते हैं, इसमें तनिक भी संशय नहीं है ।४२।

अमेरेश्वरे तु सरितां ये गोगाः परिकीर्तिताः ।
ते त्वशीतिसहस्रैस्तु क्षेत्रपालैस्तु रक्षिताः ।।४३
तथामरेश्वरे याम्ये लिंग वैचपलेश्वरम् ।
द्वितीय चण्डहस्ताख्यं द्वे लिंगेत्रीर्थरक्षके ।।४४
शिवेन स्थापिते पूर्वं कावेर्याद्यभिरक्षके ।
लक्षेण रक्षिता देवी नर्मदा वहुकल्पगा ।।४५
धनुषां षष्टयमियुतैः पुरुषैरीशयोजितः ।
ॐकारशतसाहस्रैः सर्वतैश्चाभिरक्षितः ।।४६

प्रन्यदेशकृतं पापमस्मिन्क्षेत्रो विनश्यति ।
अस्मिस्तीर्थे कृत पाप वज्रलेपो भविष्यति ॥४७
एषा ते कथिता तात कावेरी सरितां वरा ।
रुद्रदेह समुत्पन्ना तेन पुण्यासरिद्वरा ॥४८

सरिताओं के अमरेश्वर योग में जो योग कीर्तित किये गए हैं वे अस्सी हजार क्षेंत्रपालों के द्वारा रक्षित होते हैं ।४३। उसी प्रकार अमरेश्वर के याम्य में चपलेश्वर लिंग है और दूसरा चण्डहस्त नामक लिंग है । ये दोनों लिंग तीर्थ संज्ञा वाले हैं ।४४। पहिले ही भगवान् शिव के द्वारा कावेरी, आदि के अभिरक्षक ने स्थापित किए गए । वह देवी नर्मदालक्ष के द्वारा रक्षित हुई है जोकि बहुत कल्पों में गमन करने वाली हैं ।४५। साठ धनुषों से अभियुक्त पुरुषों के द्वारा जो कि भगवान् ईश के द्वारा योजित हैं और सौ सहस्र ओंकारों से पर्वत अभिरक्षित होता है । अन्य स्थल में किया हुआ पाप इस क्षेत्र में विनिष्ट हो जाया करता है ।४६। इस तीर्थ में समागत होकर जो भी पाप किया जाता है वह वज्र लेप हो जाया करता है ।४७। हे तात ! तुम्हारे आगे यह समस्त सरिताओं में परम श्रेष्ठ नदी कावेरी का वर्णन किया गया है । यह कावेरी साक्षात् भगवान् रुद्र के देह से समुत्पन्न हैं उसी से यह परम पुण्यमयी सरिता परम श्रेष्ठ है ।४८।

८५–शूल भेदप्रशंसावर्णन

तीर्थानां परमं तीर्थंतच्छृणुष्वनराधिप ।
रेवायां दक्षिणेकूले निर्मितं शूलपाणिना ॥१
मोक्षार्थं मानवेन्द्राणां निर्मितं नृपसत्तम ।
श्रुत्वा मे विविधा धर्मास्तीर्था विविधानि च ।
दानधर्मा समस्ताश्च त्वप्रसादाद् द्विजोत्तमा ॥२
अन्यच्चच श्रोतुमिच्छामिससारश्विच्छद्यतेयथा ।
पुनरागनन तास्तिमोक्षप्राप्तिभवेद्यथा ॥३

एतदाख्याहि मे सव प्रसादाद् द्विजसत्तम ॥४
शृणुष्वेकमना भूत्वा तीर्थात्तीर्थान्तरं महत् ।
श्रुते यस्य प्रभावे तु मुच्यते ;चाब्दिकादधात् ॥५
वाचिकैर्मानसैर्वापि शारीरैश्चविशेषत: ।
कीर्त्तनात्तस्य तीर्थस्यमुच्यते सर्वपातकैः ॥६
पञ्चक्रोशप्रमाण तु तच्च तीर्थं महीपते ।
भुक्तिमुक्तिप्रदं दिव्यं प्राणिनां पापकर्मिणाम् ॥७

महर्षि प्रवर श्रीमार्कण्डेयजी ने कहा हे नराधिप समस्त तीर्थोंमें जो परम शिरोमणि तीर्थ है उसके विषय में अव सावधान होकर श्रवण करिए। इस तीर्थ को साक्षात् भगवान् शूलपाणि ने रेवा नदीके दाहिने तट पर निर्मित किया है।१। हे नृपों में परम श्रेष्ठ ! इस तीर्थ का निर्माण मानवों के मोक्ष का सम्पादन करने के लिए ही किया गया हैं। युधिष्ठिर ने कहा–हे द्विजों में परमोत्तम ! आपकी कृपा से मैंने अनेक धर्म और नाना प्रकार के तीर्थो का श्रवण किया तथा समस्त सव दानों के धर्म भी सुन लिए है।२। हे भगवान् ! अब और कुछ श्रवण करने की इच्छा रखता हूँ जिससे इस संसार के जन्म-मरण और वराबर लगे रहने वाले आवागमन का छेदन हो कर और मरकर पुनः यहाँ पर जन्म ग्रहण कर आगमन. न हो तथा मोक्ष की प्राप्ति हो जाया करे।३। हे द्विजों में परम श्रेष्ठ ! आप अपने प्रसाद के रूप में यह सब कुछ मेरे समक्ष वर्णन कीजिए। श्री मार्कण्डेयजी ने कहा— अब आप एकमन होकर तीर्थ में तीर्थ का श्रवण करिए जो कि परम महान् तीर्थ हैं जिससे प्रभाव से श्रुत मात्र से ही वर्ष के अघ से मुक्ति प्राप्त करली जाया करती हैं।५।वाचिक मानसिक और शारीरिक समस्त पातकों से विशेष रूप से तीर्थ के कीर्त्तन करने में छुटकारा पा लिया जाता है।६। हे महीपते बह तीर्थ पाँच कोस से प्रमाण वाला है। यह तीर्थ पाप कर्मों के करने वाले प्राणियों को समस्त सांसारिक सुखों के उपभोग और मोक्ष दोनों का ही प्रदान करने वाला तीर्थ है।७।

रेवाया दक्षिणेकूलेपर्वतोभुगुसञ्ज्ञितः ।
तस्यमूर्ध्नि च तत्तीर्थस्थापितंचैवशम्भुना ॥८
शूलभेदेतिविख्यातत्रिषुलोकेषुभूपते ।
तत्रस्थिताश्चये वृक्षास्तीर्थाच्चैवचतुर्द्दिदशम् ॥६
पतितानिलयं यान्ति रुद्रस्यनात्रसंशयः ।
मृतास्तत्रैवयेकेचिज्जन्तवो भुवि पक्षिणः ॥१०
ते यान्तिपरमं लोकतत्रतीर्थेयसंशयः ।
पातालान्निः सृता गंगाभोगवतीतिसञ्ज्ञिता ॥११
निष्क्रान्ता शूलभेदाच्च सर्वपापक्षयकरी ।
या सा गोवीणनाम्न्यन्या वहेत्पुण्या महानदी ॥१२
पतिता कुण्डमध्ये तु यत्र भिन्नं त्रिशूलिना ।
शम्भुना च पुरा तात उत्पाद्य च सरस्वती ॥१३
सा तत्र पतिता राजन्प्राचीनाघविमोचिनी ।
भास्वत्या त्रितय यत्र शिला गोर्वाणसञ्ज्ञिता ॥१४

रेवा के दक्षिण तट पर भृगु संज्ञा वाला पर्वत है। उसके शिखर पर भगवान् शम्भु ने उस तीर्थ की स्थापना की है।८। हे भूपते, यह शूलभेद इस नाम से विख्यात हैं और तीनों लोकों में वेद प्रसिद्ध है। उसमें जो वृक्ष है जो कि उस तीर्थ के चारों दिशाओं में है। वे जब गिरते हैं तो सीधें रुद्र के निलय में जाकर प्राप्त हुआ करते है इसमें संशय नहीं है वहाँ पर भूमि में जो भी कोई जन्तु एवं पक्षीमृत होते हैं वे सब परम लोक को गमन किया करते हैं उस तीर्थ का यह प्रभाव है इसमें कुछ भी संशय नहीं है। पाताल से निकली हुई गङ्गा भोगवती इस संज्ञा वाली है।६-११। यह शूलभेद से निष्क्रान्त हुई है जो कि समस्त पापों के क्षय करने वाली है। जो अन्य गीर्वाणनाम वाली है वह परम पुण्यमय महानदी हैं।१०। वह कुण्ड के मध्य में पतित हुई हैं जहाँ पर शूलहाणि के द्वारा भिन्न की गई है। हे तात! भगवान् शम्भु ने पहले सरस्वती सरिता का उत्पादन किया था।१३। हे राजन्! वह कहाँ पर पतित हुई थीं। जो पुराने से भी पुराने अन्धों से मुक्त

कर देने वाली हैं जहाँ पर गोर्वाण संज्ञा वाली शिला हैं वहाँ सरस्वती के तीन रूप हैं ।१।

तत्र तीर्थे च तत्तीर्थं च भूत न भविष्यति ।
केदारश्चप्रयागञ्च कुरुक्षेत्र गया तथा ॥१५
अ यानि च सुतीर्थानि कला नार्हन्ति षोडशीम् ।
पञ्च स्थानानि पृथग्भूतानि यानि च ॥१६
वक्ष्यामि च समासेन एकैक च पृथक् पृथक ।
गया नाभ्यां यथा पुण्यां चक्रतीर्थं च तत्समम् ॥१७
धर्मारण्ये यथा कूप शूलभेद च तत्समम् ।
ब्रह्मयूप यथा पुण्यं देवनद्यास्तथैव च ॥१८
यथा गयाशिरः पुण्यं मुराणां यथा शिला ।
यथा च पुष्करं स्थान मार्कण्डह्रद एव च ॥१९
दत्वा पिण्डोदक तत्रपितृणां च तथाक्षयम् ।
यस्तत्रकुरुतेश्राद्ध तोयंपिबनिनित्यशः ॥२०
मुच्यते सर्वपापैस्तु उरगः कञ्चुकैरिव ।
अनिन्द्यान्पूजयेद्विप्रान्दम्भक्रोधविवर्जितान् ॥२१

उस तीर्थ में वह तीर्थ ऐसा है जो कभी न हुआ और न भविष्य में होगा। केदार, प्रयाग कुरुक्षेत्र और गया हैं। अन्य जो सुतीर्थ है वे सोलहवीं कला के भी योग्य नहीं हैं। जो पंच स्थान तीर्थ हैं और जो प्रथग्भूत है उनको एक-एक को पृथक् संक्षेप में बतलाऊँगा। नाभि में गया जिस प्रकार का पुण्यमय तीर्थ है उसी के गमन चक्रतीर्थ तीर्थ! ।१४-१७। धर्मारण्य में जैसा कूप हैं उसी के समान शूलभेद है। ब्रह्म-यूप जैसा पुण्यमय है उसी प्रकार का देवनदी का भी हैं। जिस प्रकार का गया का शिर तुण्यमय हैं और सुरोंका शिला है। जैसा पुष्करस्थल है और मार्गण्ड ह्रद भी वैसा ही है ।१८-१९। वहाँ पर पितृगण को पिण्डोदक देकर जो वहाँ पर अक्षय श्राद्ध करता हैं वह नित्य ही जल का पान किया करता है ।२०। जैसे सर्प अपनी केंचूलीसे मुक्त हो जाया करता है वैसे ही वह मनुष्य समस्त भावों से छुटकारा पा जाया करता

है। जो विप्र निन्दा करने के योग्य न होवें और दम्भ तथा क्रोध से रहित होवें उनकी पूजा करनी चाहिए।२१।

त्रयोदशदिन [दानत्रयोदशगुणम्भवेत्।
अभ्यर्चितं सुरं दृष्ट्वा गणनाथं गजाननम् ॥२२
सर्वे विघ्नाविनश्यन्ति दृष्ट्वा कम्बलक्षेत्रपम्।
पूजयेत्परयाभक्त्याशूलपाणिमहेश्वरम् ॥२३
देवस्य पूर्वभागे तु उमा पूज्या प्रयत्नतः।
मार्कण्डेय ततो भक्त्या पूजयेद् गुहवासिनम् ॥२४
मुच्यतेपातकः सर्वैरज्ञानसञ्चितैः वरः।
गुहामध्ये प्रविष्टस्तु जपेत्सूक्तं त्र्यक्षरम् ॥२५
नालपर्वतज पुण्य षष्ठांशेन लभेत सः।
त्रिनरास्तत्र तिष्ठन्ति आदित्यमरुतैः सह ॥२६
सर्वदेवमयंस्थानकोटिलिंगमनुत्तमम्।
यथानदीनदाः सर्वे सागरे यान्तिसङ्क्षयम् ॥२७
तथा पापानि नश्यन्ति शूलभदस्य दर्शनात्।
प्रत्यक्षो दृश्यतेऽद्यापि प्रत्ययो ह्यवनीपते ॥२८

त्रयोदश दिन का दिया हुआ दान तेरह गुना हो जाया करता है। अभ्यर्चना किये हुए गणनाथ गजके समान मुख वाले सुरका दर्शन करके तथा कमलेक्षण प्रभुको देखकर सभी विघ्न विशेप रूप से नष्ट होजाया करते हैं। परमाधिक भक्ति की भावना से महेश्वर शूलपाणि भगवान् की पूजा करनी चाहिए।२२-२३। देवेश्वर के पूर्व भाग में प्रयत्न पूर्वक जगदम्बा उमादेवी की पूजा करनी चाहिए। इसके अनन्तर भक्तिभाव से गुहवासी मार्कण्डेय की अर्चना करे।२४। इस पूजन के करने से ज्ञान तथा अज्ञान के द्वारा सञ्चित समस्त पातकों से मानव मुक्त हो जाया करते हैं। गुहा के मध्य में प्रविष्ट होकर त्र्यक्षर सूक्त का जाप करना चाहिए।२५। वह व्यक्ति-नील पर्वत से समुत्पन्न पुण्य को षठांग प्राप्त किया करता है। वहाँ पर आदित्य मरुतों के साथ तीन नर स्थित रहा करते हैं।२६। वह स्थान सम्पूर्ण देवमय है और अति उत्तम कोटिलिंगों

ये युक्त हैं। जिस प्रकार सभी नदी नद सागर में संशय को प्राप्त हो जाया करते हैं उसी प्रकार भगवान् शूलभेद के दर्शन करने से सब पाप नष्ट हो जाया करते हैं। हे अवनीपते ! आज भी वह प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं और प्रत्यय होता है।२७-२५।

विस्फुलिंगालिंगमध्येस्पन्दन्तेस्नानयोगतः।
द्वितीयः प्रत्ययस्तत्तैलबिन्दुर्न सर्पति ॥२९
एवं हि प्रत्ययस्तत्र शूलभेदप्रभावजः।
यः स्मरेच्छूलभेद तु त्रिकाद्यं नित्यमेव च ॥३०
सपूतश्चभवेत्साक्षीत्सबाह्याभ्यन्तरो नृप।
नकस्यचिन्मयाख्यातंपृष्टोऽहंत्रिदशैरपि ॥३१
गुह्याद्गुह्यतर तीर्थं सदा गोष्यं कृतं मया।
सर्वपापहरं पुण्य सर्वदोषघ्नमुत्तमम् ॥३२
सर्वतीर्थमयं तीर्थशूलभेदं जनेश्वर।
श्रुते यस्य प्रभावेतुमुच्यतेसर्वपातकैः ॥३३
शूलभेदं मयातातसंक्षेपात्कथितं तव।
यः शृणोतिनरोभक्त्या मुच्यते सर्वपातकैः ॥३४

स्नान के योग से लिग के मध्य में विस्फुलिंग स्कन्द किया करते हैं। दूसरा प्रत्यय है कि वहाँ पर थैल का बिन्दु तर्पण किया करता है।२९। इस प्रकार से वहाँ पर शूलभेद के प्रभाव से समुत्पन्न प्रत्यय होता है। जो पुरुष तीनों कालों में नित्य भगवान् शूलभेद का स्मरण किया करता है हे नृप ! वह वाहर और भीतर से साक्षात् पूत होजाया करता है यह बात मैंने किसी से न कही थी यद्यपि देवों के द्वारा भी मुझसे पूछा गया था।३०-३१। यह गोपनीय से भी अधिक गोपनीय है अतः मैंने इस तीर्थ को गुप्त ही रक्खा था। यह सभी प्रकारके पापोंका हरण करने वाला—पुण्यमय—उत्तम और सभी दोषों का हनन करने वाला है।३२। हे जनेश्वर ! शूलभेद तीर्थ समस्त तीर्थों से छुटकारा हो जाया करता है। हे तात यह शूलभेद तीर्थ का वर्णन मैंने तुम्हारे

सामने संक्षेप सें कर दिया है। जो कोई मनुष्य भक्ति भाव से इसे श्रवण करता है वह सभी पातकों से मुक्त हो जाया करता है।३४।

८७-कालरात्रिकृतजगत्संहारवर्णन

ततस्तु ऋषयः सर्वेमहाभागास्तपोधनाः।
गतास्तुपरम लोक ततः किंजातमद्भुतम् ॥१
ततस्तेषु प्रयातेषु नर्मदातीरवासिषु ।
बभूव रौद्रसंहारः सर्वभूतक्षयंकरः ॥२
कैलाशशिखरस्थं तु महादेव सनातनम् ।
ब्रह्माद्याः प्रास्तुतन्देवमृन्यजुन्सामभिः शिवम् ॥३
संहरत्वं जगद्देव ! सदेवासुरमानुषम् ।
प्राप्तोयुगसहस्रान्तः कालः संहरणक्षमः ॥४
मद्रूप तु समास्थाय त्वया चतद्विनिर्मितम् ।
वैष्णवी मूर्तिमास्थाय त्वयैतत्परिपालितम् ॥५
एका मूर्तिस्त्रिधा जाता ब्राह्मी शैवी च वैष्णवी ।
सृष्टिसंहाररक्षार्थं भवेदेवं महेश्वर ! ॥६
एतच्छ्रुत्वावचस्तस्यविष्णोश्चपरमेष्ठिनः ।
सगणः सपरीवारः सहताभ्यांसहामया ॥७
सप्तलोकान्विभिद्येमान्भगवान्नीललोहितः ।
भूराद्यब्रह्मलोकान्त भित्त्वाऽण्डं परतः परम् ॥८

युधिष्ठिर ने कहा-इसके अनन्तर महान् भाग्य वाले तप ही जिनका धन था वे समस्त ऋषिगण परमलोक को चले गये थे। इसके पश्चात् क्या अद्भुत घटना हुई थी ? श्री मार्कण्डेयजी ने कहा—इसके अनन्तर उन नर्मदा के तट पर निवास करने वाले लोगों के प्रयाण कर जानेपर फिर समस्त प्राणियोंका भयंकर क्षय करने वाला रौद्र संहार हुआ था। ब्रह्मा आदि समस्त देवोंने कैलास पर्वत की शिखर पर उस समय स्थित सनातन शिव महाशिव ऋक् यजु, और सामवेदों के द्वारा स्तवन किया

था। हे देव ! आप इस सम्पूर्ण जगत्का जिसमें देव असुर और मनुष्य सभी है संहार कीजिए क्योंकि अब एक सहस्र युगों का अन्तकाल प्राप्त हो गया है जो कि संहार करने में समर्थ है। आपने ही मेरे स्वरूप को धारण करके इस जगत् का सृजन किया था फिर वैष्णवी मूर्ति को धारण करके अर्थात् विष्णु के स्वरूप से इस जगत् का आपने ही परिपालन किया था। आपकी ही एक मूर्ति ब्राह्मी वैष्णवी और मैवी तीन प्रकार की हो गए थी। हे महेश्वर ! आपने जगत्की सृष्टि, रक्षा और संहार करने के हीं लिए ऐसा किया है। इस परमेष्ठी और भगवातन् विष्णु के तथ्य वचन का श्रवण करके अपने गणों के साथ तथा उन दोनों के सहित और उमा देवी के साथ नील लोहित्भगवान ने इन सातों लोकों का विभेद किया था। भू से आदि लेकर ब्रह्मलोक के अन्त तक पर से पर अण्ड का विभेदन कर दिया था।१-२।

शैव पद्मंज दिव्यमाविशत्सह तेविभुः।
न तत्र वायुर्नाकाशंनाग्निस्तत्र न भूतलम् ॥९
यत्र सतिष्ठते देव उमया सह शङ्करः।
न सूर्यो न ग्रहास्तत्र न ऋक्षाणिदिशस्तथा ॥१०
न लोकपाला न सुखं न च दुःखं नृपोत्तम ! ॥११
ब्राह्मं पदं यत्कवयो वदन्तिशैवं पद यत्कवयो वदन्ति।
क्षेत्रज्ञमीशंप्रवदन्तिचान्येसांख्याश्चगायन्तिकिलादिमाक्षम्॥१२
यद्ब्रह्म आद्यं प्रवदन्ति केचिद्यं सर्वमीशानमज पुराणम्।
तमेकरूपमरूपमाद्यं परमव्ययाख्यम ॥१३
अवर्णमप्यर्थं मनामगोत्रं तुर्यं पद यत्कवयो वदन्ति।
ध्यानार्थ विज्ञानमयं सुसूक्ष्ममात्मस्थमोशानवरं वरेण्यम्१४

वह विभु परमादिव्य—अज शैव पद में उनके साथ प्रवेश कर गये वहाँ पर न वायु है, न आकाश है न अग्नि तथा भूतल ही है जहाँ पर कि देव शंकर उमादेवी के साथ स्थित रहा करते हैं। वहाँ सूर्य ग्रह ऋक्ष और दिशाएँ कुछ भी नहीं है। हे नृपोसत्तम ! वहाँ पर न तो कोई लोकपाल ही है और न कोई सुख एवं दुःख ही है। जिसको कवि

गण ब्रह्म कहा करते है और कवि उसे शैव पद भी करते हैं। अन्यलोग उसी को क्षेत्रज्ञ ईश कहते हैं। तथा सांख्य लोग उसी को आदि मोक्ष कहकर पुकारा करते हैं। कुछ लोग उसको आद्य ब्रह्म कहते हैं जिसका सब—ईशान आज और पुराण भी कहते हैं। उसको एक ही रूप वाला अनेक रूपों से युक्त विना रूप वाला, आद्य, परम और अव्ययं नाम वाला अवर्ण भी अर्थ, अनाम, अगोत्र तुर्य पद् कवि लोग कहते हैं। ध्यान के लिए विज्ञानमय सुसूक्ष्मस्व—ईशान वर और वरेण्य भी कहते हैं।९-१०।

ततस्त्रयस्ते भगन्तमीशं सम्प्राप्य संक्षिप्य भवन्त्यैकम्।
पृथक्स्वरूपैस्तु पुनस्त एवं जगत्समस्तं परिपालयन्ति ॥१५
संहारं सर्वभूताना रुद्रत्वे कुरुते प्रभुः।
विष्णुत्वे पालयेल्पेकान्ब्रह्मत्व सृष्टिकारकः॥१६
प्रकृत्वा सह संयुक्तः कालो भूत्वा महेश्वरः।
विश्वरूपा महाभागा तस्य पार्श्वे व्यवस्थिता ॥१७
यामाहुः प्रकृति तज्ज्ञाः पदार्थानांविचक्षणाः।
पुरुषत्वेप्रकृतित्वे च कारणं परमेश्वरः ॥१८
तस्मादेतज्जगत्सर्वसमुद्भूतसचराचरम्।
तस्मिन्नेवलय याति युतान्ते समुपस्थिते ॥१९
भगलिगांकितं सर्वं व्याप्तं वै परमेष्ठिना।
भगरूपोऽभवविष्णुर्लिगरूपो महेश्वरः ॥२०
भाति सर्वेषु लोकेषु गीयते भूर्भुवादिपु।
प्रविष्टः सर्वभूतेनविष्णुर्भगः स्मृतः ॥२१

इनके उपरान्त वे तीनों देव एक ही ईश भगवान् को प्राप्त करके और मिलकर सक्षित हो जाते हैं वे ही पृथक् स्वरूपों से युक्त होकर इस सम्पूर्ण जगत्का परिपालन, किया करते हैं। प्रभु सर्वभूतों के संहार को रुद्रत्व में कहतेहैं। विष्णु के रूप में लोकों का पालन कहते हैं और ब्रह्मत्व रूप में सर्जन का कार्य किया करते है। प्रकृति के साथ संयुक्त महेश्वर काल होकर स्थित रहते हैं। विश्वरूप महाभाग उसी के पार्श्व

में व्यवस्थित रहा करती है उसके ज्ञाता विलक्षण लोग पदार्थोंके जानने वाले जिसको प्रकृति कहते हैं पुरुषत्व के स्वरूप में तथा प्रकृतित्व के रूप में परमेश्वर ही एक कारण हैं। उसने ही यह सम्पूर्ण चर और अचर जगत् उत्पन्न हुआ है और युगके अन्त में उपस्थित होने से उसी से पर लय होता है। परमेष्ठी के द्वारा यह समस्त भयलिंग अंकित व्याप्त हो रहाहै। भगरूप भगवान् विष्णु हैं और लिंगरूप महेश्वर है सब लोकोंमें ही दीप्तिमान होते हैं और भुभुंवाद में गान किये जातेहैं। समस्त भूतोंमें प्रविष्ट है, इसी कारण से विष्णु भग कहे गये हैं।१५-२१

विशनाद्विष्णुरित्युक्तः सर्वदेवमयी महान्।
भासनाद्गमनाच्चैवभगसञ्ज्ञाप्रकीर्तिता ॥२२
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं यस्मिन्नेतिलयजगत्।
एकभावंसमापन्न लिंगं तस्माद्विदुबुधाः ॥२३
महादेवस्ततो देवीमाह पार्श्वस्थितां तदा।
संहरस्व जगत्सर्वमा विलम्बस्व शोभने ! ॥२४
त्यज सौम्यमिदं रूपं सितचन्द्रांशुनिर्मलम्।
रौद्ररूपं समारथायसंहरस्व चराचरम् ॥२५
रौद्रै भूतगणैर्घोरै र्देवि त्वं परिवारिता।
जीवलोकमिमं सर्वं भक्षयस्वाम्बजेक्षणे ॥२६
ततोऽहं मदयिष्यामि प्लावयिष्ये तथा जगत्।
कृत्वा चैकार्णवं भूयः सुखं स्वप्स्ये त्वया सह ॥२७

सर्वदेवों से परिपूर्ण विष्णु विशन होनेसे ही विष्णु इस तरह नाम हुआ है। ब्रह्मा से आदि लेकर स्तम्ब पर्यन्त यह जगत् जिसमें लय को प्राप्त होता है। एक भाव को समापन्न हो गया है इसीलिए बुध लोग इसे लिंग कहा करते हैं। इसके अनन्तर उस समय में महादेव ने पार्श्व भाव में स्थित देवी से कहा था—हे शोभने! इस सम्पूर्ण जगत का संहार करो और अब बिलंब मत करो। अवसित चन्द्र की किरणों से निर्मल स सोमस्वरूप का त्यागकर दो और महान् रौद्र स्वरूप से समास्थित

होकर इस जड़-जंगल चराचर जगत् का संहार कर डालो। हे देवि ! परम घोर रौद्ररूप वाले भूतों के गणों से आप परिवारित होती हुई हे अम्बुजेक्षणे ! इस समस्त जगत का भक्षण कर डालो। इसके पश्चात् सबका मैं मर्दन कर डालूँगा और इस सम्पूर्ण जगत् को प्लावित कर डालूँगा सबको एकार्णव से युक्त करके फिर तुम्हारे साथ में सुखपूर्वक शयन करूँगा।२६-२७।

नाहं देवजगच्चैतत्संहारामि महाद्युते।
अम्बा भूत्वा विचेष्टं न भक्षयामिभृशातुरम् ॥२८
स्त्रीभावेन कारुण्यं करोति हृदयं मम।
कथ वै दंहिष्यामिजगदेतज्जगत्पते ॥२९
तस्मात्त्वं स्वयमर्वेदं जगत्संहारशङ्कर।
अथैवमुक्तास्तां देवीं धूर्जटिर्नोललोहितः ॥३०
क्रुद्धो निर्भत्संयामास हुंकारेक्ष महेश्वरीम्।
ॐ हुं फट् त्वां स इत्याहं कोपाविष्टैरथेक्षणैः ॥३१
हुंकारिताविशालाक्षी पोनोरुजघनस्थला।
तत्क्षणाच्चाभवरौद्राकालरात्रीवभारत ॥३२
हुंकुर्वतो महानदैर्नादयन्ती दिशोदश।
व्यवर्धतमहारौद्रा विद्युत्सौदामिनीयथा ॥३३
विद्युत्सम्पत्तदुष्प्रेक्ष्या विद्युत्सघातचञ्चया।
विद्युज्ज्वालाकुला रौद्रा विद्युदग्निनिभेक्षणा ॥३४
मुक्तकेशी विशालाक्षीकृणग्रीवा कृशोदरो।
व्याघ्रचर्मांम्वर धराब्यालयज्ञोपवीतिनी ॥३५

श्री देवी ने कहा—हे महाद्युते ! हे देव ! मैं इस सम्पूर्ण जगत् का संहार नहीं करती हूँ। में अम्बा होकर विगत चेष्टा वाले और अत्यन्त आतुर का भक्षण कभी नहीं कर सकती हूँ। मैं स्त्री स्वभावी हूँ मेरे हृदय में कारुण्य होता है। हे जगत्पते ! मैं कैसे जगत् की अम्बा होती हुई इस जगत् का निर्दहन करूँगी। इसलिए आप ही स्वयं हे शंकर ! इस समस्त जगत् के संहार का कार्य कीजिए। इसके अनन्तर हरप्रकार

से देवी के द्वारा कहे हुए धूर्जटि नीललोहित प्रभुने अत्यन्त क्रुद्ध होकर उस देवी को निर्भत्सित किया था और महेश्वरी को हुँकार के द्वारा फटकार दी थी। उन्होंने 'ॐ' हुं फट्—यह कहा था। कोप से समाविष्ट नेत्रों की दृष्टि वालोंके द्वारा वह पीन रुद्र और जघन स्थत वाली विशालाक्षी देवी हुँकारित हुई थी। वह देवी महान् नादों से हम हुम् करती हुई और दशों दिशाओं को ध्वनित करने वाली विद्युत सौदामिनी की भाँति महारौद्र रूप वाली होकर बढ़ गई थी। विद्युत के सम्पात ही समान वह दुष्प्रेक्षणीय थी तथा विद्युत के संघात के समान चंचला थी। विद्युत के समान ही ज्वालाओं से समाकुल और विद्युत की अग्नि के तुल्य नेत्रों वाली रौद्र रूप वाली हो गई थी। मुक्त केशों वाला उसका स्वरूप था। देवी के नेत्र परम विशाल थे, ग्रीवा कृश थी और वह कृश उदर वाली थी। यह उस समय में व्याघ्र के चर्म की अम्बर वाली थी तथा व्यालों के यज्ञोपवीत को धारण करने वाली थी।२८-३५।

वृश्चिकैरग्निपुञ्जाभैर्गोदसैश्च विभूषिता।
त्रैलोंक्लपूरयामासबिस्तरेणोच्छ्रयेण च ॥३६
भासुरांगा तु सम्वृत्ता कृष्णसर्पैककुण्डला।
चित्रदण्डोद्यतजरा व्याघ्रचर्मोपलेविता ॥३७
व्यवर्धतमहारौद्रजगत्संहारकारिणी।
सृक्किणोलेलिहानाचक्रूरफूत्कारिणी ॥३८
व्यात्तास्याघघुंरारावा जगत्सङ्क्षोभकारिणी।
खेलद्भूतागा क्रूरा निःश्वासोच्छबासकारिणी ॥३९
जाताट्टहासादुर्नासावह्निकुण्डसमेक्षणा।
प्रोद्यत्किलकिलारावाददाहसकलंजगत् ॥४०
दह्यमानाः सुरास्तत्र पतन्ति धरणीतले।
पतन्ति यक्षगन्धर्वाः सकिन्नरमहोरगाः ॥४१

पतन्ति भूत संघाश्च हाहाहैहैविराविण: ।
व ुम्बापातै: सनिर्वातैरुदितार्तस्वरपि ॥४२

अग्नि के पुञ्ज के समान आभा वाली वृश्चिकों (बिच्छुओं) से और मानसों से विभूषित थी । उस देवी ने अपने विस्तार से और उच्छ्य से सम्पूर्ण त्रलोक्य को पूरित कर दिया था। कृष्ण सर्पों के कुण्डलों को धारण करने वाली वह भासुर अङ्गों वाली हो गई थी । कर में चित्र दण्ड धारण कर उद्यत हुई व्याघ्र के चर्म से समुपसेवित थी । वह देवी महारौद्र स्वरूप वाली समस्त जगत् के संहार करने वाली हो गई थी । उस समय में वह देवी जीभ से सृक्किणियों (मुख के दोनों किनारों को) चाटती हुई और क्रूरता से फूत्कार करने वाली थी । देवी ने अपने मुख को फैला लिया था, घुर्घुर राव करने वाली सम्पूर्ण जगत् के संक्षोभ को करने वाली थी और उसके अनुग भूम उसके पीछे खेल कर रहे थे वहुत ही क्रूर स्वभाव वाली तथा निश्वासों और उच्छ्वासों को करने वाली थी । वह अट्टहसास करने वाली,बहुत बुरी नासिका से युक्त और अग्नि के कुण्ड के तुल्य जाज्वल्मान नेत्रों वाली थी । किल–किल शब्द करती हुई वह बड़ी ही अधिक ध्वनि के साथ सम्पूर्ण जगत् को दग्ध कर रही थी । समस्त सुरगण दह्यमान होकर धरणीतल पर गिर गये थे । यक्ष गन्धर्व किन्नर और महोरग सभी दग्ध होते हुए भूमि तल पर गिर रहे थे । हा—हा—है—है ध्वनि करते हुये भूतोंके संघ भी पतित हो रहे थे जो थे जो वुम्बापात निर्घात् रेदित और आर्त स्वरों से युक्त थे ।३६-४२।

व्याप्तमासीत्तदा विश्व त्रैलोक्य सचराचरम् ।
सम्पतद्भि: पतदिभश्च ज्वलद्भूतगणैर्महा ॥४३
जातैश्चटचटाशब्दै: पतदि भर्गिरिसानुभि: ।
तम रौद्रोत्सगे ज़ातारुद्रानन्दविवर्धिनी ॥४४
विहिंसमानाभूतानिचर्वमाणा चरानपि ।
तत्तद् गन्धमुपादाय शिवारावविराविणो ॥४५

गलच्छोणितधाराभिमुखादिग्धकलेवरा ।
चण्डशीलाऽभवच्चण्डीजगत्संहारकर्मणि ॥४६
येऽपि प्राप्ता महर्लोक भृग्वाद्यश्च महर्षयः ।
येऽपि नश्यन्ति शतशो ब्रह्मक्षत्रविशादयः ॥४७
देवासुराभयत्रस्ताः सयक्षोरगराक्षसाः ।
विशन्तिकेऽपिपाताल लोयन्ते चगुहादिषु ॥४८
सा च देवी दिशः सर्वा व्याप्य मृत्युरिव स्थिता ।
युगक्षयकरे काले देवेन विनियोजिता ॥४९

इस समय सम्पूर्ण विश्व और चर अचर से युक्त समस्त त्रैलोक्य व्याप्त था । यह महीतल जलते हुए गिरते हुए और सम्पतनशील भत-गणों ने व्याप्त हो गया था । चराचर ध्वनि के साथ गिरकर टूटने वाली पर्वतों की शिखरों से पूर्ण यह मही उस रौद्रोत्सव में भगवान् रुद्र के आनन्द को बढ़ाने वाली होगई थी । समस्त भूतों की विशेष रूप से हिंसा करती हुई और चरजीवों का चर्वण करने वाली उस गन्ध को प्राप्तकर रावा विराविणी आर्थात् भयङ्कर ध्वनि करने वाली—फैले हुए रुधिर की धाराओं से युक्त मुख वाली तथा समस्त दिग्ध कलेवर वाली वह शिवा चण्ड स्वभाव से युक्त इस जगत के संहार कर्म से साक्षात् चण्डी हो गई थी । जो भृगु आदि महर्षिगण महालोक को प्राप्त होगए थे वे भी सैकड़ों ही ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य आदि सब नष्ट भ्रष्ट हो रहे थे । महान् भय से डरे हुए देव और असुर यक्ष—उरग और राक्षसों के सहित कुछ तो पाताल लोक में प्रवेश करने लगते है और कुछ गुफा आदि स्थलों में जाकर छिप रहे थे । वह देवी समस्त दिशाओंमें व्याप्त होकर साक्षात् मृत्यु की ही भाँति स्थित हो गई थी । उस युग के क्षय करने वाले काल में वह देवी महादेवजी के द्वारा विशेष रूप से नियो-जित की गई थी ।४३-४९।

एकादि नवधा जाता दशधा दशधा तथा ।
चतुःषष्टिस्वरूपा च शतरूपाट्टहासिनी ॥५०

अर्ब्बसहस्ररूपाचलक्षकोटितनुः शिवा।
नानारूपयुधाकारानाबादचारिणी ।५१
एवंरूपाऽभवद्देवीशिवस्यानुज्ञया नृप ! ।
दिक्षु सर्वासु गगने विकटायुधशीलिनः ।५२
रुन्धती नश्यमानांस्तान्गणा माहेश्वराः स्थिताः ।
विचरन्ति तया सार्द्धं शूलपट्टिशपाणयः ।५३
ततो मातृगणाः केचिद्विनायकगणैः सह ।
श्यवधन्त महारौद्राजगत्सं हारकारिणः ।५४
ततस्तया व्यवधन्त दंष्ट्राः कुन्देन्दुसन्निभाः।
योजनानां सहस्राणि अयुतान्यर्बुदानि च ।५५
दंष्ट्रावलि कररुहा क्रूरास्तीक्ष्णाश्च कर्कशाः ।
वियद्दिशो लिखन्त्येव सप्तद्वीपा वसुन्धराम् ।५६

वह एक ही देवी नौ प्रकार की बन गई थी और वह एक—एक दश दश रूपों में हो गई थी । चौंसठ स्वरूपों वाली वह शत रूपा और अट्टहास करने वाली थी । फिर वह सहस्र स्वरूपों वाली हो गई और वह शिवा लक्ष कोटि शरीरों के धारण करने वाली बन गई थी । उस महादेवी के अनेक आयुध थे जिनके विविध आकार थे तथा वह नाना भाँति से बादलों में करने वाली हो रही थी। हे नृप ! उस समय में भगवान् शिव अनुज्ञा से इस प्रकार के विचित्र रूपों वाली बन गई थी । आकाश में सभी दिशाओं में निकट आयुधों के धारण करने वाले महेश्वर के गण नश्यमान उन सब को रुन्धित करते हुए विद्यमान थे । शूल-पट्टिश हथियारों को ग्रहण करके उसी देवी के साथ वे सब गण विचरण कर रहे थे । इसके अनन्तर कुछ मातृगण विनायकके गणों के सहित महान्,रौद्र रूप वाले इस जगत् के संहार करने वाले बढ़गए थे इसके पश्चात् उस देवी को दाढ़े बढ़ गई थी जो कुन्द के पुष्प और चन्द्र के तुल्य श्वेत थी । वे इतनी अधिक बढ़कर हो गई थी जो सहस्रों—अयुतों और अर्बुद योजन लम्बी थी । उस देवी की दाढ़ों की पंक्ति और

नाखून महान् क्रूर तीक्ष्ण तथा कर्कश थे जो आकाश, दिशाएँ तथा सात द्वीपों वाली पृथ्वी पर मानो लेखन सा कर रहे हों ।५२-५६।

तस्यादष्टाभिसम्पातैश्चूर्णितावनपर्वता: ।
शिलासञ्चसंघाताविशीर्यन्तेसहस्रश: ।५७
हिमवान्हेमकूटश्च निषधो गन्धमादन: ।
माल्यवांश्चैवनीयश्च श्वेतश्चैव महागिरि: ।५८
मेरुभव्यमिलापीठसप्तद्वीप च साणवम ।
लोकालोकेन सहित प्राकम्पत नृपोत्तम ! ।५९
दंष्ट्राशनिविरपृष्टाश्च विशीयन्ते महाद्रुमा: ।
उत्पातश्च दिशोव्याताघोररूप: समन्तत: ।६०
तारा ग्रहग्रणा: सर्वे ये च वैमानिका गणा: ।
शिवासहस्रं राकीर्णा महामातृगणस्था ।६१
सा चमार जगत्कृषस्नं युगान्त समुपस्थिते ।
भ्रतद्भिश्च ब्रुवादिभश्च क्राशद्भिश्च समन्तत ।६२
प्रथमद्गिज्वलद्श्चिभश्च रौद्रे व्याप्तादिशोदशा ।
विस्तीर्ण शैलसधात विघूणितगिरिद्रूमम् ।६३
प्रभिन्नगोपुरद्वार केशशुष्कास्थिसंकुलम् ।
प्रदग्घग्रामनगर भस्मपुञ्जाभिसम्वृतम् ।६४
चिताधूमाकुलं सर्वंत्रैलोक्य सचराचरम् ।
हाहाकाराकुलं सवमहहस्वनानस्वनम् ।६५
जगदेतदभत्सर्वमशरण्य निराश्रयम् ।६६

उस चण्डी देवी की दाढ़ों ने अभि सम्पातों से समस्त वन, पर्वत एक दम चूर्णित हो गये थे । सहस्रों शिलाओं के संघात जो कि सञ्चित स्वरूप में एकत्रित थे विशीर्ण हो गये थे । हे नृपोत्तम ! वह ऐसा भीषण संहार का काल होता है कि उसमें हिमवान्, हेमकूट, निषध, गन्ध मादन, माल्यवान्, नीलगिरि, श्वेत गिरि, महागिरि, मेरु पर्वत मध्य-रत्नपीठ और अर्णवों सहित सात द्वीप तथा लोकालोक के सहित उसके सब प्रकाशित हो गये थे । दाढ़ रूपी अशनि (वज्र) के स्पर्श होते

ही महान् द्रुम भी विशीर्ण हो जाते थे। चारों ओर घोर रूपों वाले उत्पातों से सभी दिशाएँ व्याप्त हो गई थी। तारा मण्डल, ग्रह गण और जो समस्त वैमानिक गुण थे अर्थात् विमानों पर स्थित रहने वाले थे वे सब सहस्रों दिशाओं और मातृगणों से समाकीर्ण हो गये थे। उस युग के अन्त काल के समुपस्थित होने पर सम्पूर्ण जगत् में वह विचरण करती थी। दश दिशायें भ्रमणशील, बोलने वाले, चीखने वाले, प्रम–थन करने वाले और जलते हुए रोदों से व्याप्त हो गई थी। शैलों का संघात जहाँ पर विस्तीर्ण हो रहा था, गिरि, और द्रुम जिसमें विचूर्णित हो गये थे, गो पुरद्वार जिसमें विदीर्ण हो गये थे, जो केश एवं शुष्क अस्थियों से संकुल हो गया था, जिसमें ग्राम और नगर जल भुनकर नष्ट हो गये थे, जो राख के ढेरों से अभिसवृत था, जहाँ पर चिताओं की धूओं भरा हुआ था ऐसा सम्पूर्ण चराचर त्रैलोक्य हो गया। सर्वत्र ही होकर से आकुलता थी और सभी जगह अहह' इस ध्वनि की परिपर्णता थी। इस प्रकार से सम्पूर्ण जगत् निराश्रय अरण्य के ही तुल्य हो गया था ।५७।६६।

८८–सृष्टिसंहरणसंरंभ वर्णन

ततो मातृसहस्रैश्च रौद्रैश्च परिवारिता ।
कालरात्रिर्जगत्सर्वं हरते दीप्तलोचना ।१
ततस्ता नातरो धारा ब्रह्मविष्णुशिवात्तिकाः ।
वाष्वन्द्रानलकौबेरा यमतोयेशशक्तयः ।२
स्कन्दक्रोडनृसिंहानाँ विचरन्त्यो भयानकाः ।
चक्रशूलगदाखड्गवज्रशक्त्यष्टिपट्टिशौ ।३
खट्वांगैरुलमुकैर्दीप्तैर्व्यत्चरन्मातरःक्षये ।
उमासंनादिताः सर्वांप्रधावन्त्योदिशोदश ।४
तासां चरणविक्षेतैहुङ्कारोद्गारस्विनैः ।
त्रैलोक्यमेतत्सकलं विप्रदग्धं समन्ततः ।५

हाहारवाक्रन्दितनिस्वनैश्च प्रभिन्नरथ्यागृहगोपुरैश्च ।
बभूव घोरां धरणी समन्तात्कपालकेशाकुलकर्बु रांगी ।६
यदेतच्छतसाहस्रं जम्बूद्वीप निगद्यते ।
सर्वमेव तदुच्छिन्नं समाघृश्य नृपोत्तम ।७

श्री मार्कण्डेयजी ने कहा-इसके पश्चात् सहस्रों मातृगणों से तथा रौद्रों से परिवारित उस कालरात्रि ने जिसके बहुत ही प्रलोचन थे सम्पूर्ण जगत का संहरण किया । इसके पश्चात् उन परम घोर रूपों वाली मातृकाओं ने जो ब्रह्मा, विष्णु और शिव के स्वरूप वाली थीं । तथा वायु-इन्द्र-अनल और कुलेर के रूप वाली थीं तथा यम और वरुण की शक्ति से सम्पन्न थी एवं स्कन्द क्रोध और नृसिंहों के रूप में स्थित थी बहुत ही भयानक विचरण करती हुई चक्र-शूल-गदा खग —वज्र शक्ति-ऋद्धि और पट्टियों से तथा खटवांग और दीप्त उन्मुखों युक्त होकर मातृगण क्षय करने में विचरण कर रहे थे । वे सब मातायें उमा देवी के द्वारा भली भाँति प्रेरणा प्राप्त की हुई थी और दशों दिशाओं के प्रधावन (दौड) करने वाली थीं । उनके चरणों के विक्षेपों से तथा हुंकारों के उद्धार की ध्वनियों से सम्पूर्ण त्रैलोक्य सभी ओर से दग्ध हो गया था । हाहाकार और आक्रन्दन के परम घोर शब्दों-प्रकृष्ट रुप से छिन्नभिन्न रथ्या, गृह और गोपुरों से यह सम्पूर्ण पृथ्वी सभी ओर में कपाल, केशों से समयानुकूल होती हुए विचित्र ही अंगों वाली हो गई थी । हे नृपोत्तम ! जो वह जम्बू द्वीप एक ही सहस्र परिमाण वाला कहा जाता है यह सब समाधर्षित होकर उत्पन्न हो गया था ।१।७।

जम्बु शाक कुश क्रौञ्च गोमेद शाल्मलिस्तथा ।
पुष्करद्वीपसंहिता ये च पर्ववासिन ।८
ते ग्रस्ता मृत्युना सर्वं भूतैर्मातृगणैस्तथा ।
महासुरकपालैश्च मांसमेदोवसोत्कटैः ।९
महानादपरं घोरैर्वारुणीगन्धमोहितैः ।
ज्वाला सहस्रसम्वीताबिद्यु ज्ज्वलितकुण्डला ।१०
रुधिरोद्गारस्रोणाँगीमहाभयासुभीषणा ।

पिबन्तो रुधिरं तत्रमहामासवसाप्रिया ।११
कपालहस्ता विकटा भक्षयन्ती सुरासुरान ।
नृत्यन्ती च हसन्ती च विपरीता महारवा ।१२
त्रैलोक्यसन्त्रासकती विद्यु त्सफोटहासिनी ।
सप्तद्वीपसमुद्रान्तां भक्षयित्वा च मेदिनीम् ।१३
ततः स्वस्थानमगमद्यत्र देवी महेश्वर ।
नर्मदातीरमाश्रित्यावन्सन्मातृगणैः सह ।१४

जम्बू, शाक, कुश, क्रौञ्च, गोमेद शाल्मलि और पुष्कर द्वीपों के सहित जो भी पर्वत वासी थे वे सभी मृत्यु के द्वारा ग्रस्त हो गये थे। तथा भूतगण-मातृगण-जो कि महासुरों के कपाल-समूह-मांस, मेद, वसा से उत्कृष्ट महान घोष में तत्पर परम घोर और वारुणी के गन्ध से मोहित थे, इनके सहित सहस्रों ज्वालाओं से सम्वीत विद्यु त के समान ज्वलित कुण्डलों वाली—उधिर के उद्धारों से लाल अंगों वाली अत्यन्त भीषण स्वरूप वाली महामाया महा माँस और वसा से प्यार करने वाली रुधिर का पान कर रही थी। उस महामाया के हाथों में कपाल था और यह अत्यन्त विकट स्वरूप वाली थी। समस्त सुरों और असुरों काभक्षण करती हुई नृत्य करने वाली अट्टहास करती हुई परमविपरीत और महान् घोष करने वाली थी। सम्पूर्ण त्रैलोक्य को त्रास देती हुई—विद्यु त् के स्फोट के समान भीषण हास्य करने वाली उसने सातों द्वीप और समुद्र के अन्त तक सम्पूर्ण मेदिनी का भक्षण कर लिया था। उपरान्त यह अपने स्थान पर आ गई थी जहाँ पर साक्षात् देव महेश्वर विराजमान थे। नर्मदा के तट का समाश्रय ग्रहण करके वह समस्त मातृगणों के सहित निवास करने लगी थी ।८-१४।

अमराणां कटे तु गे नृत्यन्ती हसितानना ।
अमरा देवताः प्रोक्ता शरीरंकटमुच्यते ।१५
तैः कटैरावृतो यस्मात्पर्वतोऽयं नृपोत्तम ।
छिन्नभिन्नास्थितिकरवंसामेदौस्रविप्लुतैः ।१६

अमरंकट इत्येवं तेन प्रोक्तो मनीषिभिः ।
महापवित्रो लोकेषूशम्भुना सविनिर्मितः ।१७
नित्यं सन्निहितस्तत्रशंकरीह्य मयासह ।
ततोऽहं निथयस्तत्र तस्य पोदागसीस्थतः ।१८
प्रह्वः प्रणतभावेन स्तौभि त नोललो हतम् ।
ततस्तालकसंपातंर्गणैर्मातृगणैः सह ।१९
सम्प्रनृत्यति संहृष्टो मृत्युना सह शंकरः ।
खटवांगैरुल्मुकैश्चैव पट्टिशः परिघैस्तथा ।२०
मांसमेंदोबसाहस्ताहृष्टानृत्यन्तिसघशः ।
वामनाजटिलामुण्डालम्वग्रावोष्टसृद्धंजा ।२१
महाशिश्नोदरभुजा नृत्यन्ति च हसन्ति च ।
विकृतैनाननैखोरैभुंजोल्वणमखादिभिः ।२२

अमरों के तुंग (उन्नत) कट में नृत्य करती हुई और हर्षित मुख वाली देवी थी । अमर देवों को कहा गया है । और शरीर का कहा जाता है । हे नृपोत्तम ! यह पर्वत उन्हीं कणों से समावृत है जो कि वसा मेद और रक्त से विप्लुत छिन्न-भिन्न अस्थियों के समूहों वाले थे । इसी कारण से महर्षियों ने इसका नाम अमरकट यह कहा है । समस्त लोक के कल्याण चाहने वाले शम्भु देव ने यह महान् पवित्र निर्मित्त किया है । वहाँ पर भगवान् शम्भु जगज्जननी उमा देवी के साथ नित्य ही सन्निहित रहा करता हूँ । तभी से मैं भी वहाँ पर ही उनके चरणों के अग्रभाग में संस्थित रहा करते हैं । मैं परम विनीत होकर अत्यन्त विनम्र भाव से उन भगवान् नील लोहित प्रभु का स्तवन किया करता हूँ । फिर ताल के वृक्षों के सम्पात के समान सब मातृगणों के साथ भगवान् शंकर मृत्यु के साथ परम प्रसन्न होते हुए भली भाँति नृत्य किया करते हैं । खट्बांग, उल्मुक पट्टिस, परिघों से युक्त, मांस, मेदा और वसा हाथों में लिए हुए, परम हर्षित सब में मातृगण नृत्य किया करते हैं । अन्य गण भी जिनमें वामन (बौना), जटाधारी, मुण्डित, लम्बी गरदन वाले, लम्बे होंठ और केशों वाले थे वे भी महान् शिश्न,

वाले नृत्य करते हैं तथा हँसते हैं जिनके बहुत ही विकृत घोर मुख थे और उल्वण भुजाएँ तथा सुखों से वे युक्त थे । विपरीत काल के प्राप्त होने पर अमर को कण्टक उन्होंने कर दिया था ।१५-२२।

अमरं कण्टकं चक्रु: प्राप्तकालविपर्यये ।
तेषां मध्ये तपाघोरं जगत्सन्त्रासकारणम् ।२३
मृत्युं पश्यामि नृत्यं तं तडित्पिंगलमूर्द्धजम् ।
तस्य पार्श्वे स्थितां देवी बिमलाम्बरभूषिताम् ।२४
कुण्डलादधुष्टागण्डां ताँ नागयज्ञोपवीतिनीम् ।
विचित्रैरुसहारैश्च पूजयन्ती महेश्वरम् ।२५
अपश्य नर्मदां तत्र मातरं विश्ववन्दिताम् ।
नानातरंगा सावर्ता सुवलार्णवसन्निभाम् ।२६
महासर: सरित्पातें दृश्या दृश्यरूपिणीम् ।
वन्द्यतानाँसुरै: सिद्धै मुंनिसङ्घैश्चभारत ।२७
एतस्मिन्नन्तरे घोरापराँ सप्तकसञ्ज्ञिताम् ।
महावीच्यौवफेनाढ्याँ कुर्वन्ती सजलं जगत् ।२८

उन्हीं सबके मध्य महान् घोर और जगत् के सन्ताप का कारण रूप, विद्युत् के तुल्य पिंलग वर्ण वाले से युक्त कृत्य करते हुए मृत्यु को देखता हूँ । उसी के पार्श्व मार्ग में स्थित परम स्वच्छ वस्त्रों से विभूषित कुण्डलों से उद्धृष्ट गण्ड स्थलों वाली, नागों के यज्ञोपवीत धारण करती हुई, विचित्र उपहारोंके द्वारा महेश्वर भगवान् की पूजती हुई विश्व के द्वारा वन्दित नर्मदा माता को भी वहाँ पर मैंने देखा था जिसमें नाना प्रकार की तरंगें समुस्थित हो रही थी, आवर्तों से युक्त थी तथा मुवेला में अर्णव (समुद्र) के तुल्य थी । महान सर और सरिताओं के पातों से अदृश्या, दृश्यरूप वाली, सुरगणों से वन्द्यमान तथा सित और मुनियों के सघों द्वारा हे भारत वन्दनीय थी इसी अन्तर से सात संज्ञा (नाम) वाला, परम घोर महान बीची (लहर) के ओघ समुदाय और फनों से समन्वित नर्मदा देवी को देखा था जो सब जगत् को जल से युक्त कर रही थी ।२३-२८।

दृष्टवान्नर्मदां देवी मृगकृष्णाम्बरां पुनः ।
सधूमाशनिनिर्ह्लादैर्वहन्तीं सप्तदा तदा ।२९
इति संहारमतुलं दृष्टवान्राजसत्तम् ।
नष्टचन्द्रार्ककिरणमभूदेतच्चराचरम् ।३०
महोत्पातसमुद्भूतनष्टनक्षत्रमण्डलम् ।
अलातचक्रवत्तूर्णमशेषभ्रामयस्ततः ।३१
विमानकोटिसंकीर्णः सकिन्नरसहोरमः ।
महावातः सनिर्घातोयेनाकम्पच्चराचरम् ।३२
रुद्रवक्त्रात्समुद्भूतः सम्सतीनानामविश्रतः ।
वायु सशोषयामासविततन्सप्तसागरान् ।३३
उद्धूलितांगः कपिलाक्षमूर्द्धजो जटाकलापैरवबद्धमूर्द्धजः ।
महारवोदीप्तविशालशूलधृक्सपातुयुष्मांश्च दिनेदिनेहरः ।३४
शूली धनुष्मान्कवचो किरीटीश्मशानभस्मेक्षितांसर्वयात्र ।
कपालमालाकुलकष्ठनालो महाहिसूत्ररववद्धमौलिः ।३५

वह देवी नर्मदा मृग का कृष्ण वर्ण वाला अम्बर धारण कर रही थी । उस समय में धूम और अशनि (वज्र) के निर्ह्लादों के सहित सात भेदों से वहन कर रही थी । हे राजसत्तम ! इस तरह से मैंने अतुलित संहार देखा था जिसमें चन्द्र और सूर्य की किरणे भी नष्ट हो गई थी ऐसा यह चराचर जगत् हो गया था । इसके उपरान्त इस सम्पूर्ण विश्व की अलात (जलती हुंई लकड़ी का अंगारा) के चक्र के समान शीघ्रता से भ्रमित करती हुई किन्नर और उरगों के सहित करोड़ों विमानों से संकीर्ण और निर्घातों से युक्त वह वात चलने लगा था जिसने चर अचर जगत को प्रकम्पित कर दिया था । यह रुद्रदेव के मुख से समुत्पन्न हुआ था और सम्वत इसका नाम प्रसिद्ध था इस वायुने फैले हुए विशाल सागरों को अच्छी तरह से शोषित कर दिया था । जिसके अंग भस्म से उद्धूलित हो रहे हैं—कपिलवर्ण के नेत्र और जिनके केश हैं, उन्होंने जटाओं के कलापों से केशों को बांध रक्खा है—

महान् घोष से युक्त और परमदीप्त एवं विशाल त्रिशूल को-धारण करने वाले वह भगवान् हर क्षिन प्रतिदिन आपकी रक्षा करें। भगवान् शूल के धारण करने वाले हैं—धनुष भी धारण किये हुये हैं—कवच धारी मस्तक पर किरीट पहिनने वाले हैं। श्मशान की भस्म से जिनके समस्त अंग रक्षित हैं। जिन्होंने कपालों (नर मुण्डों) की माला से अपने कण्ठ नाल को समाकीर्णं कर रक्खा है और वे भगवान् शिव महान् सर्पों के सूत्र से अपने मस्तक को बद्ध करने वाले हैं।२६-५।

स सोनसौधैः परिवेष्ठितांगो विषाग्निचन्द्रामरसिन्धुमौलिः ।
पिनाकखट्वांगकरालपाणिः स कृतिवासा डमरूप्रणाद ।३६
स सप्तलोकान्तर नि सृतात्मा महाभुजावेष्टितसर्वगात्रः ।
मेत्रेण सूर्योदयसन्निभेन प्रवालांकेरनि भोदरेणः ।३७
सन्ध्याभ्ररक्तोत्पद्म माग सिन्दूर विद्यु तत्प्रकरारुणेन ।
तप्तेन लिंगेन च लोचनेन चिक्रीडमानः संयुगान्तकाले ।३८
हिरण्मयेनैव समुत्सृजन्सदण्डे न यद्वद्भगवान्सनेरुः ।
पादाग्रविक्षेपविशाणशैलः कुर्वञ्जगत्सोऽपि जगाम तत्र ।३९
संहर्तुं कामस्त्रिदिवं त्वशेष प्रमुञ्चमानो विकृताट्टहासम् ।
जहार सर्वं त्रिदिवं महात्मा संक्षोभयन्व जगदीश एकः ।४०
तं देवमीशानमज वरेण्यं दृष्ट्वा जगत्सहरण महेशम् ।
सा कालरात्रिः सहमातृभिश्चसगणाश्चवें शिवमर्चयन्ति ।४१
नन्दो च भृंगी च गणादयश्च त सर्वभूत प्रणमन्ति देवम् ।
जगद्वरं सर्वजनस्य कारण हरं स्मरारातिर्निशं ते ।४२

सृष्टि संहरण काल में भगवान् शम्भु के स्वरूप का वर्णन किया जाता है कि वे जो नसों के समूह से परिवेष्टित अगों वाले हैं मस्तक में जिनके विष की अग्नि—चन्द्रदेव और अमर सिन्धु (गंगा) विराजमान है। हाथों में भगवान् शम्भु पिनाक धनुष और खट्वाग धारण करने वाले हैं। गज चर्म के वसन धारण करने वाले तथा डमरू प्रसाद युक्त है। वह प्रभु सात लोकों में अनन्तर निःसृत आत्मा वाले हैं तथा वह भुजाओं से वेष्टित गात्र वाले हैं। प्रवालाँकुर सदृश मध्य भाग वाले सूर्योदय के

तुल्य नेत्र से उपलक्षित हैं। युगान्तर काल में वह प्रभु सन्ध्या कालीन मेघ रक्तकमल—पद्मराग—सिन्दूर और विद्युत् के प्रकार समान अरुण तप्त लिंग से और लोचन के द्वारा क्रीड़ा करने वाले थे। भगवान् की ही भाँति मेरु हिरण्मय दण्ड से ही समुत्सृजन करता हुआ वह भी पादों के अग्रभाग शैलों को विशीर्ण करता हुआ वही पर चला गया था। महान् आत्मा वाले वह एक ही जगदीश सम्पूर्ण त्रिदिव के संहार करने की कामना वाले अत्यन्त विकारयुक्त ग्रहहाथ को छोड़ते हुए समस्त त्रिदिव को युक्त करते हुए उन्होंने सबका हरण किया था। उन ईशान—अज—वरेण्य देव का जो महेश इस जगत् के संहार करने वाले हैं, दर्शन करके वह कालरात्रि मातृगणों के साथ तथा समस्त अन्य गण सभी भगवान् शिव का समर्चन किया करते हैं। नन्दी, भृंगी और वे सब अन्य गण अहर्निश उन सर्व भूत देव को प्रणाम किया करते हैं जो इस जगत् में परम श्रेष्ठ है—सभी जनों के कारण हैं—कामदेव से भस्म करने वाले हर हैं। ।३६-४२।

८६—ब्रह्मकृतशिवस्तुतिवर्णन

समातृभिर्भूतगणैश्च घोरैर्वृतः समन्तात्मा ननर्त शूली।
गजेन्द्रचर्मावरण वसानः संहर्तुकामश्च लगत्समस्तम् ।१
महेश्वरः सर्वसुरेश्वराणां मन्त्रैरनेकैरवबद्धमाली।
मेदोवसारक्तविचर्चिताङ्गस्त्रैलोक्यदाहे प्रणनर्त शम्भुः ।२
स कालरात्र्या सहितोमहात्मकाले त्रिलोकीं सकलां जहार।
सम्वर्तकाख्यः समहानुभावः शम्भुर्महात्मा जगतो वरिष्ठ ।३
स विस्फुलिगात्करधूर्मामिश्र महोल्कवज्राशनिवाततुल्यम्।
ततोऽटटहासं प्रमुमोच घोरं विवृत्य वक्त्र दडवामुखाभम् ।४
सहस्रवज्राशनिसन्निभेन तेनाऽटटहासेन हरोद्गतेन।
आपूरितास्तत्र दिशोदशैवसक्षोभिताः सर्वमहार्णवाश्च ।५
स ब्रह्मलोकं प्रजगाम शब्दो ब्रह्माण्डमाण्डं प्रचचाल सर्वम्।
किमेंयदित्याकुलचेतनास्ते वित्रस्तरूपा ऋषयो बभूवुः ।६

प्रणम्य सर्वे सहसैव भीता ब्रह्माणमूचुः परमेश्वरेशम् ।
भीताश्च सर्वे ऋषयस्ततस्ते सुरासुरेश्चैव महोरगश्च ।७

महर्षिवर श्रीमार्कण्डेयजी ने कहा—वह भगवान् शूलधारी परम घोर भूतगणों तथा मातृगणों में चारों ओर समावृत होकर उस समय में ताण्डव नृत्य बहुत ही प्रसन्न होकर किया करते हैं उस नृत्य के समय में वे गजेन्द्र के चर्म का आचरण लिये हुए इस सम्पूर्ण सृष्टि जगत् का संहार करने की इच्छा रखते हुए अपने नियत कर्तव्य के परिपालन समय को सानन्द आनन्द मग्न ही नृत्य किया करते हैं ।१। सब सुरों के भी ईश्वरों के अनेक मन्त्रों से अब बद्धमाली भगवान् महेश्वर शम्भु इस त्रैलोक्य के दाह करने में मेदा—वसा—रक्त से चर्चित अंगों वाले नृत्य किया करते थे ।२। उन प्रभु महात्मा ने उस कालरात्रि की सहायता से युक्त होकर उस समय में इस समस्त त्रिलोकी का संहार कर दिया था । सम्वर्त नामधारी–इस जगत् के सर्व श्रेष्ठ महानुभाव महान् आत्मा वाले शम्भु ने विस्फुलिंगों के समुदाय और धूम से मिश्रित–महोल्का वज्र शनि और वात के तुल्य अत्यन्त घोर सर्व प्रथम अपने बड़वा के मुख की आभा वाले समान आभा वाले मुख को फैलाकर अट्ठहास किया था । वह उनका समुत्पन्न परम भीषण अट्टहास सहस्रों वज्रपात और अशनि सम्पात के सदृश था । उससे दशों दिशाऐं भर गई थीं और समस्त सागर संक्षोभ युक्त हो गये थे । सर्वत्र एकदम अट्टहास से हलचल मच गई थी । वह उनके अट्टहास का शब्द ब्रह्मलोक तो पहुँच गया था और उसने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड भाण्ड को विचलित कर दिया था । यह क्या परम घोर ध्वनि है बुद्धि और चेतना को खो बैठने वाले समस्त ऋषि लोग भयभीत हो गये थे । भय से अतिशय डरे हुए सबने सहसा ही परमेश्वरेश श्री ब्रह्माजी से प्रणाम करके कहा क्योंकि उस समय सुर असुर और महोरगों के सहित सभी ऋषिगण भय से परम वित्रस्त हो रहे थे ।६-७।

विद्युत्प्रभाभासुर भीषणांगः क एष चिक्रीडति भूतलस्थः ।
कालानलोगात्रमिद दधानो यस्याट्टहासेन जगद्विमढम ।८

वित्रस्तरूपं प्रवभौ क्षणेन संहर्तु मिच्छेत्किमयं त्रिलोकीम् ।
सार्धंत्वया सप्तभिरर्णवश्च जनस्तपः सत्यमभिप्रयाति ।९
संहर्तु कामो हि क एष देव एतत्सनस्तं कथयाऽप्रमेय ।
न दृष्टमेतंत्तषिमंकदापि जानासि तत्वं परमो मतो नः ।१०
निशम्य तद्वाक्यमथाबभाषे ।
ब्रह्मा समाश्वास्य सुदादिसंधान् ।११
स एष कालस्त्रिदिवं शेषं
सँसर्तु कामोजगदक्षयात्मा ।
पूर्णे च शते परिवत्सराणां
भविष्यतीशानविभुनं चित्रम् ।१२
सम्वत्सरोऽय परिवत्सश्च
उद्वत्सरो वत्सरएष देनः ।
दृष्टोऽप्यदृष्टः बहुतः प्रकादी
स्थूलश्च सूक्ष्म परमाणु रेषु ।१३
नातः पर किञ्चिदिहाऽति लोके
परापरोऽयं प्रभुरात्मवादी ।
तुष्येत मे कालसमानरूप
इत्येवमुक्त्वा भगवान्सुरेशः ।१४
सनत्कुमारप्रमुखः समेतः
सन्तोषयामास ततो यतात्मा ।१५

हे ब्रह्मन् ! विद्युत की प्रभा के सदृश भासुर महान् भीषण अंग वाला भूतल में समवस्थित यह कौन है जो ऐसी क्रीडा कर रहा है ? यह तो कालानल शरीर को धारण करने वाला है जिसके केवल इस महान् अटटहास से ही यह सम्पूर्ण जगत् विमूढ़ हो गया है।८। यह अपने परम वित्रस्त रूप से युक्त शोभित हो रहा है। क्या यह इस समय समस्त त्रिलोकी के संहार करने की इच्छा कर रहा है। आपके और सातों अर्णवों के सहित जनलोक और तपलोक सत्यलोक को जा रहे हैं। यह इस प्रकार से इस त्रैलोक्य के संहार करने की इच्छा वाला है।

देव कौन है। हे अप्रमेय ! आप कृपा कर यह सम्पूर्ण वृत्तान्त हमको बतलाइये हम लोगों ने ऐसी विषमता अभी तक पहिले कभी भी नहीं देखी थी-आप तो इसका पूर्णतत्व जानते ही हैं। हमतो आपको ही सर्वोपरि समझते हैं। देवर्षियों के इस पृच्छावाक्य को सुनकर ब्रह्माजी ने सुर आदि के पूरे समुदाय को समाश्वासन देते हुए कहा था---श्रीब्रह्माजी ने कहा---यह वह ही काल है जिसमें अक्षय आत्मा वाले प्रभु इस सम्पूर्ण जगत् और त्रिदिव को संहार करने की इच्छा वाले हुआ करते हैं परिवत्सरों के अर्थात् दिव्य वर्षों के पूरे सौ होजाने पर ईशान विभु इसी प्रकार के स्वरूप वाले हो जायेंगे—इसमें कोई भी विचित्र बात नहीं है। ऐसा तो हुआ ही करता है। यह सम्वत्सर है—परिवत्सर है-उद्वत्सर है और यह देव वत्सर है। यह दृष्ट भी अदृष्ट है-प्रहुत-प्रकाशी-स्थूल—सूक्ष्म और यह परमाणु है। यहाँ परे इससे पर कुछ भी नहीं है। लोकमें यह परस्पर आत्मवादी प्रभु है। काल के समान रूप मुझे सन्तुष्ट करता है। इतना इस प्रकार से कहकर भगवान् सुरों के ईश सनत्कुमार जिनमें प्रमुख हैं उनके समेत तब वह यतात्मा सन्तोषित हुआ था।८-१५।

नमोऽस्तु सर्वाय सुशान्तमूर्तये
ह्यघोररूपाय नमोनमस्ते।
सर्वात्मने सर्व नमोनमस्ते
महात्मने भूतपते नमस्ते।१६
ओंकारहूँकारपरिष्कृताय
स्वधावषट् कार नमोनमस्ते।
गुणत्रयेशाय महेश्वराय ते
त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नमः।१७
त्वं शंकरस्त्व हि महेश्वरोऽसि
प्रधानमग्रयं त्वमसि प्रविष्ट।
त्वं विष्णु रीशः प्रपितामहश्च
त्वं सप्तजिह्वस्त्वमनन्तजिह्वः।१८

स्रष्टाऽसि सृष्टिश्च विभो त्वमेव
विश्वस्य वेद्यं च परं निधानम् ।
आहुर्द्विजा वेदविदा वरेण्य
परात्परस्त्व परतः परोऽसि ।१९
सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रवदन्ति यच्च !
वाचो नितन्तिमनो यतश्च ।२०

श्रीब्रह्माजी ने कहा—परम शान्ति मूर्ति वाले सर्पके लिये नमस्कार है। अघोर स्वरूप वाले के लिये बारम्बार नमस्कार है । हे सर्व ! सबकी आत्मा आपके लिए बारम्बार नमस्कार है । हे समस्त भूतों के स्वामिन् महान् आत्मा वाले आपके लिए नमस्कार है । हे स्वाहा-स्वधा और वषट्कार स्वरूप वाले ! आपकी सेवा में मेरा बारम्बार नमस्कार है । तीन गुणों के स्वामी-त्रयीमयी-त्रिगुणात्मा महेश्वर आपके लिए नमस्कार है । आप शंकर हैं अर्थात् कल्याण करने वाले हैं । आप महेश्वर हैं—सर्वोत्तम प्रधान भी आप ही हैं और प्रविष्ट है । आप ही विष्णु हैं-ईश हैं और आप ही प्रपितामह हैं । आप प्रविष्ट हैं । आप ही विष्णु हैं-ईश हे विभो ! आप ही इस विश्व के जानने के योग्य परम निधान है । वेदों के ज्ञाता द्विज आपको वरेण्य कहते हैं । आप पर से भी पर हैं जिसको सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म कहते हैं और जिससे मन और वाणी भी निवृत्त हो जाया करते हैं ।१६-२०।

त्वया स्तुतोऽहं विधिधैश्च मन्त्रैः
पुष्णामि शान्तिं तव पद्मयोने ।
ईक्षस्व मां लाकमिमं ज्वलन्तं
वक्त्रैरतेकैः प्रसभ हरन्तम् ।२१
एवमुक्तवा स देवेशो देव्या सह जगत्पतिः ।
पितामहे समाश्वास्य तत्रैवाऽन्तरधीयत ।२२
इदं महत्पुण्यतम वरिष्टंस्तत्रं निशम्ये ह गति लभतैः ।
पापैरनेकैः परिवेष्टिता ये प्रयान्ति रुद्रं विमलैर्विमानैः ।२३

भय च तेषां न भवेत्कदाचित्
पठन्ति ये तात इद द्विजाग्र्या: ।
सङ्ग्रारचौराग्निवने तथाऽब्धे तथाऽब्धौ
तेषांशिवस्त्राति न सश योऽत्र ।२४

श्री महादेवीजी ने कहा-हे पद्मयोने ! आपने अनेक मन्त्रों के द्वारा खस्तवन कियाहै । मैं आपकीशान्ति आपका शोषण करताहूँ अनेक मुखों के द्वारा वालात् संहरण करने वाले मुझको और जलते हुए लोक को देखो । इस प्रकार से वह सस्मत जगत्पति देवेश्वर देवी के साथ कहकर पितामह को समाश्वासन देकर वहीं पर अन्तर्हित हो गये । यह महान् त्तम और वरिष्ठ स्तोत्र हैं । इस लोक में इसका श्रवण करके मनुष्य सद्-गति को प्राप्त होते हैं जो मनुष्य अनेक पापों से परिवेष्टित रहा करते वे भी परम विमलों पर समारूढ़ होकर उनके द्वारा रुद्र लोक में गमन किया करते हैं । हे तात ! जो श्रेष्ठ द्विजगण इसका पाठ किया करते हैं। किसी भी समय कोई भी भय नहीं हुआ करता है । संग्राम स्थूल में चोरो के द्वारा उपस्थित भय में—अग्नि काण्ड में—वन में तथा समुद्र में इस स्तोत्र के पाठ करने वालों को भगवान् शिव स्वयं परित्राण करते हैं—इसमें बिलकुल भी संशय करने का कोई अवसर ही नहीं है ।२१-२४।

९०—द्वादशादित्यरूपेणजगत्संहरणवर्णन

एवं सस्तूयमानस्तु ब्रह्माद्यै मुंनिपुङ्गवः ।
ब्रह्मलोकगतैंस्तत्र सञ्जहार जगत्प्रभुः ।१
तद्भीभंमहारौद्रं दक्षिणवक्त्रमव्ययम् ।
महादष्ट्रोत्कटारावंपातालतलसन्निभम् ।२
विद्युज्ज्वलनपिंगाक्षं भैरवं लोमहर्षणम् ।
महाजिह्वं महादंष्ट्रं महासर्पशिरोधरम् ।३
महासुरशिरोमालं महाप्रलयकारणम् ।
प्रसत्ससुद्रनिहितवातवारिमय हविः ।४

वडवामुखसङ्काश महादेवस्य तन्मुखम् ।
जिह्वाग्रेण जनसर्वं लेलिहानमपश्यत् ।५
योजनानांसहस्राणिहस्राणांशतानिच ।
दिशोदमघोरामाँसतदोवसौत्कटाः ।६
तस्य दंष्ट्राव्यवधन्तशतशोऽथ सहस्रशः ।
सासुरासुरगन्धर्वान्सयक्षोरगराक्षसान् ।
यस्य दंष्ट्राग्रसलग्नान्स ददर्श पितापहः ।
दन्तयन्त्रान्तसम्विष्टविचूणितशिरोधरम् ।७

महर्षि प्रवर श्रीमार्कण्डेयजी ने कहा—इस प्रकार से सस्तवन किये गये प्रभु ने जो कि ब्रह्मा आदि मुनि श्रेष्ठों ने ब्रह्मलोक में समुपस्थित होकर शिव की बहुत स्तुति की थी सब सम्पूर्ण जगत् का संहार कर दिया था ।१। उस संहरण करने के अवसर पर सबने भगवान् शिव का महान् रौद्र स्वरूप का दर्शन किया था वह रुद्र का स्वरूप अत्यन्त भयानक, दक्षिण, वक्त्र, अव्यय, बड़ी दाढ़ी वाला, उत्कट घोष से संयुक्त और पाताल तल के तुल्य था ।२। विद्युत् और अग्नि के सदृश तीन नेत्रों वाला महान् भैरव एवं रोमांच खड़े कर देने वाला और बड़े विशाल सर्पों को शिर पर धारण करने वाला शिव का स्वरूप था ।३। बड़े-२ असुरों के झुण्डों की माला को धारण किये हुए, महाप्रलय का कारण स्वरूप ग्रसते हुए समुद्र में निहित वायु और जल से परिपूर्ण देवि, बड़-वाग्नि के मुख के तुल्य मुख वाला श्रीमहादेव का मुख था । उस मुख को जिह्वा के अग्रभाग से इस समस्त जगत् को चाटते हुए देखा था । भगवान् पितामह ने देखा था कि सैकड़ों और सहस्रों योजन दशों दिशाए जो महान् घोर थीं और मांस, मेदा और वसा से उत्कृट थीं तथा सुर, असुर, गन्धर्व यज्ञ, उरग और राक्षस सहस्रों की संख्या में महादेव की दाढ़ों के अग्रभाग में संलग्न हो रहे थे। सम्पूर्ण यह जगत् उनके दाँतों के यन्त्र में अन्दर प्रविष्ट होता हुआ शिरोधरों से युक्त चूर्णित हो रहा था ।१-७।

जगत्पश्यामि राजेन्द्रविशन्तं व्यादितेमुखे ।
नानातरंगभंगांगामहाफनोघसकुला ।८
यथा नद्यालयं यान्ति समुद्र प्राप्य सस्वनाः ।९
तथा तत विश्वमिदं समस्तमनेकजोवार्णवदुर्विहृयम् ।
विवेश रुद्रस्य मुख विशालज्वलत्तमुग्रंघननादघोरम् ।१०
ज्वालास्ततस्तस्य मुखात्सुघाराः
सविस्फुलिंगा वहुलाः सधुमाः ।
अनेकरूपा ज्वलनप्रकाशाः
प्रदीपयन्तीव दिशोऽखिलाश्च ।११
ततो रविज्वालसहस्रमालि
वभूववक्त्रं चलजिह्वदंष्ट्रम् ।
महेश्वेस्याद्भुतरूपिणतदा
सद्वादशात्मा प्रवभूव एकः ।१२
ततो द्वादशादित्या रुद्रवक्त्राद्विनिर्गताः ।
आश्रित्य दक्षिमामाशां निर्दहन्तो बसुन्धराम् ।१३

हे राजेन्द्र ! इस सम्पूर्ण जगत् को भगवान् शिवके फैलाये हुए मुख में प्रवेश करते हुए देखता हूँ । अनेक लहरोंके भंगांगों वाली और महान् फेनों के समुदाय से सकुल ध्वनियुक्त नदियाँ जिस प्रकारसे समुद्रमें प्राप्त होकर लय को प्राप्त हुआ करती है उसी भांति अनेक जीवों के सागर से दुर्विगाह्य (न पार होने के योग्य) यह परम विशाल समस्त विश्वमेघके समान परम घोंर घननाद वाले जलते हुए अत्यन्त उग्र रुद्र के विशाल मुखमें प्रवेश कर गयाथा । उस भगवान् रुद्रके मुखको ज्वालाऐं अत्यन्त चार रूप वाली—धूम से और अग्नि कणोंसे युक्त विशाल रूपमें निकल रही थी । उन ज्वालाओं के नाना भाँति के स्वरूप थे और अग्निके ही तुल्य प्रकाश वालीथी जो कि सभी दिशाओं को प्रदीप्त-सी कर रहीथी । इसके अनन्तर उन उद्भुत रूप वाले महेश्वर प्रभुका मुख सूर्य की सहस्रों ज्वालाओंकी माला वाला हो गया था जिसमें जिह्वा और दाढ़े चलरही थीं उस समय में बारह स्वरूपों वाले भी शिव एक ही रूप वाले होगये

थे। इसके पश्चात् रुद्र के मुख से द्वादश आदित्य विनिर्गत हुए थे जो दक्षिण दिशा का समाश्रय ग्रहण करके इस सम्पूर्ण भूमि का निर्दहन करने वाले थे।८-१३।

भौमं यज्जीवनं किञ्चिन्नानावृक्षतृणालयम्।
शुष्कं पूर्वं मनोवृष्टयासकञ्जाकुलभूतलम् ।१४
तद्दोष्यमामं सहसा सूर्यैस्तै रुद्रसम्भवः।
धर्माकुलमभूत्सर्वं प्रणष्टग्रहतारकम् ।१५
जज्वाल सहसा दीप्त भूमण्डलमशेषतः।
ज्वालामाकुलं सर्वमभूदेतच्चराचरम् ।१६
सप्तद्वीपसमुद्रेषु सरित्सु च सरःसु च।
अग्निरत्तिजगत्सर्वमाज्याहुतिमिवाध्वरे ।१७
विशाल तेजसा दीप्तामहाज्वालासमाकुलाः।
ददहुर्वैंजगत्सर्वमादित्यारुद्रसम्भवाः ।१८
आदित्यानां रश्मयश्चसस्पृष्टां वै परस्परम्।
एवं ददाहभगवांस्त्रै लोक्यं सचराचरम् ।१९
सप्तद्वीपप्रमाणस्तुसोऽग्निर्भूत्वामहेश्वरः।
सप्तद्वीपसमुद्रान्तांनिर्ददाह बसुन्धराम् ।२०
सुमेरुगन्दरान्तां च निदहुर्वसुधांतदा।
भित्वा तु सप्तपातालंनागलोकततोऽदहत् ।२१

इस भूमि पर रहने वालों का जो भी जीवन था जिनका कि अनेक वृक्ष, तृण आदि निवास स्थान थे वह पहिले तो अनावृष्टि होने से शुष्क हो गया था और समस्त भूतल सूखा से समाकुल हो उठा था फिर वह सम्पूर्ण पृथवी तल रुद्र देव से समुत्पन्न उन सूर्यों से सहसा दीप्यमान हो गया था समस्त भूमि भाग धूँआ से समाकुल हो गयाथा और सम्पूर्ण ग्रह तथा तारागण नष्ट हो गए थे। सहसा पूरा मण्डल दीप्त होकर जल गया था और यह ममस्त चराचर ज्वालाओं की मालाओं से आकुल हो गया था। सातों द्वीपों वाले समुद्रोमें सब सरिताओं में और सरोवरोंसे सम्पूर्ण

जगत् को अग्नि यज्ञ में घृत की आहुति के समान भक्षण कर रहा था। पर विशाल तेज ते प्रदीप्त—महान ज्वालाओं से समाकुल रुद्रदेव से समुत्पन्न आदित्यों ने इस सम्पूर्ण जगत् का दग्ध कर दिया था। भगवान् ने इस जड़—जंगम त्रैलोक्य को इस प्रकार से जला दिया था कि आदित्यों की किरणें परस्पर भली भाँति स्पष्ट हो गई थीं अर्थात् एक दूसरी से मिल गयीं थीं। वह महेश्वर भगवान सात द्वीप के प्रमाण वाला अग्नि स्वरूप ही हो गया था। या सात द्वीप और समुद्रों के अन्त पर्यन्त इस सब वसुन्धरा को जलाकर दग्ध कर दिया था। उस समय में सुमेरु पर्वत से लेकर मन्दराचल पर्यन्त इस भूमि को दग्ध कर दिया था फिर सात पातालों का भेदन करके नागलोक भी दग्ध कर दिया था। ।१४-२१।

भम्यधः सप्तपातालान्निर्दहस्तारकं सह ।
चचाराग्निः समन्तात्तु निर्दहन्वेयुधिष्ठिरः । २२
धम्यमानइवांगारैर्लोहरात्रिरिज्वलन् ।
तथातत्प्रजाज्वत्सर्वंमम्वर्त्ताग्निप्रदीपितम् ।२३
निर्वृक्षा निस्तृणा भूमिर्निर्निसरः सरित् ।
विशार्णशैलश्रृंगौघा कूर्मपृष्ठोपमाऽभवत् ।२४
ज्वालामाकुलं कृत्वा जगत्सवं चिदात्मकम् ।
महारूपधरो रुद्री ब्यतिष्टतं महेश्वरः ।२५
समातृषणभूयिष्ठ सयक्षोरगराक्षसा ।
ततो देवी महादेवं विवेश हरिलोचना ।२६
निर्वाण परमापन्ना शान्तेव शिखिनः शिखा ।
जगत्सर्वं हि निदग्ध त्रिभिर्लोकैः सहाऽनघ ।२७
रुद्रप्रसादान्मुक्त्वा मां नर्मदा चाप्ययोनिजाम् ।
युगामयुतं देवो मया चाद्य वुभुक्षणात् ।२८

हे युधिष्ठिर ! ताराओं के सहित भूमि और अधोभाग में सात पातालों को निर्दग्ध करते हुए चारों ओर दाह करते हुए यह अग्नि संचरण करने लगा था। अंगारों से धायमान की भाँति लौहरात्रि की

तरह जलते हुए उसने सम्वर्त्ताग्निसे प्रदीपित सबको प्रज्वलितकर दिया था। उस समय में इस भूमि की ऐसी दशा हो गई थी जैसे किसी कछुआ की पीठ हो। भूमि पर एक भी कहीं वृक्ष नहीं रहाथा—तृण नाम पात्र को नहीं था। कोई झरना—सर और सरिता ही थी। सब पर्वतों को चोटियाँ टूट-फूटकर गिर गई थीं। इस सम्पूर्ण जगत् को जो कि चिदात्मक था ज्वालाओं की मालाओं से समाकुल करके महान् रूप के धारण करने वाले महेश्वर संस्थित हो गये थे। बहुत-सी मातृगणों की पंक्तियों से युक्त और वक्ष उरग तथा राक्षसों के सहित हरिलोचना देवी ने महादेव में ही प्रवेश कर लिया था। हे अनघ! तीनों लोकों के सहित सम्पूर्ण जगत् को निर्दग्ध कर दिया और फिर शिखी की शिखा की तरह शान्त होती हुई परम निर्वाण को प्राप्त हो गई थी। अयोनिजा नर्मदा मुझको रुद्र के प्रसाद से युक्त करके आज वृभुक्षण से मेरे द्वारा दश सहस्र युगों तक देव शूली की पहली आराधना की गई थी।२२-२८।

पुरा ह्याराधितः शूली तेताहमजरामरः।
अघमर्षणघोरं च वामदेवं च त्र्यम्बकम्।२९
ऋषभं त्रिसुपर्णं च दुर्यां सावित्रमेव च।
बृहदारण्यकं चैव बृहन्साम् तथोत्तरम्।३०
रौद्री परमायत्रीं शिवोपनिषदं तथा।
यथा प्रतिरथं सूक्तं जप्त्वा मृत्युञ्जयं तथा।३१
सरित्सागरपयन्ता बसुधा भस्मसान्कृता।
वर्जयित्वा महाभागां नर्मदाममृतोपमाम्।३२
महेन्द्रो मलयः सह्योहेमकूटोऽथमाल्यवान्।
विन्ध्यश्चपारियात्रश्चसप्तैतेकुलपर्वताः।३३
द्वादशानित्यनिदग्धाः शैलाः शीर्णशिलाः पृथक्।
भस्मीभूतास्तु दृश्यन्ते न नष्टा नर्मदा तदा।३४
हिमवान्हेमकूटश्च निषधो गन्धमादनः।
माल्यवांश्च गिरिश्रेष्ठो नीलः श्वेतोऽथ शृङ्गवान्।३५

एते पर्वतराजानोदेवगन्धर्वसेविताः ।
युगान्ताग्निविनिर्दग्धाः सर्वेशोणमहाशिलाः ।३६
एवं मया पुरा दृष्टो युगान्ते सर्वसङ्क्षयः ।
वर्जयित्वा महापुण्यां नर्मदां नृपसत्तम् ।३७

भगवान शूली की आराधना से मैं अजन-अमर हो गया । अघमर्षा घोर, वामदेव त्र्यम्बक, ऋषभ, त्रिसुपर्ण दुर्गा सावित्री हवृदारण्यक, वृहत्साम, उत्तर रौद्री परम गायत्री, शिवोपनिषद—प्रतिरथ सुक्त और उसी भाँति मृत्युञ्जय का जाप करके मैं अजर अमर हो गया था। सरिता और सागर पर्य्यान्त सम्पूर्ण वसुधा भस्म कर दी गई थी केवल परम महाभाग वाली अमृतोपमा नर्मदा का वर्णन कर दियाथा । महेन्द्र मलय, सह्य हेमकूट, माल्यवान् विन्ध्य, परित्यात्र,ये सात कुल पर्वककहे गये हैं । द्वादश आदित्यों के द्वारा निर्वग्धि हुए शैलों की - सब शिलाएं शीर्ण होकर पृथक हो गई थी ये सब भस्मी भूत होकर दिखलाई दे रहे थे किन्तु उस समय भी नर्मदा का नाश नहीं हुआ था, हिमालय, हेमकूट निषध गन्धमादन माल्यवान् गिरियों में परश्रेष्ठ नीलगिरि श्वेत और भगवान ये सब पर्वत राज हैं जो कि देवों और गन्धर्वों के द्वारा सेवित है । जब युगान्त की अग्नि प्रज्वलित हुई तो ये सब निदग्ध हो गये थे और इनकी समस्त महा शिलाएं टूट-फूट गई थी । इसप्रकार से मैंने युग के अन्त में पहिले सबका संक्षेप आँखों से देखा था । हे नृप-सत्तम ! सबका तो संक्षय हुआ था किन्तु महान पुण्य वाली नर्मदा का उस समय में भी निवास अर्थात् क्षय नहीं हुआ ।२६-३७।

—×—

६९—नर्मदा माहात्म्य वर्णन

निर्दग्धेऽस्तिस्तयो लोकेसूर्येरीश्वरसम्भवैः ।
सप्तभिश्चार्णवैः शुष्कैर्द्वीपैः सप्तभिरेवच ।१
ततो मुखात्तस्य घना महोल्वणा निश्चैरुरिन्द्रः युधतुल्यरूपाः।
घोराः पयोदा जगदन्धकारं कुर्वन्त ईशानवरप्रयुक्ताः ।२

नीलोत्पलाभा क्वचिदञ्जनाभागोक्षीरकुन्देन्दुनिभाश्चकेचित्‌:
मय तन्द्राकृतयस्तथाऽन्ये केचिद्विधमानलसप्रभाश्च्र ।३
केचिन्महापर्वतकल्परूपा: ।
केचन्महामीनकुलोपमाश्च ।
केचिद्गजेन्द्राकृतय: सुरूपा:
केचिन्महाकूटनिभा: पयोद: ।४
चलात्तरङ्गोर्मिसमानरूपा
महापुरोधाननिभाश्च केचित्‌ ।
सगोपुराट्टलकसन्निकाशा:
सविद्युदुल्काशनिमण्डितान्ता: ।५
समावृतांग स व्रभूव देव: सम्वर्तकोनाम गण: सरौद्र: ।
प्रवर्षमाणो जगदप्रमानेकार्णव तूर्ण मिदं चकार ।६
ततो महामेघविवद्धमानमीशानमिन्दाशनिभिर्वृताङ्गम्‌ ।
ददर्श चाहं भयविह्वलाङ्गो गङ्गजलौघेच समाघृतांगम्‌ ।७

श्री मार्कंण्डेयजी ने कहा—ईश्वर से समुत्पन्न हुए सूर्यों के द्वारा इस सम्पूर्ण लोक को निर्दग्ध हो जाने पर और सातों समुद्रों के उत्तप्त होकर सूख जाने पर तथा सातों द्वीपों के शुष्क होकर नष्ट हो जाने पर फिर उनके मुख से इन्द्रदेव के आयुधों के तुल्य रूप वाले महान्‌ उल्वण धन निकलकर संचरण करने लगे । परम श्रेष्ठ ईशान देव के द्वारा प्रयुक्त उन परम घोर पयोदों ने इस जगत्‌ में अन्धकार फैला दिया था ।१-२। ये मेघ विभिन्न रूप और आकार वाले थे । कहीं तो वे मेघ नील कमल की आभा वाले थे । कहीं पर अंजन के तुल्या आभा वाले थे—और कुछ गो दूध, कुन्द पुष्प और चन्द्र के समान थे । अन्य मोर और चन्द्रमा की आकृति वालेथे और कुछ विधूम अर्थात्‌ धुंआसे रहित अग्नि की प्रभा के तुल्य थे । कुछ मेघ तो विशाल पर्वतों के ही बिल्कुल सदृश रूप वाले थे और कुछ महामीन (विशाल मछली)के कुल के समान थे । कुछ गजेन्द्र के समान आकृति वाले थे तथा कुछ मेघ-महान्‌

चोटी के तुल्य सुन्दर रूप वाले थे ।३–४। कुछ मेघ चलती हुई तरंगों के समान रूप वाले थे और कुछ महा पुरोधान के तुल्य थे। कुछ गोपुर-अटालक के तुल्य में जिनमें विद्युत उल्का, अशनिसे मण्डित अन्त वाले थे ।५। वह देव सम्वृत अङ्गों वाला हो गया था, सम्वर्त्तक नाम वाला वह रौद्र गण प्रवर्षण करता हुआ इस समस्त जगत् को अप्रमाण एक अर्णव वाला कर दिया था। इसके अनन्तर भय से विह्वल अंग वाले मैंने गंगा के जल के ओघों से समावृत अंगों वाले महान् मेघोंसे निवर्द्धमान और इन्द्र के वज्रों से वृत्त अंगों वाले ईशान को देखा ।६-७।

गजाः पुनश्चैव पुनः विवन्तो
जगत्समन्तात्परिदह्यमानम्।
आपूरित चैव जगत्समन्तात् ।
सर्वेश्च तर्जग्मुरदर्शनं च ते ।८
महार्णवाः सप्त सरांसि द्वीपा
नद्योऽथ सर्वा अथ भूर्भुवश्च ।
आपूर्यमाणाः सलिलौगजाल
रेकार्णवं सर्वमिदं बभूव ।९
न दृश्यते किञ्चिदहो चराचरे
निरग्निचन्द्रार्कमयेऽपि लोके ।
प्रणष्टनक्षत्रनमोऽन्धकारे
प्रशान्तवातास्तमितैकनोडे ।१०
महा नलोधेऽस्य विशुद्धसत्वा
[illegible]र्मया भूप ! कृता तदानीम् ।११
ततोऽहमित्येव विचिन्त्यमानः
शरण्यमेकं क्व नु यामि शान्तम् ।१२
स्मरामि देवं हृदि चिन्तयित्वा प्रभु शरण्यं जलसन्निविष्टः ।
नमामि देवं शरणं प्रपत्तो ध्यानं न तस्येतिकृतं मया च ।१३
ध्यात्वा ततोऽहं सलिल वितार तस्य प्रसादाददिमूढचेताः ।
ग्लानिः श्रमश्चैव मम प्रणष्टौ देव्याः प्रसादेन नरेन्द्रपुत्र ।१४

चारो ओर से परिह्यमान इस जगत् को पुनः पुनः गज पी रहे थे। सभी ओर से यह जगत् उनके द्वारा आपूरित होता हुआ था और फिर वे अदर्शन को प्राप्त हो गये थे।८। सातों महार्णव—सब सर—सात द्वीप—समस्त नदियाँ और भूर्भुवः स्वः अलोके ओघोके जालोंसे आपूर्ण माण होते हुए यह सव एकार्णव (समस्त समुद्रमय) हो गया था।११। अहो ! अर्क—चन्द्र और अग्नि से रहित इस चराचर लोक में जो कि नक्षत्रों के नष्ट होने से अन्धकार पूर्ण और तपोमयथा और वायु के भी प्रशान्त होने एक अस्तमित नीड़ हो रहा था कुछ भी दिखलाई नहीं दे रहा था।१०।.हे भूप ! उस महान् जलौघ में उस समय में मैंने इनकी विशुद्ध सत्व वाली स्तुति की थी। इसके पश्चात् मैं ही हूँ, ऐसी चिन्ता करता हुआ कि एक परम शान्त शरण्य को शरणागति में कहा जाऊँ ? ।११। जब सें सन्निविष्ट मैं आपने हृदय में परम शरण्य, देव प्रभु का चिन्तन करके स्मरण करता था। मैं देव को नमस्कार करता हूँ,शरण में जाता हूँ—इस तरह से मैंने उनका ध्यान कियाथा। इसके अनन्तर ध्यान करके उनके प्रसाद से अविमूढ़ चित्त वाला होकर सलिलमें तरण किया था। हे नरेन्द्र पुत्र! देवी के प्रसादसे ग्लानि और श्रमसे मेरा सब नष्ट हो गया था।१२-१३।

—×—

६२—वाराहकल्पवृत्तान्त वर्णन

ततस्त्वेकार्णवे तस्मिन्मुमुर्षुरहमातुरः।
काकूच्छ्वालस्तरंस्तोय बाहुभ्यां नृपत्तम !।१
श्रृणोम्यर्णवमध्यस्थो निःशब्दस्तिमिते तदा।
अम्भोरवमनोपम्य दिशादशविनादिनम्।२
हसकुदेन्दुसंकायाँ हारगोक्षोरपाण्डूराम्।
नानात्नविचित्राङ्गगी स्वर्णश्रृगाँ मनीरमाम्।३
खुरैः प्रवालकमयलाङ्गूलध्वजशोभिताम्।
प्रलम्बघोणांनर्दन्तीखुरेरर्णवमाहनीम्।४

गाँददर्शाहमुद्विग्नो मामेवाऽभिमुखीं स्थिताम् ।
किंकणीजालमुक्ताभिः स्वर्ण घटासमावृतम् ।५
तस्याश्चरणविक्षेपैः सर्वमेकार्णबंजलम् ।
विक्षिप्तफेनपुञ्जौघैनृत्यन्तीव समन्तः ।६
ररास सलिलोत्क्षेपः क्षोभयन्तीं महार्णवम् ।
सा मामाह महाभाग ! श्लक्ष्णम्भीरया गिरा ।७

महर्षि श्री मार्कण्डेयजी ने कहा—इसके उपरान्त उस एकामात्र सागर में हे नृप सत्तम मैं अत्युन्त आतुर और काकूच्छत्रास होता हुंआ अपनी बाहुंओं से जल को तैर रहा था अर्णव के मध्य में स्थित मैं शब्द रहित सीमित काल में उस समय में अनुपम और दशों दिशाओंमें विशेष ध्वनि करने वाले जल के शब्द को सुनता हूँ ।१२। हंस, कुत्व, (एक श्वेत रंग का पुण्य इन्दु (न्चद्रमा) के सदृश अर्थात् एक दम सफेद हार, गाय का दूध से समान पाण्डुर, अनेक रंगों से विचित्र अंगों वाली सुनहले सींगोंसे युक्त अतीव सुन्दर प्रवालों से परिपूर्ण खुरों से युक्त लाँयल पूंछ] और ध्वज से शोभा वाली लम्बी नासिकावाली खरों से अर्णव का गहन करती हुंई तथा मर्दन करने वाली गाय को मैंने अतीव उद्विग्न होते हुए देखा था जो कि मेरे ही सामने स्थित थी और किंकणी जाल मुक्ताओं से स्वर्ण के घण्टासे वह समावृतथी ।३-४। उसके चरणोंके विक्षेपों से वह समस्त एकार्णव का जल विक्षिप्त फेनों के पुंजोंके समूह से सभी ओर नाव सा रहा था जल को ऊपर की ओर उत्क्षेपों से उस महार्णव में क्षोभ करती हुई वह रास करती थी वह मुझसे बोली—हे महाभाग उसकी वाणी उस समय से बहुतही श्लक्षण और गम्भीर थी। ।६-५।

माभैषीर्वत्सवत्सेसि मृत्युस्तव न विद्यते ।
महादेवमसादेव न मृत्युस्तेममापिच ।८
ममाश्रयस्वलांगूलं त्वामतस्तारयाम्यहम् ।
घोरादस्माद्भयाष्टिप्रयावत्संप्लावितं जगत् ।९

क्षुत्तृषाप्रतिघातार्थं स्तनौ मे त्वं पिवस्वह ।
पयोऽमृतायं दिव्यं तत्पोत्वा निवृतो भव ।१०
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा हर्षात्पोतो मया स्तनः ।
न क्षुत्तृषा पीतमात्रे स्तने मह्यं तदाऽभवत् ।११
दिव्य प्राणबलं यज्ञे समुद्रप्लवतक्षमम् ।
ततस्तां प्रत्युवाचेदं का त्वमेकार्णवाकृते ।१२
भ्रमसे ब्रूहि तत्वेन विस्मयो में महान्हृदि ।
भ्रमतोऽश्रममार्तस्य मुमूर्षोः प्रहृत्तस्यह ।१३
त्व हि में शरण जाता भाग्यशेषेण सुव्रतो ! ।१४

हे वत्स ! हे वत्स ! डरो मत तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी महादेव का प्रसाद ऐसा ही है कि उससे न तो तुम्हारी मृत्यु है और न मेरी ही तुम मेरी पूँछ को पकड़ लो मैं तुमको शाप दूँगी हे विप्र ! जब तक यह जगत् में संप्लव होता है, मैं तब इस अति घोर भय से मैं उद्धार करती हूँ अपनी क्षुधा और पिपासा के प्रतिधान करने के लिए तुम मेरे स्तनों का पान करो यह मेरा अमृताश्रय परम दिव्य भय है उसको पीकर निवृत्त हो जाओ उसके उस वचन का श्रवण करके मैंने बहुत ही हर्ष से उसका स्तन पिया था उस समय मैं उस स्तन के पीने भर से मुझे क्षुधा और तृषा नहीं रही थी मुझ में उस समय परम दिव्य प्राण बल समुत्पन्न हो गया था जो कि समुद्र प्लवन की सामर्थ्य रखने वाला था इसके पश्चात् मैंने उसमें कहा था आप कौन हैं जो इस एकार्णवी मत हुए जल में इस तरह से भ्रमण कर रही हैं आप तात्विक रूप से मुझे बतलाइये मेरे हृदय में भारी विस्मय हो रहा है वहाँ पर परम आर्त्त भ्रमण करते हुए मेरी जो कि प्रहृत और मरने वाला हो रहा हूँ सुव्रते मेरे भाग्य की शेषता होने से ही आप संरक्षण करने वाली हो गई हैं ।१४।

किमह विस्मृता तुभ्यं विश्वरूपांमहेश्वरी ।
नर्मदाधर्मं दातृणांस्वर्णशर्म बलप्रदा ।१५

दृष्ट्वा त्वां सीदमानं तु रुद्रेणाऽहंविसर्जिता ।
तै द्विजं तारयस्वर्थे मा प्राणांस्त्यजताँ जले ।१६
गोरूपेण विभोर्वाक्यात्वत्सकाशमिहागता ।
मा मृषावचनः शम्भूभवेदिति सत्वरा ।२७
एवमुक्तस्तयाऽऽहंतुइन्द्रायुधानिभंशुभम् ।
लांगूलमव्ययंज्ञात्वालुजाभ्यामबलम्बितः ।१८
ततोऽन्तरं तं जतधिलागूलध्वजमाश्रितः ।
असो देवे महादेव इति मां प्रत्यभाषत ।१६
मतोयुग सहस्रान्तमह काल तथा सह ।
व्यचरं वै तमोभूते सर्वतः सलिलावृते ।२०
महार्णवे ततस्तस्मिन्भ्रमन्गोः पुच्छमाश्रितः ।
निर्वाते चान्धकारे च निरालोके निरामये ।२१

गौ ने कहा—क्या आपने मुझ को भुला दिया है मैं विश्वरूप वाली महेश्वरी हूँ मेरा नाम नर्मदा है और मैं मनुष्यों को धर्म के देन वाली तथा स्वर्ग कल्याण और बल प्रदान करने वाली हूँ तुमको अत्यन्त पीड़ित होते हुए देखकर भगवान् रुद्र ने मुझे छोड़ दिया है और उन्होंने मुझे यहाँ भेजते हुए आज्ञा दी थी कि हे आर्ये ! उस द्विज का तारण करो वह इस जल में अपने प्राणों का परित्याग न कर देवे विभु के ही इस वचन से मैं गौ के रूप में तुम्हारे समीप में यहाँ पर समागतहुई हूँ कि भगवान् शम्भु का वचन मिथ्या न होने पावे इसलिए मैंने बड़ी शीघ्रता से आगमन किया है इस प्रकार से उसके द्वारा कहे हुए मैंने इन्द्र के आयुध के तुल्य परम शुभ एवं अव्यय समझकर उसकी पूँछ को दोनों बाहुओं से पकड़ किया था इसके अनन्तर लाँगू ध्वच उस जलधि के आश्रित यह देव महादेव हैं यह मुझसे कहा था इसके पश्चात् मैं उसके साथ एक सहस्र युग के अन्त तक समय में सब ओरसे जल से समाव्रत उस अन्धकार पूर्णमें विचरण करता रहा था इसके उपरान्त उस महार्णव में गौ की पूँछ का आश्रय ग्रहण करने वाला मैं बिना वायु वाले आलोक रहित निरामत अन्धकार मैं भ्रमण कर रहा था ।२१।

अकस्मात्सलिले तस्सिन्नतसीपुष्पसन्निभम् ।
विभिन्नांञ्जनसंकाशमाकाशमिव निर्मलम् ।२२
नालोत्पलदलश्याम पीतवाससयव्ययम् ।
किरीटेकार्कवर्णेनविद्यु द्विद्योतकारिणा ।२३
भ्राजमानेनसिरसाखमिवात्यन्तरूपिणम् ।
कुण्डोत्घृष्टगल्ल तुहारोदुद्ययोतितवक्षसम् ।२४
जाम्बूनदमयैर्दिव्यभूषणरुपशोभितम् ।
नागोपधानशयन सहस्रादित्य वर्चसम् ।२५
अनेकबाहूरुधरं नैत्रवक्त्रं मनोरमम् ।
सुप्तमेकार्णवे वीरं सहस्राक्षशिरोधरम् ।२६
जटाजूटेन महतास्फुरद्विद्यत्समार्चिषा ।
एकार्णवंजगत्सर्वं व्याप्यदेवव्यवस्थितम् ।२७
ग्रसित्वा शंकर सर्वं सदेवासुरमानवम् ।
प्रटश्याम्यहमीशानं सुप्तमेकार्णवे प्रभुम् ।२८

अचानक उस जल में असली के पुष्प के सदृश विभिन्न के अञ्जन के तुल्य, आकाश के समान नीलकमल के सपृश श्याम पीत वस्त्र धारी अव्यय, विद्यु त् के तुल्य विद्योतकारी सूर्य समान किरीट से शोभित भ्राजमान शिर से आकाश की भाँति अत्यन्त रुप वाले उस उकाणंव में शयन करने वाले ईशान प्रभु को मैंने देखा जो कुण्डलों से उद्घृष्ट गालों वाले थे सुवर्णमय दिव्य आभूषणोंसे वह शोभितथे जिनको शय्या पर नागों का ही उपधान (तकिया) था और सहस्रों आदित्यों के तुल्य वर्चस थे वाले थे उनके बाहु और उऊ थे तथा अनेक मुखों से युक्त वे अत्यन्त ही मनोरम थे सहस्रों नेत्र एवं मस्तकों के धारण करने वाले वह वीर उस एकार्णव में सुप्त थे विद्यु त के समान अर्चियों अर्थात् ज्योति की ज्वालाओं युक्त महान् जटाजूटों से समुपल-क्षित थे। उस एकार्णव सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त करके वे देव

अवस्थित थे। सबका ग्रास करके जिस विश्व में देव असुर और मानव सभी थे ऐसे शंकर प्रभु का मैंने दर्शन किया था।२२-२८।

सर्वव्यापिनसंयक्तमनन्त विश्वतोमुखम्।
तस्यपादतलाभ्याशेस्वर्णकेयूरमण्डिताम्।२९
विश्वरूपाँ महाभागाँ विश्वमायावधारिणीम्।
श्रींमयीं ह्रींमयीं देवीं धीमयीं वाङ्मयीं शिवाम्।३०
सिद्धि कीर्ति रतिं ब्राह्मी कालरात्रिमयोनिजाम्।
तामेंवाहं तदात्यन्तमीश्वरान्तिकमास्थिताम्।३१
अद्राक्षं चन्द्रवदनाँ धृतिं सर्वेश्वरीमुमाम्।३२
शान्तं प्रसुप्त नवहेमवर्णमुमासहायं भगन्यमीशम्।
तमावृत पुण्यतमं वरिष्ठं प्रदक्षिणीकृत्य नमस्करोमि।३३
ततः प्रसुप्तः सहसा विबुद्धो रात्रिक्षये देववरः स्वभावात्।
विक्षोभयन्बाहुभिरर्णवाम्भो जगत्प्रणष्ट सलिले विमृश्य।३४
किं कार्यमित्येव विचिन्तयित्वावाराहरूपोऽभवदद्भुताङ्ग।
महागनाम्भोधरतुल्यवर्चाः प्रलम्बामालाम्बरनिष्कमाली।३५

वह भगवान् सर्वव्यापी—अव्यक्त और अनन्त तथा विश्वतोमुख थे-उनके चरण तलों के समीप में ही सुवर्ण के रचित केयूर से मण्डित—विश्वरूप वाली महाभागा विश्वमाया की अवधारिणी—श्रीमयी—ह्रीमयी—धीमयी—वाङ्मयाशिवा—देवी सिद्धि—कीर्ति—रति—ब्राह्मी—अयोनिजा-कालरात्रि उसी को मैंने ईश्वर के अत्यन्त समीपमें समीस्थित उस समय में देखा था जो कि चन्द्रमाके तुल्य मुख वाली—धृति और सर्वेश्वरी उमा थी। परम शान्त—सोये हुए—नूतन हेम के सदृश वर्ण वाले—उमा की सहायता वाले—तुम से आवृत—पुण्यतम-वरिष्ठ भगवान् ईश की प्रदक्षिणा करके मैंने नमस्कर किया था इसके अनन्तर सोये हुए वे देववर सहसा रात्रि के क्षय होने पर विबुद्ध हो गये थे अर्थात् जाग गये थे। स्वभाव से बाहुओंसे उस वर्णन के जलको विक्षुब्ध

कर रहे थे। उस जल में सम्पूर्ण जगत्को नष्ट हुआ सोचकर अब क्या करना चाहिए यही विशेष रूप से चिन्तन करके अद्भुत अंग एवं रूप वाले वे बाराह रूप वाले हो गये थे। जो महान् धन अम्भोघरके समान वर्चस वाले और प्रलम्ब माला और अम्बर तथा निष्क (गलेका भूषण) की माला के धारण करने थे।२९-३५।

सशंखचक्रासिधरः किरीटी सवेदवेदाङ्गमयो महात्मा।
त्रैलाक्यानिर्माणकरः पुराणो देवत्रयीरूपधरश्च कार्ये।३६

स एव रुद्रः स जगज्जहार
सृष्ट्यर्थमीशः प्रपितामहोऽभूत्।
संरक्षणार्थं जगतः स एव
हरिः सचक्रासिगदाब्जपाणिः।३७
तेषां विखागो न हि कर्तृं महो
महात्मनामेकरीरभाजाम्।
मीमांसहेत्वर्थविशेषतर्के
र्यस्तेषु कुर्यात्प्रविभेदमज्ञः।३८
स याति घोरं नरकं क्रमेण
विभागकृद्द्वेषमतिर्दुरात्मा।
य यस्य भक्तिः स तयैव नूनं
देहं त्यजन्स्व ह्यमृयत्मेति।३९
सम्मोहयन्मूर्तिभिरत्र लोकं
स्रष्टा च गोमा क्षयकृत्स देवः।
तस्मान्न मोहात्मकमाविमेंत
द्वेषं न कुर्यात्प्रविभिन्मूर्तिः।४०
वाराहमीशानवरोऽप्यतोऽसौ
रूपं समास्थाय जगद्विधाता।
नष्टे त्रिलोकेऽर्णवतोयमग्ने
विसार्पितोऽभयेऽन्तरात्मा।४१

वह देव शंख—चक्र और असि (खंग) के धारण किये हुई थे—किरीटधारी—वेदों और वेदाँगों से परिपूर्ण–महान् आत्मा वाले—त्रिलोकी के निर्माण को करने वाले—पुराण और कार्य में तीन देवों के रूप धारण करने वाले हैं। वही रुद्रदेव इस जगत् का हरण करने वाले हुए थे। वह ही सृष्टि की रचना करने के लिये ईश प्रपितामह हुए थे। इस जगत् की रक्षा करनेके लिये वह ही चक्र गदा, खडग और पंकजको धारण करने वाले श्री हुए हैं। एक ही शरीर को धारण करने वाले उस महात्माओं का विभाग नहीं करने योग्य है। मीमांसा–हेतु अर्थ विशेष और तर्कों के द्वारा जो कोई उनमें विभाग करता है या प्रभेद मानता है वह बहुत ही अज्ञानी एवं मूढ़ है।३६—३८। इस प्रकार से विभाग करने वाला द्वेष बुद्धि से युक्त दुष्टात्मा क्रमसे घोर नरकमेंगमन किया करता है। जिस पुरुष को उस देवी की भक्ति होती हैंवह उसी के प्रभाव से निश्चय ही अपने देह का त्याग करता हुआ अमृतत्व को प्राप्त होता हैं।३६। यहाँ पर इन मूर्तियों के द्वारा लोक को सम्मोहित करते हुए वही सृजन करने वाले—संरक्षण करने वाले और क्षय करने वाले हैं। इसीलिए यह भिन्न-२ मूर्तिधारी हैं–ऐसा मोहात्मक द्वेष नहीं करना चाहिए। यह ईशान वर-बाराह के स्वरूपमें समास्थितहोकर इस जगत् के विघाता हैं। त्रैलोक्य के नष्ट हो जाने पर और अर्णव के जल से निमग्न होने पर विमार्गी जल के समूह से पूर्ण में अन्तरात्मा अर्णव के जल का भेदन करके अन्तर में स्थित पाताल में क्षण भर में प्रवेश कर गये थे। जल में डूबी हुई कमल के दल के तुल्य नेत्रों वाली इस सम्पूर्ण धारणी का स्पर्श किया था।४०-४१।

भित्याणवं तोयमथान्तरस्थं
विवेश पातालतलं क्षणेन।
जले निमग्नाँ धरणीं समस्तां
समस्पृशत्पंकजपत्रनेत्राम्।४२
विशीर्णशलोत्पलङ्ककूटां
बसुन्धराँ तां प्रलय प्रलानाम्।

दंष्ट्रकया विष्णुरतुलयसाहसः
तमुत्दधार स्वयमेव देवा ।४३
सा तस्य दंष्ट्राग्रविलम्विताँगी
कैलासशृंगाग्रतेव ज्योत्स्ना ।
विभ्राजते साप्यसमानमूर्तिः
शशांकशृंगे च तडिद्विलग्ना ।४४
तामुज्जहारार्णव तोयमग्नां
करी निग्नामिव हस्तिनीं हठात् ।
नाव विशीर्णामिव तोयमध्या-
दुदीर्णसत्वोनुपमप्रभावः ।४५
स तां समुत्ताय महाजलोधात् ।
सप्रद्रभार्यो व्यभजत्समस्तम् ।
महाढ़ार्णवेष्वेव महार्णवाम्भो
निक्षपयामस पुननेदोषु ।४६
शीर्णाश्च शैलान्स चकार भूयोद्वीपान्समस्तांश्च तथार्णवाँच।
शैलोपलायविचिताः सहन्ता—
चिछ्लोच्चयांस्ता स चकार कल्पे ।४७
ननेकरूप पविभज्य देह चकार देवेन्द्रगणान्मस्तान् ।
मुखाच्च वह्निर्मनश्च चन्द्रश्चक्षोश्च सूर्यः सहसा बभूव ।४८
जज्ञऽथ तस्येश्वरयोगमूर्ते प्रध्यामानस्य सुरेन्द्र संघः ।
वेदाश्चयज्ञाश्चतथैव वर्णास्तथा हि सर्वोषधायोरसाश्च ।४९

विशीर्ण हुआ शैलों के उत्पन्न शृंगकूटों वाली—प्रलयमें प्रलीन इस बसुन्धरा को अतुल्य साहस वाले देव विष्णु ने स्वयं ही एक द्रष्टासे उठा लिया था ।४३। व धारणी उनकी दाढ़ के अग्रभाग में लटके हुए अंगों वाली कैलास पर्वत की चोटी के अग्रभागमें फैली हुई ज्योत्स्नाके समान शोभित हो रहीं थी । असमान मूर्ति वाली वह भी शशांक के शृंग में विलग्न तड़ित जैसी थी ।४४। उस धरणी को जो कि अर्णव के जल

में निमग्न थी जल में डूबी हुई हथिनी को हर पूर्वक उद्धार करने वाले हाथी की भाँति बाराह भगवान् ने ऊपर उठा लिया था। उदीर्ण सत्व वाले तथा अनुपम प्रभाव से समन्वित उन देव ने जल के मध्यसे विशीर्ण हुई नौका की भाँति उस भूमि को महान् जल के समुहसे ऊपर उठाकर उसने सम्पूर्ण समुद्र का विभाग कर दिया था। महार्णव के जल को महान् अर्णवों में और फिर ददियों में निक्षिप्त कर दियाथा। शीर्ण हुए पर्वतों को उन्होंने पुनः कर दिया था। उसी तरह से समस्त द्वीपों को और अर्णवों को भी यथा स्थित कर दिया था। उन्होंने जो शैलों के उपलों से चारों ओर में विचित्र थे उन शैलोच्चयों को कल्प में कर दिया था। अपने देह को अनेक स्वरूपों में विभक्त करके फिर समस्त देवेन्द्र गणों को कर दिया था। उनके मुख से अग्नि समुत्पन्न हुई—मन से चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई—चक्षु से सहसा सूर्य देव समुत्पन्न हुए थे।४५-४८। प्रकृष्ट रूप से ध्यान करने वाले थे। योगमूर्त्ति उन ईश्वरसे सुरेन्द्रों का संघ समुत्पन्न हुआथा। समस्त वेद-यज्ञ-वर्ण सर्वौषधियाँ और समस्त रस उत्पन्न हुए थे।४६।

जगत्समस्तं मनसा बभूव
यत्स्थावरं किञ्चिदिहाऽण्डजं वा।
जरायुजं स्वेदजमुद्भिजं वा
यत्किञ्चिदाकीटपिपीलकाद्यम्।५०
ततो विजज्ञे मनसा क्षणेन
अनेकरूपाः सहसा महेशः।
चकार यन्मूर्तिभिरव्यायात्मा
अष्टाभिराविश्य पुनः स तत्र।५१
लोकां चकाराऽथ समृद्धतेजाअतोऽत्र मे पश्यत एव विप्राः।
तेषां मया दर्शनमेव सर्वं यावन्मुहूर्तात्समकारि भूप।५२
कृत्वा त्वशेष किल लीलयैव स देवदेवो जगतां विधाता।
सर्वत्रहृत्सवग एव देवो जगाम चाऽदर्शनमादिकर्ता।५३

यत्तन्मुहूर्तादिह नामरूप तावत्प्रपश्यामि जगत्तथैव ।
द्वीपैः समुद्र रभिसस्वृतं हि नक्षत्रतारादिविमानकीर्णम् ।५४
विजयत्पयोदग्रहचक्रचित्र नानाविधैः प्राणिगणवृं त च ।
तां वै न पश्यामि महानुभावाँ गोरूपिणीं सर्वसुरेश्वरीं ।५५
क्वसाम्पतं सेति विचिन्त्य राजन्
दिशो विभागानवलोकयान ।
विभ्रान्त चिस्त्वभवं तदेव
ऋते पुनस्तां कथमीश्वरांगाम् ।५६

यह सम्पूर्ण जगत् मन से ही हुआ था जो भी स्थावर कुछ है अथवा यहाँ अण्डज है । कीट-पिपीलिका आदि से लेकर जो कुछ भी जरायुज-स्वदेज और उद्भिज सृष्टि है । इसके उपरान्त भगवान् महेश ने क्षणभर में सहसा अनेक रूपों वाली सृष्टि का सृजन मन से ही किया था । वह अव्यय आत्मा वाले ने वहाँ पर पुनः आठ मूर्तियों में आविष्ट होकर यह सब किया था । हे विप्रो! मेरे देखते हुए ही समृद्ध तेज वाले प्रभु ने इस के पश्चात् लीला की थी । हे भूप ! मुहूर्त मात्र तक मैंने उनके समस्त दर्शन जब तक किये थे । जगतों के विधाता देवों के देव ने यह सब लीला ही से करके सर्वत्र दिखलाई देने वाले और सभी जगह गमन करने वाले वह देव आदिकर्त्ता अदर्शन को प्राप्त हो गये थे । यहाँ पर मुहूर्त मात्र में ही वह नाम और रूप वाला जगत् उसी प्रकार का समुत्पन्न हुआ मैं देखता हूँ जो कि समस्त द्वीपों और समुद्रों से अभि संवृत तथा नक्षत्र और तारादि विमानों से भी संकीर्ण हो रहा था । यह अन्तरिक्ष मेघ—ग्रहों के चक्र से चित्रित था और नाना प्रकार के प्राणि के समुदाय से भी समाकीर्ण था । फिर मैं उस महानुभावा गाय स्वरूप वाली सर्वेश्वरी को नहीं देखता था । हे राजन् ! उस समय में वह कौन थी—यह विचिन्तन करके विभ्रान्त चित्त वाला हो गया था । फिर ईश्वरांगी उसके अभाव में कैसे दिशाओं के विभागों को देखने वाला होता ।५०—५६।

पश्यामि तामत्र पुनश्च शुभ्रा
महाभ्रनीला शुचिशुभ्रतोयाम् ।
वृक्षैरनेकैरुपशोभितांगी
गजस्तुगैर्विहगैर्वृतां च ।५७
यथा पुरा तोरमुपेत्य देव्याः
समास्थितश्चामरकण्टके तु
तथैव पश्यामि सुखोपविष्ट
आत्मनमव्यग्रनवाप्तसौख्यम् ।
तथैव पुण्यामलतोवाहां
दृष्टवा पुनः कल्परिक्षयेऽपि ।
अम्बामिमार्यामनुकम्पमाना
मक्षीणतोयां विरुजां विशोकः ।५९
एवं महत्पुण्यतमं च कल्प
पठन्ति शृण्वन्ति च येद्विजेन्द्राः ।
महावराहस्य महेश्वरस्य
दिने दिने ते विमला भवन्ति ।६०
अशुभशतसहस्रं ते विधूय प्रपन्ना
स्त्रिदिवममरजुष्ट सिद्धगन्धर्वयुक्तम् ।
विमलशशिनिभाभिः सर्वएवाप्सरोभिः
सहविविधविलासैः स्वर्ग सौख्यं लभन्ते ।६१

मैं फिर यहाँ पर उसको महान् अभ्र के (मेघ के) समान नील वर्ण वाली—शुचि एवं शुभ्र जल वाली और परम शुभ्र उसका दर्शन करता हूँ। वह अनेक वृक्षों से उपशोभित अंगों वाली तथा गज, अश्व और विहगों से समावृत थी। जिस प्रकार से पहले तीर को प्राप्त होकर देवी के समीप में अमर कण्टक में समास्थित हो गया और उसी भाँति अव्यग्र प्राप्त हुए सौख्य वाले आत्मा को सुख पूर्वक उपविष्ट होकर देखता

हूँ। उसी प्रकार से परम पुण्यमय एवं अमल जल के वहन करने वाली को देखकर फिर कल्प के परिक्षय में भी अम्बा की भाँति अनुकम्पा करती हुए क्षीणता रहित जल वाली विरुजा आर्या को शोक रहित होकर देखता हूँ। जो द्विजेन्द्र इस प्रकार से महान् पुण्यत महाबराह महेश्वर कल्प को पढ़ते हैं और श्रवण करते हैं वे दिन-दिन में विमल हो जाया करते हैं। वे सैकड़ों और सहस्रों अशुभों का विनाश करके प्रसन्न हुई देवों से सेवित और सिद्ध तथा गन्धर्वों से समन्वित स्वर्ग के परम सुख का उपभोग किया करते हैं जो स्वच्छ चन्दके तुल्य अप्सराओं के साथ विविध प्रकार के विलासों से युक्त होता है।५७-६१।

९३—मेघनादतीर्थमाहात्म्य वर्णन

जलमध्ये महादेवः केनतिष्ठति हेतुना ।
उत्तरं दक्षिणं कूलं वर्जयित्वा द्विजोत्तम ।१
एतदाख्यानमतुलं पुण्यं श्रुतिसुखावहम् ।
पुराणे यच्छ्रुतं तता तत्त वक्ष्याम्यशेषतः ।२
त्रेतायुगे महाभाग रावणो देवकण्टकः ।
त्रैलोक्यविजयी रौद्रः सुरासुरभयंकरः ।३
देवदानवगन्धर्वैऋषिभिश्चि तपोधनैः ।
अवध्योऽथ विमोन यावत्पर्यटतेमहीम् ।४
तावद्विन्ध्यविरेमध्येदानवोबलदर्पितः ।
मयनामेतिविख्यातोगुहावासी तपश्चरन् ।५
तस्य पार्श्वंगतो रक्षो विनयादवनिगत ।
पूजितो दानसन्मानैरिदं वचमब्रवीत् ।६
कस्येय पद्म तन्त्राक्षी पूर्णचन्द्रनिभानना ।
किंनाम धेया तपति तप उग्रं कथं विभो ।७

युधिष्ठिर ने कहा—हे द्विजोत्तम ! महादेव जलके मध्यमें उत्तरकाशी दक्षिण कूल को वर्जित करके किस हेतु से स्थित रहा करतेहैं। श्रीमार्क-

ण्डेयजी ने कहा—यह आख्यान तो बहुत ही अनुपम है और परम पुण्य पूर्ण है तथा श्रवणों को सुख प्रदान करने वाला है। हे तात ! पुराण में मैंने जो कुछ भी सुना है उस सबको मैं आपको बतलाता हूँ। हे महाभाग ! त्रेतायुग में देवोंके लिए कण्टक रावण हुआ था जो त्रिलोकी को पराजित कर विजय प्राप्त करने वाला महान् रौद्र और सुर,आसुरसबके लिये बहुंत ही भयंकर था। वह देवों दानवों, गन्धर्वों, ऋषियों और तपोधनों के द्वारा वध करने के योग्य नहीं था। वह विमान के द्वारा सम्पूर्ण पृथ्वी पर पर्यटन किया करता था। जैसेही वह पर्यटन कर रहा था वैसे ही विन्ध्य गिरि के मध्य में एक बल के दर्प वाला मय नाम वाला दानव था जो परम प्रसिद्ध था और गुफाओं के निवास करते हुंए तपश्चर्या कर रहा था। उसके समींप में जाकर राक्षस ने विनयसे अवनत होकर भूमि में अवस्थिति की थी। दान और सम्मानों के द्वारा उसकी पूजा की थी और अन्त में उसने भय से यह वचन कहा था—यह कमल दल के समान नेत्रों वाली तथा पूर्ण चन्द्रमा के तुल्यमुख वाली यह क्या नाम वाली है, हे विभो ! यह क्यों ऐसी उग्र तपश्चर्या कर रही है ? ।१—७।

दानवानां पतिः श्रेष्ठो मयोऽहं नामतः।
भार्या तेजोवती नाम तस्यास्तु नमया प्रभा ।८
मन्दोदरीतिविख्यातातपते भर्तुः कारणात् ।
आराधयन्तीभर्त्तारमुमयादयितं शुभम् ।९
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य रावणोमदमोहितः।
प्रसृतः प्रणतो भूत्वा मयम्वचनमब्रवीत् ।१०
पौलस्त्यान्वयञ्जातो देवदानवदर्पहा ।
प्रार्थयामिमहाभागसुता त्व दातुमर्हसि ।११
ज्ञात्वापैतामहवृत्तं मयेनाऽपि महामना।
रावणायसुतादत्ता पूजयित्वाविधानतः ।१२
गृहीत्वा तां तदा रक्षोऽभ्यर्च्चमानो निशाचरैः।
देवोद्याने विमानैश्च क्रीडते स तया सह ।१३

केनच्चित्वथ कालेन रावणो लोसरावणः ।
पुत्रं पुत्रवतां श्रेष्ठो जनयामास भारतः ।१४

मय ने कहा—दानवों का परम श्रेष्ठ पति नाम से मय नाम वाला हूँ। मेरी भार्या तेजोवती नाम वाली है और उसकी यह शुभा पुत्री है। उसका नाम मन्दोदरी प्रसिद्ध है और वह अपने स्वामी की प्राप्ति के लिए ही तपस्या कर रही है। उमा देवी के परम शुभ स्वामी की आराधना करती हुई अपने भर्त्ता की कामना करती है। मद से मोहित रावण उसके इस वचन का श्रवण करके परम प्रसृत एवं प्रगट होकर मय से यह वचन बोला था—मैं पौलस्त्य वंश में समुत्पन्न हुआ हूँ और मैंने देवों तथा दानवों के दर्प का भली भाँति हनन किया है। हे महाभाग ! मैं यह प्रार्थना करता हूँ कि इस अपनी सुता को आप मुझे देने के योग्य हैं। महात्मा मय ने भी पितामह (पुलस्त्य) के व्रत को समझकर उस मन्दोदरी अपनी पुत्री को विधिपूर्वक पूजकर रावण के लिए दे दिया था। उस समय में निशाचरों के द्वारा अभ्यर्च्य मान होता हुआ वह राक्षस रावण उस समय में उस मन्दोदरी को ग्रहण करके फिर देवोद्यान में विमानों के द्वारा उस मन्दोदरी के साथ क्रीड़ा किया करता था। हे भारत ! कुछ समय व्यतीत होते हुए उन लोकोंको भयभीत करने वाले उस रावण ने जो पुत्रवालों में परम श्रेष्ठ था, पुत्र समुत्पन्न किया था।८—१४

तेनैवजातमात्रेणरावो मुक्तोमहात्मना।
सम्वर्त्तकस्यमेघस्य तेन लोकाजडीकृताः ।१५
श्रुत्वातन्नर्द्रितं घोरे ब्रह्मालोकपितामहः।
नाम चक्रे तदा तस्य मेघनादोभविष्यति ।१६
एवं नामा कृतसोऽपि परमं व्रतमास्थित ।
तोषयामास देवेशमुमया सह शंकरम् ।१७
व्रतैर्न्नियमदानैश्च होमजाप्याविधानतः।
कृच्छचान्द्रायणैर्नित्य कृशं कुर्वन्कलेवरम् ।१८

एवमन्यदिदने तात ! कैलास धरणीधरम् ।
गत्वालिंग द्वयंनीत्वाप्रस्थितोदक्षिणामुखः ।१६
नर्मदातटमाश्रित्य स्नातुकातो महाबलः ।
निक्षिप्य पूजयन्देवं कृतजाप्यो नरेश्वर ! ।२०
तत्रयायतनवासेन स्नाता हुतहुताशनः ।
कृतत्यमिवात्मान दानयित्वा निशाचरः ।२१

महात्मा उस पुत्र के समुत्पन्न होते हुए ही एक परम भयानक ध्वनि की थी वह सब सम्व्रत्ति मेघ का सा था और उसने समस्त लोकों को जड़ीभूत वना दिया था उस परम घोर नदित को सुन लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने उस समय में वह मेघनाद होगा—ऐसा नाम कर दिया था इस प्रकार का नाम प्राप्त करने वाला वह भी परम व्रत में समास्थित हो गया था। उसने भी उमादेवी के सहित देवेश्वर शंकर को अपनी तपश्चर्या से घोषित कर दिया था। व्रत—नियम—दान—होम —आप्य—और कृच्छ्र चान्द्रायणों के विधि विधान से करते हुए उसने अपने कलेवर को बहुत ही कृश कर दिया था। हे तात ! इस प्रकार से अन्य दिन में धरणीधर कैलास पर जाकर लिंग द्वय को ग्रहण करके वह दक्षिण दिशा की ओर अभिमुख होकर प्रस्थान कर गयाथा। नर्मदा नदी के तट पर नरेश्वर ! वह पहुँच कर महान् बलवान् स्नान करने की इच्छा वाला हो गया था। वहीं पर देव को स्थापित कर उनकी पूजा करता हुंआ जाप करने लगा था। वहाँ पर मायतन बास के द्वारा स्नान करने वाला तथा अग्निमें हवन करता हुंआ वह निशाचर अपने आपको कृत कृत्य मानकर हे नृप श्रेष्ठ ! वह लङ्का में परम मार्गमें गमन करने की इच्छा वाला हो गया ।१५-२१।

गन्तुकामः परमार्गं लकायां नृपसत्तम ! ।
एकं नुद्धरतो लिंग प्रणमः सव्यपाणिना ।२२
द्वितीय तु द्वितीयेन भक्त्या पौलस्त्यनन्दनः
तावदेव महालिंग पतितं नर्मदाम्भसि ।२३

याहियाहीति चेत्युक्त्वा जलमध्ये प्रतिष्ठितः।
नमित्वा रावणिस्तस्य देवस्य परमेष्ठिनः ।२४
अगामाकाशमाविश्य पूज्यमानोनिशाचरः।
तदाप्रभृनितत्ताथमेघनन्देतिविश्रुतम् ।२५
पूर्वं तु गर्जनं नाम सर्वपापक्षयंकरम् ।
तस्मिन्तीर्थे सु राजेन्द्र ! यस्तु स्नानं समाचरेत् ।२६
अहोरात्रोषितोभूत्वाअश्वमेधफलं लभेत् ।
पिण्डदानंतुयः कुर्यात्तस्मस्तीर्थंनराधिप ।२७
यत्फलं यत्रयज्ञेन तद्भवेन्नाऽत्र संशयः।
तेन द्वादशवर्षाणि पितरः सम्प्रतर्पिताः ।२८

वह पौलस्त्य नन्दन एक लिंग को प्रणत होते हुए सव्यपाणि से उद्धृत कर रहाथा और दूसरे की भक्ति पूर्वक दूसरे हाथसे उतार रहा था उतने ही में वह महालिंग नर्मदा के जल में गिर गया था आओ—जाओ—यह कहकर जल के मध्यमें उसकी प्रतिष्ठा कर दी थीं रावण के पुत्र मेघनाथ ने उस परमेष्ठी देवको प्रणाम करके फिर वह निशाचरों के द्वारा पूज्यमान होता हुआ आकाश में प्रविष्ट होकर चला गया था तभी से लेकर यह तीर्थ—इस नाम से प्रसिद्ध हो गया था। पहिले तो गर्जन नाम था जो सब पापों के क्षय करने वाला था हे राजेन्द्र ! उस तीर्थ में जो कोई स्नान करता है और अहोरात्र उपोपित होता है वह अश्वमेध यज्ञ का पुण्य फल प्राप्त किया करता है। हे नराधिप जो कोई उस तीर्थ में पिण्ड दान किया करता है उसका फल सत्र यज्ञ के तुल्य होता है—उसमें लेशमात्र भी संशय नहीं हैं इसके करने से पितृगण बारह-बारह वर्ष तक समर्चित हो जाया करते है ।२२-२८।

यस्तु भोजयये विपेषड्साऽन्नेनभारत।
अक्षय पुण्यमाप्नोति तत्र तीर्थे नरोत्तम ।२९
प्राणत्याग तु यः कुर्याद्भाविती भावितात्मना।
स सेच्छांकुरे लोके यावदामूमसम्प्लवम् ।३०

एषा ते नरशार्दूल ! गजनोत्पत्तिरुत्तमा ।
कथिता स्नेहवन्धे सर्वपापक्षयंकरी ।३१

हे भारत ! जो कोई वहां परषट्रसों वाले अन्नसे विप्र को भोजन कराता है हे नरोत्तम ! उस तीर्थमें वह अक्षय पुण्य प्राप्त किया करता है भावित आत्मा के द्वारा भावित होते हुए जो वहां पर प्राणोंका त्याग किया करता है वह मनुष्य जब तक समस्त भूतों का सम्लव होताहै जब तक भगवान् शङ्कर के लोक में निवास किया करता है । हे नरशार्दूल! यह इस भजनोत्पत्ति नामक तीर्थ की उत्तम उत्पत्ति आपको बतलादीहै मैंने स्नेह के वन्धन के कारण ही यह बतालादीहै । वह सम्पूर्ण प्रकारके पापों का क्षय कर देने वाली हैं ।२६-३१।

६४--भीमेश्वरतीर्थमाहात्म्यकथन

भीमेश्वरं ततो गच्छेत्सर्वपापक्षयंकरम् ।
सेवित ऋषिसंधैश्चभीमव्रतधरैः शुभैः ।१
तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा सोपवासा जितेन्द्रियः ।
जपेदेकाक्षरं मन्त्रमूर्ध्वबाहु दिवाकरे ।२
तस्यजन्मार्जितं पापंमत्क्षणादेव नश्यति ।
सप्तजन्मार्जितं पापगायध्यानश्यते ध्रुवम् ।३
दशभिर्जन्मभिर्जामं शतेनतुपुराकृतम् ।
सहस्रेण त्रिजन्मोत्थं गायत्रीहन्तिकिल्विषम् ।४
वैदिकं लोकिकं वापिवायं तप्त नरेश्वर ।
तत्क्षणाद्दहते सर्व तृणान्तंज्वलनंयथा ।५
न दैववलमाश्रित्य कदाचित्पापमाचरेत् ।
आज्ञानान्तश्यतेक्षिप्रं नोत्तरं तु कदाचन ।६
तत्र तीर्थे तु यो दान शक्तिमालिन्य चाचरेन् ।
तदक्षय्यफलं सर्वजायते पाण्डुनन्दन! ।७

श्री मार्कण्डेय महर्षिने कहा—इसके अनन्तर भीम व्रतों के धारण करने वाले परम शुभ ऋषियों के संघों के द्वारा सेवित भीमेश्वर नाम

वाले तीर्थ पर नमन करना चाहिए जो समस्त पापों को क्षय करने वाला है। उस तीर्थ पर जोभी कोई स्नान करके अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखते हुए उपवास करताहै और सूर्य की ओर बाहुओं को ऊँचा उठाकर एकाक्षर मन्त्र का जाप किया करता है उस मनुष्यके पूर्व जन्मों में अर्जित किये हुए समस्त पाप उसी क्षण नष्ट हो जाते हैं। गायत्री के जाप से तो सातजन्मों के पापों का निश्चय ही विनाश हो जाया करता है। दश बार गायत्री का जाप करने से इसी जन्म में जो पाप किये हैं, उनका नाश होता है—सौ बार जप करने से पूर्व में किये हुए पापोंका क्षय हुआ करता है और एक सहस्र बार जप करने से तीन जन्मोंके किये हुए पापों का विनाश गायत्री कर दिया करती है। हे नरेश्वर ! वैदिक अथवा लौकिक जाप्य का किया हुआ जप उसी क्षण में तिनकोंके ढेर कर अग्नि के समान समस्त पापों को नष्ट कर देता है। देव का बल प्राप्त करके कभी भी पाप का समाचरण नहीं करना चाहिए। जो पाप अज्ञान वश बन गया है वह तो तुरन्त ही नष्ट हो जाया करता है और ज्ञान पूर्वक जानबूझ कर किया जाता है वह कभी नष्ट नहीं होता है। उस तीर्थ में जो मनुष्य शक्ति के अनुसार दान करता है, हे पाण्डु नन्दन ! उस दान का भी अक्षय फल हुआ करता है जो कभी क्षय को प्राप्त नहीं हुआ करता है।१—७।

८५—नारदेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णन

अतो गच्छेतु राजेन्द्रनारदेश्वरमुत्तमम् ।
तीर्थानांपदमं तीर्थं निर्मित्त नारदेन तु ।१
नारदेन मुनिश्रेष्ठ कस्मात्तीर्थं विनिमितम् ।
ऐतदाख्याहिमे सर्वंप्रसन्नीयदिसत्तम ! ।२
परमेष्ठिसुतः पार्थ ! नारदो मुनिसत्तमः ।
रेवायाश्चोत्तरे कूले तपस्तेन पुराकृतम् ।३
नवनाडीनिरोधेन काष्ठावत्यां गतेन च ।
तोषितः पशुभर्त्ता वं नारदेन युधिष्ठर ! ।४

तुष्टाऽहं तव विप्रेन्द्र ! योगिनाथ अयोनिज ! ।
वरं प्रार्थय मे वत्स यत्ते मनसिवर्त्तते ।५
त्वत्प्रसादेन मे शम्भो योगश्चैव प्रसिध्य तु ।
अचलातेभवेद्भक्तिः सर्वकाल ममैव तु ।६
स्वेच्छाचारी भवे देव वेद,वेदांगपारगः ।
त्रिकालज्ञोजगन्नाथगोतज्ञोऽहं सदा भव ।७

श्री महर्षि मार्कण्डेय जी ने कहा—हे राजेन्द्र ! इसके उपरान्त परमोत्तम नारदेश्वर नामक तीर्थ पर गमन करना चाहिए यह सभी अन्य तीर्थ में अति श्रेष्ठ तीर्थ है और इसको स्वयं देवर्षि श्री नारदजी ने ही बनाया था युधिष्ठिर ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ ! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो हे सत्तम ! मुझे यह भी बतलाये कि नारदजी ने इस तीर्थ का निर्माण किस कारण से किया था । श्री मार्कण्डेय जी ने कहा—उन परमेष्ठी ब्रह्माजी के पुत्र मुनियों में परम श्रेष्ठ नारदजी ने हे पार्थ! रेवा नदी के उत्तर तीर पर पहिले तपस्या की थी । हे युधिष्ठिर ! नव नाड़ियों के निरोध करने में काष्ठवती में प्राप्त हुए श्रीनारद ने पशुपति प्रभु को परम घोषित कर दिया था । श्री ईश्वर ने कहा—हे विपेन्द्र । आप तो योगियों के भी स्वामी हैं । अयोजित! मैं आपसे अत्यन्त प्रसन्न हो गया हूं । हे वत्स ! अब जो भी आपके मन को सुहाता हो शम्भो ! वरदान मुझसे प्राप्त कर लो देवर्षि श्री नारद ने कहा—हे शम्भो आपके प्रसाद से मेरा योग प्रसिद्ध हो जाये और सर्वदा मेरे हृदय में आपके चरणों में अविचल भक्ति हो जावे । समस्त वेदों के सम्पूर्णअंग शास्त्रोंका पारगामी होकर मैं स्वच्छंदतासे जहांभी चाहूं वहाँ श्रवण करने वाला हो जाऊँ । त्रिकाल की बातों का ज्ञाता और सदा जगत् के स्वामी का गुणगान करने वाला हो जाऊं ।१-७।

दिनेंदिने यथा युद्ध देवदानवमानुषैः ।
पातालेमर्त्यलाके वा स्वर्गे वाऽपि महेश्वर ।८
पार्श्वेय त्वत्प्रसादेन भवन्त पावतीं तथा ।
तीर्थ लोकेषुविख्यात सर्वपापक्षयंकरम् ।९

एवं नारद ! सवतु भविष्यति न संशयः ।
चिन्तितमत्प्रसादेनसिद्धियतेनात्रसंशयः ।१०
स्वेच्छाचारी भवेर्वत्स स्वर्गे पातालगोचरे ।
मर्त्ये वा भ्रम वै योगिन्न केनाऽपि निवार्यसे ।११
सप्त स्वरास्त्रया ग्रामा मूर्च्छनाश्यकविशमि ।
ताना एकोमपञ्चाशत्प्रसादान्ने तव ध्रुवम् ।१२
मम प्रियकंर दिव्य नृत्यगीतं भविष्यति ।
कलि च पश्यसेनित्य देवदानव किन्नरैः ।१३
त्वत्तीर्थ भूतले पुण्यं मत्प्रसादाद् भविष्यति ।
वेदवेदांगतन्त्रज्ञो ह्यशेषज्ञानकोविदः ।
एकस्त्वमसि निःसंगो मत्प्रसादेन नारद ।१४

हे महेश्वर ! पाताल स्वर्ग और मनुष्य लोक में जो जाये दिन देवों के दानवों के और मनुष्य के युद्ध हों वे सब मैंने आपके प्रसाद से देख लिया करूँ तथा सदा आपका और जगदम्बा पार्वतीका भी दर्शन प्राप्त किया करूँ । यह लोकों में अति विख्यात तीर्थ हों जावे तो सभी पापों का क्षय करने वाला बन जावे । श्री ईश्वर ने कहा—हे नारद ! इसी प्रकार से मेरे प्रसाद से यह आपके द्वारा सोचा हुआ सभी कुछ हो जायगा—इसमें कुछ भी संशय नहीं है यह सभी सिद्ध होगा—इसमें समाचरण करने वाले हो जाओगे चाहें जहाँ भी स्वर्ग पाताल और गौचर स्थल एवं मनुष्य लोक में भ्रमण करो। हे योगिन्! आपका निवारण कभी के द्वारा नहीं किया जायगा । षड्ज आदि सातों स्वर—तीनों ग्राम-इक्कीस मूर्च्छनाऐं और उनचासतान ये सभी मेरे प्रसादसे आपको ज्ञान हो जायेगा—यह परम निश्चित है ।८-१२। आपका नृत्य और गीत मेरा दिव्य प्रीति के करने वाला होगा । देव दानव तथा किन्नरों के द्वारा होने वाले कलह को आप नित्य ही देखा करेंगे । यह आपके नाम से प्रसिद्ध तीर्थ भी मेरी कृपा से परम विख्यात बन जायगा । हे नारद ! आप वेदों और वेदांगों के तत्वों के ज्ञाता तथा अशेष ज्ञान के

महा मनीषी ज्ञाताहो जायेगे। आप एकही संग रहित होकर मेरे प्रसाद से विचरण करने वाले होवेगे।१३-१४।

इत्युक्त्वान्तदंधे देवो नारदस्तत्रशालिनम।
स्थापयामास राजेन्द्र सर्वसत्वोपकारकम्।१५
पृथिव्यामुत्तमं तीर्थं निर्मित नारदेन तु।
तत्र तीर्थे नृपश्रेष्ठ यो गच्छेद्विजतेन्द्रियः।१६
मासि भाद्रपदे पार्थ ! कृष्णपक्षे चतुर्दशी।
उपोष्य परमा भक्त्या रात्रौ कुर्वीत जागरम्।१७
छत्रं तत्र प्रदातन्य ब्रह्मणे शुभलक्षणे।
शस्त्रेणतु हता येवं तेषां श्राद्ध प्रदर्शयेत्।
ते यास्ति परमं लोक पिण्डदानप्रभावतः १८
कपिलातत्रदातव्यापित् नुद्दिश्यभारत।
इत्युच्चार्य द्विजेदेव्यायान्तु ते परमांगतिम्।१९
अस्य श्राद्धस्य भावेन ब्राह्मणस्यप्रसादतः।
नर्मदातोयभावेनन्यायर्जितधनस्यच।
तेषां चैव प्रभावेण प्रेता यान्तु परा गतिम्।२०
इत्युच्चार्यं द्विजे देया दक्षिणा च स्वशक्तितः।
हविष्यान्नं विशालाक्ष ! द्विजानां चैव दापयेत्।२१

देवेश्वर भगवान् शम्भु इतना कहकर वहीं पर अन्तर्हित हो गये थे और वहाँ पर फिर देवर्षिश्री नारदजीने इस धरातलमें यह परम उत्तम तीर्थ निर्मित किया था हे नृप श्रेष्ठ ! उस तीर्थ में जो भी कोई गमन किया करता है इन्द्रियों को जीत लेने वाला होता है। पार्थ ! इस उत्तम तीर्थ में गमन करने का श्रेष्ठ समय भाद्रपद मास होताहै भाद्रपद में कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तिथि में वहां पहुँचकर उपवासकर और परम उत्कृष्ट भक्ति की भावना से रवि में जागरण करना चाहिए। किसी शुभ लक्षणों से युक्त ब्राह्मण को छत्र का दान करें। जो कोई भी शस्त्रों के द्वारा निहत हुए हो उनके लिए वहाँ पर श्राद्ध देना चहिए। वहाँ पर पिण्डदान करने का ऐसा प्रभाव होता है कि वे सब परमोत्तम लोक

को चले जाया करते हैं हे भारत वहां पर अपने पितरों का उद्देश्य लेकर कपिला गौ का दान करना चाहिए। उस समय मेरा सा उच्चारण भी करे मेरे पितृगण इस कपिला के प्रभाव से परम गति को प्राप्त होवे। इस श्राद्ध के प्रभाव से—ब्राह्मण की कृपा से—नर्मदा के जल के भाव न्याय से उपार्जित धन से किया हुआ दान पुण्य और उनके प्रभाव से सभी प्रेत परम गतिको प्राप्त करे—ऐसा उच्चारण कर अपनी शक्ति अनुसार द्विज को दक्षिणा देनी चाहिए। हे विशालाक्ष! द्विजों को हविष्यान्न देना चाहिए।१५-२१।

दीपं भक्त्य प्रदातव्यँन‌ृत्य गीत च कारयेत्।
अवाप्तं तेन वै स र्व्वं तः करीतीश्वरालये।२२
सायानिरुद्रसान्मिध्‍नमिति रुद्र स्वयं जगौं।
विद्यादानेन चैकेन अक्षयाँ गतिमाप्नुयात्।२३
धूवहास्तत्रदातव्याभूमिः सस्यवती नृप।
चित्रभानुँ शुभैर्मन्त्रैप्रोणयेन्तत्रभक्तिमः २४
आज्येन सुप्रभूतेन होमद्रव्येणभारत।
ये यजन्ति सदा भक्त्या त्रिकालंनृत्यमेव च।२५
तीर्थे नारदनासाख्ये रेखायाश्चोत्तरे तटे।
चित्रभानुमुख देवाः सर्वदेवमया ऋषि।२६
ऋषिणा प्रीणिताः सर्वं तस्मात्प्रीत्योहुताशनः।
पूजिते हव्यावादे तु दारिद्रंच नैव जायते।२७
धनेन विपुला प्रीतिर्जायिते प्रमिजन्मनि।
कुलीनाश्च सर्वकालं धनेन तु।२८

परम भक्ति की भावना से दीप करे नृत्य और गान भी करना चाहिए। उस ईश्वर के आलय में जो भी कोई ऐसा करताहै उसने सभी कुछ प्राप्त कर लिया है। वह अन्त समय में भगवान रुद्र की सन्निधि प्राप्त किया करता है ऐसा भगवान् रुद्र ने स्वयं कहा था। एक विद्या के दान से मनुष्य अक्षय गति को प्राप्त किया करता है। हे नृप वहीं पर शस्यवती धूर्बहा भूमि का दान करना चाहिए। वहीं पर शक्ति भाव से

शुभ मन्त्रों द्वारा चित्रभानु को प्रसन्न करना चाहिए। घृत प्रभूत होम के द्रव्य के द्वारा हे भारत ! जो लोग सदा यजन और त्रिकाल में नृत्य करते हैं। रेवा नदी के उत्तर तट पर नारद नाम वाले तीर्थ में चित्र-भान जिनमें प्रधान है ऐसे सब देवता है सब द्रव्य से परिपूर्ण ऋषि हैं। ऋषि के द्वारा समस्त देवों को प्रसन्न किया गया था। इससे अग्नि देव को प्रसन्न करना चाहिए। हव्य वाह के (अग्नि) पूजित करने पर मनुष्य को दरिद्रता कभी नहीं हुआ करती है। धनसे प्रीति जन्म में बहुत अधिक प्रीति हुआ करती है धन से कुलीस और सभी कालों में सुन्दर वेषों वाले होते हैं।२२-२८।

प्लवा नदीनां पतिरङ्गनानां राजा च सद्वृत्तरत: प्रजानाम्
धनं नराणामृतवस्तरूणां गतं गत यौवनमानयन्ति ।२९
धनदत्व धनेशेन तस्मिस्तीर्थेह्युपार्जितम् ।
यमेनच यमत्व हि इन्द्रत्वंचैवज्रिणा ।३०
अन्यैरपि महीपालैः पार्थिवत्वमुपार्जितम् ।
नारदेश्वरमाहात्म्याद्ध्रुवो निश्चलतां गतः ।३१
सर्वतीर्थवरं तीर्थ निर्मितं नारदेन तु ।
पृथिव्यां सागरान्तायाँ रेवायाश्चोत्तरे तटे।
तद्वरँ सर्वतीर्थानाँ महापातकनाशनम् ।३२

नदियों का प्लव—अंगनाओं का पति प्रजाओं का सद्वृत में रमण करने वाला राजा—मनुष्य का धन तरुओं की ऋतुयें गत यौवन को प्राप्त किया करते हैं। धनेश कुवेर ने धन दत्त का पद उसी तीर्थ में उपार्जित किया था—यमराज ने यमत्व होने का पद तथा वज्र ने इन्द्रत्व का पद तथा अन्य महीपालों ने भी पार्थिव होने का पद उपार्जित किया था। नारदेश्वर प्रभुके माहात्म्य ही से ध्रुव निश्चल पदको प्राप्त हुआ था इस प्रकार से देवर्षि श्री नारदजी ने यह तीर्थ समस्त अन्य तीर्थों में परम श्रेष्ठ निर्मित किया है इस सागरों की समाप्ति वाली पृथ्वी में रेवा नदी के उत्तर दिशा वाले तटपर इस तीर्थ की प्रतिष्ठा हुई है जो

तीर्थों में श्रेष्ठतम है और सभी महापातकों का भी विनाश करने वाला है।२६-३२।

— x —

६६—दधिस्कन्दमधुस्कन्दतीर्थमाहात्म्यवर्णन

ततो गच्छेत्तु रान्जेन्द्र ! तीर्थद्वयममुत्तमम् ।
दधिस्कन्दमधुस्कन्दं सर्वपापक्षयकरम् ।१
दधिस्कन्धे नर स्नात्वा यस्तु दद्याद् द्विजे दधि ।
उपतिष्ठेत्ततस्तस्य सप्तजन्मनि भारत ! ।२
न व्याधिर्न जरा तस्य च शोको नैव मत्सरः ।३
मषु स्कन्देऽनि मधुना मिश्रितान्यस्तिलान्ददेत् ।४
मधुनासह सम्मिश्र पिण्डयस्तुप्रदापयेत् ।
तस्यपौत्रप्रपोत्रेभ्योदारिद्रचनवजायते ।५
दधिभिः सहसंमिश्रपिण्डयत्तु प्रदापयेत् ।
तस्मिस्तीर्थे नरः स्नात्वा विधिवद्दक्षिणामुखः ।६
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।
द्वादशाब्दानि तुष्यन्ति नाऽत्र कार्याविचारणा ।७

श्री मार्कण्डेय जी ने कहा—हे राजेन्द्र ! इसके अनन्तर दधिस्कन्द और मधुस्कन्द नामक तीर्थद्वय का गमन करे। यह दोनों सभी पापों का क्षय करने वाले हैं प्रथम मनुष्य दधि स्कन्द में स्नान करे, ब्राह्मणों को दही का दानदे। उस जगह उपतिष्ठ रहनेपरहे भारत ! सात जन्मों तक कोई व्याधि वृद्धावस्था, शोक एवं मत्सर की व्याप्ति नहीं होती।१-३। फिर मधुस्कन्द में मधु तिल मिलाकर दान दे। तथा मधु से मिश्रित पिंड प्रदान करे तो उसके पौत्र प्रपौत्र भी दरिद्री नहीं होते। यदि दहीं मिलाकर पिण्ड दे और स्नान कर विधिवत् दक्षिणा दे तो उसके पिता पितामह और प्रपितामह आदि वारह वर्ष तृप्त रहते हैं इसमें विचार करने की कोई बात नहीं है।४-७।

९७—सुवर्णशिलातीर्थमाहात्म्यवर्णन

ततोगच्छेन्महीपाल सौवर्णशिलमुत्तमम् ।
प्रख्यातमुत्तरे कुले सर्वपापक्षयकरम् ।१
समन्ताच्छतपातेन मुनिसंघे पुराकृतम् ।
रेवायां दुर्लभस्थानंसङ्गमस्यसमीरतः ।२
विभक्त हस्तमात्र च पुण्यक्षेत्र नराधिपः ।
सुवर्णशिलकेस्नात्वापूजयित्वा महेश्वरम् ।३
नत्वा तु भास्कर देवं होतव्यं च हुताशने ।
विल्वेताऽऽज्यविमिश्रे ण रणाऽपिवा ।४
प्रीयतां मे जगन्नाथो व्याधिर्नश्यतु मे ध्रुवम् ।
द्विजाय काञ्चने दत्तो प्रत्फलं तच्छृणुष्वाम् ।५
बहुस्वर्णस्य यत्प्रोक्तं सोमस्यफलमुत्तमम् ।
तथाऽसौलभतेसर्वं कञ्चनं यः प्रपच्छति ।६
तेन दानेनपूतात्मा मृतः स्वर्गमवाप्नुयात् ।
रुद्रस्तानुचर तावद्यावदिन्द्राश्चतुर्दश ।७
ततः स्वणीवतीर्णस्तु जायते विशदे कुले ।
धनधान्यसमोपेतः पुनः स्मरतति तज्जलम् ।८

श्रीमार्कण्डेय महर्षि ने कहा—महीपाल ! उसके उपरान्त अति उत्तम सौवर्णशिल नाम वाले तीर्थ में गमन करना चाहिए जो उत्तर कूल में प्रख्यात है और सब पापों के क्षय करने वाला है मुनियों के संघ ने पहिले चारों-ओर शत पात के द्वारा किया था रेवा नदी में यह परम दुर्लभ स्थान है जो कि संगम के समीप में है। हे नराधिप ! एक साथ परिमाण वाला पुण्य क्षेत्र विभक्त है। इस सुवर्ण शिल नामक तीर्थ में स्नान करके और महेश्वर प्रभु अभ्यर्चन करके, भास्कर देव को नमन करके हुताशन में हवन करना चाहिए। होम घृत से मिश्रत विल्व पत्रों से अथवा केवल विल्च पत्रों से ही करे ।१-४। यह कहना चाहिए—जगन्नाथ प्रभु मुझ पर प्रसन्न होगे और मेरी व्याधि निश्चित

रूप से नष्ट हो जावे। द्विज के लिए सुवर्ण का दान करने पर जो फल होता है उस फल का मुझसे श्रवण करो।५। बहुत स्वर्ण वाले योग को जो उत्तर फल कहा गया है उसी भाँति यह प्राप्त किया करता है जो सम्पूर्ण काञ्चन दिया करता है उस दान से पवित्र आत्मा वाला मृत होकर स्वर्ग की प्राप्ति किया करता है। वह उस समय तक भगवान् रुद्र का अनुचर रहा करता है जब तक चौदह इन्द्र अपना कार्य सम्पादन किया करते हैं अर्थात् चौदह इन्द्र परिवर्तित हुआ करते हैं। फिर वह अवधि पुण्य फल की समाप्ति हो जाने पर स्वर्ग से अवतीर्ण होकर यहाँ लोक में किसी परम उत्तम कुल में वह समुत्पन्न हुआ करता है। धन और धान्य से समन्वित हुआ वह पुनः उस जल का स्मरण किया करता है।६-८।

९८—करञ्जतीर्थमाहात्म्यवर्णन

करञ्जाख्ये ततो गच्छेत्सोपव सोजितेन्द्रियः।
तत्र स्नात्वा त राजेन्द्र ! सर्वपापै प्रमुच्यते।१
अर्चयित्वामहादेवं दत्वं दान तु भक्तितः।
सुवर्ण रजतं वाऽपि मणिमौक्तिकविद्रु मान्।२
पादुकोपानहौ छत्रं शय्यां प्रावपणानि च।
कोटि कोटिगुणसर्वजायतेनात्रसंशयः।३

मार्कण्डेय जी ने कहा—हे राजेन्द्र ! फिर करञ्ज संज्ञक तीर्थ में उपवासपूर्वक जाकर स्नान करे तो सभी पापोसे मुक्त हो जाता हैं। वहाँ भगवान् महादेव जी का पूजन करके भक्ति सहित स्वर्ण, चाँदी, मणि, मुक्ता आदि का दान दे और पादुका, जूते छत्ररी, शय्या आदि वस्तुएँ प्रवर पुरुषों कोदे तो यह सभी वस्तुएँ, करोड़ों गुनी होकर प्राप्त होती है—इसमें संशय नहीं है।१-३।

९९—कामदतीर्थमाहात्म्यवर्णन

ततो यच्छेन्महीपाल तीर्थं परमशोभनम्।
सौभाग्यकरणं दिव्य नरनारीमनोरमम्।१

तत्रयादुर्भगानारीनरोवा नृपसत्तम ।
स्नात्वाऽर्च्चयेदुमारुद्रौसौभाग्यं तस्यजायते ।२
तृतीयायामहोरात्रं सोपवासोजितेन्द्रियः ।
निमन्त्रयेद् द्विज भक्त्या सपत्नीकं सुरूपिणम् ।३
गन्धमाल्यैरलङ् कृत्य वस्त्रधूपादिवासितम् ।
भोजयेत्पायसान्नेन कृसरेणाऽथ भक्तितः ।४
भोजयित्वायथान्याय प्रदक्षिणमुदाहरेत् ।
प्रीयतां मे महादेवः सपत्नीको वृषध्वजः ।५
यथा ते देव देवेश ! न विनोगः कदाचन ।
ममाऽपि करुणां कृत्वा तथाऽस्त्विवति विचिन्तयेत् ।६
एवं कृते ततस्तस्य यत्पुण्यं समुदाहृतम् ।
तत्ते सर्वं प्रवक्ष्यामि यथा देवेनभाषितम् ।७

हे महीपाल ! इसके अनन्तर परम शोभा सम्पन्न कामद तीर्थ पर गमन करना चाहिए जो अति दिव्य सौभाग्य करने वाला और नरों तथा नारियों के लिये बहुत ही मनोरम है । हे नृप सत्तम ! वहाँ पर उस तीर्थमें चाहे नर हो या दुर्भगा नारीहो स्नान करके उमा देवी और रुद्रदेव का अभ्यर्चन किया करता है उनका सौभाग्य उत्पन्न हो जाया करता है तृतीया तिथि में एक पूरे अहोरात्र उपवास करके इन्द्रिय जीत रहे और भक्ति के भाव से सुन्दर रूप सम्पन्न पत्नी के सहित एक द्विज को निमन्त्रित करे । उस दम्पति को गन्ध माला आदिसे समलंकृत करके वस्त्र धूपादि से सुवासित करे और पायसान्न से अथवा कृसर से भक्ति के साथ भोजन करावे । भोजन कराकर नियमानुसार उस दम्पत्ति की प्रदक्षिणा करनी चाहिए और प्रार्थना करे—पत्नि के सहित वृषध्वज करुण करते हुए कसाही होवे—ऐसा ही कीजिए कि जिससे हम दोनों का कभी भी वियोग न होवे । ऐसा ही होवे—ऐसा चिन्तन करना चाहिए। ऐसा करने पर जो उसका पुण्य फल होता है वह मैं सभी आपको बतलाता हूँ जो कि देवेश्वर ने स्वयं अपने मुख से कहा था ।१-६।

दोर्भाग्यं दुर्गतिश्चैव दारिद्रयं शोकबन्धनम् ।
वन्ध्यत्वं सप्तजन्मानि जायते न युधिष्ठिरः ।८
ज्येष्ठमासे सिते पक्षे तृतीयायां विशेषतः ।
तथा गत्वा या भक्त्या पञ्चाग्नि साधयेत्ततः ।९
सोऽपि पापैशेषस्तुमुच्यतेनाऽत्रसंशयः ।
गुग्गुलं दहते यस्तुद्विधाचित्तविवर्जितः ।१०
शरीर भेदयेद्यस्तु गौर्याश्चैव समीपतः ।
तस्मिन्कर्मप्रविष्टस्य उत्क्रान्तिर्जायतेयदि ।११
देहपाते प्रजेत्स्वगमित्येव शंकरोऽब्रवीत् ।
सितरक्तै तत्रा पीतवस्त्रैश्च विविध शुभैः ।१२
ब्राह्मणीं ब्राह्मणं चेव तूजयित्वा यथाविधि ।
पुष्पैनानाविधैश्चैव गन्धपुष्पैः सुशोभनैः ।१३
कण्डसूत्रकसिन्दूरै कुंकुमेन विलेपयेत् ।
कल्पयेत स्त्रियं गौरी ब्राह्मणम् शिवरूपिणम् ।१४

हे युधिष्ठिर ! उस मनुष्य को सात जन्मों तक दौर्भाग्य—दुर्गति—दरिद्रता—शोक बन्धन बन्ध्यात्व दोष आदि नहीं हुआ करते हैं । ज्येष्ठ मास में शुक्ल पक्ष में विशेष करके तृतीया तिथि में वहाँ पर आकर जो भी कोई शक्ति की भावना से पञ्चाग्नियोंका साधन किया करता है वह समस्त पापों से मुक्त हो जाया करता है—इसमें लेश मात्रभी संशय नहीं है । जो दुविधा युक्त चित्त से रहित होकर गूगल का होम किया करता है और जो गौरी के समीप में शरीर का भेदन किया करताहै उनमेंकर्म में प्रविष्ट हुई यदि उत्क्रान्ति होती है तो वह उस देह के पात हो जाने पर स्वर्ग में गमन किया करता है—इस प्रकार से यह भगवान् शंकर ने कहा था सफ़ेद—लाल और पीले अनेक प्रकार के परम शुभ वस्त्रों ब्राह्मण और ब्राह्मणी का विधि के अनुसार पूजन करके उनको अनेक प्रकारके सुन्दर सुगन्धित पुष्पों से समलंकृत कर कण्ठ सूत्र धारण करावे और सिन्दूर एवं कुंकुम से विलेपन करे । उस ब्राह्मणीको साक्षात्गौरी

तथा ब्राह्मण को साक्षात् शिव स्वरूप मन में कल्पना करके ही अभ्यर्चन करना चाहिए ।८-१४

तेषां तद्रूपकं कृत्वा दानमृत्सृज्यते ततः ।
कंकणं कर्णवेष्ट च कण्ठिकांमुद्रिकांतथा ।१५
सप्तधान्य तथा चैव भोजन नृपसत्तम ।
अन्यान्यपि च दानानि तस्मिन्तीर्थे ददाति यः ।१६
सर्वदानैश्च यत्पुण्यं प्राप्नुयान्नात्रसंशयः ।
सहस्रगुणितं सर्वनात्र कार्या विचारणा ।१७
शंकरेण समं तस्माद्भोगं भुङ्क्ते ह्यनुत्तम् ।
सौभाग्य तस्य विपुल जायते नाऽत्र संशयः ।१८
अपुत्रो लभते पुत्रमधनो धर्माप्नुयात् ।
राजेन्द्र ! कामद तीर्थं नर्मदायां व्यवस्थितम् ।१९

उन दोनों (ब्राह्मण-ब्राह्मणी) का ऐसा रूपक करके फिर दान का उत्सृजन करना चाहिए । कंकण, कर्णवेष्ट कण्ठिका भद्रिका, सात के धान्य और हे नृप सत्तम ! भोजन-इनका दान करे । इनके अतिरिक्त अन्य भी जो दान उस महातीर्थ में लेता है वह समस्त प्रकार के दानोंसे जो पुण्य फल होता है उसे प्राप्त कर लेता है— इसमें तनिक भी संशय नहीं है ।१५-१६। यहाँ पर दिया हुआ दान सहस्र गुना हो जाया करता है—इसमें कुछ भी विचार नहीं करना चाहिए ।१७। इससे वह भगवान् शङ्कर के ही साथ में पूर्वोत्तम भोगों का उपभोग किया करता हैं उसका महान् सौभाग्य होता है—इसमें भी कुछ संशय नहीं है; जिस मनुष्य के पुत्र नहीं है वह पुत्र होने की प्राप्ति कर लिया करता है जो निर्धन पुरुष हो वह विपुल धन का लाभ लिया करता है । राजेन्द्र ! इस तीर्थ का नाम 'कामद, है अर्थात् सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला है और यह तीर्थ नर्मदा में व्यस्थित है ।१८-१९।

१००—भंडारीतीर्थमाहात्म्यवर्णन

ततो गच्छेत राजेन्द्र ! भण्डारीतीर्थमुत्तमम् ।
दरिद्रयखछाकरणं युगान्केकोनविंशतिः ।१
धनदेनतपस्तप्त्वा प्रसन्ने पद्मसम्भवे ।
तत्रैव स्वल्पदानेन प्राप्तं वित्तस्वरक्षणम् ।२
तत्र गत्वा तु यो भक्त्वा स्नात्वा वित्त प्रयच्छति ।
तस्य वित्तपरिच्छेदो न कदाचिद्भविष्यति ।३

श्रीमार्कण्डेयजी ने कहा—राजेन्द्र ! इसके उपरान्त श्रेष्ठ भण्डार तीर्थ में गमन करे । यह तीर्थ इक्कीस युगों तक की दरिद्रता का उच्छेद करने वाला है वहाँ पर कुवेर ने तप द्वारा ब्रह्माजी को प्रसन्न कर और थोड़ा सा ही दान देकर केवेर पद प्राप्त किया वहाँ जाकर भक्ति पूर्वक स्नान और धन-दान करे तो भविष्य में कभी भी उनका धनसे विच्छेद नहीं होता अर्थात् वह कभी रंक नहीं होता ।१—७।

१०१—स्कन्दतीर्थमाहात्म्यवर्णन

नर्मदादक्षिणेकूले तीर्थं परमशोभनम् ।
स्कन्देन निर्मित पूर्व तपः कृत्वासुदारुणम् ।१
स्कन्दस्यचरितं सर्वमाजन्मद्विजसत्तम् ।
तीर्थस्तचविधिपुण्यं कथयष्वयथार्थतः ।२

देवदेवेन वै तप्त तपः पूर्वं युधिष्ठिर ।
विज्ञप्तनसुरैः सर्वैरुमादेवी विवाहिता ।३
नास्ति सेनापतिः कश्चिद्देवानां सुरसत्तम ।
नीयन्ते दानवैघोरैः सर्वे देवाः सवासाः ।४
यथा निशा विना चन्द्र दिवसो भास्कर बिना ।
न शोभते मुहूर्तं वै तथा सेना विनायका ।५

एवञ्ज्ञात्वा महादेव परया दययाविभो ।
सेनानीर्दीयतांकश्चित्त्रिषुलोकेषुविश्रुतः ।६
एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्य देवानां परमेश्वरः ।
कामयान उमां देवी सस्मार मनसा स्मरम् ।७

महामहर्षि श्री मार्कण्डेयजी ने कहा–नर्मदा महानदी के दक्षिण तट पर एक अत्यन्त शोभासे सम्पन्न तीर्थ है । जिसको पहिले दारुण तपस्या करके भगवान् स्कन्द ने निर्मित किया था युधिष्ठर ने कहा–हे द्विजों में परम श्रेष्ठ ! भगवान् स्कन्द का जन्मसे लेकर पूरा चरित्र और उस तीर्थ की विधि तथा पुण्य फल यह सभी कुछ यथार्थ रूप से कहिए । श्री मार्कण्डेय जी ने कहा—हे युधिष्ठर ! पहिले देवों के भी देव ने अतिघोर तप का वहाँ तपन किया था और समस्त सुरगुणों के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर उन्होंने उमा देवी के साथ विवाह कर लिया था देवोंने उन देवेश्वर की प्रार्थना की थी कि हे सुरों में परम श्रेष्ठ ! इस समय देवगणों में कोई भी सेना का स्वामी नहीं है । परम घोर दानवों के द्वारा इन्द्र के सहित सब देवगण पकड़कर ले जाये जाते हैं । जिस प्रकार से रात्रि चन्द्रमा के बिना शोभित हीन होती है और भगवान् भास्कर बिना शोभा हीन रहता है और थोड़ी देर तक भी शोभा नहीं किया करते हैं उसी तरह बिना किसी नायक के सेना होती है इस तरह से समझकर हे महादेव । हे विभो ! परम दया करके आप कोई लोकों में परम प्रसिद्ध सेनानी हमको प्रदान कीजिए । देवों के इस वचन का श्रवण करके परमेश्वर ने उमादेवीका कामना करते हुए मनसे कामदेव का स्मरण किया था ।१—७।

तेन मूर्छितस्सर्वाङ्ग कामरूपो जगद्गुरुः ।
कामयामास रुद्राणीं दिव्यं वर्ष शतं किल ।८
देवराजस्ततो ज्ञात्वा महामैथनगं हरम् ।
सम्मन्त्र्य दैवतैः सार्द्धं प्रेषयज्जातवेदसम् ।९
तेन गत्वा महादेव परमानन्दसंस्थितः ।
सहसा हेन दृष्टोऽसौ द्वाहेत्युक्त्वा समुत्थितः ।१०

ततः क्रुद्धा महादेवी शापवाचमुवचाह ।
वेपमानां महाराज शृणुयत्तेवदाम्यहम् ।११
अहं यस्मास्युरैः सर्वेर्याचितापुत्रजन्मनि ।
कतारतिश्चवफलासम्प्रेष्यजातवेदसम् ।१२
तस्मात्सर्वं पुत्रहीनाभविष्यन्तिन संशयः ।
हरेण क्तस्तयोवह्निरस्माकबीजमावह ।१३
यथा भगति लोकेषु तथा त्वं कर्तुं मर्हसि ।
मम तेजस्वत्या शक्यं गृहीतु सुरसत्तम् ।
देवकार्यार्थंसिद्धचर्थं नाऽन्यः शक्तो जगत्त्रये ।१४

उससे सर्वागों में मूर्छित होने वाले का रुप जगत् गुरु ने दिव्य सौ वर्ष तक रुद्राणी की कामना की थी उसके अनन्तर देवराजने यह जानकर कि इस समय में भगवान हर महा मैथुन में प्रवृत्त हो रहे हैं। देवराजने देवगणों के साथ मन्त्रणा करके जातवेदा [अग्नि] को वहाँ पर भेज दिया था उसने वहाँ जाकर कहा—हे महादेव ! इस समय आप तो आनन्द में संस्थित हो रहे हैं। सहसा महादेवजी ने उस अग्नि को देखा तो 'हा-हा,—यह कहकर वे रतिक्रिया छोड़कर उठ खड़े हुए थे इसके पश्चात् महादेवी अत्यन्त क्रुद्ध हो गई थी और उन्होंने शाप दे दिया था काँपते हुए महादेवी ने कहा—हे महाराज ! आप श्रवण कीजिए मैं आपसे कहती हूँ क्योंकि मुझसे समस्त सुरों ने याचना की कि मैं पुत्र को जन्म दूँ। अब इस जातवेदा को प्रेषित करके मेरी रति निष्फल करदी है। इसलिए ये सब देवगण पुत्रहीन हो जावेंगे—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। इसके पश्चात् भगवान् हर ने अग्नि से कहा—हमारे योग्य होते हो यह मेरा तेज है सुरसत्तम ! तुम ही ग्रहण कर सकते हो और देवों के कार्य की सिद्धि भी हो सकेगी। तुम्हारे अतिरिक्त अन्य इन तीनों लोको में कोई भी समर्थ नही हैं।८-१४।

तेजसस्तव मे देवकाशक्तिर्धारणेविभो ।
करोतिभस्मसात्सर्वंत्रैलोक्यंसचराचरम् ।१५

उदरस्थेन बीजेन यदि ते जायते रुजा ।
तदा क्षिपस्व तत्तजो गंगातोये हुताशन ।१६
एवमुक्त्वा महादेवो अमोघं वीजमुत्तमम् ।
हव्यवाहमुखे सर्वं प्रक्षिप्यान्तरधीयत् ।१७
गते चादर्शन देवे दह्यमानो हुताशनः ।
गंगातोये विनिक्षिप्य जगामस्व निवेशनम् ।१८
असहन्तो तु तत्तेजो गंगाऽपि सरिताम्बरा ।
शरस्तम्बे विनिक्षिप्य जगामाऽऽथु यथागातम् ।१९
तत्र जातं तु तद् दृष्ट्वा सर्वं देवाः सवासवाः ।
कृत्तिकां प्रेषयामासुः स्तन्न पायपितुं तदा ।२०
दृष्ट्वा तां आगताः सर्वा गंगायर्भं महामतेः ।
षण्मुखः षण्मुखो भूत्वा पिपासुरपिवत्स्तनम् ।२१

अग्नि ने कहा—हे विभो ! हे देव ! आपके तेज धारण करने की मुझमें क्या शक्ति हैं। आपका तेजतो इस सम्पूर्ण जगत् और त्रैलोक्यतथा चराचर सबको भस्मात् कर दिया करता है। ईश्वर ने कहा—हे हुताशन ! यदि मेरे इस बीजके तुम्हारे उदर में स्थित होने पर कोई पीड़ा हो तो उसी समय में उस तेज को गंगाके जलमें प्रक्षिप्त कर देना। इस प्रकार से कहकर महादेव जी ने वह अपना अत्युत्तम एवं अमोघ वीज सम्पूर्ण उस अग्नि के मुँह में डालकर वे वहीं पर अन्तर्धान हो गये थे। देवेश्वर के अन्तर्हित होने पर हुताशन दह्यमान हो गया था और उसने उस महादेव के वीज को गंगा के जल मे फेंककर वह अपने निवास स्थान पर चला गया था। सरिताओं से परम श्रेष्ठ वह गंगा भी उस तेज को सहन नहीं करती हुई उसको उसने भी शरस्तम्ब में निक्षिप्त कर दिया था और जहां से वह आई थी वहीं पर शीघ्र चली गई थी। वहाँ पर समुत्पन्न हुए उसको देखकर इन्द्र के सहित समस्त देवों ने उस समय में स्तन पिलाने के लिए वहाँ पर कृत्तिका को प्रेषित किया था। उन सबको आई हुई इन्होंने महामति के गंगा गर्भ को देखा था कि वह स्तन पान करने की इच्छा वाला था और फिर वह षण्मुख होकर

अर्थात् छः मुखों वाला होकर उसने छः मुखों से स्तन का पान कियाथा ।१५-२१।

जातकर्मादिसंस्कारा वेदोक्तन्पद्मसम्भवः ।
चकारसर्वान्राजेन्द्रविधिदृष्टेनकर्मणा ।२२
षण्मुखात्षण्मुखो नाम कार्तिकेयस्तु कृत्तिकात् ।
कुमारश्च कुमारत्वाद्गं गागर्भोऽग्निजोपरः ।२३
एवं कुमार सम्भूतो ह्यनधीत्य स वेदवित् ।
शास्त्राण्यनेकानि वेद चचार विपुलं तप ।२४
देवारण्येषु सर्वेषु नदीषु च नदेषु च ।
पृथिव्यां यानितीर्थानि समुद्राद्यानिभारत ।२५
ततः पर्याययोगेन नर्मदातटमाश्रितः ।
नर्मदादक्षिणे कूले चचार विपुल तपः ।२६
ऋग्यजु सामविहितं जपञ्जाप्यमहर्निशम् ।
ध्यायमानोमसादेवं शुचिर्धमनिसमन्ततः ।२७
ततो वर्ष सहस्रान्ते पूर्णे देवो महेश्वरः ।
उमया सहितः काले तदा वचनमब्रवीत् ।२८

हेराजेन्द्र ! पद्म सम्भव [ब्रह्माजी]ने विधि दृष्ट कर्मके द्वारावेदोक्त जात कर्मादि सम्पूर्ण संस्कार किये थे । छः मुख होने से इनका षण्मुख यह नाम पड़ गया था और कृत्तिका से पोषण प्राप्त करने के कारण इनका नाम कार्तिकेय हो गया था । कुमारत्व होनेसे इनका नाम कुमार हुआ और गंगा गर्भ अग्निज ये भी दूसरे नाम थे इस प्रकार कुमार समुत्पन्न हुए थे । वे कुछ भी अध्ययन न करके वेदोंके ज्ञाता थे वे अनेक शास्त्रों को जानते थे और उन्होंने विपुल तपस्या की थी । हे भारत ! समस्त देवरण्यों में—नदियों से, नदों में और इस पृथ्वी में समुद्रादि जो भी तीर्थ हैं । उन सब में होकर फिर पर्याय (पारी) के योग से नर्मदा के तट के समाश्रित हुए थे । नर्मदा के दक्षिण तट पर विपुल तपश्चर्या की थी । ऋग्यजु और समावेदों में विहित ज्ञाप्य का जप करते हुए अहर्निश श्री महादेवजी का ध्यान करने वाले परम शुचि एवं धमनि

सन्तत हो गये थे। इसके अनेक सहस्र वर्षों के पूर्ण होने पर अन्त में महेश्वर देव उमादेवी के साथ वहाँ पर समागत हुए और उस समय यह बचन बोले—।२२-२८।

अहं ते वरदस्तात गौरी माता पिता ह्यहम।
वरं बृणोष्व यच्चेष्ट त्रिषु लोकेषु दुर्ल्लभम्।२९
यदि पुष्टो महादेव उमया सह शंकर।
वृणोमि मातापितरौ नान्यामतिर्मतिमम्।३०

एतत्वा शुभं वाक्य पुत्रस्य वदनाच्च्युतम्।
तथैत्युक्त्वा तु स्नेहेन प्रेम्णा त परिषस्वजे।३१
ततस्त मूर्घ्न्युं पाघ्राय ह्युमयोवाच शंकर:।३०
अक्षयश्चाव्ययश्चेव सेनानीस्त्वं भविष्यसि।३३

शिखी च ते वाहनं दिव्यरूप दत्तो मया शक्तिधरस्य सङ्ख्ये।
सुरांसुरादीश्च जपेति चौक्त्वा जनाम कैलासवर महात्मा।३४

गते चाऽदर्शनं देवे तदा स शिखिवाहनः।
स्थापयित्वा महादेवं जगाम सुरसन्निधौ।३५

ईश्वर ने कहा—हे तात! मैं आपको वरदान देने वाला आ गया हूँ। आपकी यह गौरी माता और आपका पिता हूँ। जो भी आप चाहते हैं वरदान का वरण कर लो जो तीनों लोकों में भी दुर्लभ हो। षण्मुखने कहा—हे महादेव! यदि आप मुझ पर परम सन्तुष्ट एवं प्रसन्न हैं तो हे शङ्कर! उमादेवी के साथ मैं आपका माता-पिता वरण करता हूँ। इसके अतिरिक्त अन्य मेरी मति और गति नहींहै। इस अतीव शुभ वाक्य को जो कि अपने पुत्र के मुख से निकला था 'तथास्तु' अर्थात्ऐसा ही होवे—यह कहकर बड़े ही प्रेम से उनका समालिंगन कियाथा। इसके उपरान्त उमा के साथ उसके मस्तक का उपघ्राण करके भगवान् शङ्कर उससे बोले—ईश्वर ने कहा—आप अक्षय-अव्यय और सैनानी होंगे। शिखी [मोर] आपका बाहन होगा। युद्ध में शक्ति धारण करने वाले

आपको दिव्य रूप प्रदान किया है समस्त सुरों और असुरों पर विजय प्राप्त करो—वह महात्मा श्रेष्ठ पर्वत कैलाश पर चले गयेथे। देवेश्वर के चले जाने पर दर्शन न होने पर उससे भयमें वह शिखि वाहन महादेव जी को स्नान कराकर सुरों के समीप चले गये थे।२६–३५।

तदाप्रभृति तत्तीर्थं स्कन्दतीर्थमितिश्रुतम्।
सर्वपापहरं पुण्य मर्त्यानां भुवि दुर्ल्लभम्।३६
तत्र तोये तु यो राजन्भक्त्या स्नात्वऽर्च्चं येच्छिवम्।
गन्धमाल्लयाभिषेकैश्च याज्ञिक स लभेत्फलम्।३७
स्कन्दतीर्थे तु यः स्नात्वा पूजयेत्पितृदेवताः।
तिलमिश्रेण तोयेन तस्य पुण्यफलं श्रृणु।३८
पिण्डदानेनचैकेन विधियुक्तेन भारत।
द्वादशाब्दानितुष्यन्तिपितरोनाऽधसंशयः।३९
तत्र तीर्थे तु राजेन्द्र शुभ वा यदि वा शुभम्।
इहलोकेपरेचैवतत्सर्वं जायतेऽक्षयम्।४०
तत्र तर्थे त यः कश्चित्प्राणत्यागं करिष्यति।
शास्त्रयुक्तेन विधिना स गच्छच्छिवमन्दिरम्।४१
कल्पमेकं वसित्वा तु देवगन्धर्व पूजितः।
अत्र भारतर्षे तु जायते विमले कुले।४२
वेदवेदाँगतत्वज्ञः सर्वव्याधिविवर्जितः।
जीवेद्वषेशातं साग्रं पुत्रपौत्र समन्वितः।४३
इदं ते मथितं राज स्कन्दतीर्थस्य सम्भवम्।
धन्य यशस्यमायुष्प सर्वदुःखघ्नमुत्तमम।
सर्वपापहरं पुण्यं देवदेवेन भाषितम्।४४

तभी से यह तीर्थ 'स्कन्द तीर्थ'–इस नाम से सिद्ध हुआ है। यह समस्त पापों को हरण करने वाला है और परम पुण्य स्वरूप तथा भूमण्डल में अत्यन्त ही दुर्लभ है। हे राजन्! उस तीर्थ में जो कोई भक्ति भाव से स्नान करके भगवान् शिव का अभ्यर्चन किया

करता है तथा गन्ध माल्य आदि उपचारोंके द्वारा अभिषेक करता हैवह मनुष्य यज्ञ से समुत्पन्न फल को प्राप्त करता है। उस स्कन्द तीर्थमें जो स्नान करके पितृगण और देवों का यजन करता है तथा तिलोंसे मिश्रित जल से सन्तर्पण करता है उसका जो पुण्य-फल होता है उसे सुनो। हे भारत ! विधि से युक्त एक ही पिण्ड के दान से पितृगण बारह वर्ष तक के लिए तृप्त एवं तुष्ट हो जाया करते हैं—इस कथन में बिल्कुल भी संशय नहीं है। हे राजेन्द्र ! उस तीर्थ में शुभ कर्म हो या अशुभ हो वह इस लोक में और परलोक में सभी अक्षय हो जाया करताहै। उस तीर्थ में जो भी कोई अपने प्राणों का परित्याग करताहै और शास्त्रोक्त विधि से किया करता है वह सीधा भगवान् शिव के मन्दिर में चला जाया करताहै। वहाँ पर एक कल्प पर्यन्त निवास करके देवों और गन्धर्वों के द्वारा पूजित होता है। अवधि के समाप्त होने पर वह फिर भारत के किसी परम विमल कुल में सम्पन्न होता है वहाँ जन्म ग्रहण करके वह वेदों और वेदांग शस्त्रों के तत्वों का ज्ञाता होता है तथा सभी व्याधियों से रहित होता है। वह यहाँ पर सात सौ वर्ष तक जीवित रहा करता है तथा पुत्र-पौत्रादि से युक्त रहता है हे राजन् ! यह आपको हमने स्कन्द तीर्थ की उत्पत्ति बतला दी है। यह परम धन्य—यश देने वाला—आयु वर्धक समस्त दुःखों का नाशक अत्युत्तम—पुण्यतम और सभी पापों के हरण करने वाला है। ऐसा देवों के भी देव ने स्वयं अपने सुखमय बतलाता है।६६-४०।

—x—

१०—आँगिरसतीर्थमाहात्म्यवर्णन

ततो गच्छन्तु राजेन्द्र तीर्थ मांगिरसस्य तु
उत्तरे नर्मदाकुले सर्वपापविनाशनम् ।१
पुराऽसीदगिरानाम ब्राह्मणोवेदपारगः।
पुत्रहेतोर्युगस्याऽदौचचारविपुल तपः ।२
नित्यं त्रिषवर्णस्नायीजपन्देवं सनातनम्।
पूजयन्नमहादेवं कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः ।३

द्वादशाब्दे तत पूर्णे तुतोष परमेश्वरः ।
वरेण च्छन्दयामास द्विजमांगिनसं वरम् ।४
वव्रे स तु महादेव पुत्रवतां वरम् ।
वेदविद्याव्रतस्नातं सर्वशास्त्रविशारदम् ।५
देवानां मन्त्रिणं राजन्सर्वलोकेषु पूजितम् ।
ब्रह्मलक्ष्म्याः सदावासमक्षयं चाव्ययं सुतम् ।६

श्री मार्कण्डेय जी ने कहा—हे राजेन्द्र ! इसके पश्चात् फिर आंगिरस तीर्थ को गमन करना चाहिए जो नर्मदा नदी के उत्तम तट पर स्थित है और समस्त पापों का विनाश करने वाला है । पुरातन समयमें अंगिरा नाम वाला एक वेदों का पारगामी ब्राह्मण था । युग के आदि काल में उसने पुत्र की प्राप्ति के लिए बहुत उग्र तप किया था । वह नित्य तीनों कालों में स्नान करने वाला होकर सनातन देव का जाप किया करता था । जब बारह वर्ष हो गये थे तब परमेश्वर प्रभु प्रसन्न हुए थे । तब उस आंगिरस द्विज को वरदान प्रदान करने के लिए कहा था ।१-४। उसने महादेव जी से पुत्रवानों में भी परम श्रेष्ठ पुत्र होने का वरदान माँगा था जो कि वेद विद्या के व्रत में स्नान हो और समस्त शास्त्रों का विद्वान् हो । ऐसा पुत्र होना चाहिए जो देवों का मन्त्री हो और हे राजन् ! उस अंगिरा ने समस्त लोकों में पूजित—महालक्ष्मी का सदा आवास स्थान—अक्षय—अव्यय सुत की याचना की थी ।५—६।

तथाभिलषितः पुत्रः सर्वविद्याविशारदः ।
भविष्यति न सन्देहश्चैवभुक्त्वाययौहरः ।७
वरैरंगिरसश्चापि वृहस्पतिरजायत ।
यथाऽभिलषितः पुत्रो वेदवेदांग पारगः ।८
जाते पुत्रेऽगिरास्तत्र स्थापयामास शंकरम् ।
हृष्टतुष्टमना भूत्वा जगामोत्तरपर्वतम् ।९
तत्र चांगिरसे तीर्थे यः स्नात्वा पूजयेच्छिवम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो रुद्रलोकं सगच्छति ।१०

उसी प्रकार तेरा चाहा हुआ पुत्र जो समागत विद्याओंका विशारद होना तुझे मिलेगा—इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है—ऐसा कहकर भगवान् शम्भु वहाँ से चले गये थे। इन शम्भु के दिए हुए वरदानों से अंगिरा के वृहस्पति पुत्र ने जन्म ग्रहण कियाथा जो कि जैसा उनको अभिलषित था वैसा ही वेदांगों का पारगामी विद्वान् पुत्र उत्पन्न हुआ था। उस पुत्र के उत्पन्न होने पर अंगिरा मुनि ने वहाँ भगवान् शङ्करकी स्थापना की थी। फिर वह परम हृष्ट और सन्तुष्ट मन वाला होकर उत्तर पर्वत पर चला गया था। वहाँ पर उस आँगिरस तीर्थ में जो भी कोई स्नान करके भगवान् शिव का पूजन किया करताहै वह सम्पूर्ण पापोंसे विमुक्त होकर रुद्रलोक को गमन किया करता है और निर्धन मनुष्य इस तीर्थ को पुण्य प्रभाव से अतुल धन की प्राप्ति कर लेता है। मनुष्य वहाँ पर जाकर जो भी कामना करता है उसी को पा लेता है।७-११।

१०३—कोटिसतीर्थमाहात्म्यवर्णन

अपुत्रो लभते पुत्रमधनो धनामाप्नुयान्।
इच्छते यश्च य काम स त लभतिमानवः।१
ततोगच्छेत्त् राजेन्द्रकोटितीर्थमनुत्तमम्।
ऋषिकोटिर्गतातत्र परांसिद्धिमुपागता।२
तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा भोजयेद् ब्राह्मणाञ्च्छुचिः।
एकस्मिन्भोजिते विप्रे कोटिर्भवति भोजिता।३
तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा पूजयेत्पितृदेवताः।
पूजिते तु महादेवे वाजपेयफलं लभेत्।४

श्री मार्कण्डेयजीने कहा—हे राजेन्द्र! इसके बाद अति उत्तमकोटि तीर्थ को गमन करे। वहाँ ऋषि कोटि में जाने पर परम सिद्धिकी उपलब्धि होती है। उस तीर्थ में स्नान करके पवित्र ब्राह्मणों को भोजन करावे। यहाँ विप्रगण जितना एक बार भोजन करतेहैं वह करोड़ गुना हो जाता है उस तीर्थ में स्नान करके पितृ देवता का पूजन करे और

महादेव जी का भी पूजन करे तो आजपेय यज्ञ के फल की प्राप्ति होती है ।१—३।

१०४—केदारेश्वरमाहात्म्यवर्णन

सप्तषष्टिकसङ्ख्याक.केदारेश्वरसञ्ज्ञकम् ।
देवं शृणु वरारोहे.दर्शनात्पापनाशनम् ।१
सृष्टिकाले पुरादेवि देवा व्याप्ताहिमेनहि ।
शोकार्ताविह्वला: सर्वे ब्रह्माणंशरणगता: ।२
हिमाद्रिणाऽर्दिता: सर्वे वयदेवजगत्पते ।
त्राहिभीतांश्चतुर्वक्त्रपितामहनमाऽस्तुते ।३
देवानां वचनं श्रुत्वा प्रोक्तं वै ब्रह्मणा प्रिये ।
पीडिता हिमशैलेन शंकरश्वसुरेण च ।४
नाहं यातुं समर्थोऽस्मि सत्यमेतन्योदितम् ।
महादेवमृतेदेवागतिरन्या न विद्यते ।५
स एव शरण देव: सर्वेषां नो भविष्यति ।
तस्यात्रया मया सर्वे पर्वतारचिता: पुरा ।६
कृतासृष्टिविचित्रा च हिमाद्रिश्चमयाकृत: ।
असेव्य: सर्वजन्तूनामघृष्योदुर्गमोगिरि: ।७

ईश्वर ने कहा हे वर (श्रेष्ठ) आरोह (अंग गठन) वाली! सड़सठ संख्या वाले केदारेश्वर नाम से युक्त प्रभु हैं । उन देव के विषय में आप श्रवण करो । जिनके केवल दर्शन से ही समस्त पापों का विनाश हो जाया करता है ।१। हे देवि ! प्राचीन समय में पहिले सृष्टिके समय में सब देवता लोग हिम से व्याप्त होते हुए शील से अत्यन्त दु:खित होकर विह्वल हो गये थे । सब देवगण फिर परम पिता ब्रह्माजी की शरणमें गये थे ।२। देवों ने कहा—हे जगत् के स्वामिन् ! हे देव ! हम सब लोग हिमाद्रि से पीड़ित है । हे चार मुखों वाले पितामह ! हम बड़े डरे हुए है, आप हमारी रक्षा कीजिये, आपकी सेवा में प्रणाम है ।३। हे

प्रिये ! देवों के इन प्रार्थना के वचनों का श्रवण करके ब्रह्माजी ने कहा– हे देवगण ! आप लोग हिमवान् पर्वतसे पीड़ितहै जो कि भगवान् शंकर का श्वशुर है । अतएव मैं ती वहाँ जाने में समर्थ नहीं हूँ—मैंने यह बिल्कुल सत्य एवं स्पष्ट आपको बतला दियाहै । हे देवगण ! महादेवजी के सिवाय वहाँ पर अन्य कोई भी दूसरी गति नहीं है ।४-५। वह ही महादेवजी आप सबकी रक्षा करने वाले होंगे । उनकी ही आज्ञा से मैंने पहिले इन समस्त पर्वतों की रचना की थी । मैंने यह बहुत ही अद्भुत सृष्टि की थी और इस हिमवान् पर्वत का भी सृजन मैंने ही किया था किन्तु यह गिरि हिमवान् सब जन्तुओं का सेवन करने के योग्य नहीं है। यह घर्षण के अयोग्य और महान् दुर्गम पर्वत है ।६—७।

हिमाचलस्य तस्येव शास्ता देवो महेश्वरः ।
तस्माद्यास्याम हे देवाः कैलास पर्वतोत्तमम् ।८
यत्र तिष्ठति विश्वात्मा देवदेवो महेश्वरः ।
एवमुक्त्वा गतो ब्रह्मा देवैः सार्द्ध ममान्तिकम् ।
दृष्टोऽहं पूजितस्तैस्तु स्तुतोऽहं विवधः स्तवः ।९
मया सम्मानिता देवाश्चतुर्वक्त्रः प्रपूजितः ।
पूजयित्वामयापृष्टो ब्रह्मा चमनकारणम् ।१०
कि कार्यं त्रिदशे सार्द्ध मागतोऽसि पितामह ।
कथित ब्रह्मणा सर्वं श्रुत सर्ग मया प्रिये ।११
हिमाचल समाहूय मर्यादा च कृता मया ।
शैलानांराजराजत्वे हिमाद्रिश्चप्रतिष्ठितः ।१२
देवानां विषयाश्चव गन्धर्वाणा तथैव च ।
यक्षाणामथ नागानां किन्नराणां तथैव च ।१३
विद्याधराणां क्रीडार्थं पृथक्पृथङ् निवेशिताः ।
रूपतो भाति शैलेन्द्रः शुद्धस्फटिकसन्निभः ।१४
जाह्नवीनिर्झरीष्णोषः शर्वाणीजनकस्तथा ।१५

उस हिमाचल गिरि के ऊपर शासन करने वाले केवल महेश्वर देव ही हैं । हे देवगण ! इस कारण हम सब लोग श्रेष्ठ पर्वत कैलास पर

ही चलें जहाँ पर सम्पूर्ण विश्व—के आत्मा-देवों के भी देव भगवान् महेश्वर साक्षात् विराजमान रहा करते हैं। इस प्रकार से देवों को समझाकर परमेष्टी ब्रह्माजी समस्त देवगणों के साथ मेरे समीप में उपस्थित हुए थे। उन सबने मेरा दर्शन करके पूजा की और नाना प्रकार के स्तोत्रों के द्वारा मेरा उन सबसे स्तवन भी किया था।८-९। हे देवि ! मैंने भी उस समय में उन सब देवताओं का आदर—सम्मान किया था और ब्रह्माजी की विशेष रूप से पूजा की थी। ब्रह्माजी से उनका समर्चन करके मैंने उसके वहाँ पर समागमन करने का कारण पूछा था।१०। मैंने पूछा—हे पितामह ! क्या कारण है कि आप इन देवगणों के साथ यहाँ पर समागत हुए हैं। ब्रह्माजी ने सब वृत्तान्त कह दिया था और हे प्रिये, मैंने वह सब सुन लिया था।११। मैंने हिमाचल को बुलाकर एक मर्यादा स्थापित कर दी थी और समस्त शैलों का राजाधिराज उसे प्रतिष्ठित कर दिया था। वहाँ पर देवों के देव—गन्धर्वों—पक्षों—नागों और किन्नरों तथा विद्याधरों के रहने एवं क्रीड़ा—विहार करने के लिये पृथक् पृथक् स्थान नियत कर दिये थे।१२-१३। शैलों का स्वामी हिम—वान रूप लावण्य से विशुद्ध स्फटिक मणि के तुल्य ही था। गंगा के प्रवाह का ही उसके मस्तक पर शिरोवेष्टन बहुत था और वह शर्वाणी (पार्वती देवी) का जनक था।१४-१५।

सर्वदेवमयी दिव्यः सर्वतीर्थमयः कृतः।
सर्वाश्रमनिवासश्च सर्वामरनिषेवितः।१६
एव संस्थाप्यशैलेन्द्रं लिङ्गमूर्त्तिरहस्थितः।
विख्यातास्त्रिषुलोकेषु केदारेश्वरनामतः।१७
उदक निमितं तत्र मन्त्रपूर्ण मया प्रिये !।
माहात्म्यं विविध प्रोक्तं लिङ्गस्यचजलस्यच।१८
योऽत्रागत्य नरो भक्त्य सम्यङ् मां पूजयिष्यति।
जलं योऽत्रे व गृह्णाति विधानेन वरानने !
तस्योदरे भविष्यामि लिंगरूपी न संशयः।१९

इत्युक्ते वचने देवि ! सदेवासुरपन्नगा ।
यक्षरक्षः पिशाचाश्च भूतवेतालकिन्नराः ।२०
विद्याधरगणाश्चैव मम दर्शनलालसाः ।
समायाता वरारोहे ! पीत्वा तत्र जल शुभम् ।
दृष्टोऽहं विधिना तैस्तु लिगमूर्त्तिगतः प्रिय ! ।२१

हिमवान् समस्त देवों से परिपूर्ण दिव्य और सम्पूर्ण तीर्थों से समन्वित बना दिया था । वह सभी आश्रमों का निवास क्षेत्र और समस्त देवों के द्वारा निषेवित हो गया था । इस तरह का उस शैलराज को प्रतिष्ठित करके मैं लिंग मूर्ति वाला होकर वहाँ पर स्थित हो गया था । उसी समय से तीनों लोकों में मैं केदारेश्वर — इस नाम से प्रसिद्ध हो गया था ।१५—१७। हे प्रिये ! वहाँ पर मैंने मन्त्र पूर्ण उदक (जल) का निर्माण किया था । नाना प्रकार माहात्म्य लिंग का और जल का कहा गया है ।१८। जो मनुष्य यहाँ आकर भक्ति से अच्छी रीति से मेरी पूजा करेगा हे वरानने ! जो यहीं पर विधान पूर्वक जल ग्रहण किया करता है मैं उसके उदर में लिंग के रूप वाला हो जाऊँगा—इसमें संशय नहीं है ।१९। हे देवि ! इस प्रकार कहने पर समस्त देवगण —असुर —पन्ना -- यक्ष-राक्षस-पिचाश-भूत-वेताल किन्नर और विद्याधर गण मेरे दर्शन की लालसा वाले होते हुए यहाँ पर समागत हुए थे। हे वरारोहे ! उन्होंने इस शुभ जल का पान किया । फिर हे प्रिये ! उनके द्वारा लिंग मूर्ति मे स्थित मुझ को विधि सहित देखा गया था ।२०—२१।

मम तुल्याश्व ते जातास्तस्मिन्नद्रिवरे स्थिताः ।
जनलोकगतैः सिद्धैः पूज्यमाना वरानने ! ।२२
अथ कालेन बहुता श्रुत्वा मातात्म्यमुत्तमम् ।
केदारेश्वरदेवस्य जलस्य च विशेषतः ।२३
मनुष्याः समुपायातास्ते रजोवहुलायतः ।
तमः प्रियाविशालाक्षि ! तदाहमतिपंचसु ।२४

कृतवांस्तद्भयार्थाय न च ते भीतिमागताः ।
इद देवोऽत्र बभ्रमुस्तेदिदृक्षवः ।२५
न तैर्दृष्टा महादेवि ! यतोऽहं महिषाकृतिः ।
स्थितोऽस्म्यलक्ष्यरूपेण ततस्ते दीनमानसाः ।
उद्विग्ना निश्वसन्तश्च वैराग्यं परम गताः ।२६
नात्र देवोनतीर्थानि न गङ्गा पुण्यदायिनी ।
न धर्मो न परो लोकाः सर्वमेतद्विडम्बनम् ।२७
एवं किल पुराणेषु श्रूयते सर्वदा क्षुतौ ।
हिमालये च केदारं लिंगं मोक्षप्रदायक ।२८

हे परम श्रेष्ठ मुख वाली ! वे सब मेरे ही समान हो गये थे और रस गुरु श्रेष्ठ पर समवस्थित हो गये थे । जनलोक में स्थित सिद्धों के द्वारा वे पूज्यमान हुए थे ।२२। इसके पश्चात् जब अधिक समय व्यतीत हो गया था उस समय में केदारेश्वर देव का और विशेष रुप से जल का उत्तम माहात्म्य का श्रवण करके मनुष्यगण वहाँ पर समागत हुए थे क्योंकि हे विशाल नेत्रों वाली ! वे सब प्रायः अधिक रजोगुण वाले और तमोगुण से परिपूर्ण थे । उस समय में मैंने महिष रुप कर लिया था ।२३—२४। यह महिष स्वरुप मैंने उनके वध करने के लिये ही धारण किया था किन्तु वे भयभीत नहीं हुए थे और यहीं पर केदारेश्वर देव विद्यमान है' ऐसा कहते—विचरते हुए वे मेरे दर्शन करने की इच्छा से युक्त होकर भ्रमण कर रहे थे ।२४। हे देवि ! उन्होंने मुझे नहीं देखा था क्योंकि मैं तो उस समय महिष की आकृति में स्थित था। जब मैं इस प्रकार से अलक्ष्य रूप से वहां पर स्थित हो गया था तो वे अधिक दीन मन वाले हो गये थे और बहुत अधिक उद्वेग से युक्त होते हुए खिन्नता से लम्बी श्वांस लेने लगे एवं अधिक वैराग्य उत्पन्न हो गया था ।२६। वे कहने एवं सोचने लगे कि न तो यहाँ पर कोई देव है न तीर्थ ही है और न पुण्य प्रदान करने वाली गंगा नदी ही है । न कोई धर्म क्षेत्र है और परमोत्तम लोक ही है—यह सब विडम्बना मात्र ही हैं ।२७। पुराणों में और वेदों में यह सर्वदा सुना जाया

करता है कि हिमालय पर्वत में मोक्ष प्रदान करने वाली केदारेश्वर भगवान् की लिंग मूर्ति विराजमान रहती है—यह क्या बात है—यह कथन अयथार्थ तो नहीं होना चाहिए ।२८।

एवं तु वदनां तेषां मानेषाणां यशस्विनि !
आकाशादुत्थिता वाणी मया प्रोक्तानुकम्पया ।२९
अमार्ग मा वन्दस्त्वत्र न निन्द्याः श्रूतयोऽव्ययाः ।
पुराणं नान्यथा प्रोक्त ब्रह्मणा लोककर्तृणा ।३०
ये निन्दन्ति पुराणानि धर्मशास्त्राणि नस्तिकाः ।
ते यान्ति नरकं घोर यावदाभूतसम्प्लवम् ।३१
सदा देवोऽत्रकेदारः स्वर्गमोक्षप्रदायकः ।
विद्यते त्रिदशैः पूज्यः सततं नैव दृश्यते ।३२
करोति पूजां हिमवान्मासानष्टौ च शाश्वतान् ।
सिमाद्रिस्तेन पुण्येन नगेन्द्रस्तु कृतो नरः ।
सेव्यश्च रमणीयश्च सर्वतीर्थनमस्कृतः ।३३
सर्वरत्ननिधानश्च देवानाँ वल्लभस्तथा ।
ग्रीष्मे चैव वसन्ते च देवदेवोऽत्र दृश्यते ।३४
नियतेनैव कालेन मानुषाणाँ च सर्वदा ।
यबुद्धिः परा जाता सर्वदा मम दर्शने ।३५

हे यशस्विनि ! जब इस प्रकार से वे सब लोग परस्पर में बात—चीत कर रहे थे तो उन मनुष्यों पर मुझे दया आ गईथी और उससमय में अनुकम्पा करके मेरे ही द्वारा कही गई आकाश से एक वाणी हुई थी ।२९। 'आप लोग यहां पर भिन्न मार्ग की बात मत करो । अव्यय वेद और पुराण निन्दा करने के योग्य नहीं है लोकों की रचना करने वाले ब्रह्माजी ने पुराणों को असत्य नहीं लिखा एवं बतलाया है । ये सभी सत्यहैं जो नास्तिक लोग पुराणों और धर्म शास्त्रोंकी बुराई किया करते हैं और उन्हें असत्य बतलातेहैं वें महान् घोर नरकमें जाकर गिरा करते हैं और यह प्रलय काल पर्यन्त उसी में पड़े हुए यातनायें सहा करते हैं ।३०-३१। भगवान् केदारेश्वर देव यहाँ पर सर्वदा ही विराजमान रहा

करते हैं जो परम पुरुषार्थ मोक्ष के प्रदान करने वाले तथा स्वर्ग का निवास भी दिया करते हैं। वे केदारेश्वर प्रभु देवों के द्वारा पूजा करने के योग्य विद्यमान है किन्तु सदा दिखलाई नहीं दिया करते हैं।३२। यह हिमवान् पर्वत निरन्तर आठ मास तक उनकी पूजा किया करता है। उसी पुण्य के प्रभाव से उसको समस्त पर्वतों ने पर्वतों का स्वामी बना दिया है और यह परम सेव्य-रमणीय एवं सभी तीर्थों के द्वारा वन्द्यमान हैं।३३। यह समस्त प्रकार के रत्नों की खान है और देवगण का परम प्रिय है। यहाँ पर ग्रीष्म एवं बसन्त ऋतु में वे देवों के भी देव दिखलाई दिया करते है। यदि मनुष्यों की बुद्धि मेरे दर्शन करने में सर्वदा परमोत्कृष्ट रूप से समुत्पन्न हो जाया करती है तो नियत काल में दर्शन होता हैं।३४-३५।

आख्यास्ये तदुपायंच श्रूयता सावधानतः।
मा विकलपोऽत्रकर्त्तव्यः सर्वान्कामानवाप्स्यथ।३६
क्षेत्रणामुत्तमं क्षेत्रं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्।
प्रलोऽप्यक्षयं प्रोक्त महाकालवन नराः।३७
तंत्रहं सम्भविष्यामि लोकानामनुकम्पय।
लिंगरूपेणशिप्रायास्तटेपुण्ये सुशोभने।३८
सोमेश्वरस्य देवस्यपश्चिमे स्थानमुत्तमम्।
प्रसिद्धमुपयास्यामि केदारेश्वरनामतः।३९
सर्वदा दर्शनं तत्रमयासार्द्धं भविष्यति।
सर्वेषां चप्रदास्यामिसर्वान्कामान्नसंशयः।४०
इह यावत्कलस्तस्मायामि ह्यधिकन्ततः।
इतितेमानवाः सर्वेश्रुत्वावाणींमनोरमाम्।
आकाशदुत्थिता दिव्यां मनः प्रह्लादकारिकाम्।४१
गता वन महाकालं संस्मरन्तो महेश्वरम्।
विकल्पेन विचित्रेणसत्यमेवेतिनान्यथा।४२

मैं उसका उपाय भी अवश्य वताऊँगा। आप लोग परम सावधान होकर उसका श्रवण करो। इस विषय में तुमको अपने हृदय में किसी

प्रकार का विकल्प नहीं करना चाहिए। आप लोगों की सभी कामनाएँ परिपूर्ण होंगी।३६। हे मनुष्यों! समस्त क्षेत्रों में अत्युत्तम क्षेत्र तथा भक्ति और मुक्ति का प्रदान करने वाला है और इस महाकाल वन को प्रलय में भी न क्षीण होने वाला कहा गया है।३७। लोगों पर कृपा करके मैं वहाँ पर शिप्रा नदी के परम पुण्यमय सुन्दर तट पर लिंग के स्वरूप में रहने वाला प्रकट होऊँगा।३८। सोमेश्वर देव के पश्चिम भाग में अत्यन्त उत्तम स्थान में है वहाँ पर केदारेश्वर नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त होऊँगा।३९। वहाँ पर मेरे साथ में सर्मदा दर्शन होगा। मैं वहाँ पर सबके समस्त मनोरथों को पूर्ण कर दूँगा। इसमें कुछ भी संशय नहीं हैं।४०। यहां पर जितना पुण्य-फल होता है उससे भी अधिक वहाँ पर दूँगा। उन सब मनुष्यों ने आकाश से होने वाली-परम दिव्य एवं मन को प्रसन्न करने वाली परम मनोरम वाणी का श्रवण किया था और फिर सबके सब भगवान् महेश्वर महाकाल का विचित्र विकल्पसे स्मरण करते हुए महाकाल वन में चले गये थे। सब लोग यही कहते हुए जा रहे थे कि यह विल्कुल सत्य है और इसमें तनिक भी अन्यथा नही है।४१-४२।

स्नात्वाशिप्राजले पुण्ये यावत्पश्यन्ति भास्करम्।
तावद्दृष्टिपथोत्पन्न लिंग पापाप्रशशनम्।४३
अथ ते हर्षिताः प्रोचुः केदारोऽयं न संशयः।
दृष्टोऽस्माकं न सन्देहो शिप्राजले स्थिता।४४
ततस्ते पूजयामासुः पुष्पैर्नानाविधैस्तथा।
पूजिवोऽहंविशालाक्षितेषांतुष्टोवरानने।४५
दुर्लभोऽतिवरो दत्तः कैलासेस्थानमुत्तमम्।
अक्षयञ्चपददत्तम्पुनरावृत्तिवर्जितम्।४६
अतोऽहंत्रिदशैः प्रोक्तः केदारेश्वरनामतः।
प्रार्थितः परयाभक्त्यालोकानासामनुकम्पया।४७
इहात्य नरा ये च त्वां पश्यन्ति सुभक्तितः।
तेषां फलं त्वया देव! दातव्यमधिकयतः।४८

हिमाद्रोहिमनाथस्ययात्रायाः प्रत्यफलम् ।
लभन्तेचनरानित्यनात्रकार्याचारणा ।४९

परम पुण्यमय शिप्रा नदी के जल में स्नान करके जब तक भगवान् भवन भास्कर का दर्शन करते हैं तभी तक समस्त पापों के विनाश कर देने वाले लिंग का दर्शन उन सब लोगों की दृष्टि में समागत हो गया था अर्थात् सबने लिंगेश्वर का दर्शन प्राप्त कर लिया था ।४०। इसके पश्चात् वे सब अत्यधिक प्रसन्न हुएथे और उनको यह निश्चय हो गया कि यही भगवान् केदारे वर प्रभु हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं रहा है हम लोगों ने अव सबका दर्शन प्राप्त कर लिया है और कोई भो सन्देह करने का अवसर नही है । शिप्रा नदी के जल में गंगा स्थित है ।४४। इसके अनन्तर उन्होंने अनेक तरह के पुष्पोंसे अर्चना की थी । हे विशाल नेत्रों वाली ! हे परम श्रेष्ठ एवं सुन्दर मुख वाली ! जब मेरी उन्होंने पूजा की तो मैं उन पर तुष्ट एवं प्रसन्न हो गया था ।४५। मैंने उनको अत्यन्त श्रेष्ठ एवं दुर्लभ वरदान दिया था—कैलाश गिरि पर उत्तमस्थान और पुनरावृत्ति (दुबारा जन्म ग्रहण करना) से रहित कभी क्षीण न होने वाला पद प्रदान किया था ।४६। इसीलियेमैं, देवों के द्वारा केदारे-श्वर—इस नाम से पुकारा गया था और लोगों पर दया करके परम भक्ति से उन्होंने मेरी प्रार्थना की थी कि जो भी मनुष्य यहाँ पर आकर भक्ति पूर्वक आपका दर्शन करतेहैं । हे देव ! आपके द्वारा उनको अधिक फल अवश्य ही देना चाहिए क्योंकि हिमालय में हिमालय की यात्रा का प्रतिदिन फल मनुष्य नित्य ही प्राप्त किया करते हैं—इससे कुछ भी विचार करने की आवश्यकता नहीं है ।४७-४९।

ब्रह्महा वासुरापीवास्तेयीवागुरुतल्पगः ।
तत्सम्पर्कीनरोयस्तुत्वांदृष्ट्वाकिल्विषाकरः ।५०
सोऽपि याति पर स्थान पुनरावृत्तिवर्जितम् ।
चान्द्रायणानाँ विधिच्छतानाँ चैव यत्फलम् ।
तत्फलं समवाप्नोतिकेदारेश्वरदर्शनात् ।५१

ते नराः पशवो लोके तेषां जन्म निरर्थकम् ।
यन दृष्टोमहाकाले केदारेश्वरसञ्ज्ञकः ।५२
कोमारेयौवने वाल्ये वार्द्ध केयदुपार्जितम् ।
तत्पाप संक्षयं यातिकेदारेश्वरदर्शनात् ।५३
हिमालयकृता यात्रा तस्याः प्रोक्त च यत्फलम् ।
तत्फलं समवाप्नाति केदारेश्वरदर्शनात् ।५४
इत्युक्ताऽहं तदा देवि ! देवैः प्रणतिपूर्वकम् ।
तथेति चमयाप्रोक्त तेऽपिदेवादिवं गताः ।५५
एष ते कथितो देवि ! प्रभावः पापनाशनः ।
केदारेश्वरदेवस्य पिशाचाख्यमतः शृणु ।५६

ब्राह्मण की हत्या करने वाला—सुरा पान करने वाला—चोरी का कर्म करने वाला और गुरू की शय्या पर गमन करने वाला हो अथवा इन महापापात्मा पुरुषों के साथ सम्पर्क रखने वाला हो और चाहे कैसा भी किल्बिषों की खान क्यों न हो आपका मनुष्य दर्शन प्राप्त करकेवह भी उस परम पद को प्राप्त हो जाया करता हैं जहाँ पहुंचकर फिरयह जीवात्मा दूसरा जन्म ग्रहण किया करता हैं । विधि पूर्वक किये हुए एक सौ चान्द्रियण व्रतों का जो फल प्राप्त होता है, वहीं फल भगवान् केदारेश्वर के दर्शन से प्राप्त हो जाया करता है ।५०-५१। वे मनुष्य लोक में पशु के हीं समान है और उसका इस संसार में जीवन धारण करना भी निरर्थक ही हुआ करता है जिन्होंने महाकाल यन में भगवान् केदारेश्वर नाम वाले प्रभु का दर्शन प्राप्त नहीं किया है ।५२। कुमार अवस्था मे—योवन में—बाल्यावस्था म और बार्धक्य में जो भो कुछबुरे कर्म या पाप हां उनका अक्षय केवल केदारश्वर के दर्शन से हो जाता है ।५३। हिमवान् पर्वत की यात्रा और उसका जो कुछ भी फल होता है वह सब कह दिया है उसका जो कुछ भी पुण्य फल होता है वह केवल केदारेश्वर के दशन स प्राप्त होजाता है ।५४।हे देवि ! उस समय देवा के द्वारा प्रणाम करते हुए मुझसे इस प्रकार कहा गया था। और मैंने भी ऐसा हागा—यह कह दिया था। । फिर सब देवगण इन्द्रलोक को चले

गये थे ।५। हे देवि ! आपके समक्ष में यह पापों का विनाश करने वाला केदारेश्वर भगवान् के दर्शन का प्रभाव बतला दिया है । अब यहाँ से आगे पिशाचेश्वर नामक भगवान् के विषय में श्रवण करो ।५६।

१०५—पिशाचेश्वरमाहात्म्यवर्णन

अष्टषष्टिकसंख्याक पिशाचाख्यमथेश्वरम् ।
श्रृणु देविप्रयत्नेन दर्शनात्पापनाशनम् ।१
आदौकलि युगेदेवि शूद्रोबहुधनोऽभवत ।
सोमोनामसुविख्यातानास्तिकावेदनिन्दकः ।२
अब्रह्मण्यो नृशसश्च कदर्यो नरपत्रपः ।
विश्वासघातकश्चैव परस्वहरणे रतः ।३
त्रिवर्गहन्ता चान्येषामात्मकामानुववर्त्तकः ।
स कदाचिन्मृतो देवि ! कष्टेन परमेण च ।४
मरुदेशे पिशाचोऽभूक्षग्नोदानो भयावहः ।
नाशकृत्सपिशाचानां स्वपक्षोच्छदकारकः ।५
वहवो मर्द्दितास्तेन पिशाचा बलवत्तराः ।६

ईश्वर ने कहा—इसके अनन्तर अड़सठ संख्या वाले पिशाच नामक ईश्वर का श्रवण अब हे देवि ! यत्नपूर्वक करिये जिसके दर्शन मात्र से ही समस्त पापों का विनाश हो जाया करता है ।१। हे देवि ! आदि में इस कलियुग में शूद्र बहुत धन वाला हुआ करता था जिसका सोम यह नाम परम प्रसिद्ध था । यह महान् नास्तिक ईश्वर की सत्ता का न मानने वाला और वेदों की निन्दा करने वाला हुआ था ।२। यह ब्राह्मण की सुरक्षा न करने वाला-महान् क्रूर स्वभाव से युक्त—कदर्य अत्यन्त नीच-निरपत्रप (निर्लज्ज)—विश्वास का घात करने वाला—सदा पराये धन का अपहरण करने में रति रखने वाला था ।३। यह अन्य तीनों वर्ग अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीन वर्णो का हनन कर्त्ता और

केवल अपनी ही अभिलाषाओं की पूर्ति करने वाला था हे देवि ! वह किसी समय में परमाधिक कष्ट सहन करते हुए मृत हो गया था ।४।
यह अपने-अपने किये हुए घोर पाप पूर्ण कर्मों के कारण मरने के पश्चात् मरुभूमि (मारवाड़) में जहाँ जल के अभाव के कारण प्राणी मर जाया करते हैं, पिशाच हुआ था जो परम नग्न—दीन और भयावना था यह अपने पक्ष वाले पिशाचों का भी नाश करने वाला स्वपक्ष की ही उच्छेदन करने वाला था। इसने बड़े २ अत्यधिक बलवान् पिशाचों का भी मर्दन कर दिया था ।५-१।

अथतेनैवमार्गेणकदाचिच्छाकटायनः ।
स्वाध्यायनिरतो विद्वान्वाग्मीशमपरायणः ।७
उदयादित्यसंकाशोविभावससुमद्यु तिः ।
शकटेन सदा याति स पश्यन्पर्वतात्मज ! ।८
गतो ददर्श तं रौद्रं पिशाचं च भयावहम् ।
स पिशाचः क्षुधाविष्टो भोक्तुं कामोऽभ्यधावत ।९
दृष्ट्वा तं शकटारूढं ब्राह्मण शाकटायनम् ।
शकटस्य ध्वनिंश्रुत्वा रूप दृष्ट्वाद्विजस्य च ।१०
तथारूपः पिशाचस्तु कर्णाभ्यां बधिरीकृतः ।
आत्मत्राणपरो भुत्वा नष्टः कष्टेन पानंति ।
तं धावन्त समालोक्य पिशाचं ब्राह्मणोऽब्रवीत् ।११
पिशाच त्रस्तरूपोऽसि त्वारनश्चैव लक्ष्यसे ।
क्व धावसि समाचक्ष्व कुतस्ते भयनागतम् ।१२
शकटस्यास्महतोघोषश्रुत्वाभयंकरम् ।
कर्णभ्यांयधिरोजातोविसज्ञस्तवदर्शनात् ।१३
पिशाचानां बलिष्ठाश्च श्रूयन्ते ब्रह्मराक्षसाः ।
स त्व माँ भोक्तुकामोऽसि विख्याती ब्रह्मराक्षसाः ।१४

हे हिमाचल की पुत्री ! इसके अनन्तर एक बार ऐसी घटना घटित हुई थी कि किसी समय में उसी मार्ग से शाकटायन महर्षि निकले थे जो वेद वेदांगों के स्वाध्याय करने में सदा निरत रहा करते थे बहुत ही

अधिक विद्वान् वाग्मी (बोलने वाले) और सर्वदा शम में परायण रहने वाले थे ।७। इन महर्षि का स्वरूप उदित हुए सूर्य के समान तेजस्वी था और यह विभावसु के तुल्य द्युति वाले थे । यह सब संकट में ही गमन किया करते थे । वे इधर से जा रहे थे तभी उन्होंने उस अत्यन्त भयानक–रौद्र रूप वाले पिशाचको वहाँ पर देखा । वह पिशाच अत्यन्त भूखा था और वह उन शाकटायन महर्षि को खाने के लिए उस ओर दौड़ गया था ।८-९। उस पिशाच ने एक शकट पर समारूढ़ शाकटायन ब्राह्मण को देखकर तथा शकट ध्वनि का श्रवण किया था । उससे उस शकट में स्थित द्विज के स्वरूप का अवलोकन किया था ।१०। उस प्रकार के स्वरूप वाला वह पिशाच उसी समय कानों से बहरा हो गया था । हे पार्वति ! वह अपनी ही रक्षा करने में व्यस्त होता हुआ बहुत ही कष्ट से नष्ट सा हो गया था । इधर-उधर दौड़ लगाते हुए उस पिशाच को देखकर उस शाकटायन ब्राह्मण ने उससे कहा— ।११। हे पिशाच ! तू बहुत ही डरा हुआ-सा और अधिक शीघ्रता से दिखालाई दे रहा है । तू इस समय में कहाँ को जाने के लिये दौड़ लगा रहा है और तुझे किसका भय व्याप्त हो रहा है ? ।१२। पिशाच ने कहा—इस शकट की महती भयानक ध्वनि सुनकर मैं कानों से बहरा हो गया हूँ और आपको देखकर मैं मूर्छित अर्थात् अचेतन-सा हो गया हूँ ।१३। ब्राह्मण ने कहा—पिशाचों में सबसे अधिक बलशाली ब्रह्मा राक्षस सुने जाया करते हैं । वही तू अत्र मुझे खाने की इच्छा वाला है और तू ब्रह्म राक्षस परम विख्यात है ।१४।

पिशाचानां समर्थोऽस्मि नष्टोऽहं तव दर्शनात् ।
दुःखं हि मृत्युः सर्वषां जीवितं च सदुर्ल्लभम् ।
अतो भीतः पलातामि जीवहेतोः सुखार्थतः ।१५
कुतः पिशाचसौख्यतेमरणं श्रेय एव ते ।
पैशाची कुत्सितायोनिः पापिनामेवजायते ।१६
सर्वत्र हि गतो जीवोभवत्येवसुखाश्रयः ।
तस्माज्जीवितुमिच्छामिप्रसीदब्रह्मराक्षसः ।१७

नाह त्वां भोक्तुकामोऽस्मि ब्राह्मणोहं न राक्षसः।
सर्वभूतहितार्थाय विचरामि महीतले ।१८
सर्वेषामेव प्राणिनां मैत्रा ब्राह्मण उच्यते।
माकुरुष्वभयं मत्तो मित्रभावगतोह्यहम् ।१९
तस्य तद्वचनं श्रुत्वापिशाचः स्वस्थमानसः।
प्रणम्यंप्रत्युवाचेद ब्राह्मणशाकटायनम् ।२०
यदि ते सर्वभूताना दत्ता ह्यभयदक्षिणा।
कर्मणा मनसावाचा मित्रभावं गतोयदि ।२१

उस पिशाच ने कहा था—हे ब्राह्मण ! निःसन्देह मैं समस्त पिशाचों में महान् बलवान् हूँ एवं परम समर्थ भी हूँ किन्तु तुम्हारे दर्शन से तोमैं नष्ट-सा हो गया हूँ—मेरी सारी शक्ति क्षीण हो गई है। यह मौत तो दुःखदायिनी हुआ करती है और यह जीवन अत्यन्त दुर्लभ हुआ करता है। इसलिए मैं सुखपूर्वक जीवन रखने के लिए इस जीवन के ही कारण से भयभीत होकर दौड़ रहा हूँ ।५। ब्राह्मण ने कहा—हे पिशाच ! तुमको इस जीवन जीने में सुख कहाँ है ? तेरा तो मरना ही कल्याण करने वाला है। तुझे जो यह पिशाच बन जाने की योनि प्राप्त हुई है। यह तो बहुत ही बुरी है और महापापियों को ही यह मिला करती है। पिशाच ने कहा—कहीं भी रहे सर्वत्र ही यह जीवात्मा सुख के ही आश्रय वाला हुआ करता है। इसीलिए मैं जीवित रहना चाहता हूँ हे ब्रह्म राक्षस ! आप मुझ पर प्रसन्न होकर कृपा कीजिए ।१६ १७। ब्राह्मण ने कहा—मैं ब्रह्म राक्षस नहीं हूँ। मैं तो ब्राह्मण हूँ। मैं तुझे खाना भी नहीं चाहता हूँ। मैं इस भूमण्डल में समस्त प्राणियों के हित करने के लिए ही विचरण किया करता हूँ ।१८। देखो, यह ब्राह्मण वर्ण ऐसा होता है कि यह सभी प्राणियों का हित करने वाला और सबका मित्र कहा जाया करता है। मुझसे हे पिशाच ! तुम किसी भी प्रकारका भय मत करो मैं तो तुम्हारे साथ मित्र भाव को ही प्राप्त हो गया हूँ ।१९। उसके उस वचन का श्रवण कर पिशाच स्वस्थ मन वाला हो गया। उस पिशाच ने शाकटायन विप्रको प्रणाम करके यह वचन बोला

था ।२०। यदि अपने समस्त प्राणियों को अभय प्रदान करने की दक्षिणा दे दी है और यदि आप मन —कर्म तथा वचन से मित्र भाव को प्राप्त हो गये हैं अर्थात् पूर्णतया आप मेरा हित ही चाहते हैं ।२१।

पृच्छामि त्वां महाभाग संशयो हृदये स्थितः ।
श्रुत्वाऽनुकम्पया सम्यक्ताम व्याख्यासुमर्हसि ।२२
केन कर्मविपाकेन पैशाच याति मानवः ।
पिशाचत्वात्कथं मुक्तिः प्राप्यतेपापकर्मभिः ।२३
इति तस्य वचः श्रुत्वा पिशाचस्यवरानने ।
ममत्वेनावृतस्तस्मै प्रावोचच्छाकटायनः ।२४
तपमृत्य च विप्रस्वं देवस्व च विशेषतः ।
तेनपापेन पापिष्ठाः पिशाचत्वप्रपान्तिच ।२५
पितरमातर चेव स्त्रिय बाल द्विज तथा ।
वञ्चयित्वा हरत्यर्थं स पिशाचो भवेन्नरः ।२६
राजद्रव्यं गृहीत्वा तु न यजेन्नददातियः ।
आत्मनमेव पुष्णातिपिशाचत्वं सगच्छति ।२७
त्रिश्वासघातका ये च परदाररताश्चये ।
प्राप्नुवन्ति पिशाचत्वं तथा ये वेदनिन्दकाः ।२८

हे महाभाग ! मेरे हृदय में एक बड़ा भारी संशय उत्पन्न हो गया है उसके वियय में मैं आपसे पूछ रहा हूँ । आप उसे सुनकर कृपया अच्छी तरह से व्याख्या करके समझाने के योग्य हैं ।२२। यह मनुष्य किस कर्मके विपाक से इस पिशाच की योनि को प्राप्त किया करता है? और यह भी वतलाइये कि वे कौन से कर्म हुआ करते हैं जिनके करने से इन पिशाचता प्राप्त करने वाले पापपूर्ण कर्मों से मनुष्य मुक्ति को प्राप्त किया करते हैं ? ।२३। हे वरानने ! उस पिशाच के वचन को सुनकर ममता से भर कर शाकटायन उससे कहने लगा ।२४। ब्राह्मण का धन और विशेष रूप से देवोत्तर सम्पत्ति का अपहरण करके ही उस महापाप से पापिष्ठ लोग पिशाच की योनि प्राप्त किया करते है ।२५।

माता–पिता, स्त्री, बालक और द्विज को प्रतारित करके जो इनके धन का हरण करता है वह मनुष्य भी पिशाच हो जाता है ।२६। जो राजा का द्रव्य ग्रहण करे तो उससे यजन करता है और न दान ही देता है उससे केवल अपना ही पोषण किया करता है वह भी पिशाचत्व को प्राप्त हो जाया करता है ।२७। जो विश्वास के घात करने वाले होते हैं और पराई स्त्रियों से रति रक्खा करते हैं तथा जो वेदों की निन्दा करने वाले हैं वे भी पिशाच योनि को प्राप्त हो जाया करते हैं ।२८।

निन्दन्ति ये पुराणानि धर्मशास्त्राणि सर्वदा ।
तेभवन्ति पिशाचाश्च ये सदा पिशुना नराः ।२९
इति ते कथितं सर्वं वेदप्रामाण्यतोऽधुना ।
इदानीं कथयिष्यामि यस्त्वं जातोऽसि तच्छृणु ।३०
सोमकोनाम शूद्रस्त्वं परमर्मप्रकाशकः ।
विश्वासघातको जातो देवब्राह्मणदूषकः ।३१ ।
नास्तिको भिन्नमर्यादो जन्मन्यत्रापि सप्तमे ।
सकुल पातियित्वत्र नरकदारुणभृशम् ।३२
पिशाचयोनि सम्प्राप्तः पुनः प्राप्स्यसिरौरवम् ।
महारौरवसञ्ज्ञं तुचक्रं कालसूत्रकम् ।
यत्र पीडनकं रौद्र मथनंकुम्भवालेकम् ।३३
ईत्येव वदतस्तस्य ब्राह्मणस्य यशस्विनि ।
सस्मार प्रोक्तनं जन्म सत्सङ्गाकुत्सितं स्वकम् ।३४
दुःखाभिभूतो निश्चेष्टो धिग्धिगित्यसंकृद्ब्रवन् ।
पतितो भूतले देवि वाक्यमथाब्रवीत् ।३५

जो पुरुष सदा पुराणों की और धर्मशास्त्रों की बुराई किया करते हैं और जो चुगलखोर होते हैं वे मनुष्य पिशाच हो जाते हैं ।२९। यह सब इस समय मैंने वेदों के प्रमाण के आधार पर ही बतला दिया है और अब मैं वह बात बतलाता हूं जिसके कारण से तुम पिशाच हो गये हो इसे सुन लो ।३०। तुम सोमक नामधारी शूद्र थे और हमेशा दूसरों के मर्म (रहस्य) को प्रकट करने वाले थे। तुम विश्वास घात करने

वाले तथा देवों और ब्राह्मणों की बुराई किया करते थे ।३१। परम नास्तिक – मर्यादा को तोड़ देने वाला इस सातवें जन्म में भी बराबर रहा था । तुमने अपने आपके सम्पूर्ण कुल को अत्यन्त दारुण नरक में डालकर इस पिशाच की योनि को प्राप्त किया है । फिर भी तुम अभी आगे रौरव–महारौरव—क्रकच—काल सूत्रक–यन्त्र पीड़िनक—रौद्र–मथन—कुम्भ वालुक आदि महा घोर नरकों को प्राप्त करोगे । हे यशस्विनि ! वह ब्राह्मण इस प्रकार से कह ही रहा था कि उस पिशाच ने अपने पूर्व जन्म का इस विप्र से सत्सङ्ग से स्मरण कर लिया था जो कि बहुत ही बुरा था ।३२-३४। मुझे धिक्कार है–मैं धिक्कार का पात्र ही हूँ—ऐसा बारम्बार कहता हुआ वह पिशाच अत्यन्त दुःखित होकर वेहोश हो हे देवि ! भूतल में गिरकर यह वाक्य बोला ।३५।

अहो केनापि पुण्येन भवता सह दर्शनम् ।
जातं ममाल्पपुण्यस्य दीनस्यंकृपणस्य च ।३६
नास्ति धमसमं मित्रं नास्ति धर्मसमागातः ।
नास्तिधर्मसमं त्राण स च नास्तिमम प्रभो ।३७
मग्नोऽहं दुःखजलधौ मग्नोऽह पापकर्दमे ।
भ्रान्ताऽहमन्धतम अतस्त्वांशरण गतः ।३८
नमस्तेऽस्तु महाभाग किं करोमि प्रशाधि माम्
तत्तप नलनिर्दिष्टमिद प्राप्तं मयाऽधुना ।३९
एव निगदतस्तस्यय पिशाचस्य वरानने ।
कथयामास माहात्म्यं सविप्रशाकटायनः ।४०
पृथिव्यांगनितीर्थानि आसमुदगतानिव ।
क्षेत्राणियानिसन्तीहतेषाँक्षेत्र सुपुण्यदम् ।४१
महाकालवनं क्षेत्रं प्रलयेऽप्यक्षय गतम् ।
लिंग तत्र महाक्षेत्रे पिशाचत्वविनाशनम् ।४२
ढुण्ढेश्वरस्य देवस्यदक्षिणंत्रिदशार्चितम् ।
पंशाच विद्यतेभूतः पिशाचयोनिनाशनम् ।
तस्य दर्शनमात्रेणपिशाचत्वात्प्रमोक्ष्यसे ।४३

ओ हो ! मेरा न मालुम कौन-सा ऐसा पुण्य का उदय हुआ है जिससे आपका दर्शन मुझे हो गया है अन्यथा मैं तो महापापी दीन और कृपण हूँ ।३६। धर्म के समान अन्य कोई मित्र नहीं है और न धर्म के तुल्य कोई दूसरी गति ही है । यह धर्म ही परम रक्षक है । इसके अतिरिक्त रक्षा करने वाला अन्य कुछ भी नहीं है । हे प्रभो ! वह धर्म ही मेरा लेश मात्र भी नहीं है ।३७। मैं तो दुःखों के अपार सागर में मग्न हो गया हूँ और पापों के दल में गड़ा हुआ हूँ । मै इस घोर अन्धकार में भ्रम रहा इसलिए अब मैं आपकी शरण आ गया हूँ ।३८। हे महाभाग ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ । मुझे आप प्रशासित कीजिये कि मैं क्या करूँ । आपकी तपस्या के बल से निर्देश किया हुआ मैंने अब यह प्राप्त कर लिया है ।३९। वरानने ! इस प्रकार से उस पिशाच के कहने पर उस विप्र शाकष्टायन ने माहात्म्य कहा था ।४०। इस भूमण्डल में समुद्र पर्यन्त जो भी तीर्थ है और जितने भी वहाँ पर धर्म के क्षेत्र हैं उन सबका पुण्य प्रदान करने वाला क्षेत्र एक ही है ।४१। महाकाल वन नामक क्षेत्र प्रलय काल में भी जबकि सभी कुछ नष्ट हो जाया करते हैं अक्षय बना रहता है । उस महाक्षेत्र में शिव लिंग है जो कि इस पिशाच की योनि का विनाश कर देने वाले हैं ।४२। ढुण्डेश्वर देव के दक्षिण भाग में देवों के द्वारा समर्चित पैशाच्र लिंग है जो पिशाच की योनि का नाश कर देने वाला है । उसके दर्शन करने का ही ऐसा अद्भुत प्रभाव है कि इससे ही मनुष्य पिशाच योनि से प्रमुक्त हो जाया करता है ।४३।

तस्य तद्वचन श्रुत्वा स पिशाचो वरानने ।
आजगामत्वरायुक्तो नमस्कृत्यद्विजन्तदा ॥४४
महाकालवने पुण्ये समीहितफलप्रदे ।
ददर्श तत्र तल्लिङ्गं स्नात्वा शिप्राजले शुभः ॥४५
दर्शनात्तस्य लिङ्गस्यपिशाचो वारानने ! ।
तत्क्षणाद्दिव्यदेहस्तु दिव्याभरणभूषितः ॥४६

दिव्य विमानमारूढो गतो लोके सनातने ।
उद् धृत्यसकल गोत्र मातृकं पैतृकतथा ॥४७
दृष्ट्वा तन्महदाश्चर्यमाहात्म्पातिशय प्रिये ! ।
प्रोक्तं देवैर्विमानस्थैः सिद्धैराकाशगैस्तथा ॥४८
अतो देवः स विख्यातो भविष्यति महीतले ।
पिशाचेश्वरसंज्ञस्तु सर्वपापप्रणाशनम ॥४९

हे वरानने ! उस ब्राह्मण के इस वचन का श्रवण करके वह पिशाच उस ब्राह्मण शाकटायन को प्रणाम करके उसी समय में बड़ी ही शीघ्रता से युक्त होकर वहाँ पर समागत हो गया था ।४४। अभीष्ट फल के प्रदान करने वाले परम पुण्यमय उस महाकाल वन में पहुँच कर उसने शिप्रा के शुभ्र जल में स्नान किया और फिर उस लिंग का दर्शन किया था ।४५। हे वरानने ! वह पिशाच उस लिंग के दर्शन से उसी क्षण में दिव्य देह धारण करके परम दिव्य आभूषणों से विभूषित हो गया था और फिर परम दिव्य विमान में समारूढ़ होकर सनातन लोक को चला गया था और फिर उसने इसी के प्रभाव से अपने पितृकुल तथा मातृकुल के पितरों का भी उद्धार कर दिया था ।४६-४७। हे प्रिये ! उस महान् आश्चर्य से भरे हुए इस माहात्म्य के अतिशय को देखकर देवगण भी जो विमानों में संस्थित थे और आकाशगामी सिद्धगण भी कहने लगे थे—ओ हो ! क्या अद्भुत माहात्म्य है कि इस लिङ्ग के केवल दर्शन से यह महान् पापात्मा परम निकृष्ट पिशाच भी स्वर्ग में चला गया है। इसलिए वह देव इस महीतल में पिशाचेश्वर संज्ञा वाला विख्यात हो जायेगा क्योंकि वह तो पिशाचों के भी समस्त पापों का नाश करने वाला है ।४८-४९।

येपश्यन्तिनरादेवि ! पिशाचेश्वरसंज्ञकम् ।
तेषांहिपितरः सद्योयेचापिनिरयेस्थिताः ।
पिशाचत्वाद्विमुच्यन्ते स्वर्गं यान्ति न संशयः ॥५०
अश्वमेधस्य यज्ञस्य सम्यगिष्टस्य यत्फलम् ।
तत्फलं लभते सोऽपि पिशाचेश्वरदर्शनात् ॥५१

गयायां पिण्डदानेनयत्पुण्यं समुदाहृतम् ।
तत्पुण्यमधिक ज्ञेयं पिशाचेश्वरदर्शनात् ॥५२
ये पश्यन्ति चतुर्दश्यां पिशाचेश्वरसंज्ञकम् ।
प्रेतत्वचपिशाचत्वं कुलेतेषांतजायते ॥५३
न वियोर्नि नरो याति नरकं चनपश्यति ।
प्रसङ्ग नापिय: पश्येत्शिाचेश्वरसंज्ञकम् ॥५४
सर्वेश्वर्यसमायुवत: सर्वबन्धुसमन्वितः ।
मोदतेपितृलोके स पिशचेश्वरदर्शनात् ॥५५
कीर्त्तनान्मुच्यते पापाद् दृष्टवा स्वर्गं च गच्छति ।
स्पर्शनादस्य लिंगस्य पुनात्यासप्तमं कुलम् ॥५६
तदेव स नरो मुक्त: संसारनिगाडादिभिः ।
यदेव वीक्षतेलिङ्ग पिशाचेश्वरसंज्ञकम् ॥५७
यज्ञानां तपसां चव दानानां चै व्यत्फलम् ।
तत्फलकोटिगुणितं जायतेतस्यदर्शनात् ॥५८
यदि पश्येच्चतुर्दश्यां वैशाखे कार्तिकेतथा ।
तस्यपुण्यमसख्यातंजायतेनात्रसंशय: ॥५९
एषते कथितो देवि ! प्रभाव: पापनाशनः ।
पिशाचेश्वरदेवस्य श्रूयतां संगमेश्वरम् ॥६०

हे देवि ! जो मनुष्य इस पिशाचेश्वर नामक लिंग का दर्शन किया करते हैं उनके समस्त पितर जो भी नरकों में यातनाऐं भोग रहे हैं तुरन्त ही पिशाचता से मुक्त होकर स्वर्ग को गमन किया करते हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।५०। भली भाँति यजन किये हुए अश्वमेध यज्ञ का जो फल होता है उसी पुण्य फल को मनुष्य भगवान पिशाचेश्वर के दर्शन से प्राप्त कर लेता है ।५१। गया में पिण्डों के दान से जो पुण्य बताया गया है उससे भी अधिक पुण्य पिशाचेश्वर के दर्शन से होता है ।५२। चतुर्दशी में जो पिशाचेश्वर के दर्शन करते हैं उनके कुल में प्रेतत्व और

पिशाचता कभी नहीं होती है ।५३। यह वियोनि और नरक में नहीं जाता है। जो अन्य प्रसङ्ग से भी पिशाचेश्वर का दर्शन कर लेता है वह सब ऐश्वर्य और बान्धवों से मुक्त हो जाता है तथा पितृ लोक में परम प्रसन्न रहता है। कीर्तन से ही पापमुक्त हो जाता है। दर्शन से स्वर्ग मिला करता है। लिंग के स्पर्श से सात कुलों को पवित्र कर देता है। यज्ञ–तप–दानों का जो फल है उनसे करोड़ गुना फल दर्शन से होता है। वैशाख–कार्तिक में चतुदर्शी के दर्शन से जो पुण्य होता है वह असंख्य है—इसमें संशय नहीं है। हे देवि ! यह पापों का नाशक प्रभाव कह दिया है ।५४-६०।

१०६–अग्नितीर्थ, सर्पतीर्थ माहात्म्य वर्णन

ततोगच्छेत्तु राजेन्द्र ! अग्नितीर्थमनुत्तमम् ।
तत्र स्नात्वा तु पक्षादौ मुच्यते सर्वकिल्विषैः ॥१
तत्रतीर्थे तु यः कन्यां दद्यात्स्वयमलङ्कृताम् ।
तस्य यत्फलमुद्दिष्टं तच्छ्रृणुष्व नरोत्तम ॥२
अग्निष्टोमातिरात्राभ्यां शतंशतगुणोकृतम् ।
प्राप्नोति पुरुषो दत्वा यथाशक्त्या ह्यलङ्कृताम् ॥३
तस्याः पुत्रप्रपौत्राणां या भवेद्रोमसंगतिः ।
स याति तेन मानेन शिवलोके परा गतिम् ॥४

श्रीमार्कण्डेय मुनि ने कहा—हे राजेन्द्र ! इसके पश्चात् सर्वोत्तम अग्नि तीर्थ को गमन करना चाहिए पक्ष के आदि वहाँ पर स्नान करके मनुष्य समस्त किल्विषों से मुक्त होकर विशुद्ध हो जाया करता है ।१। जो कोई मनुष्य उस तीर्थ में स्वयं समलंकृत करके किसी कान्ता का दान दिया करता है उसका जो पुण्य—फल बताया गया है वह हे नरोत्तम ! मुझसे श्रवण कीजिये। अग्निस्तोम और अतिराव इन दोनों के पुण्य से सौ-सौ गुना पुण्य फल अलङ्कारों से यथाशक्ति विभूषित कन्या का दान करके पुरुष प्राप्त किया करता है ।२-३। उस कन्या के पुत्र और पौत्रों

के जितने भी शरीर की रोमामावलि होती है इन्हीं के मान से वह पुरुष शिवलोक में परमगति को प्राप्त करता है ।४।

ततो गच्छेन्महाराज सर्पतीर्थमनुत्तमम् ।
यत्र सिद्धा महासर्पास्तपस्तप्त्वा युधिष्ठिर ! ॥५
वासुकिस्तक्षकाघोरः सर्पं एरावतस्तथा ।
कालियश्चमहाभागः कर्कोटकधनञ्जयौ ॥६
शङ्खचूड़ो महातेजा वृतराष्ट्रो वृकोदरः ।
कुलिको वामनश्चैव तेषां ये पुत्रपौत्रिणः ॥७
तत्र तीर्थे महापुण्ये तपस्तप्त्वा सुदुष्करम् ।
भुञ्जन्ति विविधान्भोगान्क्रीडन्ति च यथासुखम् ॥८
तत्र तीर्थे तुयः स्नात्वातर्पयेत्पितृदेवताः ।
वाजपेयफल तस्य पुरा प्रोवाच शङ्कर ॥९
स्नातानांसर्पतीर्थेतुनराणां भुविभारत ।
सर्ववृश्चिकजातिभ्यो न भयंविद्यतेक्वचित् ॥१०

श्री मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—हे महाराज ! इसके अनन्तर सर्वोत्तम सर्प तीर्थ में गमन करे । हे युधिष्ठिर ! जहाँ पर महा सर्पों ने तपश्चर्या करके सिद्धि प्राप्त की है । उन महा सर्पों के नाम बतलाये जाते हैं—वासुकि—तक्षक परम घोर सर्प ऐरावत—महाभाग कालिय—कर्कोटक—धनञ्जय—शङ्खचूड़—महान् तेज वाला—वायाधृतराष्ट्र—वृकोदर—कुलिक और वामन ये महा सर्प कहे जाते हैं। इनके जो भी पुत्र और पौत्र थे ये भी सब हैं । उस महा पुण्यमय तीर्थ में ये परम दुष्कर तपस्या करके नाना प्रकार के भोगों का उपभोग किया करते है और सुख पूर्वक क्रीड़ा करते हैं ।५-८। उस तीर्थ में जो कोई भी मनुष्य स्नान करके अपने पितृगण और देवों का तर्पण किया करता है—भगवान शंकर ने ही पहिले ही कहा था कि उस पुरुष को बाजपेय यज्ञ का फल होता है ।९। हे भारत ! इस भूलोक में इस तीर्थ में स्नान किये हुए पुरुषों को सर्प तथा वृश्चिक (विच्छू) जातियों से कहीं भी कभी कोई भय नहीं होता है ।१०।

मतो भोगवतीं गत्वापूजमानोमहोरगैः ।
नागकन्यापरिवृता महाभोगपतिर्भवेत् ॥११
मार्ग शीर्षस्य मासस्य कृष्णपक्षे च याऽष्टमी ।
सोपवासः शुचिर्भूत्वा लिङ्गं सम्पूरयेत्तिलेः ।
यथाविभवसारेण गन्धपुष्पः समर्चयेत् ॥१२
एवं विधाय विधिवत्प्रणिपत्यक्षमापयेत् ।
तस्य यत्फलमुद्दिष्टं तच्छृणुवनरेश्वर ॥१३
तिलास्तत्र च यत्संख्याः पत्रपुष्पफलानि च ।
तावत्स्वर्ग पुरे राज मोदते कालमप्सितम् ॥१४
ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो जायते विमले कुले ।
सुरूपः सुभगश्चैवधनकोटिपतिर्भवेत् ॥१५

वह मनुष्य मृत्युगत होकर भोगवती पुरी पहुंच जाता है और वहां पर महान् उरगों के द्वारा पूज्यमान हो जाता है उसको नाग कन्याऐं चारों ओर से घेरे रहा करती हैं और अन्त में वह महाभोग पति हो जाया करता है ।११। मार्गशीर्ष मास के कृष्ण पक्ष में जो अष्टमी तिथि है उसमें उपवास के साथ पवित्र होकर लिंग को तिलों से पूरित कर देवे और अपने विभव की शक्ति के अनुसार गन्ध पुष्पादि उपचारों के द्वारा लिंग का अभ्यर्चन करना चाहिए। इस प्रकार से विधि—विधान के साथ करके प्रणाम करे और अपराध—क्षमापन करना चाहिये। हे नरेश्वर ! उसका जो भी पुण्य-फल होता है उसको सुनिये। जितनी संख्या में वहाँ पर जो तिल होते हैं तथा जो संख्या पत्र पुष्प और फलों की होती है हे राजन् ! उतने ही वर्षों तक वह पूजा करने वाला भक्ति ईप्सित काल पर्यंत स्वर्ग में आनन्द प्राप्त किया करता है। फिर उस लम्बी स्वर्ग निवास करने की अवधि समाप्त हो जाने पर वहाँ से भ्रष्ट होकर यहाँ इस भूमण्डल में किसी विमल कुल में जन्म ग्रहण किया करता है। इस परम सुभग और सुन्दर स्वरूप वाला होते हुये धन का भी करोड़पति हुआ करता है ।२—५।

१०७–श्रीकपालतीर्थं माहात्म्य वर्णन

चतुर्थं संप्रवक्ष्यामि देवस्य चरितमहत् ।
श्रुतमात्रेण येनैवसर्वपापं प्रमुच्यते ॥१
कपालो कान्थिको भूत्वा यथा स व्यचरन्महीम् ।
पिशाचं राक्षसैर्भूतैर्डाकिनीयोगिनीवृतः ॥२
भैरवंरूपमास्थाय प्रेतासनपरिग्रहः ।
त्रैलोक्यस्याऽभयं दत्वाचचार विपुल तपः ॥३
आषाढोतु कृतान्तबह्यषाढामविश्रुत्तम् ।
कन्थामुक्ता ततोऽन्यत्रदेवेकपरमेष्ठिता ॥४
तदाप्रभृतिराजेन्द्र स कन्थेश्वर उच्यते ।
तस्य दर्शनमात्रेण ह्यश्वमेधफलं लभेत् ॥५
देव मार्गे पुनस्तत्र भ्रमते चयदृच्छया ।
विक्रोणातिउलाकारो दृष्ट्वाचोक्तोहरेणतु ॥६
यदि भद्रन चेत्कोपं करोषिमयिसाम्प्रतम् ।
बलाभिर्भरमेलिपं ददामिबहुते धनम् ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—अब से देवेश्वर प्रभु का चौथा महान् चरित कहता हूँ जिसके केवल श्रवण कर लेने ही से मनुष्य सभी प्रकार के पापों से प्रमुक्त हो जाया करता है। भगवान् शम्भु कपाली और कन्या धारण करने वाले होकर सम्पूर्ण महीमण्डल पर विचरण किया करते थे और उनके साथ पिशाच-राक्षस-भूत डाकिनी और योगिनियाँ रहा करती थीं ।१-२। परम भैरव स्वरूप धारणा करके त्रैलोक्य को अभय का दान देकर प्रेतासन पर स्थित होकर परम दुश्चर तपस्या की थी। वहाँ पर उन्होंने आषाढ़ी की थी अतएव आषाढ़ी यह नाम विश्रुत हो गया था। इसके अनन्तर परमेष्ठी देव ने अन्यत्र कन्या मुक्त करदी थी। हे राजेन्द्र ! तभी से वह कान्येश्वर कहे जाते हैं। उनके दर्शन मात्र से ही मनुष्य अश्वमेध यज्ञ करने का फल प्राप्त किया करता है। फिर देव मार्ग में वहाँ पर इच्छा से भ्रमण करते थे। एक बलाकार विक्रय किया करता था।

भगवान हर ने उसे देखकर कहा—हे भद्र यदि आपका कोई क्रोध न हो तो मुझ पर नाराज नहीं होवें तो आप बलाओं से मेरे लिंग को भर दीजिये। मैं आपको बहुत अधिक धन दूँगा।३।

एवमुक्तोऽथ देवेन स वणिग्लोभमोहितः।
योजयामास बलका लिंगे चोत्तममध्यमान् ॥८
तावद्यावत्क्षयं सर्वे गताः काले सुसञ्चिताः।
स्थितं समुन्नतं लिंगं दृष्टवा शोकमुपागतम् ॥९
कृत्वा तुखण्डखण्डानिस देवः परमेश्वरः।
उवाचप्रहसन्वाक्य तद्दृष्ट्वागतसाध्वसम् ॥१०
नचमे पूरितं लिंगयास्य मियदिमन्थ से।
ददामि तत्रवित्तं तेयदि लिंगं प्रपूरितम् ॥११
अधन्योकृतपुण्योऽहं निग्राह्य परमेश्वर।
तवप्रियमकुर्वाणः शोचिष्येशाश्वतीः समाः ॥१२
एतच्छ्रु त्वावचस्तस्यवणिक्पुत्रस्य भारत।
असक्षयंधनं दत्वास्थितस्तत्रमहेश्वरः ॥१३
तदांप्रभृति राजेन्द्र ! बलाकैरिव भूषितम्।
प्रत्ययाय स्थितं लिङ्ग लोकानुग्रहकाम्यया ॥१४

जब इस तरह से शम्भु के द्वारा उस बनिये से कहा गया तो वह वणिक् लोभ से मोहित होकर उत्तम—मध्यम बलकाओं को उनके लिंग पर योजित करने लग गया था। वह तब तक उन्हें योजित करता चला गया जब तक सुसंचित वे सब क्षय को प्राप्त हो गई थी अर्थात् सब समाप्त हो गई थीं जो उसने एकत्रित कर रक्खी थी, किन्तु उस लिंग की पूर्ति नहीं हुई थी क्योंकि वह तो वैसा ही समुन्नत होकर स्थित हो रहा था—यह देखकर वह वणिक् बड़े भारी शोंक को प्राप्त हो गया था। परमेश्वर देव खण्ड-खण्ड करके हँसते हुये बोले और उसको भयगत देखकर उससे कहा—मेरे लिंग को पूरित नहीं किया गया है यदि ऐसा तुम मानते हो तो मैं अब चला जाऊँगा। यदि मेरा लिंग प्रपूरित हो गया होता तो मैं वहीं पर तुझे धन देता। उस वणिक् ने कहा—हे

परमेश्वर ! मैं वहुत ही अधन्य और बिना पुण्य वाला हूँ और निग्रह करने के योग्य हूँ । आपका प्रिय न करता हुआ में बहुत वर्षों तक चिन्ता करूँगा । हे भारत ! इस बचन को सुनकर उस वणिक् पुत्र को अक्षय धन देकर महेश्वर वहीं पर स्थित हो गये थे । हे राजेन्द्र ! तभी से मकर बलाकों से भूषित की भाँति लोकों पर अनुग्रह करने की कामना से विश्वास कराने के लिये वह लिंग स्थित हो गया था ।८-१४।

देवेन रचितं पार्थक्रीडया सुप्रतिष्ठितम् ।
देवमार्गमिति ख्यातत्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ।
पश्यन्प्रपूजयन्वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१५
देवमार्गं तु यो गत्वापूजयेद्वलकेश्वरम् ।
पञ्चायतनमासाद्यरुद्रलोकं स चच्छति ॥१६
देवमार्गे मृतानां तुनराणांभवितात्मनाम् ।
न भवेत्पुनरावृत्तीरुद्रलोकात्कदाचन ॥१७
देवमार्गस्य माहात्म्यं भक्त्या श्रुत्वा नरोत्तम ! ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो नाऽत्र कार्या विचारणा ॥१८

हे पार्थ देवेश्वर ने क्रीड़ा से ही सुतिष्ठित देवमार्ग की रचना की थी जो परम विख्यात और तीनों लोकों में विश्रुत था । इसका दर्शन करके अथवा इसकी पूजा करते हुए समस्त पापों से प्रमुक्त हो जाया करता है जो कोई उन देवमार्ग में जाकर भगवान बलाकेश्वर की पूजा किया करता है वह पञ्चायतन को प्राप्त करके रुद्रलोक में गमन किया करता है । जो भक्ति आत्मा वाले पुरुष उस देवमार्ग में मृत्युगत होते हैं उन नरों की उस रुद्रलोक से यहाँ फिर पुनः आकृति कभी भी नहीं होती है अर्थात् फिर यहाँ आकर जन्म ग्रहण नहीं किया करते हैं । हे नरोत्तम ! इस देवमार्ग के माहात्म्य को भक्ति से श्रवण करके मनुष्य सभी पापों से मुक्त अवश्य ही हो जाया करता है—इनमें कुछ भी विचारणा नहीं करनी चाहिए ।१७-१८।



१०८—जमदग्न्यतीर्थं माहात्म्य वर्णन

ततोगच्छेद्धराधीश तीर्थं परमशोभनम् ।
जमदग्निरितिख्यातं यत्र सिद्धो जनार्द्दनः ॥१
कथं सिद्धो द्विजश्रेष्ठ वासुदेवो जगद्गुरुः ।
मानुषं रूपमास्थाय लोकानां हितकाम्यया ॥२
एतत्सर्वं यथान्यायंदेवदेवस्यचक्रिणः ।
चरितं श्रोतुमिच्छामिकथ्यमानं त्वयाऽनघ ॥३
आसीत्पूर्वं महाराज हैहयाधिपतिर्महान् ।
कार्त्तवीर्यं इति ख्याता राजा बाहुसहस्रवान् ॥४
हस्त्यश्वरथसम्पन्नः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
वेदविद्याव्रतस्नातः सर्वभूताभयप्रदः ॥५
माहिष्मत्याः पतिः श्रीमान्राजा ह्यक्षौहिणीपतिः ।
स कदाचिन्मृद्धान्तुं निर्जगाम महाबलः ॥६
बहुभिर्दिवसैः प्राप्तो भृगुकच्छमनुत्तमम् ।
जमदग्निर्महातेजां यत्र तिष्ठति तापसः ॥७

श्रीमार्कण्डेय महर्षि ने कहा—हे धराधीश ! इसके उपरान्त उस परम शोभा से समुत्पन्न तीर्थ को गमन करे जहाँ पर जनार्दन सिद्ध हुये थे और जमदग्नि—इस नाम से विश्रुत है । युधिष्ठिर ने कहा—हे द्विजों में परम श्रेष्ठ ! जगत् के गुरु वासुदेव ने कैसे सिद्धि प्राप्त की थी और लोकों पर हित की कामना से मनुष्य क स्वरूप धारण किया था ।१-२। देवों के भी देव के इस सम्पूर्ण चरित का भगवान् चक्रधारी के वृत्तान्त का न्याय पूर्वक वर्णन मैं श्रवण करना चाहता हूँ । हे अनघ ! आपके द्वारा यह कथ्यमान होना चाहिए अर्थात् आप ही इसे वर्णन कीजिये श्री मार्कण्डेयजीं ने कहा—हे महाराज ! एक परम महान् हैहयाधिपते पहले हुआ था । यह कार्त्तवीर्य्य—इस नाम से विख्यात था और वह राजा एक सहस्र बाहुओं वाला था । वह समस्त प्राणियों को अभय प्रदान करने वाला राजा था तथा हाथी, घोड़े और रथ आदि

से सुसम्पन्न एवं समस्त शस्त्र धारियों में परम श्रेष्ठ और सब विद्या तथा व्रतों में स्नान था। श्रीमान् महिष्मती पुरी का पति और अक्षौहिणी सेना का स्वामी था। वह एक बार किसी समय महान् बलशाली मृगों को मारने के लिए निकल गया था बहुत दिनों में परम उत्तम भृगु कच्छ में वह प्राप्त हो गया था जहाँ पर तपस्वी जमदग्नि ऋषि महान् तेज में युक्त स्थित थे।३-७।

रेणुकासहितः श्रीमान्सर्वभूताभयप्रदः।
तस्य पुत्रोऽभवद्रामः साक्षान्नारायणः प्रभुः ॥८
सर्वक्षत्रगुणैर्युक्ता ब्रह्मविद्ब्राह्मणोत्तमः।
त्तोषयन्परया भक्त्या पितरौपरमार्थवित् ॥९
ततदाचार्जुन दृष्ट्वाजमदाग्निः प्रतापवान।
चरन्तंमृगयागत्वा ह्यातिथ्येनन्यमन्त्रयत् ॥१०
तथेति चोक्त्वा स नृपः सभृत्यबलवाहनः।
जगाम चाऽऽश्रमं पुण्यमृषस्तस्य महात्मनः ॥११
तत्क्षणादेव सम्पन्नं श्रिया परमयावृतम्।
विस्मयं परमं तत्र दृवष्टा राजा जगामह ॥१२
गतमात्रस्तु सिद्धेन परमान्नेनभोजितः।
सभृष्यबलवान्नाजा ब्राह्मणेन यदृच्छया।
किमतदित पप्रच्छ कारणं शक्तिमेव च ॥१३
कामधेनो प्रभावं तं ज्ञात्वा प्राह तत्तो द्विजम्।
दक्षिणां देहि मे विप्र कल्मषां धेनुमुत्तमाम् ॥१४

वह तपस्वी समस्त प्राणियों को अभय प्रदान करने वाले श्रीमान् रेणुका के सहित वहाँ पर तपस्या किया करते थे उनके पुत्र राम अर्थात् परशुराम हुये थे जो साक्षात् प्रभु नारायण ही थे, वैसे वह ब्रह्मा के ज्ञाता उत्तम ब्राह्मण थे। किन्तु सम्पूर्ण क्षत्रियों के गुणों से युक्त थे। परशुराम अपने माता-पिता के परम भक्त थे और परम मातृ-पितृ भक्ति के द्वारा उन्हें पूर्ण रूप से सन्तुष्ट करते हुए परमार्थ का ज्ञान रखने वाले थे। उस समय में परम प्रतापी जमदग्नि मुनि ने वहाँ पर सहस्रार्जुन

राजा को समागत देखकर जो कि मृगया (शिकार) करते हुए वहाँ पर उपस्थित हुए थे जमदग्नि उनके पास गये और उनको अतिथि सत्कार करने के लिए निमन्त्रित किया था। 'तथास्तु' अर्थात् अच्छा आपका आतिथ्य हमको स्वीकार है यह कहकर वह राजा अपने समस्त भृत्य—सैन्य और वाहनों सहित उस परम पवित्र पुण्य रूप महात्मा ऋषि के आश्रम में पहुच गये थे। उसी क्षण में सुसम्पन्न और परम श्री से समवृत उस आश्रम को देखकर वहाँ पर राजा का विस्मय हो गया था। वहाँ पर पहुँचते ही सुप्रसिद्ध अन्न के द्वारा राजा का उनके समस्त भृत्य और सेना के सहित ब्राह्मण ने इच्छा पूर्वक यथेष्ट भोजन करा दिया था। राजा ने यह समस्त विशाल भैरव देखकर उनसे इस सब अत्याधिक पूर्ण आतिथ्य करने का कारण पूछा था और ऐसी अतिथ्य के सम्पन्न कर देने की क्या शक्ति है—यह भी प्रश्न किया था। मुनि ने कह देने पर कामधेनु के उस महान् प्रभाव को जानकर उस राजा ने उस द्विज से कहा-हे विप्र! भोजन तो हमको करा दिया है अब कुछ दक्षिणा दो और वह दक्षिणा यह कल्मषों को दूर करने वाली इस कामधेनु को हमको दे दो।८-१४।

शतं शतसहस्राणामयुतं नियुतं परम्।
भूषितानां च धेनूनां ददामि तवचाबुदम् ॥१५
अयुतैः प्रयुतैर्नाहं शतकोटिभियुत्तमाम्।
कामधेनुमिमांतात नदद्मिप्रतिगम्यताम् ॥१६
एवमुक्तः सरोजेन्द्रस्तेन विप्रेणभारत।
क्रोधसंरक्तनेत्रेण इदं वचनमब्रबीत् ॥१७
यस्येदृशाः कामचारो मय्यपि द्विजपांसन।
अहं ते पश्यतस्तस्मान्नयामि सुरभि गृहात् ॥१८
कः क्रीडति सरोषेणा निर्भयोहिमहाहिना।
मृत्युदृष्टोऽन्तरेणाऽपिसमधेनुनयेतयः ॥१९
एवमुक्त्वा महादण्डं ब्रह्मदण्डमिवाऽपरम्।
गृहीत्वाँ परमक्रुद्धो जमदग्निरुवाचह ॥२०

यस्याऽस्ति शक्तिस्तेजो वा क्षत्रिस्य कुलाऽधमः ।
धेन नयतु मे सद्यः क्षीणायुः सपरिच्छदः ॥२१

राजा ने जमदग्नि से कहा—मैं आपको शत—सहस्र—अयुत और नियुक्त तथा अर्बुदि भूषित धेनु देता हूँ किन्तु यह कामधेनु मुझको चाहिये। जमदग्नि ने कहा हे तात ! अयुत (दश हजार) नियुत और सौ करोड़ भी धेनुओं के बदले में मैं इस उत्तम कामधेनु को नहीं दे सकता हूँ आप यहाँ से वापिस चले जाइये । हे भारत ! उस विप्र के द्वारा जब राजेन्द्र सहस्रार्जुन इस प्रकार से कह दिया गया तो वह राजा क्रोध से रक्त नेत्रों वाला होकर मुनि से यह वचन बोला—हे द्विजपासन ! अर्थात् द्विजों में महान् नीच ! जिसे तेरा मेरे प्रति भी ऐसा काम चार अर्थात् मनचाहा बर्तावा है तो मैं देखते हुए ही तेरे घर से इस सुरभि को ले जाता हूँ। द्विज ने कहा—ऐसा कौन है जो निर्भय होकर क्रोध से युक्त महान् सर्प से क्रीड़ा करता है । जो इस मेरी कामधेनु को ले जावेगा । अर्थात् ले जाने की इच्छा करेगा, वह बीच में ही मृत्यु के द्वारा दृष्ट हो जायेगा अर्थात् मर जायेगा इस प्रकार से कहकर जमदग्नि ने परम क्रुद्ध होकर दूसरे ब्रह्मदण्ड की ही भाँति अपने महादण्ड को ग्रहण करके वह मुनि बोला—जिस क्षत्रिय का ऐसा तेज अथवा शक्ति है जो कुल में अधम मेरी इस धेनु को ले जावे वह सपरिवार तुरन्त हीं क्षीण आयु वाला हो जावे ।१५-२१।

एतच्छ्रुत्वा वचः क्रूरं हैहयं शतशोवृतः ।
धावमानः क्षितितले ब्रह्मदण्डहतोऽपतत् ॥२२
हुङ्कृतेन ततो धेन्वाः खड्गपाशासिपाणयः ।
निर्गच्छन्तः प्रदृश्यन्ते कल्मषायाः सहस्रशः ॥२३
नासाजुटाग्रादोमाग्रत्किराता मागधा गुहात् ।
रन्ध्रान्तरेषु चात्पन्ना शतशोथ सहस्रशः ॥२४
एवमयोन्यमाहन्य हैहयंष्टंकणान्दहन् ।
विनाश सह विप्रेण गता ह्यर्जुनसेजसा ॥२५

कार्त्तवीर्यो जयं लब्ध्या सङ्ख्ये हत्वा द्विजोत्तमम् ।
जगाम स्वां पुरीं दृष्ट कृतान्तवशमोहितः ॥२६
ततस्त्वरान्तिः प्राप्तपश्चाद्रामोद्गतेरिपौ ।
आक्रन्दमानांजननीं ददर्शंपितुरन्तिके ॥२७
केनेदमात्तनाशाय ह्यजानात्साहस क्रतम् ।
मम सात जिघासुर्योद्रष्टुं मृत्युमिहेच्छति ॥२८

सैकड़ों जनों से परिवृत हैहय ने जमदग्नि के इस परम क्रूर वचन को सुना था और वह धावमान होता हुआ ब्रह्मदण्ड से हत होंकर भूतल में गिर गया था । इसके अनन्तर उस कल्मषा धेनु के हुँकार से सहस्रों ही खग—पास और असि (तलवार) हाथों में लेने वाले निकलते हुए दिखलाई दे रहे थे । नासापुटों के अग्रभाग से—रोमों के अगले भाग से गुह से और रन्ध्रों के अन्तरों में सैकड़ों और सहस्रों ही किरात और मागध उत्पन्न हो गये थे । इस प्रकार हैहयके टकणों को दग्ध करते हुए आपस में एक दूसरे को मारकर सहस्रार्जुन तेज से विप्र जमदग्नि के सहित सब विनाश को प्राप्त हो गये थे । राजा कीर्त्तवीर्य उस युद्ध में विजय प्राप्त करके और उस उत्तम द्विज का बध करके अपनी पुरी को चला गया था और कृतान्त वश से मोहित देखा गया था । इसके पश्चात् उस रिपु के चले जाने पर शीघ्रता से युक्त राम (परशुराम) वहाँ प्राप्त हो गये थे । उन्होंने अपने पिता के सन्निकट माता को रुदन करते हुये देखा था । परशुराम ने कहा—किस दुष्ट ने अज्ञान से आत्म नाश करने के लिये ऐसा दुस्साहस किया है ? मेरे पिताजी को मारने की इच्छा वाला यह यहीं पर अब स्वयं अपनी मृत्यु को देखने की इच्छा कर रहा है ।२२-२८।

ततः सा रामवाक्येन गतसत्वेवविह्वला ।
उदरं करयुग्नेन ताडयन्तीह्युवाचतम् ॥२९
अर्जुनेन नृशंसेन क्षत्रियर परं सह ।
इहागऽऽगत्यपिता तेन निहितो ब्राह्मणाल्लिना ॥३०

तंपश्य निहितपितरं गतासुङ्गतचेतसम् ।
संस्कृत्य विधिवत्पुत्र तर्पयस्वयथातथम् ॥३१
एतच्छ्रुत्वासवचन जननोमभिवाद्यताम् ।
प्रतिज्ञामकरोद्यातां श्रृणुष्वचनराधिप ॥३२
त्रिः सप्तकृत्वः पृथिवी निः क्षत्रियकुलान्वयाम् ।
स्नात्वा च तेषामसृजा तर्पयिष्यभिः ते पत्तिम् ॥३३
तस्यापि परशुना बांहून्कार्त्तवीर्यस्व दुर्मतेः ।
छित्वा पास्यामि रूधिरमिति सत्यं श्रृणुत्व मे ॥३४

इसके अनन्तर राम के इस वाक्य से गत सत्व की भांति अत्यन्त विह्वल होती हुई उसकी माता दोनों हाथों से छाती पीटती हुई उससे यह वचन बोली—परम क्रूर सहस्रार्जुन ने दूसरे छत्रियों के सहित यहाँ आकर बाहुशाली उसने ही तेरे पिता को निहित किया है। हे बेटा! अपने मृत पिता का दर्शन करले जो इस समय गत प्राण और चेतना से रहित है। हे पुत्र! अब इनका तुम विधिपूर्वक अन्त्येष्टि संस्कार कर डालो और ठीक-ठीक रीति से इनका तर्पण करो। हे नराधिप! माता के यह वचन सुनकर उस अपनी जननी का अभिवादन करके उन्होंने जो उस समय में प्रतिज्ञा की थी उसका आप अब श्रवण करिये—क्षत्रिय कुल के अन्वय वाली इस पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रिय रहित करके उन्हीं के रक्त से स्नान करके ही अब मैं आपके पति का तर्पण करूँगा। मै अपने इस फरसा से उस दुर्मति कार्तवीर्य की भुजाओं का छेदन करके ही उसका रुधिर पान करूँगा—यह मेरा वचन सर्वथा सत्य है उसे सुन लो। इस प्रकार से प्रतिज्ञा करके परम प्रतापी जामदग्न्य ने महान् क्रोध से आविष्ट होकर फिर अपने पिता जमदग्नि का संस्कार किया था।२९—३४।

एवं प्रतिज्ञां कृत्वाऽसौ जामदग्नयः प्रतापवान् ।
क्रोधन महताऽऽविष्टा संस्कृत्य पितरं ततः ॥३५
माहिष्मती पुरीं रामो जगाम क्रोधमूर्च्छितः ।
छित्वा बाहुनसं क्षत्रियस्य हत्वा तंयाधमम् ॥३६

जगामक्षत्रियान्तात पृथिवीमवलोकयन् ।
सप्तद्वीपार्णवयुतां सशैलवनकाननाम् ॥३७
पूर्वतः पश्चिमामांशां दक्षिणोत्तरतः कुरुन् ।
स्यमन्तपञ्चके पञ्च चकार रुधिरह्लदान् ॥३८
सतेषुरुधिराम्भस्सुह्लदेषु क्रोधमूच्छितः ।
पितृन्सन्तर्प्पयातासरुधिरेणोतिनः श्रुतम् ॥३९
अथर्चीकादयोपेत्य पितरौ ब्राह्मणषभम् ।
तत्मस्वेति जगदुस्तः स विरराम ह ॥४०
तेषां समीपे यो देशो ह्लद ना रुधिराम्भसाम् ।
स्यमन्तपञ्चकमिति पुण्य तत्परिकीर्तितम् ॥४१
निवर्त्यंकर्मणस्तस्मात्पितृन्प्रोवाचपाण्डव ।
रामः परमधर्मात्मायदिदरु धरंमया ॥४२
क्षिप्त पञ्चसु तीर्थेसु तद्भूयात्तीयमुत्तमम् ।
तथेत्युक्त्वा तु ते सर्व पितराऽदृश्यतां गताः ॥४३

क्रोध से एक दम मूच्छित होते हुए परशुराम मांहिष्मती पुरी को चल दिये थे और वहाँ पहुँच कर उसकी जो सहस्र बाहुओं का वन था उसको काटकर उस अधम क्षत्रिय को मार गिराया था और फिर क्षत्रियों के अन्त कर देने के लिए सात द्वीपों और अर्णवों वाली—पर्वत और वन काननों से युक्त सम्पूर्ण पृथ्वी को देखते हुए वहाँ से चल दिये थे। पूर्व से पश्चिम दिशा तथा दक्षिण उत्तर कुरुओं को गये थे। सामन्तक पंचक में पाँच रुधिर के ह्लद किये थे। इन रुधिर के जल वाले ह्लदों में उन परशुराम ने क्रोध से मूछित होकर रुधिर से पितृगण का तर्पण किया था—ऐसा हमने सुना है। इसके अनन्तर अर्चीकादि पितरों ने उन ब्राह्मण श्रेष्ठ के समीप में उपस्थित होकर उसने कहा—उसको क्षमा कर दीजिए। इसके पश्चात् वह विरत हो गये थे। रुधिर रूपी जल वाले उन ह्लदों के समीप में जो देश हैं वह स्यमन्तक पञ्चक इस पुण्यमय नाम से परिकीर्तित किया जाता है। हे पाण्डव! उस कर्म से निवृत्त होकर परम धर्मात्मा राम ने पितरों से कहा था कि मैंने जो यह रुधिर

पाँच तीर्थों में प्रक्षिप्त किया है वह उत्तम तीर्थ हो जावे—तथास्तु—अर्थात् ऐसा ही होगा—यह कहकर सब पितृगण अदृश्यता को प्राप्त हो गये थे ।३६-४३।

एवं रामस्य संसर्गो देवमार्गे युधिष्ठिर
सर्वपापक्षयकरो दर्शंसात्स्पर्श नान्नृणाम् ॥४४
रेणुणाप्रत्ययार्थाय अद्यापि पितृदेवताः ।
दृश्यन्तेदेव मार्गस्थाः सर्वपापक्षयकराः ॥४५
तत्र तीर्थे तु राजेन्द्र नर्नदोदधिसङ्गमे ।
स्नानं कृत्वा विधानेनमुच्यन्तेपातकैनराः ॥४६
कुशाग्रेणाऽपि कौन्तेयनस्पृष्टव्यो महीदधि ।
अनेन तत्रमात्रेण स्नातव्यं नृपसत्तम ॥४७
नमस्ते विष्णुरूपाय नमस्तुभ्यमपांपते ।
सन्निध्य कुरु देवेश सागरे लवणाम्भसि ॥४८

हे युधिष्ठिर इस प्रकार से देव मार्ग में राम का संसर्ग दर्शन से और स्पर्श करने से मनुष्यों के समस्त पापों के क्षय करने वाला होता है । रेणुका माता के विश्वास के लिए उस समस्त पापों के क्षय करने वाले देव मार्ग में स्थित पितृ देवता गण अभी भी दिखलाई दिया करते हैं । हे राजेन्द्र ! नर्मदा और सागर के संगम उस तीर्थ में बिधान के साथ स्नान करके मनुष्य पातकों से मुक्त हो जाया करते हैं । हे कौन्तेय ! कुश के अग्रभाग से भी महोदधि का स्पर्श नहीं करना चाहिए हे नृप सत्तम ! वहाँ पर इस निम्नांकित मन्त्र के द्वारा स्नान करना चाहिए । हे अपापते ! देवेश ! विष्णु के स्वरूपधारी आपकी सेवा में प्रणाम अर्पित है जलों के स्वामी की सेवा में नमस्कार है । लवणाम्भ सागर में आप सान्निध्य करिये ।४४-४८।

अग्निश्च तेजो मृडया व देह रतोऽथ विष्णुरमृतस्य नाभिः ।
एतद्ब्रुवन्पाण्डवसत्यवाक्यं ततोऽवगाहते पति नदीनाम् ॥४९
पञ्चरत्नसमायुक्तं फलपुष्पाक्षतैर्युतम् ।
मन्त्रेणाऽनेन राजेन्द्र दद्यादर्घे महोदधे ॥५०

सर्वरत्ननिधानस्त्वं सर्वरत्नाकराकरः ।
सर्वामरप्रधानेश गृहाणार्घं नमोस्तुऽते ॥५१
आजन्मजनितात्शापान्मामुद्धर महादधे ।
याह्यर्चितोरत्ननिधे पर्वत न्यार्वणोत्तम ॥५२
कोऽपरः सागराद्द वात्स्वर्गद्वारविपाटनणु ।
तत्र सागरपर्यन्त महातीर्थमनुत्तमम् ॥५३
जामदग्न्येन रामेण तत्र देवः प्रतिष्ठितः ।
यत्र देवाः स गन्धर्वा मुनयः सिद्धचारणा ॥५४
उपासते विरुपाक्षं जमदग्निमनुत्तमम् ।
रेणुकांचैव येदेवीं पश्यन्ति भुवि मानवाः ॥५५
प्रियवासे शिव लोके वसन्ति कालमीप्सितम् ।
तत्र स्नात्वानरा राजंस्तपयत्पितृदेवताः ॥५६
तारयेन्नरकोद्धोरात्कुलानां शतमुत्तरम् ।
स्नात्वा दत्त्वाऽत्र सहिताः श्रुत्वा वै भक्ति पूर्वकम ॥५७

हे पाण्डव ! अग्नि--तेज और मृडया देह में इसके अनन्तर अमृत की नाभि विष्णु है—यह सत्य वाक्य बोलता हुआ नदियों के पति में फिर अवगाहन करना चाहिए। हे राजेन्द्र ! पाँच रत्नों से युक्त फल पुष्प और अक्षतों से समन्वित इस निम्न मन्त्र से महोंदधि को अर्घ्यं देना चाहिए ।५०। हे समस्त अमरों में प्रधानों के भी ईश ! आप सम्पूर्ण रत्नों की खान हैं और सभी रत्नों के आकारों के आकार हैं। हमारे इस अर्घ्यं को ग्रहण कीजिये आपकी सेवा में आपके लिए हमारा प्रणाम अर्पित है। यह अर्घ्यं देने का मन्त्र है। हे महोदधे ! मेरे जन्म से लेकर समुत्पन्न हुये पापों से मेरा उद्धार कर दो। हे पार्वणोत्तम ! हे रत्ननिधे ! आप समर्चित होंकर पर्वतों का गमन कीजिये। यह विसर्जन का मन्त्र है। इस सागर देव से अधिक स्वर्ग के द्वार को विपाटन करने वाला दूसरा कौन हो सकता है। वहाँ सागर तक अत्युत्तम महातीर्थ है। जामदग्न्य श्री परशुराम ने वहाँ पर देव की प्रतिष्ठा की थी जहाँ पर देव गण—गन्धर्व—मुनि—लोग—सिद्धगण और चारण सभी अत्युत्तम

जमदग्नि विरूपाक्ष भगवान की उपासना किया करते हैं। इस भूमि में जो मनुष्य रेणुका देवी का दर्शन किया करते हैं। वे प्रियवास शिवलोक में अभीष्ट काल पर्यन्त निवास करते हैं। हे राजन् ! उस तीर्थ में स्नान करके अपने पितृगण और देवों का तर्पण करते हुये मनुष्य घोर नरक से उत्तर में होने वाले सौ कुलों का उद्धार कर देता है। स्नान करके यहाँ पर दान करके और भक्ति सहित इन माहात्म्य का श्रवण करके भी अपना और अपने वहुत से कुल का तारण कर दिया करते हैं।५०-५७।

१०६–रेवाखण्डपुस्तकदानादि माहात्म्य वर्णनम्

इतिवः कथितं विप्रारेवा माहात्म्यमुत्तमम् ।
यथोपदिष्टं पार्थाय मार्कण्डेयेनवैपुरा ॥१
तथा तीर्थं कदम्बाश्च तेषु तीर्थं विशेषतः ।
प्राधान्येन मया ख्याता यथासंख्यं यथाक्रमम् ॥२
एतत्पवित्रमतुलं ह्येतत्पापहरं परम् ।
नर्मदाचरितं पुण्यं माहात्म्यं मुनिभाषितम् ॥३
सप्तकल्पानुगो विप्रो नर्मदायां मुनीश्वराः ।
मृकण्डतनयो धीमान्परमार्थविदुत्तमः ॥४
संसेव्य सर्वतीर्थानि नदीः सर्वाश्चवैपुरा ।
वहुकल्पस्मरां रेवामालक्ष्यशिवदेहजाम् ॥५
मेकलेति चशर्वोक्ता शरणं शर्वजां ययौ ।
अजराममरादेवी दैत्यध्वंसकरीं पराम् ॥६
यमहाविभवसंयुक्ता भवघ्नीं भवजाह्नीम् ।
तस्यामावध्य यत्प्रेम जातः सोऽप्यजरामरः ॥७

श्रीसूतजी ने कहा—हे विप्रगण ! पुरातन समय में जिन प्रकार से महर्षि मार्कण्डेयजी ने युधिष्ठिर को इसका उपदेश किया था यही मैंने आप लोगों को यह अत्युत्तम माहात्म्य बतला दिया है। मैंने

बहुत से तीर्थों का तथा उसमें भी विशिष्ट तीर्थों का प्रधान रूप से संख्या और क्रम के अनुसार वर्णन मिला है। यह अत्यन्त ही पवित्र और अतुल पापों के हरण करने वाला है। मुनीश्वरो! पुण्यमय नर्मदा का चरित एवं माहात्म्य है जिसको कि महामुनि ने कहा था। हे मुनीश्वरों! सात कल्पों तक अनुगमन करने वाला मृकण्ड का पुत्र विप्र बहुत ही बुद्धिमान और उत्तम अर्थ वेत्ता था। इनसे पहले समस्त तीर्थों का भलीभाँति सेवन करके और समस्त नदियों का सेवन करके बहुत कल्प तक स्मरण की जाने वाली और शिव प्रभु के देह से समुत्पन्न हुई रेवा नदी को देख कर के भगवान शर्व के द्वारा मेकला—इस नाम से कही गई और शर्व से ही समुत्पन्न हुई के शरण में वह चले गये थे। यह देवी जरा रहित-अमर परा और दैत्यों के ध्वंस करने वाली और भव की जाह्नवी थी। उसमें सत्प्रेम को आवद्ध करके वह प्रेमा भी अजरामर हो जाया करता है। ।१—३।

षष्टितीर्थं सहस्राणिषष्टिकोटयश्चसत्तमाः।
व्यवस्थितानिरेवायास्तीरयुग्मपदेपदे ॥८
सरितः परितः सन्ति सतीर्थास्तु सहस्रशः।
नतुलां यान्ति रेवायास्ताश्च मन्ये मुनीश्वराः! ॥९
एतद्वः कथितंसर्वंयत्पृष्टमखिलद्विजाः।
यन्महेशमुखाच्छ्रुत्वायुराह ऋषीन्प्रति ॥१०
तद्वन्मृकण्डतनयोऽप्यनुभूयाखिलां नदीम्।
सतीर्था पदशः प्राह पाण्डुपुत्राय पावनीम् ॥११
एतच्च कथितं सर्वं संक्षेपेणद्विजोत्तमाः।
नर्मदाचरितंपुण्यं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥१२
किमन्यैः सरितां तोयैः सेवितैस्तु सहस्रशः।
यदि संसेव्यते तोयं रेवायाः पापनाशनम् ॥१३
मेकलाजलसेवी मुक्तिमाप्नोति शाश्वताम् ॥१४

रेवा के दोनों तटों पर कदम-कदम पर हे सत्तमो ! साठ हजार और साठ करोड़ तीर्थ व्यवस्थित हैं सरिता के दोनों और सहस्रों सतीर्थं हैं हे मुनीश्वरों ! वे सब रेवा की तुलना प्राप्त नहीं होते हैं ऐसा मैं मानता हूँ। हे द्विजगण ! आप लोगों ने जो कुछ भी मुझसे पूछा है वह सब मैंने आपको बतला दिया है जो भगवान महेश के मुख से श्रवण करके वायुदेव ने ऋषियों से कहा था। उसी भाँति मृकण्ड के पुत्र ने भी सम्पूर्ण नदी का अनुभव प्राप्त करके इस पावनी सतीर्थों को पद से पाण्डु के पुत्र को कहा था। हे द्विजोत्तमो ! यह सभी संक्षेप से मैंने कह दिया है। वह नर्मदा का चरित परम पुण्यमय है और तीनों लोंकों में परम दुर्लभ है। अन्य सहस्रों सरिताओं के जलों का सेवन करने से क्या लाभ है यदि रेवा का जल भली भाँति - सेवन किया जावे जो कि पापों का नाश करने वाला है। मेकला के जल का ससेवन करने वाला शाश्वती मुक्ति को प्राप्त किया करता है।८-१४।

यथा यथा भजेन्मर्त्यो यद्यदिच्छति तीर्थगः।
तत्तदाप्नोति नियत श्रद्धयाऽश्रद्धयापि च ॥१५
इदं ब्रह्माहरिश्चेदंमिदं साक्षात्परोहरः।
इदं ब्रह्म निराकारं कैवल्यं नर्मदाजलम् ॥१६
तावद्गर्जन्ति तीर्थानि नद्योह्यद्यफलप्रदाः ।
यावन्नस्मर्यंत रेवासेवाहेवा कलौ नरैः ॥१७
ध्रुवं लोके हितार्थाय् शिवेन स्वशरारतः।
शक्तिः कापिसरिद्रूपा रेवैयमवतारिता ॥१८
तावद्गसन्ति यज्ञाश्च वन क्षेत्रादयो भृशम्।
यावन्नर्मदानाम कीर्तनं क्रियते कलौ ॥१९
गरिमा गण्यते तावत्तपादानवृतादिषु।
नरैर्वा प्राप्यते यावद् भुविभर्गभवा धुनी ॥२०
ये वसन्त्युत्तयेकुले रुद्रस्यानुचरा हि ते।
बसन्ति याम्यतीरे ये लोकं ते यान्ति वैष्णवम् ॥२१

जैसे-जैसे मनुष्य भजन करता है और तीर्थों में गमन करने वाला जो-जो भी चाहता है। वही-वही नियत रूप से वह अवश्य ही प्राप्त कर लिया करता है चाहे वह श्रद्धा से करे अथवा अश्रद्धा से करे। यह नर्मदा का जल ही ब्रह्मा है—यही हरि है तथा यह जल ही परस्पर साक्षात् हर है—यही निराकार ब्रह्म है और यही कैवल्य है। तभी तक अन्य तीर्थ गर्जन किया करते हैं अर्थात् अपने द्वारा प्राप्त होने वाले पुण्य फल की घोषणा करते हैं और नदियाँ भी सुन्दर फल देने वाली बना करती है जब तक कलियुग में नरों के द्वारा रेवा को सेवा से होने वाले पुण्य फल का स्मरण नहीं किया जाता है। यह निश्चय ही लोक में हित सम्पादन करने के लिए भगवान् शिव ने अपने ही शरीर से कोई सरिता के स्वरूप वाली यह रेवा शक्ति अवतरित की है। तभी तक वन क्षेत्रादि यज्ञ अत्यधिक गर्जना किया करते हैं जब तक इस कलियुग में नर्मदा के नाम का कीर्तन नहीं किया जाता है। तप-दान और व्रत आदि में तभी एक गौरव की गणना हुआ करती है जब तक भूमण्डल में मनुष्यों के द्वारा भर्ग से उत्पन्न नदी की प्राप्ति नहीं की जाया करती है। जो उत्तर कूल में वास किया करते हैं वे रुद्र के अनुचर होते हैं और जो याम्य तट पर निवास करते हैं वे वैष्णव लोक में गमन किया करते हैं।१५-२२।

धन्यास्ते देशवर्यास्ते येषु देवेषु नर्मदा।
नरकान्तकरीशश्वत्संश्रिताशर्वनिर्मिता ॥२२
कृतपुण्याश्च ते लोकाः शोकाय न भवन्ति ते।
ये पिवन्ति जलं पुण्यं पार्वतीपतिसिन्धुजम् ॥२३
इदं पवित्रमतुल रेवायाश्चरितं द्विजाः।
शृणोति यः कीर्तयते मुच्यते सर्वपातकः ॥२४
यत्फलसर्ववेदैश्च सषडङ्गपदक्रमैः।
श्रुतैश्च पठितैस्तस्मात्फलष्टगुणं भवेत् ॥२५
ये पुनर्भावितात्मानः शास्त्रं शृवयन्ति नित्यशः।
पूजयन्ति च तच्छास्त्रं नार्मदं वस्त्रभूषणैः ॥२६

पुष्पैः फलश्चन्दनाद्यै र्भोजनैर्विविधैरपि ।
शास्त्रेऽस्मिंपूजितेदेवा पूजितागुरवस्तथा ॥२७
इहलोकेपयेचैव नात्र कार्या विचारणा ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गन्धर्वस्त्रादिभूषण: ॥२८
पूजयेत्परया भक्त्या वाचकं शास्त्रमेव च ।
वेदपाठैश्च यत्पुण्यमाग्निहोत्रैश्चपालितै: ॥२९
तत्फलं समवाप्नोति नर्मदा चरितं शुभ ।
कुरुक्षेत्रे च यत्पुण्यं प्रभासे पुष्करे तथा ॥३०

वे श्रेष्ठ देश परम धन्य हैं जिन देशों में नर्मदा नदी बहती है। यह साक्षात् भगवान् शम्भु के द्वारा निर्मित नदी है जो निरन्तर ही नरकों का अन्त कर देने वाली है जो लोग इसका सदा संश्रय ग्रहण करते हैं। वे लोग महान् पुण्यों के करने वाले हैं और उनको शोक कभी नहीं होता है जो पार्वती देवी के पति के द्वारा विरचित इस नदी के पुण्य जल का पान करते हैं उनको कभी भी शोक का अवसर ही प्राप्त नहीं होता है ।२३। हे द्विजगण ! यह रेवा का चरित्र अतुल पवित्र हैं। जो इस चरित का श्रवण करता हैं और जो इसका कीर्तन करता है अर्थात् पढ़ता है वह सभी महापातकों से छुटकारा पा जाया करता है। जों फल पद-क्रम घन—जटा—- बल्लीआदि छह अङ्ग सहित समस्त वेदों के पढ़ने एवं श्रवण करने का फल होता है उस फल से अठगुना फल इस नदी से हुआ करता है ।२५। जो लोग धावित आत्मा वाले होते हैं और नित्य ही शास्त्र का श्रवण किया करते हैं। वस्त्र और भूषणों के द्वारा उस नर्मदा के शास्त्र का जों लोग पूजन किया करते हैं। पुष्प-फल-चन्दन आदि द्वारा तथा विविध भाँति के पूजनों से इस शास्त्र के पूजन किये जाने पर समस्त देवता और गुरुवर्ग पूजित हो जाया करते हैं। इस लोक में और पर लोक में भी सब समर्चित होते हैं—इसमें कुछ भी विचारणा नहीं करनी चाहिए। इसलिये सभी प्रकार के प्रयत्नों से गन्ध—वस्त्र—भूषण आदि के द्वारा पराभक्ति से इस शास्त्र का और इसके वाचन करने वाले

का पूजन करना चाहिये। वेद पाठ तथा अग्नि होत्रों से जो पुण्य होता है वही पुण्य शुभ नर्मदा के चरित में प्राप्त हो जाया करता है। कुरुक्षेत्र प्रभासक्षेत्र तथा पुष्कर में जो पुण्य होता है वही पुण्य फल परम शुभ नर्मदा के चरित के पठन, श्रवण और समर्चन से हो जाया करता हैं ।२३-३०।

रुद्रावर्ते गयायां च वाराणस्यां विशेषत: ।
गङ्गाद्वारे प्रयागेच गंगासागरसंगमे ।।३१
एवमादिषु तीर्थेषु यत्पुण्य जायते नृणाम् ।
नर्मदाचरितश्रु त्वात्तपुण्यसकललभेत् ।।३२
आदिमध्यावसानेषु नर्मदाचरितं शुभम् ।
य: श्रृणोति नरो भक्त्या श्रृणुध्य तत्फल महत् ।।३३
समाप्य शिवसंस्थानं देवकन्यासमावृत: ।
रुद्रस्यानुचरोभूत्वा शिवेनसहमोदते ।।३४
धर्माख्यानमिदपुण्यं सर्वाख्यानेष्वनुत्तमम् ।
गृहेऽपिपठ्यतेयस्यचतुर्वर्णस्यसत्तमा: ।।३५
धन्य तस्यगहंमन्ये गृहस्थचापि तत्कुलम् ।
पुस्तकंपूजयेद्यस्तु नर्मदाचरितस्य तु ।।३६
नर्मदा पूजिता तन भगवांश्च महेश्वर: ।
वाचके पूजितसेद्ददेवाश्चऋषयोऽर्चिता: ।।३७

रुद्रावर्त्त गया, विशेष करके वाराणसी, गंगाद्वार, प्रयाग, गंगासागर के सङ्गम इस तरह के बड़े-बड़े तीर्थों में मनुष्य को जो भी पुण्य फल प्राप्त होता है यही पुण्यफल नर्मदा के चरित को श्रवण करके सम्पूर्ण रूप से प्राप्त हो जाया करता है। आदि, मध्य और अवसान में नर्मदा के शुभ चरित का जो भी कोई मनुष्य भक्ति से श्रवण करता है उसके महान् फल को प्राप्त करता है। शिव के संस्थान को प्राप्त करके देव कन्याओं से समावृत होता हुआ भगवान रुद्रदेव के अनुचर होने का पद प्राप्त करके शिव के साथ ही आनन्द प्राप्त किया करता है। धर्माख्यान परम पुण्यमय है और अन्य सभी आख्यानों में सर्वोत्तम आख्यान है। हे

श्रेष्ठजनो ! जिसका पाठ चारों वर्णों के घर में भी किया जाता है। उसके घर को परम धन्य मानता हूँ और वह गृहस्थ तथा कुल भी अतीव धन्य है जो नर्मदा चरित की पुस्तक की पूजा किया करता है। जिसने नर्मदा नदी का पूजन कर लिया है उसने भगवान महेश्वर का ही अर्चन कर लिया है। इस पुराण के वाचन करने वाले का जिसने पूजन किया है मानो उसने सभी देवों और ऋषियों का अर्चन कर लिया है।३७।

लेखयित्वा च सकल रेवाचरितमुत्तमम्।
भूषण सर्व शास्त्रांणांयोददातिद्विजन्मने ॥३८
नर्मदा सर्वतीर्थेषु स्नानदानेन यत्फलम्।
तत्फलंसमवाप्नोति सनरोनाऽत्र संशयः ॥३९
एतत्पुराणं रुद्रोक्तं महापुण्यफलप्रदम्।
स्वर्गदं पुत्रदं धन्य यशस्यकीर्तिवर्धनम् ॥४०
धर्म्यमायुष्यमतुलं दुःखदुःस्वप्ननाशनम्।
पठतां शृण्वतां चापि सर्वकामार्थसिद्धदम् ॥४१
यत्प्रदत्तमिदं पुण्यं पुराणं वाच्यते द्विजैः।
शिवलोके स्थितिस्तस्य पुराणाक्षरवत्सरो ॥४२
इति निगदितमेतन्नर्मदश्चरित्रं
पवनगदितिमग्रयं शर्ववक्त्रादवाप्य।
त्रिभुवनजनवद्यं त्वेतदादौ मुनीनां
कुलपतिपुरतस्तत्सूतमुख्येन साधु ॥४३

इस सम्पूर्ण रेवा के उत्तम चरित को लिखवाकर इस समस्त शास्त्रों के भूषण स्वरूप को जो कोई किसी ब्राह्मण को दान किया करता है उस को नर्मदा अन्य समस्त तीर्थों में स्नान और दान से जो फल प्राप्त होता है वही फल उस मनुष्य को दिया करती है, इसमें तनिक भी संशय नहीं है। यह पुराण भगवान् रुद्र के द्वारा ही कहा गया है और महान् पुण्य फल का प्रदान करने वाला है। यह स्वर्ग निवास, पुत्र देने वाला है, परम धन्य, यश और कीर्ति का बढ़ाने वाला है। धर्म से युक्त, आयु प्रदान

का पूजन करना चाहिये। वेद पाठ तथा अग्नि होत्रों से जो पुण्य होता है वही पुण्य शुभ नर्मदा के चरित में प्राप्त हो जाया करता है। कुरुक्षेत्र प्रभासक्षेत्र तथा पुष्कर में जो पुण्य होता है वही पुण्य फल परम शुभ नर्मदा के चरित के पठन, श्रवण और समर्चन से हो जाया करता हैं।२३-३०।

रुद्रावर्ते गयायां च वाराणस्यां विशेषतः।
गङ्गाद्वारे प्रयागेच गंगासागरसंगमे ॥३१
एवमादिषु तीर्थेषु यत्पुण्य जायते नृणाम्।
नर्मदाचरितश्रुत्वात्तपुण्यसकललभेत् ॥३२
आदिमध्यावसानेषु नर्मदाचरितं शुभम्।
यः श्रृणोति नरो भक्त्या श्रृणुध्य तत्फल महत् ॥३३
समाप्य शिवसंस्थानं देवकन्यासमावृतः।
रुद्रस्यानुचरोभूत्वा शिवेनसहमोदते ॥३४
धर्माख्यानमिदपुण्यं सर्वाख्यानेष्वनुत्तमम्।
गृहेऽपिपठ्यतेयस्यचतुर्वर्णस्यसत्तामाः ॥३५
धन्य तस्यगहंमन्ये गृहस्थचापि तत्कुलम्।
पुस्तकंपूजयेद्यस्तु नर्मदाचरितस्य तु ॥३६
नर्मदा पूजिता तन भगवांश्च महेश्वरः।
वाचके पूजितसेद्वद्देवाश्चऋषयोऽर्चिताः ॥३७

रुद्रावर्त्त गया, विशेष करके वाराणसी, गंगाद्वार, प्रयाग, गंगासागर के सङ्गम इस तरह के बड़े-बड़े तीर्थों में मनुष्य को जो भी पुण्य फल प्राप्त होता है यही पुण्यफल नर्मदा के चरित को श्रवण करके सम्पूर्ण रूप से प्राप्त हो जाया करता है। आदि, मध्य और अवसान में नर्मदा के शुभ चरित का जो भी कोई मनुष्य भक्ति से श्रवण करता है उसके महान् फल को प्राप्त करता है। शिव के संस्थान को प्राप्त करके देव कन्याओं से समावृत होता हुआ भगवान रुद्रदेव के अनुचर होने का पद प्राप्त करके शिव के साथ ही आनन्द प्राप्त किया करता है। धर्माख्यान परम पुण्यमय है और अन्य सभी आख्यानों में सर्वोत्तम आख्यान है। हे

श्रेष्ठजनो ! जिसका पाठ चारों वर्णों के घर में भी किया जाता है। उसके घर को परम धन्य मानता हूँ और वह गृहस्थ तथा कुल भी अतीव धन्य है जो नर्मदा चरित की पुस्तक की पूजा किया करता है। जिसने नर्मदा नदी का पूजन कर लिया है उसने भगवान महेश्वर का ही अर्चन कर लिया है। इस पुराण के वाचन करने वाले का जिसने पूजन किया है मानो उसने सभी देवों और ऋषियों का अर्चन कर लिया है।३७।

लेखयित्वा च सकल रेवाचरितमुत्तमम् ।
भूषण सर्व शास्त्राणांयोददातिद्विजन्मने ॥३८
नर्मदा सर्वतीर्थेषु स्नानदानेन यत्फलम् ।
तत्फलंसमवाप्नोति सनरोनाऽत्र संशयः ॥३९
एतत्पुराणं रुद्रोक्तं महापुण्यफलप्रदम् ।
स्वर्गदं पुत्रदं धन्य यशस्यकीर्तिवर्धनम् ॥४०
धर्म्यमायुष्यमतुलं दुःखदुःस्वप्ननाशनम् ।
पठतां शृण्वतां चापि सर्वकामार्थसिद्धदम् ॥४१
यत्प्रदत्तमिदं पुण्यं पुराणं वाच्यते द्विजैः ।
शिवलोके स्थितिस्तस्य पुराणाक्षरवत्सरो ॥४२
इति निगदितमेतन्नर्मदश्चरित्रं
पवनगदितिमग्रयं शर्ववक्त्रादवाप्व ।
त्रिभुवनजनवद्यं त्वेतदादौ मुनीनां
कुलपतिपुरतस्तत्सूतमुख्येन साधु ॥४३

इस सम्पूर्ण रेवा के उत्तम चरित को लिखवाकर इस समस्त शास्त्रों के भूषण स्वरूप को जो कोई किसी ब्राह्मण को दान किया करता है उस को नर्मदा अन्य समस्त तीर्थों में स्नान और दान से जो फल प्राप्त होता है वही फल उस मनुष्य को दिया करती है, इसमें तनिक भी संशय नहीं है। यह पुराण भगवान् रुद्र के द्वारा ही कहा गया है और महान् पुण्य फल का प्रदान करने वाला है। यह स्वर्ग निवास, पुत्र देने वाला है, परम धन्य, यश और कीर्ति का बढ़ाने वाला है। धर्म से युक्त, आयु प्रदान

करने वाला, अनुपम और दुःख तथा बुरे स्वप्नों के नाश करने वाला है। जो भी उसका पाठ किया करते हैं तथा इसका श्रवण करते हैं उनके समस्त कामों के प्रयोजन की सिद्धि प्रदान करने वाला है। जो यह दान किये हुए पुण्यमय पुराण को द्विजों के द्वारा बाँचा जाया करता है उनकी शिवलोक में स्थिति हुआ करती है और पुराणाक्षर वत्सरी होता है। यह हमने नर्मदा चरित कह दिया है। यह शिव के मुख से प्राप्त करके वायु देव ने इस सर्वोत्तम को कहा है। यह त्रिभुवन के जनों द्वारा वन्दनीय है। आदि काल में कुलपति के आगे सूतजी ने साधु रूप से इसका वर्णन किया।३८-४३।

११०—श्री सत्यनारायण विप्र संवाद वर्णन

व्रतेन तपसा वाऽपि प्राप्यते वाञ्छितं फलम्।
सर्वं तच्छ्रोतुमिच्छामि कथयस्व महामुने ॥१
नारदेनैवमुक्तः स भगवानकमलापतिः।
सुरर्षयेयथाप्राहतच्छृणुध्व समाहिताः ॥२
एकदा नारदोयोगोपरानुग्रहकाम्यया।
पर्यटन् विविधांल्लोकान्मर्त्यलोकमुपाङ्गतः ॥३
तत्र दृष्टा जनाः सर्व्वे नानादुःखसमन्विताः।
नानायोनिसमुत्पन्नाः क्लिश्यन्ते पाप कर्मभिः ॥४
केनोपायेनचैतेषांदुःखनाशोभवेद्ध्रुवम्।
इतिसञ्चिन्त्यमनसाविष्णुलोकङ्गतस्तदा ॥५
तत्रनारायणंदेवं शुक्लवर्णचतुर्भुजम्।
शंखचक्रगदापद्मवनमालाविभूषितम् ॥६
दृष्ट्वा तं देवदेवेशं वक्तुं समुपचक्रमे।
नमस्ते वाङ्मनोऽतीतरूपायाऽनन्तशक्तये।
आदिमध्यान्तहीनाय निर्गुणाय गुणात्मने ॥७

ऋषियों ने कहा—हे महामुने! जिस व्रत अथवा तप से मनुष्यों को मन-वाञ्छित फल की प्राप्ति होती है उस सबको देवर्षि नारदजी के पूछे

हुये प्रश्नानुसार मैं श्रवण करना चाहता हूँ। उसे आप कहिए।१। श्री सूतजी ने कहा—श्री नारद जी के द्वारा इस प्रकार से कहे गये भगवान् कमलापति ने उन देवर्षि से जिस प्रकार से जो भी कहा था वही आप लोग अब परम सावधान होकर श्रवण कीजिये। एक समय की बात है कि योगीराज देवर्षि श्रीनारदजी दूसरे जीवों पर अनुग्रह करने की इच्छा से अनेक लोकों में पर्यटन करते हुए मनुष्य लोक में आकर प्राप्त हो गये थे। वहाँ पर उनके द्वारा सभी मर्त्य लोक निवासी मनुष्य अनेक प्रकार के दुःखों से युक्त नाना प्रकार की योनियों में समुत्पन्न अपने किये हुये पाप पूर्ण कर्मों से क्लेश पाते हुये देखे गये थे।२-४। देवर्षि नारद जी ने अपने मन में इन विचारे भूलोकवासी मनुष्यों की ऐसी बुरी दशा देख कर सोचा था कि ऐसा कौन-सा उपाय हो सकता है जिससे निश्चित रूप से इनके दुःखों का विनाश हो जावे। उसी समय यह विचार करते हुये विष्णुलोक में पहुँच गये थे। वहाँ पर भगवान् नारायण देव का दर्शन किया था जो शुक्ल वर्ण वाले थे और जिनकी चार भुजाएँ थी। नारायण का स्वरूप शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म और वनमाला से विभूषित था। उन देवों के देव प्रभु का दर्शन करके नारदजी ने अपना कथन आरम्भ किया था। नारदजी ने कहा—मन और वाणी से परे स्वरूप वाले, अनन्त शक्ति सम्पन्न तथा आदि, मध्य और अन्त रहित विना गुणों वाले और गुणों की आत्मा वाले प्रभो ! आपके लिये नमस्कार है।४-७।

सर्वेषामादिभूतायभक्तानामार्तिनाशिने।
श्रुत्वास्तोत्रं ततोविष्णुर्नारदं प्रत्यभाषत ॥८
किमर्थमागतोऽसित्व किन्तेमनसिवर्त्तते।
कथयस्वमहाभाग तत्सर्वंकथयामि ते ॥९
मर्त्यलोके जनाः सर्वे नानाक्लेशसमन्विताः।
नानायोनिसमुत्पन्नाः पच्यन्ते पापकर्मभिः ॥१०
तत्सर्वं शमये नाथ लघूपायेन तद्वद।
श्रोतुमिच्छामितत्सर्वंकृपाऽस्तियदिते मयि ॥११

साधुपृष्टंत्वावत्स लोकानुग्रहकाम्या ।
यत्कृत्वामुच्यते मोहात्तच्छुणुष्ववदामिते ॥१२
व्रतमस्ति महापुण्यं स्वर्गे भुवि सुदुर्लभम् ।
तव स्नेहान्मया विप्र प्रकाशः क्रियतेऽधुना ॥१३
सत्यनारायणस्यैतद् व्रतं सम्यग विधानतः ।
कृत्वा सम्यक् सुखं भुक्त्वा परे मोक्षवाप्नुयात् ॥१४

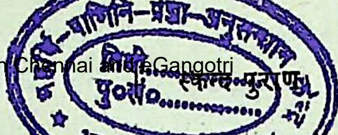
हे भगवान ! आप तो सबसे आदिभूत हैं तथा अपने भक्तों के दुःखों के नाश करने वाले हैं आपकी सेवा में मेरा प्रणाम समर्पित है । भगवान् विष्णु के देवर्षि द्वारा किये हुए स्तोत्र का श्रवण करके उन्होंने नारदजी से कहा—श्री भगवान् ने कहा—हे महाभाग ! आप यहाँ पर किस प्रयोजन से समागत हुये हैं ? आपके मन में क्या विचार विद्यमान है, यह मुझसे कहो तो मैं उस सबके विषय में बतला दूँगा । श्री नारदजी ने कहा—हे भगवान् ! मनुष्य लोक में सभी जन अनेक प्रकार के क्लेशों से उत्पीड़ित हैं । वे अनेक योनियों में उत्पन्न होकर अपने किये हुए पाप कर्मों से पीड़ाएं भोग रहे हैं । हे नाथ ! कृपा कर आप ऐसा कोई हलका सा, छोटा उपाय बतलाइये जिसके करने से सबका शमन हो जाया करे । हे भगवान् ! यदि आपकी मुझ पर पूर्ण कृपा है तो मैं यह सभी श्रवण करने की अभिलाषा रखता हूँ । श्रीभगवान् ने कहा—हे वत्स ! यह तो तुमनें बहुत ही अच्छा प्रश्न पूछा है । इससे तो यह स्पष्ट होता है कि आप लोगों पर बहुत ही अनुग्रह करने की कामना रखते हैं । जिसके करने से मनुष्य मोह से मुक्त पा जाया करता है उसे ही अब आप श्रवण कीजिये । मैं आपको वतलाता हूँ । एक महान् पुण्यमय व्रत स्वर्ग और भूलोक में भी परम दुर्लभ है । हे विप्र ! इस समय मैं आपके प्रति अत्यन्त स्नेह होने के कारण कहता हूँ । यह श्रीसत्यनारायण व्रत विधि-विधान के साथ किया जाय तो सब सुख और मोक्ष का देने वाला है ।८-१४।

यस्मिन् कस्मिन्दिने मर्त्यो भक्तिश्रद्धासमन्वितः ।
सत्यनारायणं देवं यजेत्तुष्टो निशामुखे ॥१५
बान्धवैर्ब्राह्मणैश्चैव सहितोधर्मतत्परः ।

नैवेद्यं भक्तितोदयद्यात्प्रसादभक्ष्यमुत्तमम् ॥१६
रम्भाफलं घृतं क्षीर गोधूमस्य च चूर्णकम्
अभावेशालिचूर्णम्वा शर्करा़म्वा गुडन्तथा ॥१७
प्रसादं सर्वभक्ष्याणि एकीकृत्य निवेदयेत् ।
विप्राय दक्षिणां दद्याद् कथां श्रुत्वा जनैः सह ॥१८
ततश्चबन्धुभिः सार्द्धं विप्रेभ्यः प्रतिपादयन् ।
प्रसादं भक्षयेद् भक्त्या नृत्यगीतादिकञ्चरेत ॥१९

हे नारद ! श्रद्धा भक्ति से चाहे जिस किसी भी दिन में प्रातः काल में परम प्रसन्न होकर अपने सब बन्धु-बान्धवों और ब्राह्मणों सहित देवेश्वर का अभ्यर्चन करना चाहिए । भगवान् की सेवा में परमोत्तम भक्ष्य प्रसाद एवं नैवेद्य अर्पित करे । रम्भा (कदली) के फल—घृत—क्षीर—गेहूँ का आटा, यदि गेहूँ के चून का आभाव हो तो शालि का ही आटा ग्रहण करे—शर्करा, यदि शर्करा (चीनी शक्कर) न प्राप्त हो सके तो उसके अभाव में गुड़ ग्रहण करे । इन सम्पूर्ण भक्ष्यों का एकीकरण करके प्रसाद भगवान की सेवा में समर्पित करना चाहिए । समस्त जनों के सहित भी सत्यनारायण प्रभु की कथा श्रवण करे और इसके अनन्तर कथा वाचक विप्र को दक्षिणा देवे । फिर बन्धुओं के सहित विप्रों को भोजन करावे और प्रसाद देकर बहुत ही भक्ति की भावना से स्वयं प्रसाद का भक्षण करे तथा भगवत्सम्बन्धी नृत्य-गीत आदि का समाचरण करना चाहिये ।१५-१९।

ततः स्तुत्वा गृहं गच्छेत् सत्यनारायण स्मरन् ।
एवं कृते मनुष्याणां वाञ्छासिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ॥२०
विशेषतः कलियुगे नान्योपायोऽस्तिभो द्विज ॥२१
कश्चित् काशीपुरे ग्रामे आसीदविप्रश्च निर्द्धनः ।
क्षुत्तृष्णाव्याकुलो भूत्वा सततं भ्रमते महीम् ॥२२
दुःखितं ब्राह्मणं दृष्ट्वा भगवान् ब्राह्मणप्रियः ।



वृद्धब्राह्मणरूपेणपप्रच्छद्विजमादरात् ॥२३
किमर्थं भ्रमसे विप्र महीकृत्स्नां सुदुःखितः ।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि कथ्यते यदि रोचते ॥२४
ब्राह्मणोऽतिदरिद्रोऽहं भिक्षार्थं भ्रमणं मम ।
उपायं यदि जानासि कृपया कथय प्रभो ॥२५

इसके अनन्तर स्तवन करके भगवान् श्री सत्यनारायण प्रभु का स्मरण करते हुए अपने घर की ओर गमन करे ऐसी विधि से इस व्रत एवं पूजन के करने पर मनुष्यों को वाञ्छा की सिद्धि निश्चित रूप से हो जाया करती है। विशेष करके इस परमघोर कलियुग में भूतल में दुःखों के विनाश करने का अन्य कोई भी उपाय ही नहीं है। हे द्विज ! अब भगवान् सत्यनारायण प्रभु की कथा बतलाता हूँ जिसके श्रवण करने से मनुष्य कृतकृत्य अर्थात् पूर्णकाम एवं सफल हो जाया करता है। कथा का यहीं से आरम्भ होता है—काशीपुर नामक ग्राम में कोई एक परम निर्धन विप्र था। वह बिचारा क्षुधा और तृषा से अत्यन्त व्याकुल होकर निरन्तर पृथ्वी पर भ्रमण किया करता था। इस प्रकार से अत्यन्त दुःखित उस ब्राह्मण को ब्राह्मणों पर विशेष प्यार करने वाले सत्यनारायण भगवान् ने देखकर स्वयं एक वृद्ध ब्राह्मण का स्वरूप धारण करके उसके समीप में समागत हुये और बहुत ही आदर के साथ उस ब्राह्मण से उन्होंने पूछा था—हे विप्र ! आप मुझे यह तो कृपा करके बतलाइये कि आप इस तरह से अत्यन्त दुःखित होते हुए किस प्रयोजन की सिद्धि के लिये सम्पूर्ण भूमि पर भ्रमण किया करते हैं ? मैं यही सब सुनने की इच्छा रखता हूँ। यदि आप ठीक समझते हों तो यह मुझे बतला दीजिये। ब्राह्मण ने कहा—मैं ब्राह्मण हूँ और बहुत ही अधिक दरिद्र हूँ। मेरा यह समस्त भ्रमण केवल भिक्षा प्राप्ति के लिये होता है। यदि आप मेरे इस उदर की पीड़ा के निवारण का कोई उपाय जानते हों तो हे प्रभो ! आप कृपा कर मुझे यह बतला दीजिये ।२०—२५।

सत्यनारायणोविष्णुर्वाञ्छितार्थं फलप्रदः !
तस्यत्वं द्विजशार्दूल कुरुस्वव्रतमुत्तमम् ।
यत्कृत्वा सर्व्वंदुःखेभ्यो मुक्ता भवति मानवः ॥२६
विधानञ्च व्रतस्याऽस्य विप्रायाऽऽभाष्य यत्नतः ।
सत्यनारायणो वृद्धस्तत्रैवाऽन्तरधीयत ॥२७
ततोऽसौमनसाविप्रश्चिन्तयामासईश्वरम् ।
व्रतं नारायणेनोक्तं विदित्वामन्दिरं ययौ ॥२८
ततोऽहं तत्करिष्यामि व्रतं मनसि चिन्तितम्
इति निश्चित्य विप्रोऽसौ रात्रौ निद्रां न लब्धवान् ॥२९
ततः प्रातः समुत्थाय सत्यनारायणव्रतम् ।
करिष्येऽहञ्चसंकल्प्य सिद्धार्थमगमद्द्विज ॥३०
तस्मिन्नेवदिनेविप्रः प्रचुर द्रव्यमाप्तवान् ।
तेनेववन्धुभिः सार्द्धं सत्यस्यव्रतमाचरन् ॥३१
सर्वदुःखविनिर्मुक्तः सर्व सम्पत्यसमन्वितः ।
वभूवं सद्विजश्रेष्ठोव्रतस्याऽस्यप्रसादयः ॥३२
ततः प्रभृति कालञ्च मासि व्रतं कृतम् ॥३३
एवं नारायणादेतद्व्रतं ज्ञात्वाद्विजोतमः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तोदुर्लभं मोक्षमाप्तवान् ॥३४
व्रतमेतद्यदाविप्र पृथिव्या सञ्चरिष्यति ।
तदैव सर्वदुःखहि मानवानां विनश्यति ॥३५
एवं नारायणेनोक्तं नारदाय महात्मने ॥३६

उस वृद्ध ब्राह्मण वेष वाले प्रभु ने कहा—हे द्विजों में शार्दूल समान् ! भगवान् सत्यनारायण विष्णु सम्पूर्ण वाँछित अर्थों के फलों के प्रदान करने वाले हैं। उन्हीं के परम उत्तम व्रत एवं अर्चन को आप करिये जिसके करने से मनुष्य इस संसार में सभी प्रकार के दुःखों से मुक्त हो जाया करता है। श्रीभगवान् ने नारदजी से कहा—इस वुभुक्षित विप्र को इस सत्यनारायण प्रभु के व्रत का पूरा विधान यत्नपूर्वक कहकर वह वृद्ध ब्राह्मण के स्वरूप में उपस्थित सत्यनारायण प्रभु वहीं पर अन्तर्हित

हो गये थे। उनक वहीं छिप जाने पर इसके पश्चात् उस विप्र ने मन में ईश्वर का चिन्तन किया था कि यह व्रत तो स्वयं नारायण ने ही मुझे बतलाया है—यह समझकर वह मन्दिर में गया था। इसके अनन्तर उसने अपने मन में विचार किया था कि मैं व्रत को करूँगा—ऐसा निश्चय करके उस ब्राह्मण ने रात्रि में निद्रा प्राप्त नहीं की थी अर्थात् व्रत करने के निश्चय करने पर इसी के चिन्तन करते रहने में रात को नींद बिल्कुल नहीं आई थी। फिर सुबह होते ही हे द्विज ! वह उठकर मन में विचार करने लगा कि मैं सत्यनारायण भगवान् का व्रत अवश्य करूँगा ऐसा सङ्कल्प करके वह सिद्धार्थ को प्राप्त हो गया था भगवान् सत्यनारायण प्रभु की ऐसी कृपा हुई कि उसी दिन में उसी विप्र ने प्रचुर दान प्राप्त कर लिया था। उसी द्रव्य से उनके अपने बन्धुओं के साथ मिलकर सत्यनारायण का व्रत किया था। इसके करने से वह सभी कष्टों से निर्मुक्त हो गया था और सब प्रकार की सम्पत्ति से युक्त हो गया था। यह द्विजों में श्रेष्ठ इसी व्रत के प्रभाव से एवं प्रसाद से सर्व सुख सम्पन्न हो गया था। तभी से लेकर सर्वदा प्रत्येक मास में उसने यह व्रत किया था इस प्रकार से उस द्विज ने इस सत्यनारायण व्रत का ज्ञान साक्षात् भगवान् नारायण से ही प्राप्त किया था और वह इसे करके समस्त पूर्ण कृत पापों से छुटकारा पाकर पूर्णतया विशुद्ध हो गया तथा उसने अन्त में परम दुर्लभ मोक्ष पद को भी प्राप्त कर लिया था। भगवान श्रीकृष्ण ने देवर्षि नारदजी से कहा—हे द्विज ! जिस समय में यह व्रत पृथ्वी में संचार प्राप्त कर लेगा उस समय भूमण्डल में समस्त पीड़ित मानवों का दुःख पूर्ण रूप से विनिष्ट हो जायेगा। श्रीसूतजी ने कहा—हे महर्षियों इस रीति से महान् आत्मा वाले देवर्षि श्री नारद जी से भगवान नारायण ने इस व्रत के विषय में कहा था वह मैंने आप लोगों के सामने वर्णन कर दिया।२६-३६।

★ समाप्त ★

पुराणों का वृहद् प्रकाशन

(सरल हिन्दी अनुवाद सहित)

१—शिव पुराण	२ खण्ड (भा.टी.)	...	३८
२—विष्णु पुराण	२ खण्ड (भा.टी.)	...	३
३—मार्कण्डेय पुराण	२ खण्ड (भा.टी.)	...	३८
४—गरुड़ पुराण	१ खण्ड (भा.टी.)	...	३८
५—हरिवंश पुराण	२ खण्ड (भा.टी.)	...	३८
६—देवी भागवत पुराण	२ खण्ड (भा.टी.)	...	३८
७—भविष्य पुराण	२ खण्ड (भा.टी.)	...	३८
८—लिंग पुराण	२ खण्ड (भा.टी.)	...	३८
९—पद्म पुराण	२ खण्ड (भा.टी.)	...	३८)
१०—कूर्म पुराण	२ खण्ड (भा.टी.)	...	३८)
११—ब्रह्मवैवर्त पुराण	२ खण्ड (भा.टी.)	...	३८)
१२—स्कन्द पुराण	२ खण्ड (भा.टी.)	...	३८)
१३—मत्स्य पुराण	२ खण्ड (भा.टी.)	...	३८)
१४—नारद पुराण	२ खण्ड (भा.टी)	...	३८)
१५—कालिका पुराण	२ खण्ड (भा.टी)	...	३८)
१६—वामन पुराण	२ खण्ड (भा.टी.)	...	३८)
१७—अग्नि पुराण	२ खण्ड (भा.टी.)	...	३८)
१८—ब्रह्माण्ड पुराण	२ खण्ड (भा.टी.)	...	३८)
१९—कल्कि पुराण	(भा.टी.)	...	२०)
२०—सूर्य पुराण	(भा.टी.)	...	१६)
२१—आत्म पुराण (भाषा)		...	१६)
२२—गणेश पुराण (भाषा)		...	२०)
२३—महाभारत (भाषा)		...	१८)
२४—श्रीमद्भागवत सप्ताह कथा (भाषा)		...	३०)

प्रकाशक : संस्कृति संस्थान ख्वाजाकुतुब, वेदनगर,
बरेली-२४३००३ (उ०प्र०)